श्रीः

बृहन्निघंटुरत्नाकर

(हिन्दीटीकासहित)

तृतीय भाग

टीकाकार

श्री० दत्तराम श्रीकृष्णलाल माथुर

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन

बम्बई-४

श्रीः

बृहन्निघंटुरत्नाकर

(हिन्दीटीकासहित)

तृतीय भाग

टीकाकार
श्री० दत्तराम श्रीकृष्णलाल माथुर

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन
बम्बई-४

संस्करण- सन्१९९५ सम्वत्२०५२

मूल्य २०० रुपये मात्र

Printed by Shri Sanjay Bajaj for M / s Khemraj Shrikrishnadass proprietors Shri Venkateshwar press Bombay-400 004. at their Shri Venkateshwar press, 66, Hadapsar Industrial Estate, Pune-411013.

ॐ

बृहन्निघंटुरत्नाकर–तीसरेभागकी अनुक्रमणिका।

पंचेंद्रियार्थविप्रातिपाति।

छायाविप्रतिपत्ति।

स्वभावविप्रतिपत्ति।

छायापुरुष।

बालकोंकेरोगकीपरीक्षा।

वस्त्रपरीक्षा।

देशपरीक्षा।

मानपरिभाषा।

स्वेदविधि ।

वमन ।

अथ रेचनाधिकार।

बस्तिप्रकरणम् ।

प्रतिसारणम् (भंजन)।

नेत्ररोगचिकित्साविधिः।

आश्चोतनके लक्षण।

* इति हिताहितीयाध्याय *

मिश्रखंडकी समाप्ति ।

चिकित्साखंडप्रारम्भः ।

दशप्राणायतनीयाध्यायः ।

पित्तज्वर ।

विषय.	पृष्ठांक.

सन्निपात।

विषय.	पृष्ठांक.

वातोल्बण।

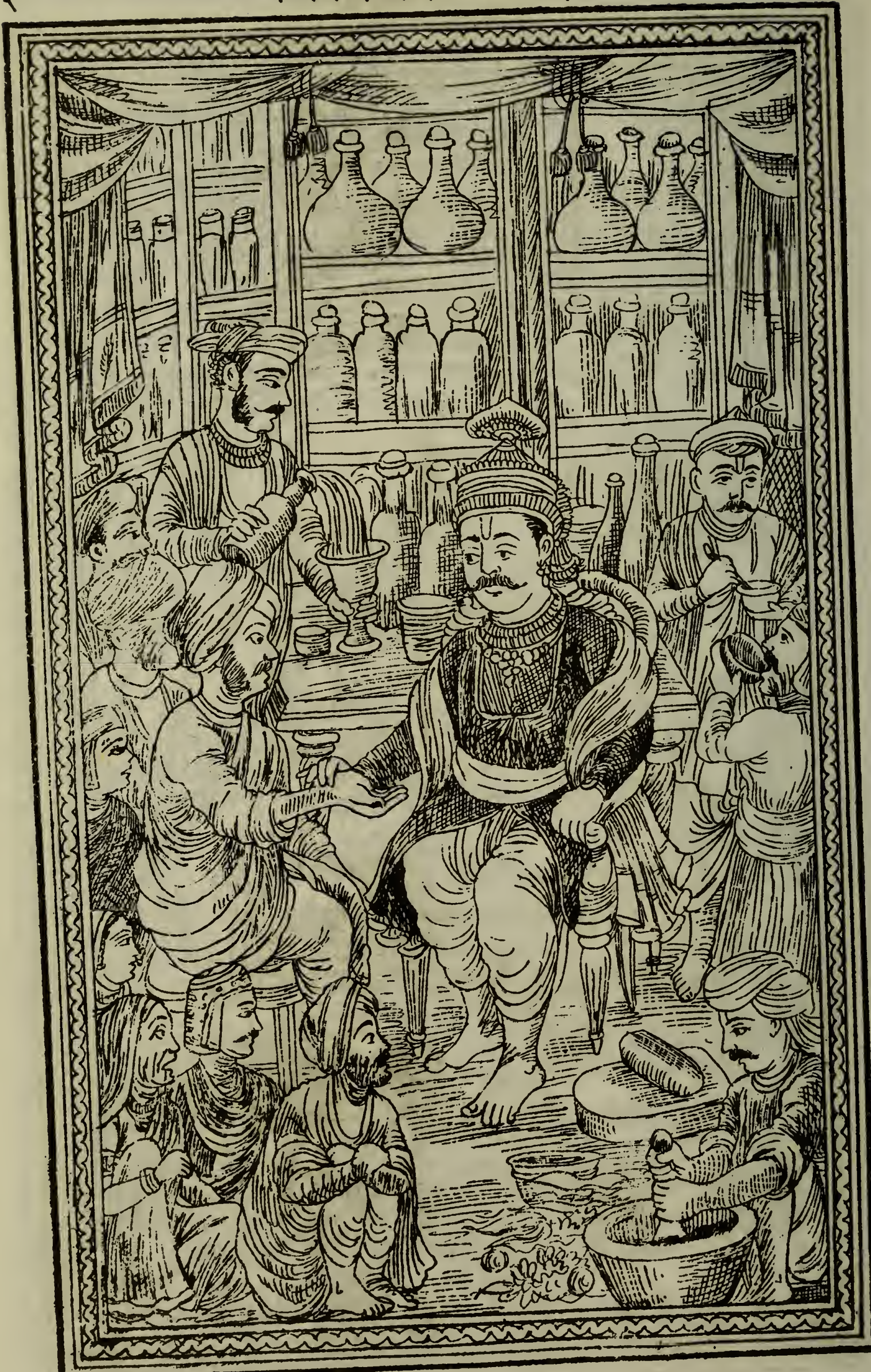
विषय.	पृष्ठांक.

बृहन्निघण्टुरत्नाकरके तीसरे भागकी अनुक्रमणिका समाप्त।

अर्धांगी शिवकी मूर्ति.



धन्वंतरि वैद्यराजकी मूर्ति.




ज्वर १ ला.

बीभत्स ज्वरकी मूर्ति ज्वर २रा.









त्रिपाद् ज्वर ६ वा.







ज्वलद्दिग्रहज्वर नववा.





प्लैक्सीमेटर.
पट्टी (तख्ती.)
युरेनामेटर.
हैपोडर्मिक सिंज.
स्टेथिसकोप.
कामन.
फ्लैक्सीबिल
डाइल स्टेथसकोप.

श्रीः ।

अथ मूत्रपरीक्षा ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि मूत्रस्य च परीक्षणम् ॥
येन विज्ञानमात्रेण रोगचिह्नं प्रकाशते ॥ १ ॥

अर्थ–अब नाडीदर्पण कहनेके अनंतर हम मूत्रपरीक्षण कहतेहैं, जिसके जाननेसे रोगके चिह्न प्रकाश होतेहैं ।

मूत्रपरीक्षाका समय ।

निशांतयामे घटिकाचतुष्टये उत्थाप्यवैद्यः किल रोगिणां च ॥ मूत्रं धृतं काचमये च पात्रे सूर्योदये तत्सततं परीक्षेत् ॥ २ ॥

अर्थ–रात्रिके चौथेप्रहरकी जब ४ घडी रात्रि बाकीरहै तब वैद्य रोगीको उठाय कांचके पात्रमें मूत्रकराकर धररक्खे जब सूर्योदय होवे तब उस मूत्रकी परीक्षाकरे ।

तस्याद्यधारां परिहृत्य मध्यधारोद्भवं तत्परिधारयित्वा॥ सम्यक् परिज्ञाय गदस्य हेतुं कुर्याच्चिकित्सां सततं हिताय ॥ ३ ॥

अर्थ–रोगीका मूत्र लेतेसमय प्रथम और अंतकी धाराको त्यागकर बीचकी धाराको लेवे तथा उसमूत्रसे रोगका कारण जानकर रोगीके हितार्थ औषधि करे ।

वाते[१]च पांडुरं मूत्रं सफेनं कफरोगिणम्।रक्तवर्णं भवेत्पित्ते द्वंद्वजे मिश्रितं भवेत् ॥ सन्निपाते च कृष्णं स्यादेतन्मूत्रस्य लक्षणम् ॥ ४ ॥

---

१ वातेन पाण्डुरं मूत्रं रक्तं नीलं च पित्ततः । रक्तमेव भवेद्रक्ताद्धवलं फेनिलं कफात् ॥ इति पुस्तकान्तरे.

अर्थ-रोगीका मूत्र वातविकारसे पांडुरवर्णहोताहै कफविकारसे झागयुक्त पित्तविकारसे रक्तवर्ण और द्वंद्वजव्याधिसे मूत्र मिश्रवर्णका होताहै और सन्निपातसे कृष्णवर्ण होताहै । यह मूत्रके सामान्य लक्षण जानने ।

नीलं च रूक्षं कुपिते च वायौ पीतारुणं तैलसमं च पित्ते ॥ स्निग्धं कफे पल्वलवारितुल्यं स्निग्धोष्णरक्तं रुधिरप्रकोपे ॥ ५ ॥

अर्थ-मतांतर कहतेहैं कि वातके कोपमें रोगीका मूत्र नील और रूक्ष होताहै । पित्तके कोपमें पीला और लाल तथा तेलके समान होताहै । कफके विकारमें रोगीका मूत्र चिकना और पोखराके जलके समान गदला होताहै रक्तप्रकोपमें रोगीका मूत्र चिकना गरम और काला होताहै ।

मातुलुंगरसाभासं सौवीराभं जलोपमम् ॥
प्रपाकरहितानांच मूत्रं चन्दनसन्निभम् ॥ ६ ॥

अर्थ-जिसके अन्न भलेप्रकार पाचन नहीं होताहै उसका मूत्र विजोरेके रसके समान अथवा कांजीके समान अथवा जलके समान किंवा चन्दनके समान उतरताहै ।

अजीर्णप्रभवे रोगे मूत्रं तंडुलतोयवत् ॥
नवज्वरे धूम्रवर्णं बहुमूत्रं प्रजायते ॥ ७ ॥

अर्थ-अजीर्णसे जो विकारहुआहो उसमें मूत्र चावलके धोवनके समान होताहै । औरै नवीन ज्वरमें मूत्र धूंएके समान तथा बहुत होताहै।

पित्तानिलेधूम्रजलाभमुष्णं श्वेतं मरुश्लेष्मणि बुद्बुदाभम् ॥ सश्लेष्मपित्ते कलुषं सरक्तं जीर्णज्वरेऽसृक्सदृशं च पीतम् । स्यात्सन्निपातादपि मिश्रवर्णं तूर्णं विधिज्ञेन विचारणीयम् ॥ ८ ॥

अर्थ-मूत्र वातपित्तके कोपमें धूम्रवर्ण, गरम, और जलके समानहोताहै । वातकफके विकारमे सपेद तथा बुलबुलेदार होताहै । कफपित्तके विकारमें लाल तथा दूषितहोता है । जीर्णज्वरहोनेमें पीला तथा रुधि-

रके समान होय। और सन्निपाहहोनेसे मूत्र अनेकप्रकारके मिश्रित-वर्णका होताहै। इसप्रकार वैद्यको मूत्रके वर्ण जानने चाहिये।

परीक्षा विधिवत्कार्या रोगिमूत्रस्य तत्वतः॥
तृणेन दापयेत्तैलबिन्दुं तत्रातिलाघवात्॥ ९॥

अर्थ-रोगीके मूत्रकी यथाविधिसे उत्तम परीक्षा करनी चाहिये। वह इसप्रकार कि पूर्वोक्त धरेहुए मूत्रमें तिनकासे लेकर वैद्य शीघ्र तेलकी बूंदडाले फिर उसकी इसप्रकार परीक्षाकरे।

विकासि चेत्तैलमथाशु मूत्रे साध्यः स रोगी न विकासितं चेत्॥ स्यात्कष्टसाध्यस्तलगेत्वसाध्यो नागार्ज्जुनेनैव कृता परीक्षा॥ १०॥

मूत्रमें डाली हुई तेलकीबिंदु यदि सबमूत्रके ऊपर जलदी-फैलजावे तो जाने रोगी साध्यहै। और यदि न फैले तो जाने कि रोगीकष्टसाध्यहै। तथा वह तेलकी बूंद मूत्रके नीचे बैठजावे तो असाध्यजानना यह नागार्जुनसिद्धकी करी हुई परीक्षाहै।

पूर्वाशां वर्द्धते बिन्दुर्यदा शीघ्रं सुखी भवेत्॥
दक्षिणाशां ज्वरो ज्ञेयस्तथारोग्यं क्रमाद्भवेत्॥ ११॥

अर्थ-मूत्रमें डालीहुई तेलकी बूंद यदि पूर्वकीतरफ फैले तो रोगी शीघ्र अच्छा हो और दक्षिणदिशाकी तरफ फैले तो ज्वरजानना। वह रोगी औषधदेनेसे अच्छा होय।

उत्तरस्यां यदा बिन्दोः प्रसरः संप्रजायते॥ अरोगिता तदा नूनं पुरुषस्य न संशयः॥ १२॥

अर्थ-यदि तेलकी बिंदु उत्तरादिशाकी तरफ फैले तो रोगी रोग-रहित है इसमें संदेह नहीं है।

वारुण्यां प्रसरेद्बिन्दुः सुसाध्योऽपि न जीवति॥ १३॥

अर्थ-यदि पश्चिमदिशामें तेलकी बिंदु फैलै तो उस रोगीको सुख तथा आरोग्य होय।

विकासितं हलं कूर्मं सैरभाकारसंयुतम्॥ करण्डमण्डलं वापिनरं मूर्धविवर्जितम्॥ १४॥ गात्रखण्डं च शस्त्रं च

खड्गं मुसलपट्टिशम् ॥ शरं च लगुडं चैव तथैव त्रिचतुः पथम् ॥ १६ ॥ बिन्दुरूपं नरोदृष्ट्वा न कुर्वीत क्रियां क्वचित् ॥

अर्थ–यदि तेलकी बिंदु हल, कछुआ, भैंसा, तथा करंड (पिटारी) मंडल. अथवा मनुष्यके धडके समान अथवा तोडे हुये हाथपैरके समान अथवा शस्त्र, तलवार, मूसल; पट्टा, बाण, दंड किंवा तिराहे–चौराहेके आकार बिंदुरूप होय तो उस रोगीकी चिकित्सा न करे ।

हंसकारंडताडागं कमलं गजचामरम् ॥ छत्रं वा तोरणं हर्म्यं सुपूर्णं दृश्यते यदि ॥ आरोग्यता ध्रुवं ज्ञेया तदा कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ १७ ॥

अर्थ–यदि तेलकी बिंदु हंसपक्षीके समान, खंजन, तलाव, कमल, हाथी, चमर, छत्र, तोरण, किंवा महल इनके आकार होवें तो उस रोगीको आरोग्यहोय अतएव उसका यत्न करना चाहिये ॥

तैलबिन्दुर्यदा मूत्रे चालनीसदृशी भवेत् ॥
कुले दोषो ध्रुवं ज्ञेयः प्रेतदोषसमुद्भवः ॥ १८ ॥

अर्थ–यदि तैलकी बिंदु मूत्रमें चालनीके छिद्र सदृश होय तो उस रोगीको कुलदेवका दोष अथवा प्रेतदोष जानना चाहिये ।

नराकारं प्रजायेत किम्बा स्यान्मस्तकद्वयम् ॥
भूतदोषंविजानीयाद्भूतविद्यां तदाचरेत् ॥ १९ ॥

अर्थ–तैलबिंदु मूत्रमें मनुष्याकार अथवा दो मस्तकके आकार होय तो उस रोगीको भूतदोषहै इस प्रकार विचार उसका यंत्र मंत्रादि भूतविद्याका प्रयोग करना चाहिये ।

मांजिष्ठाभं धूम्रवर्णं च नीलं स्निग्धं मूत्रं वारितुल्यंच शीतम् ॥ ज्ञात्वा चित्ते बुद्धिमान्मानुषाणां कुर्यात्वंतभेषजं रोगिणां च ॥ २० ॥

अर्थ–यदि मूत्र मजीठके रंगके समान अथवा धूम्रवर्ण, नीला, चिकना पानीके समान शीतल होय तो बुद्धिमान् वैद्यको उसरोगकी औषध करना चाहिये ।

सर्पाकारं भवेद्वाताच्छत्राकारं तु पित्ततः ॥
श्लेष्मणा मौक्तिकाकारमित्येतन्मूत्रलक्षणम् ॥ २१ ॥

अर्थ-तैलबिंदु मूत्रमें वातविकारसे सर्पके समान तथा पित्तकोपसे छत्रके समान तथा कफकोपकरके मोतीके समान होयहै इसप्रकार मूत्र-लक्षण जानना ।

प्रकारांतरेण परीक्षा ।

अहोरात्रेण विसृजेत्स्वस्थो मूत्रमनाविलम् ॥ अपाण्डुरं च तरलं पलानामष्टसम्मितम् ॥२२॥ बाहुल्येन जलं तत्र कठिनं स्वल्पमेवहि ॥ दृश्यते पलमूत्रेतु चतुर्गुञ्जाऽद्रवस्थिति ॥ २३ ॥

अर्थ-स्वस्थ मनुष्य दिनरात्रमें ८ पल निर्मल कुछ पांडुवर्ण तरल मूत्र परित्याग करताहै उसमें बहुधा जलभागहै, और कठिन भाग अल्प है, परीक्षाद्वारा निश्चय हुआहै कि १ पल मूत्रमें ४ रत्ती कठोर पदार्थहै।

बस्तिदेशे समुद्विग्ने मलेष्वन्त्रे चितेषु च ॥ तस्मिन् कृमिगणाकीर्णे दाहैर्वापि सुदारुणैः ॥ २४ ॥ नार्याश्चापन्नसत्वाया अश्मर्या वापि निःस्रवेत् ॥ सुकृच्छ्रं बिन्दुशस्तद्वानस्रवेद्वापिकिञ्चन ॥ २५ ॥ बस्तौ विस्तीर्णतां याते तद्ग्रीवाकुञ्चनात्तथा ॥ मस्तुलुंगरुजामूत्रं संचितं वापि न स्रवेत् ॥२६॥ विद्रधिर्मूत्रपिण्डे चेद्विसूचीवापि दारुणा ॥ नोत्पद्यते ततो मूत्रंतद्ग्रंथावापि कञ्चन । बस्तेः प्रदाहतो मूत्रं तद्ग्रंथावपि किंचन ॥ २८ ॥ बस्तिः प्रदाहतो मूत्रं बिन्दुशस्तु स्रवेत्सदा ॥ द्रवातियोगाच्छैत्येन संयोगाच्चाति वर्द्धते ॥

अर्थ-वस्तिदेशका उत्तेजन, अंत्रोंमें कृमि तथा मलसंचय एवं दाह पथरी इन सब कारणोंसे तथा गर्भवती स्त्रीआदिके मूत्र बडे कष्टसे बूंद बूंद होकर निकले, अथवा एकसाथही मूत्र उतरना बंद होजावे, एवं मूत्राशयकी विस्तीर्णता उसके ग्रीवादेशका संकोचहोना मस्तिष्कमें

पीडा और संचितमूत्रका न उतरना । मूत्रग्रन्थिकी विद्रधि तथा विषूचिकारोगमें उक्तग्रंथिसें एकसाथ मूत्र उतरे नहीं । बस्ती अर्थात् मूत्राशयमें दाहकेसाथ बिंदुबिंदु होकर मूत्र निकले अधिक पतले पदार्थ पीनेसे और देहको शरदीलगनेसे मूत्र अधिक उतरताहै ।

व्याधिक्षीणशरीरस्य नष्टसंज्ञस्य देहिनः॥ तस्य स्वेदस्य वात्यर्थं वृद्धिः स्यान्मृत्यवेमता ॥ ३० ॥ विरत्या द्रव पानाच्च स्वेदाधिक्यात्सृतेऽसृजि ॥ जलोदरेऽतिसारे च मूत्रं स्तोकं स्रवेन्नृणाम् ॥ ३१ ॥

अर्थ–व्याधिद्वारा क्षीणदेह तथा चेतना विहीन रोगीके मूत्रकी वृद्धी और पसीने अधिक आवे तो वह रोगी निश्चयमरे द्रवपानकी अल्पता तथा द्रवपानमें वैराग्य, रक्तस्राव, जलोदर और अतिसाररोगमें मूत्र अत्यंत थोडा उतरताहै ॥

यूनानी मतानुसार मूत्रपरीक्षा.

दोषैराक्रान्तदेहस्य प्रतिकर्तुं रुजां चयम् ॥ मूत्रनाडी परीक्षा तु प्रथमं परिभाव्यते ॥ ३२ ॥ मरीज्वीमार रोगी स्यात्तत्परीक्षा द्विधैव हि ॥ शनाशी नब्जकारूरा नाडीमूत्रस्य सा स्मृता ॥ ३३ ॥

अर्थ–दोषोंकरके आक्रान्त देहकी रोगोंसे यत्नकरनेके लिये प्रथम हम मूत्र और नाडीकी परीक्षा कहतेहैं तहां रोगीको यूनानिभाषामें मरीज और बिमार कहतेहै उसकी परीक्षा दो प्रकारकीहै प्रथम शनाशी जिसमें नब्ज और कारूरा अर्थात् नाडी और मूत्रकी परीक्षाहै तहां प्रथम मूत्रपरीक्षा कहतेहै ।

मूत्रकेवर्ण ।

सुपेद अवियज श्वेतं स्याद्द अस्वद मेचकम् ॥
जर्द अस्कर पीतं स्यात् सुर्ख अहमर रक्तकम् ॥ ३४ ॥

अर्थ–मूत्रके वर्ण चार प्रकारके हैं जैसे सफेद, अवियज, ये दोनों श्वेतवर्णके नामहैं स्याह और असवद येकालेवर्णके नामहे जर्द और अस्कर ये पीतरंगके नामहै एवं सुर्ख और अहमर लालरंगको कहतेहैं।

सितमच्छं च बहुलं मूत्रं शैत्यविशेषतः॥ शुभ्रं सान्द्रं कफोद्रेकादसान्द्रं दोषपाकतः॥ ३५॥ अवदातं घनं चापि विच्छिन्नं श्लेष्मदोषतः॥ उपायो गदितो वैद्यैस्तत्रमूत्रविरेचनम्॥ ३६॥

अर्थ–जिसरोगीका मूत्र सपेद, स्वच्छ, और बहुतहो उसके शीतकी विशेषता जाननी और जिसकामूत्र सपेद और गाढाहो उसके कफकी आधिक्यता जाननी एवं पतलामूत्र दोषपाकहोनेसे होताहै इसीप्रकार सपेद गाढा और ल्हसदार कफके विकारसे होताहै इसका उपाय वैद्योंने मूत्र विरेचन अर्थात् इन्द्री जुलाब देना कहाहै।

असितं मलिनं वातकोपवैकृत्यसूचकम्॥ सौदा विकृतिजं चापि परिज्ञातं भिषग्वरैः॥ ३७॥ श्यामलं घनविच्छिन्नंसौदा कोपेन संभवेत्॥ सब्ज अरज्वर पालाशं भवेन्मूत्रं विषा शिनः॥३८॥ श्यामं सान्द्रं च यन्मूत्रमूष्मणा दग्धदोषताम्॥ प्रकटी कुरुते दोष विचारे भिषजं प्रति॥ ३९॥

अर्थ–जो मूत्र काला और मलिनहो वो वातकोपको सूचित करताहै तथा यही सौदाकी विकृतताको भी सूचना करताहै एवं श्यामरंग और गाढा यह सौदाके कोपसे होताहै सब्ज और अरज्वर पलासीरंग अर्थात् हरितवर्णहोताहै ऐसा मूत्र जिसरोगीनें विषभक्षण कराहो उसका होता है और जिस रोगीका मूत्र काला और गाढाहोय वह गरमीसे दोषोंको दग्धहोना सूचित करताहै।

शुष्कस्ययवसस्येव नीरं यद्भावनाद्भवम्॥ ईषत्पीतं हि मन्दाग्ने रंगतिब्री उदाहृतः॥ ४०॥ फलपूरत्वगाभासं तीक्ष्णाऽग्नेरुपजायते॥ तुरंजी उत्रजी चेति नाम्नावर्णः

प्रकीर्तितः ॥ ४१ ॥ ज्वलनज्वालभं यत्तु रक्तं पीतं च मेचकम् ॥ सवर्ण आतशीनारी प्रोक्तस्तस्य परीक्षकैः॥४२॥

अर्थ–सूखे जौ के भूसेको रात्रिमें भिगोनेसे प्रातःकाल पानीकारंग होजाता है उस ईषत्पीतरंगको तिबूनीरंग कहते हैं ऐसा मूत्रमंदाग्निवालेका होता है और विजोरे नींबूकेरंगको तुरंजीरंग और उत्रजीरंग कहते हैं यह तीक्ष्णाग्निवालेका होता है एवं अग्निकी ज्वालाका जैसा लाल और पीलारंग होता है ऐसा हो या मोरकी चंद्रकाके आकार श्याममिश्रितरंग हो उस वर्णको आतशी और नारीरंग मूत्रपरीक्षकोंने कहाहै.

तत्रोष्मणाखरत्वंतुदोषाणांजातमुच्यते ॥ इहतएकसविज्ञेयः सोख्तगी हिर्कंतस्मृताः ॥ ४३ ॥ मुहतरिक् दग्धकर्त्ता स्यादेषशब्दस्थितोविधि । जाफरानी कुंकुमाभमत्युष्णज्वरिणोभवेत् ॥ ४४ ॥

अर्थ–ऐसा उक्तरंग दोषोंके अत्यंत गरमीकी प्रखरतासे होताहै उसमें भी एक सोख्तगी और हिर्कंत कहाता है और दोष दग्धकर्त्ताको मुहतरिक् कहते हैं और जिस मूत्रकावर्ण केशरिया हो उसको जाफरानीरंग कहते हैं यह अत्यंत उष्ण ज्वरवालेका होता है ।

ऐरावतफलाभासो नारंजीवर्ण उच्यते ॥ तत्सादृशं भवेन्मूत्रं रक्तपित्तविकारिणः ॥ ४५ ॥ वर्दी गुलाबी पर्यायौ पाटलं वदतो गुणम् ॥ असहव किंचिदेतस्मादवदातः स्मृतो बुधैः ॥ ४६ ॥ वर्णद्वयानुगंमूत्रंजायतेरक्तवेगतः ॥

अर्थ–जो मूत्रनारंगीके रंगका हो उसको नारंगीवर्ण कहते हैं ऐसा मूत्र रक्तपित्त रोगीका होता है जो मूत्र पाटलहो उसको वर्दी और गुलाबीरंग कहते हैं यदि इसगुलाबीमें जो मूत्र कुछ सपेदहो उसको असहव कहते हैं ये दोनों प्रकारका मूत्र रक्तवेगके कारणसे होता है ।

कानी त्वत्यन्तशोणःस्याद्दाडिमीकुसुमादपि ॥ ४७ ॥ तत्रास्रप्राज्यभावेतु शोधनं शस्तमीरितम् ॥ अक्तं यावकवर्णस्याद्दग्धासृग्लक्षणंवदेत् ॥ ४८ ॥ अपकरी

कोपज्वरेभवेत्॥ समास्तन्मुख्यवर्णानां रंगगुल्लाला रक्त व्यंजनं समुदाहृतम् ॥ ४९ ॥

अर्थ-जो मूत्र अनारके फूलसेभी लालहोवे उसको फारसीमें कानी रंग कहतेहैं यह अत्यंतखूनके बढनेसे होता है इसका शोधन करना उत्तम कहाहै जो मूत्र गुल्लालारंगकाहोवे उसको फारसीमें अपकारी रंग कहतेहैं यह रक्तकुपित ज्वरमें होताहै यह हमने संक्षेपसे मूत्रके वर्णोंका वर्णनकराहै विशेष भाषामेंदेखो ॥

मूत्रकी परीक्षा तीनप्रकारसे करी जाती है जैसे प्रथम आरोग्यावस्थाका मूत्र देखना फिर रोगावस्थाका और तीसरे मूत्रकी दशाका निश्चय करना अरबीमें मूत्रको बोलू कहते हैं परंतु फारसीमें कारूरः कहते हैं इसका यहकारण है कि कारूरः एक शीशीका नाम है. जिसमें वैद्यजन मूत्रकरके देखते हैं अब कहते है कि यह प्राणी जो जल पीता है वह प्रथम मेदामें आहारके साथ मिलकर उस आहारको द्रवीभावमेंकर कैलूस निर्माण करताहै फिर रुधिरवाहिनीमें भ्रमण करताहुआ हृदयमें परिपक्कहो फिर गुरदेमें हो मूत्राशयमें संचित होताहै और जो कुछ रुधिरमें मिलाहुआ हृदयमें रहजाता है वह धमनि नाडियोंके द्वारा सर्वदेहमें पहूँचकर कुछ पसीने से निकल जाता है और कुछ फिर गुरदेमें हो मूत्राशयमें गिरता है इसी कारण मूत्र रंगीन हो जाता है जिस मनुष्यके पसीना अधिक आता होगा उसके मूत्रभी थोडा उतरेगा और जिसके पसीने थोडे आते होंगे उसके मूत्र अधिक उतरताहै जब मूत्राशयमें संचित होजाताहै तब इस प्राणीको मूत्रकरनेकी कांक्षा होती है अतएव सर्वदेहकी चेष्टा इसमूत्रसे उत्तमप्रकार निश्चय हो सकती है॥ अब कहतें हैं कि मूत्रदेखनेको इतनी बडी शीशी लेवे कि समग्र मूत्र आय जावे और कुछ खालीरहे कि हिलाने चलानेमें अडचल न होवे, वैद्यको यहभी स्मरणरहे कि मूत्र दोघडीपीछे परीक्षाके योग्य नहीं रहता और यहतो अवश्य याद रक्खे कि शरदीमें मूत्र स्वतःस्वभावसे ही गाढा रहताहै और गरमीकी ऋतुमें पतला होताहै। मेंहदीके लगानेसे एवं रंगदार वस्तुके खानेसे मूत्र रंगीन उतरता है बहुत हरितशाक खानेसें मूत्र हरितरंगका उतरताहै एवं केशर, सनाय, अथवा अमलतासके पीनेसे मूत्र पीला उतरताहै बहुत भूखारहनेसे क्रोधसे

रात्रिमें जगनेसे मूत्र लालरंगका उतरताहै। वैद्यको उचितहै कि ऐसे मूत्रकी परीक्षा रोगी या रोगीके बांधवोंसे प्रथमही करलेवे नहीं तो परीक्षामें विपरीतता हो जावेगी। मूत्रके देखते समय किसीप्रकारकी छाया तथा किसीवस्तुका प्रतिबिंब उसपर न पडताहो और किसीसमय मूत्रके समान और वस्तु दृष्टिमें आजातीहै तो अपक्ववैद्य धोका खाजाते है जैसे सिकंजवी, जल मिला सहत, और मूत्र समीपके देखनेसे गाढा प्रतीतहोताहै और दूरसे स्वच्छ प्रतीत होताहै परंतु सिकंजवीआदिमें इस्सें विपरीत ज्ञान होताहै अतएव इसप्रकारकी परीक्षा वैद्य प्रथमकरलेवे.

प्रसंगवश पशुमूत्रकी परीक्षाकहते हैं जैसे गधेका मूत्र सपेद और गाढा होताहै घोडेका पतला और सपेद होताहै. परंतु ऊपरका आधाश्वेत और नीचेका आधा गाढा होता है ॥

ऊँटका मूत्र पीला और मनुष्यमूत्रके समान होताहै परंतु मनुष्यके मूत्रसे नहीं मिलता.

मूत्रकी आठप्रकारसे परीक्षा करतेहैं जैसैकि रंग, पक्वता, स्वच्छता, समल, गंध, फैन, रसूव और प्रमाण.

तहाँ प्रथमरंगका ज्ञान कहते हैं–

पीलेरंगके छः भेदहैं.						
केसरी.	रक्तवर्ण.	अग्निवर्ण.	पीतरक्तवाविशिष्ट.	नारंगी.	तृणप्रक्षालन. सदृश.	संस्कृ०ना.
जाफरानी.	अहमर	नारी.	अशकर.	उत्तरजी.	तबनी.	फार०ना०
केशरीवर्णका मूत्र ज्वर-पांडुरोग आदिसे होताहै.	लालवर्णका मूत्र रुधिरकोपसे होताहै.	जैसे अग्निज्वाला पीली और चमकदार होतीहै ऐसा मूत्र अत्यंत गरमीके कारण होताहै.	पीत और रक्तता मिश्रित वर्णभी पित्ताधिक्यसे होताहै.	संगतराके समान अथवा नारंगीकेसमान मूत्रका वर्ण रक्तापित्तके कोपसे होताहै.	तृणधोवनके समान मूत्रकावर्ण कफपित्तकुपितके कारण होताहै.	व्यवस्था

हरितवर्णके भेद.			कृष्णवर्णके भेद.			
अतिहरित.	हरित.	नीळवर्ण.	श्वेतकृ०	हरितकृ.	रक्तकृष्ण.	केशरी.
कुरानी.	जंगाली.	नीला.	स्याह.	सवज-स्याह.	अहमरी.	जाफरानी.
गंदनेकासा रंग अथवा वृक्षपत्रकाजल जैसा ऐसा मूत्र गरमी और पित्तके जल-नेसे होताहै.	मूत्र जंगारके रंगका होतो वातपित्त मिश्रित जानना.	सरदीसे मूत्र नीळवर्णका होताहै यदि बालकका मूत्र नीला हो तो पक्षाघात आदिवातका विकारजाने.	जो मूत्र प्रथम सपेद फिर काळा प्रतीत हो तो कफ जळकर वात हुआजाने.	जो प्रथम हरित और पीछे कृष्णवर्ण हो तो कफ जळकर सौदा वात हुआहै.	जो प्रथम रक्त फिर कृष्ण हो जावे तो जाने कि रुधिर बिगडकर वात बनगया है इसमें दुर्गंध बहुत होतीहै.	प्रथमपीळा और पीछे काळा हो जावे तो पित्तजळकर वात होगया ऐसा निश्च-य करना.

रक्तवर्णके भेद.			श्वेतवर्णके भेद.		
पिकवर्ण.	रक्तकृ०	पाटलवर्ण	पाटलवर्ण.	कृत्रिम.	स्वाभाविक.
अकरम.	अहमर. कानी	वरदी.	असहव.	मिजाजी.	हकीकी.
जिसमें रक्तता अधिक और कृष्णता स्वल्प हो तो रुधिर कोप और गरमी कुछ न्यून जाने.	जिस मूत्रमें रक्तता हो परंतु कृष्णवर्ण अधिक हो तो रुधिरकोप जाने परंतु गरमी अधिक है.	जो मूत्र गुलाब पुष्पके समान रंगमें हो तो रुधिरकी अधिकयता और गर्मी जाने.	जो मूत्र प्याजके पत्तेकेसमान रक्तामिश्रित श्वेत होतो रुधिरकी स्वल्पता जाने.	जो मूत्र स्वच्छ जलके समान प्रतीत होतो शरदी अथवा दुर्बलताको सूचितकरे है.	टथके समान सपेदी होनेसे मूत्र कफाधिक्य-को सूचित करताहै, अथवा चरबी निकलती है, ऐसा जाने.

अब पक्कता (किवाम) के जाननेका प्रकार लिखते हैं। वह तीन प्रकारकाहै इसके लिखनेसे यह प्रयोजनहै कि वैद्यको यह परीक्षा करनी चाहिये कि इसरोगीका मूत्र पक्कहुआ निकलाहै या कच्चा ॥

मूत्रकी पक्कापक्कदशा दर्शक कोष्ठक.

मध्यम	घन	द्रव
मोतदिल	गलीज	रकीक
नैरोग्य अवस्थावाले प्राणीका मूत्र मध्य अवस्थाका अर्थात् न बहुत पतला और न बहुत गाढा ऐसा उतरता है।	वातादि दोषोंके अत्यंत बढनेसे मूत्र बहुत गाढा उतरताहै यदि अंतर्व्रणके फटनेसे आँतोंकी गाँठ खुलनेसे अथवा जीर्णज्वरमें गाढा मूत्र होवे तो बुरा है।	यदि देहमें शरदी अधिकहो या मंदाग्नि तथा बहुत जलपीनेसे मूत्राशय और बस्तीमें दुर्बलताके कारण इस प्राणीका मूत्र पतला उतरता है।

स्वच्छता।

अब कहते हैं कि निर्मलता (सफाई) और अनिर्मलता (गदलाहट) से रोग ज्ञातहोताहै। यदि रोगीका मूत्र स्वच्छ उतरेतो जाने कि पाक होकर उतरा है। यदि गदला प्रतीत होवे तोजाननाकि अपक्क मूत्र उतरा है। अर्थात् पानी हजम नही हुआ ॥ देहकी कुव्वत घटनेसे मूत्राशयमें मूत्रशुद्ध नहीं होता, एवं अंतर्व्रणकी सूजनसे मूत्र गदलासा प्रतीत होता है ॥

इनमें गाढा और गदलेकी पृथक २ परीक्षा इसप्रकारहै कि जो मूत्र गाढाहोताहै वह ऊपर नीचे समानरहताहै। और जो गदला होताहै वह बीचमें अथवा नीचे गाढा और पतला प्रतीतहोताहै ॥

रसूब (उर्द्धमध्यः अधोभागस्थ)

रसूब तीनप्रकारकाहै जैसे १ असफल २ औसत ३ फक १ असफल अर्थात् अधोभागस्थित २ औसत मध्यभागस्थित, ३ फक नाम

ऊर्द्धभागस्थित–फिर उस रसूबके दो भेदहैं। एकश्वेत, दूसरारक्तवर्ण, तहाँ सपेदरंगका रसूब उससमय होताहै जब जठराग्नि (पाकदशा) शुद्धहोतीहै। और रक्तवर्णकारसूब पाकदशाके गड़बड़ होनेमें दृष्टिगोचर होता है ॥

पूर्वोक्तपाकदशाकाचक्र.		
ऊर्द्धस्थ	मध्यस्थ	अधस्थ
फौक	औसत	असफल
और जिसप्राणीके मूत्रमें वायुके अंश अधिक होवे तथा पुरुषार्थभी अधिक होवे तो उसके परमाणु मूत्रके ऊपर आजाते हैं।	मूत्रमें वायु मध्यमदशामें रहे और पुरुषार्थभी देहमें मध्यम होता है तो उसके परमाणु मध्यमें रहते हैं।	जब मूत्रमें वात न्यूनहो तथा देहमें निर्बलता अधिकहो तो उस मूत्रके परमाणु नीचे बैठ जावेंगे।

डॉक्टरीमतानुसारमूत्रपरीक्षा।

इदानीं कथयिष्यामि चमत्कृतिकरं परम्।
डॉक्टरीमतमालोक्य मूत्रस्य च परीक्षणम् ॥

अर्थ–अब हम परम चमत्कृतिकारक डाक्टरी मतके अनुसार मूत्र परीक्षा कहतेहैं। डॉक्टरीमें मूत्रको (यूरन) Uran कहते है उसकी तीनप्रकारसे परीक्षा कहीहै। अर्थात् आरोग्यावस्थाकामूत्र, रोगीकामूत्र और मूत्रकी दशा निर्णयकरनेकी विधि ॥

आरोग्यावस्थामेंमूत्रकीपरीक्षा

रोग रहित प्राणीका मूत्र निर्मल और कहरवाई (हलके) रंगका होता है। जिसका स्पिसिफिकग्रेवेटीतोल (वजनमूतनासिवह) १००३ से लेकर १०३० पर्यंत होता है। परंतु कभी २ आहार, विहारके का-

रणसे न्यूनाधिक होजाता है । अर्थात् जैसा भोजन और चेष्टाकरताहै उसीके अनुसार होता है ॥

जैसे यूरिनापोटास (Urina Potas) अर्थात् द्रव (पतली) वस्तुके पीनेसे पछि जो फीकेरंगका मूत्रहोताहै उसका स्पिसिफिकग्रेवेटी (तोल) १००३ से १००९ तकहोतीहै ॥

युरैनाकाईलाई (Urina Chyli) अर्थात् भारीपदार्थके पचनेके पश्चात् जो मूत्रहो उसका स्फिसिफिकग्रेवटी १०३० होतीहै ॥

यूरिनासें ग्यूनिस Urina Segunis अर्थात् अत्यंतसोनेके पश्चात् प्रातः कालके मूत्रका स्पिसिफिकग्रेवटी १०१५ से १०२५ तक होताहै । इसी कारण पडताफेलानेसे मूत्रका स्पिफिफिकग्रेवटी १०२० पर्यंत गिना गयाहै ॥

२४ घंटे अर्थात् आठप्रहरके करेहुए मूत्रका प्रमाण ४० औंस अर्थात् सेरसे कुछ अधिक होताहै कि जिसमें १॥ अंशके लगभग भारीवस्तु पाईजातीहै ॥

मूत्र निकलतेही उसमें देहकी गरमीके अनुसार गरमीहोतीहै । तथा एकप्रकारकी गंधहोतीहै । परंतु कुछसमयके पश्चात् यह दोनों बात जाती रहतीहै ॥

तत्कालके मूत्रका खारीस्वादहोताहै, यदि थोडीदेर रखदिया जावे तो लैक्टिकएसिड वो एसिटिकएसिड उत्पन्न होनेसे खट्टा होजाताहै । तथा अधिक देरीतक रखेरहनेसे उसका घनभाग (म्युकस) नीचे पैंदेमें बैठ जाताहै । जिमें यूरिकएसिडकीकलमें अलग दिखाई देतीहै । यदि उसके पश्चात् देरीतक धरारहनेसे सडजाताहै । और कारबोनेट आफ-एमोनियामें यूरियाके बदलनेसे खारी दुर्गंधितहोजाताहै तथा उसके ऊपरके भागमें झाग प्रतीत होतेहैं । जिसमें फासफेट निमक मिलताहै उसके । पीछेभी मूत्रको रखनेसे नीलेरंगके कालापनालिये झाग होजाते हैं औरकाई पैदा होजातीहै ॥

मूत्रमें दोप्रकारकी वस्तुरहतीहै । एक आरगेनिक, दूसरी इनआरगे। निक।

आरगेनिक वो वस्तुहै जो जरायुज और उद्भिजके स्वरूपमें मिलतीहै- उनमेंसे इतनीवस्तु मुख्यहै यूरिकएसिड-हिप्पूरिकएसिड-लेक्टिकएसिड एमोनियाकानमक और कुछक्रियेटेन-कीएटीनैन-इत्यादि ॥

इनआरगेनिक (धातुरूप पदार्थों) मेंसे वह निमकहै जो सोडापोटास–लाइम–मेग्नेशिया–केसाथ कार्वोनिकएसेड–हैड्रोक्लोरिकएसिड–सलफ्यूरिकएसिड–स्फास्फोरिकएसिड केसंयोगसेबनतेहैं और अतिसूक्ष्म प्रमाणमें सिलीका फौलाद क्लोरिन भी मिलताहै ॥

पूर्वोक्त दोप्रकारके अतिरिक्त मूत्राशयकी म्यूकस और एपिथीलियल सैल्सभी मूत्रमें मिलतेहैं ॥

मूत्रमें जो वस्तुहै उनका प्रमाण निम्न लिखित चक्रसे जानो।

नकसा.

पानी	९५०		हिप्यूरिक एसिड	०	२५
यूरिया	२४	७	फास्फेटनूनमक	९	००
यूरिकएसिड (पाषाणभाग)	००	३०	सैलफेट नमक	६	००
क्रियटन	१	२५	हैड्रोक्लोरेटनमक	८	००
क्रियटिनैन	१	२०	सबमिलकर	१०००	

मत्रपरीक्षामें इतनी बातोंका जानना मुख्यहै । मूत्रनिकलनेकीरीति, प्रमाण, स्पेसिफिकग्रावटी, रंगत, गंधी, स्वाद, तथा नीचेबैठने वाली वस्तुएँ तहां ॥

मूत्रनिकलनेकीरीति।

जब मूत्र कष्ट और कठिनताकेसाथ निकले तथा पेसाबके स्थानपर दाहहोय जैसे–सूजाक, मूत्राघात, और मूत्राशयकी सूजनमें, तो उसे (डिसयूरिया) कहतेहैं ॥

यदि मूत्रनिकलनेमें अत्यंत कष्टहो और बूंद २ टपके तथा सीवनके स्थानपर दाहपीडा, और मरोडाहो जैसे–तारपीन या मक्खी के खाने अथवा उक्तरोगोंकी अधिकता होनेसे तो उसे (सृग्यूरी कहते) हैं.

मूत्रका बिलकुल बंद होजाना इस्चुरियाकहाताहै ॥ यह दो प्रकारसे होताहै। एकतो यह कि मूत्रोत्पत्तीही न होना । दूसरे मूत्रके मार्ग रुकनेसे होताहै ॥

मूत्राशयकी सूजनके कारणसे मूत्र वेअख्तियार या उसकीहाजत वा रंवारहो, या मूत्राशयकी गर्दनमें फालिजहोनेके कारण बूंद २ मूत्रटपके तो उसको (एन्यूरेसिस) या (इन्कांटीनेन्शआफयूरेन्) कहते हैं ॥

पतलीचीजोंके पीनेसे-पसीनेकमनिकलेसे जैसे गरमीकी अपेक्षा शरदीमें गरमहवाकीअपेक्षा शरदहवामें-सायंकालकी अपेक्षा प्रातःकाल दिनकी अपेक्षा रात्रिमें अथवा मूत्राशयके फैलनेसे मूत्र अधिक उतरताहै॥

अत्यंत फिकर, शरदीसे ज्वरहोना, इत्यादि कारणभी मूत्रअधिक करनेवालेहैं। तथा पूर्वोक्त नियमके विरुद्ध अर्थात् गाढीवस्तुओंके पीनेसे त्वचा और फुप्फुसकाकार्य अधिकहोनेसे, तथा हैजा, पित्तज्वर, जलंधर और मूत्राशयमें सूजन होंनेके कारण इस प्राणीके मूत्र कम उतरताहै॥

मूत्रका प्रमाण।

चिन्हभेद, अवस्था, ऋतु, आहार, देहकीदशापलटना, और बिमारी आदिके, कारणसैं मूत्रकी तौलमें कुछ २ भेद होजाताहै। जैसै-पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंके, बालककी अपेक्षाजवानी, और वृद्धावस्थामें फरक होजाताहै॥

कसरत करनेसैं, बहुतपसीना निकलनेसे, सूखेपदार्थखानेसे निद्राके पश्चात् मूत्रकरनेसैभी वजन मूतनासिवह अधिक होताहै। एवं सर्दी, आलस्य, पतली और खट्टी वस्तुकेभोजनसैं तथा पुराने रोगोंमें वजन मूतनासव मूत्रका कम होजाताहै॥

यदि मूत्रकी तोल एकहजार पांचसौसे कम हो या १०३० से ऊपर होय तो अवश्य कोई रोग होनेकी संभावना जाननी कभी वजनमूतनासवासे जलभागकी अधिक्यता और कठोरभागोंकी न्यूनता प्रतीत होतीहै प्रायः ऐसे मूत्रोंमें अलब्यूमनमिलना है। और वजनमुतनासिवा अधिक होनेसे दृढभागोंमें जैसे यूरिया और शक्कर आदि होनेका संदेह होताहै॥

कदाचित् मूत्रमें गुरुपदार्थके भारीपनेकी परीक्षा करनी होवेतो उसकी यह रीतिहै कि २४ घंटेका जितना मूत्रहो इकट्ठाकरे, अथवा सब समयका न मिले तो प्रातःकालके मूत्रकी स्पेस्फिक ग्रावटी मालूम करके उसके अंत्यके दो अंकोसैं। २-३३ को गुणनकरे फिर जितना गुणन फलहोय उतनैही ग्रेन भारी वस्तु हजार ग्रेन मूत्रमें समझे॥

उदाहरण-जैसै मूत्रका बजनमूतनासिवः १२२३ है तो उसके अंतके दो अक्षर अर्थात् २३ तेईस को २०३३ से गुणा करा तो ५३२५९ हुआ अतएव इसी हिसाबके अनुसार एकहजारग्रेनमें (ग्रेन १ मासेका) ५३। ५९ ग्रेन समझे जातेहैं॥

मूत्रकारंग।

रंगतदार वस्तुके विना खानेसे भी मूत्रकी रंगतफिकी कहरवाई-भूरी लाल आदि होसक्तीहै। एवं जब मूत्र पतील होता है तब फीकेरंगका या साफ या बेरंगहोता है। जैसे पानीपीनेके पश्चात् रुधिरकी न्यूनतामें तथा पानी न पीने-पसीने निकलने इस अवस्थामें मूत्रमें रुधिरके माफिक कालेरंगका रुधिर निकलता है।और यदि खून ही निकले तो मूत्रका रंग अधिक काला होजाता है।गठियामे नारंगी रंगका पीव मिलनेसे या फास्फेटके मिलापसे मूत्रका रंग दूधके समान होताहै।कमलवायुमें मूत्र पीला कुछ कालौंच लिये उतरताहै। इसीप्रकार पतंगकी वस्तु अथवा चुकंदर आदिके साग खानेसे मूत्र लालरंगका होताहै। इसीप्रकार जिस २ रंगतके पदार्थ या औषधी यह मनुष्य खाताहै तो मूत्रभी उसी २ रंगका निकलताहै॥

मूत्रकीगंध।

यह प्रथम लिख आएहैं कि मूत्रमें एकप्रकारकी गंध होतीहै परंतु कुछकालके बाद सीतल होतेही वह गंध नहीं रहती॥

मूत्रको अधिक देरतक रखनेसे तेजावके सदृश होजाताहै, और सड़नेके सबब उसमें दुर्गंध आने लगतीहै। परंतु मसानेकी सूजनमें सडने के प्रथमही मूत्रमें दुर्गंध आने लगती है। धातुक्षीण आदि रोगके मूत्रमें मरीमछलीकी या मुर्देकीसी दुर्गंध मारने लगतीहै॥

तथा बहुतसी ऐसी ऐसी वस्तुहैं जिनके भक्षणसे उनकीसी दुर्गंध आने लगैहै जैसै-प्याज, लहसन, तारवीन, और हींगआदि॥

मूत्रकास्वादु।

स्वस्थमनुष्यके मूत्रका स्वाद नमकीन और बहुमूत्रके रोगमें मीठा होता है॥

तलस्थद्रव्य।

मूत्रमें नीचे बैठनेवाली वस्तु कितनेई प्रकारकी होती है। एकतो वह जो स्वाभाविक गरमीके कारण उसमें मिली रहती है। और बाद शर्दीके जमजाती है। जैसे यूरेटस-और क्लोरायडनमक-आदि-। दूसरी नहीं मिलनेवाली वस्तु जैसे-म्यूकस और पीव आदि मूत्रके मार्गसे निकलकर जमजाते हैं। इत्यादि और भी जानने॥

यूरिया प्रायः अमिश्रित रहताहै यदि किसी वस्तुके साथ मिला होय तो सहजही पृथक् होसक्ताहै। यह एक कठोर कलमदार वस्तुहै। इस-

का स्वादु कुछ कडुआ नमकीन सोरेसा शीतल तेजावके समान होता है । यदि इसमूत्रमें २४८ दर्जेकी गर्मी पहुँचाई जायतो इसका स्वरूप पलट जाता है, और उसकी कलम बन जाती हैं । जिसका चित्र हमने इस वृहन्ननिघंटुरत्नाकरकी दूसरी जिल्दमें दीनाहै यदि फिर उन कलमोंमें कुछ पानी मिलाकर औंटाओ और कुछ जियादा कार्वोनेट आफबरायटा डालो और वाटरवाथसे उसको सुखाओ फिर एक केटाल डालो कि, यूरिया उसमें मिलजाय पीछे उसको छानकर सुखानेसे यूरिया की कलमें प्रगटहोगी । इसकीभी तसबीर प्रथम हम लिख आएहैं । इसीप्रकार डॉक्टरलोग यूरिकएसिड अर्थात् जोमूत्रमें पथरीला भाग मिलारहता है उसकीभी कलम बनातेहैं । विशेष देखनाहो तो डाकटरीकी पुस्तकोंमें देखो ॥

मूत्रपरीक्षाकीतरकीब ।

वैद्यको उचितहै कि, मूत्रकी रंगत, स्वच्छता, दूषितता (मैलापन) गंध, तोल, और गर्मी सर्दी आदि सब जाहिरी अवस्थाओंका निश्चयकरना चाहिये ॥

तहां रोगीके मूत्रकरतेही (टेसूपेपर) अर्थात् परीक्षाकरनेके कागदसे (जोहलदी और वनस्पतीके नीले रंगसे रँगाहुआ होताहै) परीक्षा करै । यदि मूत्रमें तेजआवी भाग अधिक होगा तो उसमें हरा कागज डालनेसे सुर्ख होजायगा । और मूत्रमें खारका भाग अधिक होगा तो हलदीके रंगें कागदका रंग भूरा और सुर्खीलिये हो जायगा और तेजाबसे सुर्ख हुआ कागज उसमें फिर पहली दशामें आय जावेगा॥

यदि परीक्षाके समय खार प्रतीत होय तो यह निश्चय करना कि यह विकार अमोनियाके कारण है या और किसीकारणसे । यदि आमोनियाके कारण होगा तो उस कागजको सुखानेसे । रंग उडजावेगा और अकलीका होगा तो रंग ज्योंका त्यों बनारहेगा ॥ यदि बनसके तो २४ घंटेका समग्र मूत्र लेकर नापे और (यूरेनामेटर) मूत्रमापक यंत्रद्वारा उसकी स्पेस्फिकग्रावटी मालूम करनी चाहिये ।

एकछोटासा यंत्र शीशेका या पीतलका बनाहुआ होताहै जिसको अंग्रजीमें यूरेनामेटरकहतेहैं जिसका चित्र इस खंडके आदिमें देखो उसके साथ एक ग्लास होताहै, जिसमें नंबर की रेखा खिचीहुई हो-

तीहै। उसमें स्पेस्फिकग्रावटीके निश्चयकरनेके समय पूर्वोक्त ग्लास अथवा किसी पात्रको समानभूमिमें रखकर यूरेनामेटरको उसमें डालके देखो तो यूरेनामेटरकी डंडी जिस नंबरके साम्हने ठहरीहो उसपर हजार और मिलायदेनेसै स्पेस्फिकग्रावटी मालूम हो जातीहै। जैसे १५ के नंबर पर यूरेनामेटरकी डंडी ठहरी है तो मूत्रकी स्पेस्फिकग्रावटी (भारीपना) १०१५ हुई॥

यदि यूरेनामेटर यंत्र न मिलसके तो यह रीतिकरे कि कांचके डाटवाली बोतलका घडाकर उसमें साफजल भरके तोले, फिर उसीके हिसाब माफिक मूत्रको भरके तोले तो मूत्रके भारीपनेका ज्ञान होजायगा॥

जैसे कल्पनाकरो कि साफपानी बोतलमें ४०० ग्रेन आया फिर उसपानीको निकाल मूत्रभरके तोला तो ४०६ ग्रेन हुआ तो ४०० ग्रेन पानीका भारीपना१००० हुआ तो ४०६ ग्रेन मूत्रका गुरुत्व१०१५ होगा एकग्रेन १९ मासेका होता है॥

खुर्दवीनयंत्रकावर्णन।

मूत्रपरीक्षा आदिमें खुर्दवीनका अधिक काम पडताहै अतएव प्रसंगवस उसका वर्णन भी इसी स्थानपर होना ठीक है॥

आज कल इस खुर्दवीनका वैद्यकमें अधिक काम पडताहै। परंतु उसका मौल्य अधिक होनेके कारण अत्यंत प्रचार नहींहै॥

खुर्दवीन दो प्रकारकी होती है १ सादा कांच जो केवल शीशाहा होता है। इसमें किसी चीजको देखो तो उसका बडा अक्स होकर नेत्रोंपर गिरताहै॥

दूसरा मिश्रित जिसमें अनेक टुकडे होतेहैं असलमें इसीको खुर्दवीन कहना चाहिये यद्यपि खुर्दवीन अनेक प्रकारकी है परंतु यहां वैद्यके वर्त्तने योग्य कहतेहैं। ऐसे खुर्दवीनमें पीतलकी एक टिकटी लकडी पर जडी हुई होती है। एक लंबी डंडी ऊपर और एकडंडी नीचे लगी हुई होती है॥ तथा उस डंडीमें नलीलगी हुई होतीहै। नलीके नीचे तीन इंचकी लंबी और दो ढाई इंच चौडी एक रकेवी होतीहै जिसके बीचमें छेद होता है और छेदके दोनोंतरफ लोहेकी कमानी या और कोई ऐसी वस्तु होतीहै जिसमेंग्लास आदि कोईवस्तु छेदके ऊपर रक्खी जाय तो रक्खीरहे। इसीप्रकार इसके कितनेही टुकडे होतेहैं देखनेसे मालूम होजावेगा।

खुर्दवीनकोकाममेंलानेकीविधि ।

प्रथमखुर्दवनिके सब टुकडे साफहों यदि मैले हों तो सावरसे पोछ डाले कपडेसे न पोछे क्योंकि कपडेके पोछनेसे शीशेमें लकीर होजातीहै॥

देखनेके समय खुर्दवीनको कुछ तिरछीकरलेवे और एक आंख बंदकरके देखे और खुर्दवीनके पेचको इतना घुमावे कि देखनेकी वस्तु दृष्टिके सामने आयजावे तथा सूर्यके प्रकाशमें परीक्षाकरे यदि रात्रिहोतो दीपकके उजेलेमें परीक्षाकरे ॥

जब देखनेकी वस्तु ठीक २ दीखने लगे तब पैन्सिलसे उसकी तसवीर खींचले कि जिस्से याद रहे, पूरा चित्र खिचजानेके बाद बंद करदे-इस प्रकार पूरी २ परीक्षाकरे इस जगे मूत्र देखनेके सब नियम ठीक २ नहींकहे यदि अधिक देखना होतो डॉक्टरी पुस्तक से देखो ॥

इति मूत्रपरीक्षासमाप्ता ।

आर्त्तवपरीक्षा॥

द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वमापंचाशत्समाःस्त्रियः ॥
मासिमासिभगद्वाराप्रकृत्यैवार्त्तवं स्रवेत् ॥ १ ॥

अर्थ-बारहवर्षकेउपरांत पचासवर्षकी अवस्थापर्यंत स्त्रियोंके महीनेकी महीने रजोदर्शका रुधिर भगद्वारा सदैव निकला कर्ता है ॥

शुद्धआर्त्तवकेलक्षण ।

शशासृक्प्रतिमंयच्चयद्वालाक्षारसोपमम् ॥
तदार्त्तवंप्रशंसंतियच्चाप्सुचविरज्यते ॥ २ ॥

अर्थ-शशेके रुधिरके रंगका अथवा लाखके रसके समानहो और जिस रुधिरके रंगेहुए वस्त्रको जलमें धोनेसे दाग जाय नहीं वो आर्त्तव उत्तम जानना ॥

मासान्निष्पिच्छदाहार्तिपंचरात्रानुबंधिच ॥
नैवातिबहुलात्यल्पमार्त्तवंशुद्धमादिशेत् ॥ ३ ॥

अर्थ-जो महीनेके महीने पिच्छलता-दाह-और पीडारहित पाँचरात्रिपर्यंत गिरनेवाला-एवं न बहुत अधिक न बहुत थोडा परिमाणका निकलनेवाला आर्त्तव शुद्ध होता है ॥

आर्त्तवकेयथार्थअप्रवृत्तिकेदोष।

तस्यायथाप्रवृत्त्याहिशारीरामानसास्तथा ॥
व्याधयोबहवःस्त्रीणांजायंतेकृच्छ्रसाधनाः ॥ ४ ॥

अर्थ–यथा नियम रजोदर्शकी प्रवृत्ती न होनेसे स्त्रियोंके शारीरक और मानसिक विविध कष्टसाध्य पीडाओंकी उत्पत्ती होती है ॥

स्नायूनांरक्तयंत्राणांपाचकाग्नेश्चजायते ॥
व्याहतिर्व्याहतेतस्मिन्सुस्थितिर्नियतेभवेत् ॥ ५ ॥

अर्थ–नियम पूर्वक रजोदर्श होनेसे स्नायु–रुधिरयंत्र–और पाचकाग्नि ये सब क्रिया उत्तम प्रकारसे निर्वाहित होती है ॥ रक्तस्रावके रुकनेसे पूर्वोक्त क्रियाओंमें विपरीतता होती है अतएव स्त्रीजातिकी संपूर्ण पीडा और विषयका ज्ञान करना अत्यंत आवश्यक है ॥

ऋतौकंडूयनंयोनौक्वचिदंगेचवेदना ॥
बाहुल्यंस्वल्पतोवापिचानुबंधित्वमस्यवा ॥ ६ ॥
संरोधःसर्वथावापिवेद्यान्येतानियत्नतः ॥
आमयेष्वखिलेष्वेवभिषग्भिर्योषितांसदा ॥ ७ ॥

ऋतुके समय योनिमें खुजली चले–कमर–तलपट अथवा अन्य किसी-स्थानमें पीडा–रुधिरस्रावकी आधिक्यता–वा अल्पता–अथवा अधिक कालपर्यंत रुधिरका जाना और रुधिरका सर्वथा बंद होजाना इत्यादि विषयको वैद्यजाने इसी प्रकार सर्व समुदाय विशेषकी परीक्षा करके फिर स्त्रियोंकी चिकित्साकरनी चाहिये ॥

इति आर्त्तवपरीक्षा ॥

मलपरीक्षा।

त्रुटितं फेनिलं रूक्षं धूम्रं वा वातकोपतः ॥
वातश्लेष्मविकारे च जायते कपिशं मलम् ॥

अर्थ–वातके कोपसे रोगीका मल (दस्त) टूटा हुआ, झागदार,

रूखा और धूएँके रंगका होता है । वातकफके विकारमें मल काला लालमिले रंगका होता है[1] ॥

बद्धं सुत्रुटितं पीतं श्यामं पित्तानिलाद्भवेत् ।
पीतश्यामं श्लेष्मपित्तादीषदार्द्रं च पिच्छिलम् ॥

अर्थ-वातपित्तके रोगमें बँधाहुआ, टूटा, पीला, श्यामवर्णका मल होता है । कफपित्तके रोगमें पीला, श्याम और कुछ गीला एवं मलाई-दार दस्त होताहै ॥

श्यामं त्रुटितपीताभं बद्धं श्वेतं त्रिदोषतः ॥

अर्थ-त्रिदोषकेकोपसे काला टूटा, पीला, बँधाहुआ, और सपेददस्त होता है ॥

दुर्गंधः शिथिलश्चैवविष्ठोत्सर्गो यदा भवेत् ।
तदा जीर्णं मलं वैद्यैर्दोषज्ञैः परिभाष्यते ॥

अर्थ-जिस रोगीका मल दुर्गंधयुक्त, शिथिल उतरे उसको दोषज्ञ वैद्य जीर्णमल कहते हैं ॥

कपिलं ग्रंथियुक्तं च यदि वर्चोऽवलोक्यते ।
प्रक्षीणमलदोषेण दूषितः परिकथ्यते ॥
सितं महत्पूतिगंधं मलं ज्ञेयं जलोदरे ॥

अर्थ-जिसरोगीका अग्निके सदृश वर्णवान् और गांठदार मलहो तो क्षीणमलदोषसे दूषितजानना और जलंधररोगीका मल सपेद बहुतसा दुर्गंधयुक्तहोताहै ॥

श्यामं क्षयेत्वामवाते पीतं सकटिवेदनम् ।
अतिकृष्णं चातिशुभ्र मतिपीतं तथारुणम् ।
मरणाय मलं किंतु भृशोष्णं मृत्यवे ध्रुवम् ॥

अर्थ-क्षयरोगमें मल काला होता है, आमवातसे कमरमें पीडा करता हुआ पीलेरंगका दस्त होता है, और अत्यंत काला, अत्यंत सपेद, अत्यंत पीला, अत्यंत लालरंगका और अत्यंत गरम दस्त होय तो उस रोगीकी अवश्य मृत्युहोय ॥

वातस्य च मलं कृष्णं ततः पित्तस्य पीतविट् ।
रक्तवर्णमलं किंचिन्मलंश्वेतं कफोद्भवम् ॥

---

१ मलका प्रमाण-अवस्था और प्रकृतिके अनुसारहै । जैसे अधिक भोजन वाला बालकोंके दिनमें कईबार दस्तहोताहै युवा पुरुषोंके १ वार.

अर्थ-बादीसे काला, पित्तसे पीला और किंचित् लाल, कफसे सपेद रंगका मल होता है ॥

आमं वा श्वेतजं प्राहुः मिश्रितं द्वंद्वजं वदेत् ।
अपक्कं स्यादजीर्णे तु पक्कं स्वस्थमलं भवेत् ॥

अर्थ-सपेद रंगका मल आमका होता है, और जिसमें मिश्रितरंगहो वह द्वंद्वज जानना, अजीर्ण रोगीका मल कच्चा और स्वस्थ मनुष्यका मल पक्क होता है ॥

अत्यग्नौ पीडिते शुष्कं मन्दाग्नौ तु द्रवीकृतम् ।
दुर्गंधं चन्द्रिकायुक्तमसाध्यं मललक्षणम् ॥

अर्थ-तीक्ष्णाग्निवाले पुरुषकामल गांठदार होता है। और दुर्गंध तथा चंद्रिका युक्त मलहोनेसे रोगीअसाध्य ऐसा जानना ॥

बद्धं श्यामं मरुति कुपिते पित्तकोपे तु पीतं
पानीयाभं सफेनं कफरुषि च मले सान्द्रपांडूरवर्णम् ॥
रक्ते क्रुद्धे सरक्तं जलनिभमथतत् द्वंद्वकोपाद्विलिंगं
सर्वैर्दोषैः सरोषै र्भवतिकिलमलं रोगिणः सर्वलिंगम् ॥

अर्थ-बधाहुआ, कालामल, वादीकेकोपसे होताहै। पित्तकोपसे पीलावर्ण, कफकोपसे पानीके समान, झागयुक्त, सघन और सपेद होता है और रुधिरके कोपकरके रक्तवर्ण, पानीके समान मल होता है। द्वंद्वजदोषोंके कोपसे दो दोषोंके चिह्नमिलताहोताहै। और त्रिदोषके कोपसे तीनों दोषोंके चिह्न मिला रोगीका मल उतरता है ॥

वृद्ध पुरुषोंके और जिनको अधिक बैठे रहनेकाअभ्यासहै उनको एकवारसे भी कम दस्तहोताहै। अब कहतेहैं कि जिनरोगोंमें दस्त अधिक आतेहैं वह येहैं। जैसे--आतों में गांठ और सूजन होनेसे, दुष्टभोजन अथवा अपाचक भोजन करनेसे, अथवा जुल्लाब लेनेसे अधिक दस्त होतेहैं। एवं आंतोंमें घाव होनेके कारण, देहमें अधिकगर्मीके कारण, तथा आव हवा के पलट जानेसे, एवं भीतरी चोट लगनेसे, शोक, चिंता, और भय आदिकारणोंसे इस मनुष्यकै अधिक दस्त होते है ॥

मिली हुई लोहभस्म आदि काली वस्तू खानसे दस्त काले रंगका होताहै पतंग आदि औषधसे लाल रंगका, हरासाग आदिसे हरे रंगका, रेवतचीनी आदिसे पीले रंगका दस्त होताहै इसी प्रकार अनेक रंगका दस्त होताहै ॥

दुर्गंधिश्यामर्णं मलमरुणनिभं पांडुराभं विचित्रं
मांसाभं मेचकं तत्प्रभवति मरणायैव रोगान्वितस्य ॥
विस्रं शैथिल्ययुक्तं मुहुरिति निपतत्स्यादजीर्णाच्च वर्चों
दिङ्मात्रं चैतदेवं निगदितमगदैर्लक्षणं वर्चसोऽपि ॥

अर्थ–दुर्गंधयुक्त, काला, किंचित्लाल, सफेद, अनेकवर्णयुक्त मांसके समान, सुरमईरंगका ऐसा मल होनेसे रोगीमरे और अजीर्णसे दूटा हुआ, शिथिल वारंवार ऐसा मल होता है। ये वैद्योंको किंचित् दिङ्मात्र लक्षण मलके कहेहैं। बाकी कुशलवैद्य अपनी बुद्धिसे विचार लेवे ॥

इति मलपरीक्षासमाप्ता।

मुखपरीक्षा।

वाते च मधुरास्यत्वं पित्ते च कटुकंतथा ॥
मधुराम्लं कफे चैव सर्वलिंगं त्रिदोषजे ॥
अजीर्णे घृतपूर्णस्यात्कषायं वाग्निमांद्यके ॥

अर्थ–अब मुखपरीक्षा कहते हैं जैसे कि वादीके रोगसे रोगीका मुख मीठा होता है पित्तके रोगसे कडुआ और कफके रोगसे मुख मीठा और खट्टा होता है एवं सन्निपातवाले रोगींके मुखका सवाद मीठा कडुआ और खट्टा होता है अजीर्ण रोगमें मुखका स्वाद घृतपूर्णके सदृश होता है और मंदाग्निमें मुखकास्वाद कषेला होता है इसप्रकार वैद्य मुखकी परीक्षा करे ॥

अजीर्णावस्थामें मल कठोर बडे लँबे २ अथवा ऊंटके मैंलेके समान गोल २ उतरताहै। हैजामें पतला और चावलके धोवनकासा दस्त होताहै। आमवात बवासीर, पथरी मूत्रगर्भ, इत्यादि रोगोंमं वरंवार दस्त की हाजत होतीहै इत्यादि ॥

डाक्टरीमतानुसार मुखपरीक्षा।

सब लक्षणोंमें प्रथम मुखके लक्षण जानना वैद्यको अत्यावश्यक है। क्योंकि जब रोगी आता है तो प्रथम वैद्यकी दृष्टि मुखपरही जाती है और मुखपरीक्षा द्वारा अनेक रोगोंका ज्ञान होता है ॥

जैसे पीडाके पश्चात् मुखपर प्रसन्नता और उम्मेद प्रगट होय तो उत्तम है परंतु अकस्मात किसी घोर रोगकी तत्काल निवृत्ति होजाय और मुखपर प्रसन्नता और देदीप्यमानता दीखे तो यह बुराहै ॥

जिव्हापरीक्षा।

जिह्वा शीताखरस्पर्शा स्फुटिता मारुताऽधिके। रक्तश्यामा भवेत्पित्ते कफे शुभ्रातिपिच्छिला॥ कृष्णासकण्टका शुष्का-

---

यदि मुखसे किसीप्रकारका कोई चिह्न जैसे रोगके विना होठ न हिले न नेत्र अच्छीतरह खुले तो यह निर्बलताका धर्म है। पुराने रोगोंमें मुखचमकीला होता है। प्रायः सुजाक–गरमी या भीतरी अन्य२ रोगोंमें मुखसे फिकर और पीडा प्रतीत होती है। अच्छी रीतिके विचार करनेसे मानसिक बिमारियोंमें तथा अन्य घोर बिमारियोंमें मुखपर चिंता और जीनेसें निरासता प्रगट होती है॥

बावरेपनेमें भोलापन विनाकारण हँसी–आती है। मृगीरोगमें निर्बुद्धीपना और सुस्ती प्रतीत होती है दिवानेका मुख भयंभर प्रतीत होता है। नामर्दोंका मुख सरमिंदगी लिये होताहै ऐसा मनुष्य किसीसे आंख नहीं मिलाता॥

मृत्युके समय मुखपतला–दुर्बल नाककी आगेकीहड्डी निकली हुई कनपटी बैठी हुई होठ लटकते गालपिचके त्वचा सिमटी हुई–और काली तथा नाकके बाल और पलकोंपर सपेद पिलास लगाहुआ प्रतीत होताहै इत्यादि अनेक चिह्न होते हैं ये लक्षण अशुभ हैं॥

रुधिरके पतले होनेके कारण रोगोंमें मुखफीका और कुछ सूजन लिये होता है पित्तज्वरमें मुख लालरंगका सरतानमें चिन्तायुक्त और नीलतालिये सीसेके रंगका होताहै गरमीके रोगमें मट्टीके रंगका पांडुरोगमें पीला तिल्लीके बडी होनेमें मैलयुक्त और फीका होता है॥

हैजा तथा श्वासके अवरोधमें नीलेरंगका मृगीकी वारीकेपूर्व बैंगनी रंगका मुख होजाता है। इत्यादि और भी अनेक चिह्न होते है॥

इति मुखपरीक्षा समाप्त।

---

१ जिह्वाके देखनेसे बहुधा रोगोंकी परीक्षा होतीहै--जैसै रुधिरका भ्रमण दोषोंकी कमी वेसीकाहाल आदि और प्रायः आमाशयकी अवस्था उत्तमरीतिसे जानीजाती है। इसका यह कारणहै कि लुआवदार झिल्लीकेद्वारा इन रोगोंका विशेष संबंध रहताहै। प्रायः रोगोंकी आद्य अन्त्यावस्था जाननेमें जिह्वासे बहुत सहायता मिलती है। और आरोग्यावस्थामेंभी सर्वप्राणियोंकी जिह्वाका स्वरूप एकसा नहीं होता जैसै--किसीकिसीकी लाल किसीकी सफेद, किसीकी स्वच्छ और किसीकी मलिन एवं किसीकी नम्र, और किसीकी कठोर होती है। किसीकी जिह्वा बाहर निकालनेके समय शिथिल और किसीकी नौदार आदि चिह्नोंसे चिह्नित होतीहै।

सन्निपाताधिके तु सा॥मिश्रिते मिश्रिता ज्ञेया सर्वलक्षणवर्जित॥

अर्थ–जिस जीभका शीतल कठोरस्पर्श हो तथा फटीहुई प्रतीत होतो वाताधिक्य जानना । पित्ताधिक्यमें लाल और कालेरंगकी, एवं कफाधिक्यसे सपेद और अत्यन्त कफसे लिहसी हुई होती है । सन्निपातमें जीभ कांटेदार सूखी और काली होती है । और मिश्रित दोषोंसे जीभकाभी रंग मिश्रित होता है ॥

शाकपत्रप्रभा रूक्षा स्फुटिता रसनानिलात् । रक्ताश्यामा भवेत्पित्ताल्लिप्तार्द्रा धवला कफात्॥परिदग्धा खरस्पर्शाकृष्णा दोषत्रयाधिके ॥ सैव दोषद्वयाधिक्ये दोषद्वितयलक्षणा ॥

अर्थ–वादीसे जीभ शाकपत्रके समान रूखी और फटीहुई होतीहै । पित्तसे लाल और काली एवं कफसे लिहसीहुई गीली और सफेद होतीहै। त्रिदोषकी अधिकतासे जीभ जलीहुईसी, खरदरी और कालीहोतीहै । एवं द्विदोषकी आधिक्यतासे दोदोषोंके मिले लक्षण होतेहैं ।

जब मनुष्य सोकर उठताहै तो जिह्वापर मैलकी पतली पपडीसी जम जातीहै । जो मनुष्य मुख खोलकर सोतेहैं उनकी जीभ सोकर उठनेके बाद सूखीसी प्रतीत होती है

बहुतसे रोगोंकी अवस्था जिव्हाके द्वारा प्रतीत होती है । परंतु हिंदुस्थानी मनुष्योंको पान तमाखू खानेक कारण जिव्हा परीक्षा करना कठिन है तथापि थोडासा वर्णन हम करते है ।

जैसे जिव्हाका आकार, सूखी, गीली, रंग, थकावट, आदि वस्तुहै ॥

प्रथम वैद्यको जिव्हा निकालनेकी व्यवस्था देखनी आवश्यकहै क्योंकि अनेक रोगोंमें अनेक प्रकारकी अवस्था होतीहै जैसे ज्वरमें निर्बलता या मस्तकके रोगोंमें रोगी जिव्हा को बाहर नहीं निकालसकता । बातके बहुतसे रोगोंमें जिव्हा थरथरातीहै और रोगी भलेप्रकार वार्त्तालाप नहीं करसक्ता । इसीप्रकार सन्निपातावस्थामें भी जिव्हा थरथराती है । उन्मत्तावस्थामें रोगी जिव्हा निकालेहै और फिर तत्क्षण भीतर करलेताहै । अर्द्धांगवातमें जिव्हा एक ओर दबीसी प्रतीतहोतीहै ॥

रोगके निमित्त कर्के जिव्हाका आकार न्यूनाधिक होताहै । परंतु न्यूनता बहुत कम होतीहै जिव्हाका आकार न्यूनहोना केवल कृशावस्था आदिके कारणसे होताहै ॥

जिव्हाका बढना इन कारणोंसे होताहै जैसे--जीभमें सूजन, शीतला, लालज्वर, गरमी, पारद आदि दुष्ट धातुके भक्षणसे, तथा मुखकाआना आदि ।

आरोग्यावस्थामें मुख खोलकर सोनेके कारण जिह्वा सूखी रहतीहै परंतु किसी रोगके कारण थूक थोडा प्रगटहोताहै जैसे–ज्वर, देहकेभीतरकादाह और रूपवान् झिल्लीकेदाहमें, जिह्वापर सूखापन कालौंच, कठोरता और मलिनता होतो मालूम होता है कि रतूवतकेन प्रगट होनेसे रुधिरमें संमीयत होजानेके कारण अतिनिर्बलता आगईहै।

शब्दपरीक्षा।

गुरुस्वरो भवेच्छ्लेष्मीस्फुटवक्ता च पित्तलः।
उभाभ्यां रहितोवातः स्वरतश्चैव लक्षयेत् ॥

अर्थ-अब शब्द परीक्षा कहतेहैं-भारीस्वर कफरोगीका और पित्तरोगीका स्पष्ट उच्चार होताहै, और वात रोगीका इन दोनोंके लक्षणों करके रहित उच्चार (आवाज) होतीहै इसप्रकार स्वरसे रोगकी परीक्षा वैद्यको करनी चाहिये।

नेत्रपरीक्षा।

अथातःसंप्रवक्ष्यामिनेत्रस्यचपरीक्षणम्।
येषांविज्ञानमात्रेणरोगचिह्नंप्रकाशते ॥

अर्थ-अब हम नेत्र परीक्षाको कहतेहैं जिसको जाननेमात्रसे ही रोगोंके चिह्नप्रकाशित होतेहैं ॥

जिह्वाके शुष्क और मलिनावस्थाके पश्चात् गीलापन होजावेतो उत्तम चिह्नहै अतएव जैसे २ ज्वर उतरताहै उसीप्रकार क्रमसे धीरे २ जीभके किनारोंपर आर्द्रता आतीहै फिर धीरे २ सब पर आतीहै ॥

आरोग्यताकी अपेक्षा रोगमें जीभका वर्ण पलटजाताहै जैसे--रुधिरकी न्यूनतामें प्लीहको सूजनतामें जिह्वाका रंग फीका होता है श्वास रुकनेकी दशामें नीला या बैंजनी, तालु अथवा हलकादिकी सूजन तथा पित्तज्वरमें जीभ संपूर्ण लाल होती है मद्यजन्यज्वरमें तथा अजीर्णमें केवल नौक और किनारे लाल होते हैं ॥

मूर्च्छा-हैजा और श्वासरोधमें जिव्हाका कार्य मंद होजाताहै और जिह्वकी सूजनमें अधिक ॥

जिस समय जिव्हा सफेद- देदीप्यमान और मैलसे एकसी आच्छादितहो तो घोरज्वर जानना यदि मैल पीलेरंगका होतो हृदयकारोग तथा रुधिरमें पित्तका मिलाप है ऐसा जानना यदि जिव्हाका मैल भूरा अथवा श्याम होवे तो मिलाप रुधिरके कारण आत्मशक्तिका नष्ट होना सिद्ध होताहै ॥

रक्तज्वर (लालज्वर) में जीभपर सपेदरंगका मैल जमाहुआ होता है और उसमें लालरंगके कांटे उठे हुए प्रतीत होते हैं और जैसे २ वह मैल दूर होताजाता है-दाने उठे हुए सहतूतके समान प्रतीत होते है जिव्हाकी नौक और किनारोंसे धीरे२ मैल दूर होने लगे तो यह चिह्न शुभ है परंतु जिव्हाके मध्य गत उच्च विभागमें बडे २ भाग पृथक् २ हो तथा जीभ लाल नहो और चमकदार हो जाय तो चिरकालमें पूर्ण आरोग्यता होती है किंतु रोगके फिर उलटनेका संदेह रहता है जब द्वितीय वार रोग प्रगट होता है तब पूर्वोक्त जिव्हाका मैल भी पूर्व नियमानुसार जम जाताहै ॥

वातजन्यनेत्र.

रूक्षाधूम्रातथारौद्राचलाचांतर्ज्ज्वलत्यपि ।
दृष्टिर्यदातदावातरोगंरोगविदोजगुः ॥ १ ॥

अर्थ–रूक्ष धूँआकेरंगके भयंकर और भीतरसे जाज्वल्यमान ऐसी दृष्टि वात रोगीकी वैद्योंने कहीहै ॥

पित्तकफजन्यनेत्र.

दीपद्वेषितसन्तप्तंवीतंपित्तेनलोचनम् ।
जलार्द्रंज्योतिषाहीनंस्निग्धंमंदंकफेनतत् ॥ २ ॥

अर्थ–जिसप्राणीको दीपक अच्छा न लगे तथा गरम पीले ऐसे पित्तरोगवाले रोगीकि नेत्र होतेहैं, तथा जलसे आर्द्र ज्योतिहीन स्निग्ध और मंद ऐसीदृष्टी कफरोग वालेकी होतीहै तथा नेत्रसपेद होतेहै

द्वंद्वज और संनिपातजन्य।

द्वंद्वदोषभवेन्मिश्रंतूर्णंतूर्णंविलोचनम् । श्यामवर्णंचनिर्भुग्नं

डाक्टरीमतसेशद्बपरीक्षा ।

बहुतसे रोगोंमे रोगीसे बोला नही जाय । जैसै संनिपातकी बेहोसी –बहुतसे रोगमें रोगी समझसके परंतु बोल नहीं सके ऐसे रोगको अंगरेजीमें एफेसीया कहते हैं कथा बाँचनेवाले–वकील–पादरी–और जो अत्यंत पुकारके बोले हैं उनकी आवाज ऐसी बैठजातीहै कि प्रतीत नहींहोती गरमीके रोगमें सीटीदेनेका शब्द निकलने लगताहै निर्बलताके कारण शब्द अत्यंत मंद होजाताहै खसरोगमें या शूल आदि पीडाके कारण रोगी चिल्लाने लगताहै इत्यादि जानने ॥

यदि जिव्हाका एकही वार मैल दूर हो जायऔर जीभ तत्काल घावके समान दरारदार काली और चमकदार होजाय तो यह चिन्ह रोगीके विषयमें अशुभ है । गरमीके रोगमें जिव्हाके नीचे और किनारोंपर छोटे २ घाव और फटी हुई होती है । बालकों के मुख आनेमें जिव्हापर सफेद रंगके दाग पड जाते हैं ॥

डाक्टरीमतानुसारनेत्रपरीक्षा ।

हृदयमें यंत्र और मूत्रपिंडकी क्रियामें जब कुछ बिगाड होता है अथवा उदरका कोई रोग उत्पन्न होनेसे प्रथम नेत्रके पलक सूजते हैं। भ्रमरोगमें नेत्रोंके पलक मीचनेमें अत्यंत कष्ट होता है । मृगीरोगकी पालीके समय नेत्रके पलक वारंवार कंपित होते हैं फुप्फुस मस्तिष्क और हृदययंत्रमें रुधिरके रुकनेसे तथा उस रुधिरकी गरमीके वेगसे नेत्रका आकार पूर्वअपेक्षा बडा होता है

तन्द्रामोहसमन्वितम्॥३॥रौद्रंचरक्तवर्णंचभवेच्चक्षुस्त्रिदोषतः

अर्थ-दोदोषके मिलनेसे दृष्टिभी मिश्रित होतीहै। अर्थात् वात पित्तसे धूम्र और पीले, कफपित्तसे पीले और कीचडसे परिपूर्ण, इत्यादि त्रिदोषके कोपसे नेत्र काले विकराल तन्द्रा और मोहयुक्त बीभत्स और लाललाल होतेहैं॥

असाध्यलक्षण।

एकचक्षुर्यदाभीमंद्वितीयंमीलितंभवेत्॥४॥
त्रिभिर्दिनैस्तथारोगीसयातियममंदिरम्।

अर्थ-जिसरोगीका एक नेत्र भयंकर और दूसरा मिचाहुआहो वो तीनदिनमें यममंदिर अर्थात मृत्युके मुखमें जाताहै॥

ज्योतिर्विहीनंसहसारोगिणोयस्यलोचनम्॥५॥
ईषत्कृष्णंसनियतंप्रयातियमसादनम्।

अर्थ-जिस रोगीके नेत्र अकस्मात् ज्योतिहीन और कुछ कुछ कालेहो वह निश्चय यमालयको जायगा ऐसा जाने॥

सरक्तंकृष्णवर्णंचरौद्रश्चप्रेक्षतेयदा॥६॥
इतिलिङ्गैर्विजानीयान्मृत्युरेवनसंशयः।

अर्थ-जो रोगी लाल और काले तथा भयानक नेत्रसे देखे इन लक्षणोंसे वैद्य जाने कि इसरोगीकी मृत्युहोवेगी॥

एकदृष्टिरचैतन्योभ्रमन्स्फुरिततारकः॥७॥
एकरात्रेणनियतंपरलोकपथंव्रजेत्।

अर्थ-जो एकदृष्टिसे देखे होस होय नहीं तथा जिसकीदृष्टी चारोंतरफभ्रमणकरे और तारे फडके वह एकरात्रिमें निश्चय परलोककोपधारे॥

यामलेऽपि.

शुष्कास्यःश्यामकोष्ठोऽप्यसितरदततिःशीतनासाप्रदेशः।
शोणाक्षश्चैकनेत्रोलुलितकरपदःश्रोत्रपातित्ययुक्तः॥
शीतश्वासोऽथचोष्णश्वसनसमुदयःशीतगात्रप्रकंपः
सोद्वेगोनिःप्रपञ्चःप्रभवतिमनुजःसर्वथामृत्युकाले॥

यामलग्रंथमें भी लिखाहै कि जिसका मुख सूखजावे कोष्ठकाला तथा दाँत काले नाक जिसकी शीतल एक नेत्रलाल हाथ पैर गिरेपडे कानोंसे सुने नहीं कभीशीत और कभी गरमी लगे गरम श्वास निकले-सरदीसे देह काँपे-तथा वह रोगी उद्वेग युक्त और प्रपंच रहितहो येलक्षण प्राणीकी मृत्युके समय जानने ॥

॥ इति नेत्रपरीक्षा समाप्ता ॥

स्पर्शपरीक्षा।

पित्तरोगी भवेदुष्णो वातरोगी च शीतलः ।
पिच्छिलःश्लेष्मरोगीस्यात्रिलिंगात्संनिपातवान् ।
आर्द्रकः स भवेच्छ्लेष्मा स्पर्शतश्चैव लक्षयेत् ॥

अर्थ–अब स्पर्शपरीक्षाकहतेहैं-जैसे कि पित्तरोगवाले मनुष्यका देह गरम होता है।वातरोगीका शीतल औ कफरोगीका देह पसीनोंसे लिहसाहुआसा होता है। और सन्निपातवाले रोगीका देह तीनोंदोषोंके लक्षणयुक्त होता है। अथवा कफरोगीका देह गीला होता है। इसप्रकार वैद्यको स्पर्शसे परीक्षाकरनी चाहिये ॥

त्वचा व स्पर्श ।

त्वचासे देहकी उष्मा (भाफ) निकलती रहती है इसीकारणसे देहमें समान गरमी रहेहै

युवावस्थावाले प्राणियोंके देहसे २४ घंटेमें ३० औंसके लगभग भाफ

अत्यंत रुधिरके निकलनेसे अत्यंत जुलाब होनेसे राजयक्ष्मादि क्षयरोग और निराहारव्रत इत्यादि कारणोंसे नेत्र अत्यंत भीतरको बैठ जातेहैं यदि एकनेत्र बैठ जावे और दूसरानेत्र यथावस्थित रहे तो उसकी दर्शन संपाद कर्त्री स्नायूका पक्षाघात हुआहै अथवा किसी प्रकारके शिरारोगके कारण यह दशाहुई है ऐसा जाने

यदि दोनोंनेत्र अत्यंत लाल होवे तो मस्तिकमें रुधिरका संचय हुआ जानना पांडुरोगमें नेत्र पीले रंगके होतेहैं सरेंकमांमेंनेत्रके सपेद भागमें दाह होताहै मस्तिष्कके उद्वेजन अथवा मस्तिष्कमें रुधिरके रुकनेसे मृगी संन्यासरोग और अफीमके खानेसे नेत्रके तारे संकुचित होजाते हैं मस्तिष्कसे रुधिरके निकलनेमें तथा सन्यास और मूर्च्छा आदिरोगके अरिष्ट लक्षण उत्पन्न होनेसे तारे फटे और फैले हुएसे दीखतेहैं धतूराखानेसे या नेत्रके चारोंतरफ लगानेसे कनीनिका फैल जाती है घोर उन्माद रोगमें नेत्र अत्यंत चमकीले तथा स्नायुकी दुष्टतामें नेत्र प्रभारहित होते हैं ।

निकलती है यदि इस्से न्यून निकले तो देह सूखी रहती है और अधिक निकले तो देह गीली रहतीहै।

हैजा-ज्वर आदिरोगोंमें त्वचा शुष्क रहती है और दाह रोगमेंभी ऐसाही होताहै। देहमें गीलापना पसीनेके कारण होताहै परंतु पसीने आनेके कारण पृथक् है जैसे साधारण ज्वरमें पसीना प्रसिद्धहै परंतु विषमज्वरमें पसीने बहुत आतेहैं क्योंकि उसमें निर्बलता अधिक हो जाती है मरनेके थोडी देर पहले पसीना शीतल निकलता है।

यह प्रसिद्ध नियम हैं कि दुर्बलताके कारण देहका परिश्रम न्यून हो जाताहै तब देह शीतल होजाताहै और शीतल पसीने निकलने लगते है जैसे कि प्रायः विषूचिका (हैजा) में होयहैं अथवा हाथपैर अत्यंत शीतलहो और देहके भीतर दाह हो तथा बेचैन चितायुक्त दीखै तो जानना कि अब शीघ्रही यह रोगी मरेगा॥

बहुतसे रोगोंकी परीक्षा देहकी गरमीके द्वारा होती है परंतु स्पर्शसे ठीक २ निश्चय नहीं होता अतएव बुद्धिमानोंने इसके वास्ते यंत्र बनायाहै जिसको थर्मामिटर (Thermameter) कहतेहैं इसके द्वारा गरमीकी न्यूनाधिक्यता ठीक २ हो जाती है।

थर्मामिटर यंत्र अनेक प्रकारकाहै परंतु सेल्फरैजिस्टिरिंग सबमें उत्तम होता है इसकी तसबीर इस जिल्दके प्रथमही दीनीहै सो देखलेना॥

थर्मामिटर लगानेकीविधि।

थर्मामिटर लगानेका मुख्यस्थान बगलहै परंतु आवश्यकता के समय अन्य अन्य मुखादि स्थानमेंभी लगाते हैं। यदि होसके तो थरमामेटर लगानेके पूर्व एकघंटे रोगीको लिटाए रक्खे यदि शरदीकी ऋतु अथवा काबुल कश्मीर आदि शर्ददेश होवे तो थर्मामिटरको हाथसे मलकर गरम करले कि पारा ९४ चौरानवे अंशपर्यंत चढजावे और गरमऋतु वा गरमदेश जैसें द्रविड आफ्रिका आदि हो तो शीतल जलमें डुबायकर नीचे उतारलेवे फिर जहां लगाना होवे उसजगे लगावे।

कमसे कम ५ मिनट और बढसे बढ २४ मिनट तक लगावे परंतु चौवीस मिनट लगानेका बहुत थोडा कामपडता है फिर उसको उजेलेमें लेजाकर देखे कि पारा कितने अंश चढाहै

और यहभी निश्चयकरे कि थर्मामिटर लगानेसे पारा शीघ्र चढगया या धीरे २ चढाहै प्राय ज्वरवाले रोगोंमें जबतक रोगकी गरमीकी

ठीक अवस्था नहीं निश्चय करी जाय उससमयतक रोगीके रोगका निश्चय होनाभी सहज बात नही है और यहभी ठीक नहींहै कि एक-वारके थर्मामेटर लगानेसे ही रोगका निश्चय होजावे किंतु वैद्यको उ-चित है कि प्रातःकाल और सायंकालमें लगावे तथा संभव हो तो दिनमें कईवार देहकी गरमी का निश्चय करे ।

आरोग्यके समय ९७-३ से लेकर ९९-५ अथवा १०० से और औसतकं ९८-४ पर्यंत होतीहै इससे कम या अधिक होंकर उसीजगे रहे तो समझना कि कुछ न कुछ दोष है ।

परंतु यहभी याद रहै कि देहके प्रत्येक स्थान-प्रत्येकदेश प्रत्येक समय प्रत्येक अवस्थामें गरमी एकसी नहीं रहती जैसै मुँह आदिमें गरमी अधिक रहती है ढके हुएकी अपेक्षा खुलेमें छातीकी अपेक्षा हाथ पैरमें बालकोंकी अपेक्षा जवानके एवं जवानकी अपेक्षा बुढापेंमे गरमी अधिक रहती है

प्रातःकालसे सायंकालतक गरमी अधिक होजाती है एवं सायंकाल-से प्रातःकालतक न्यून अर्थात् २४ घंटेमें अनुमान १ डिगरी के चढाव उतार होता है शरद मुल्ककी अपेक्षा गरम मुल्कमें गरमी अधिक होती है अर्थात् १०० अंशपर्यंत गरमी पहुच जातीहैं

गरम जलके स्नानकरनेसे गरमी बढ़जातीहै एवं शीतल जलमें न्हा-नेसैं अथवा किसीस्थानपर शरदीं पहुचानेसै अधिक मानसिक परिश्रमसें गरमीं न्यून होजाती है ॥

ज्वरमें अधिक गरमीका होना एक साधारण धर्म है इसीसै १०१ दर्जेपर्यंत पारा चढनैसै ज्वर हलका जानना १०५ दर्जेपर्यंत हो तो सा-मान्य और १०६ से १०७ दर्जेपर्यंत होनेसे भयानक ज्वर जानना यदि इससे भी अधिक अर्थात् ११० से ११२ दर्जेपर्यंत होनेसै रोगीके बचने-की आशा नहीं रहे? अर्थात् मृत्यु उसकी समीपहीं जाननीं ॥

बहुतसे रोग देखनेमें थोडे होतेहै परंतु थर्मामेटरके लगानेसै रोग अधिक होताहै तो मालूम होजाताहै बहुतसै रोगी अपनारोग नही बतासकते जैसै पागलमनुष्य तो उनकी गरमीका हाल थर्मामेटरलगा नेसैं प्रत्यक्ष होजाताहै

बालकोमें प्राय ऐसे भयानक चिन्ह दृष्टि आतेहै कि जिसै उनको मातापि ता शोकवस होजातेहै परंतु थर्मामेटरलगानेसै ठीक २ वृत्तांत मालूम होजा

ताहै यदि वास्तवमें किसीप्रकारका अधिक रोग न होवे तो चाहे जैसै दुष्ट लक्षण क्यों नहो परंतु चिंता नही होती

जब ९८ दर्जासे एकभी दर्जागरमी बढेतो नाडीभी प्रत्येक मिनटमें १० गुनी बढ जातीहै जैसै ९८ दर्जेपर नाडी ६० होतो ९९ पर ७० एवं १०० दर्जेपर ८०० एवं १०६ दर्जेपर १४० होजातीहै इसीप्रकार और भेदभी बुद्धिमानोंको डाक्टरीके ग्रंथोंसेजानने चाहिये

प्लैक्सी मेटरयंत्र

पेट छातीके देखनेके निमित्त इंग्लैंडके डाक्टरोंने एक यंत्र बनायाहै उसको प्लैक्सीमिटर कहतेहैं इसयंत्रमें हाथीदांतकी एक तख्ती दो इंच लंबी और १ इंच चौडी होतीहै उसके दोनोतरफ दस्ते लगे रहतेहैं जिस्से पकडतेहैं। दूसरीवस्तु एकपीतलकी हथोडीहोतीहै उसपर रबडलगी रहतीहै उसका दस्ता लकडीका होताहै बस जहां ठोकनाहो वहां प्लैक्सीमिटरके दस्तेको बाँए हाथमें हथौडीको पकडकर एकसी चोटलगातेहैं कि जो न अत्यंत धीरेसे न बहुत जोरसे जहां ठोकनाहो वहाँपर मर्दोमें कपडा हटाकर और औरतोमें एकमहीन कपडा बराबर एकसा फैलाकर और उसकी सिलवट दूरकरके बांएहाथकी मध्यमाअंगुली और तर्जनीखूब जमाकर रखते हैं और दाहिने हाथकी उक्त दो उंगलियोंसे इसप्रकारठोकतेहैं कि हाथ न हिले केवल पहुँचेको हरकत्त हो जिससे चोट एकसीलगे और उंगलियाँ चोट देनेके समय सीधी रखतेहैं तिरछीनही रक्खेऔर ध्यानसे परकशनकी आवाजसुने इत्यादि इसका चित्रभी इस पुस्तककी आदिमें है सो देखना॥

स्टिथसकोपयंत्र

यह यंत्र अनेक प्रकारकाहै। परंतु प्रचलित यंत्रहलकी लकडीकी नली चार इंचसे आठ इंच पर्यंत लंबी होती है एकतरफका शिरा बडा और चपट्टा होताहै जिसपर कान लगाकर सुनते हैं और दूसरा छोटा होताहै जिसको रोगीके देहपर रखतेहैं—इसके द्वारा आवाज सुननेमें बहुत सुगमता पडती हैं इसकाभी चित्र इसजिल्दके आदिमें लिखाहै एक थस्टिसकोप ऐसाभी बनातेहैं जिस्से छातीके दोनो बगलका शब्द सुना जाय है उसकानाम क्लाक्जिविल स्टिथसकोपहै॥

अवस्था

रोगज्ञानमें अवस्थाका परीक्षणभी एकमुख्यकारणहै क्योंकि प्रत्येक अवस्थामें इसप्राणीके देहके विभागोंमें कुछकुछफरक पडजाताहै अतएव

रोगभी पृथक् २ उत्पन्न होतेहैं तहाँ मुख्य अवस्थातीनहैं प्रथमबालक-दूसरी युवा-और तीसरी वृद्धावस्था ॥

तहाँ बालक अवस्थामें थोडीभी सरदी लगनेसे बालकबीमारहो जातेहैं । दांतनिकलनेके समय प्रायःज्वर, खांसी, फोडा, फुंसी-नेत्रदूखनेके रोग होतेहैं ॥

दूसरीयुवावस्थामें २५ वर्षतक शरीरके बढनेका कार्य परिपूर्णहो जाता है अतएव प्रायःइसी अवस्थामें दौड धूपके कारणशरीरके टूटने फूटनेसे मृत्युकाभयरहताहै ॥

परंतु पच्चीससे उपरांत पचास वर्षतक पथ्यपूर्वक आहार विहारसे रहेतो कोई रोगनहीं होते ॥

परंतु स्त्रियोंके यथासमय रजोदर्शन होनेसे रोगप्रगटहोतेहैं पचास वर्षके उपरांत तीसरी वृद्धावस्थाका अमल आताहै जिसमें क्रम २ से हाथ पैरआदिकर्मेन्द्रियें और नेत्र नासिका आदिज्ञानेंन्द्रियें तथा मन इनका ह्रास (घटना) होनेलगता है आखिरअत्यंत बुड्ढाहोनेसे मर जाताहै इसप्रकारवैद्यको अवस्थाके सर्व कारणविचारके रोगीका यत्नकरना

जाति

जातिके तीनभेदहैं स्त्री पुरुष और नपुंसक परंतु नपुंसक इन्द्रिय दोनोंके बीचमें मानाहै उसका यत्न पृथक कहीं नहीलिखा,

जैसे प्रत्यक्ष पुरुषस्त्रीके बीचमें बहुत अंतरहै उसीप्रकार उनके रोगोंमें भी अंतर जानना । पुरुष स्त्रियोंकी अपेक्षा अतिबली और दृढ होते हैं कारण कि उनके सब कार्य कठोर और परिश्रमके हैं । तथा प्रायः पुरुष मादकवस्तु (भांग-अफीम-पोस्त आदि) के खानेवाले होतेहैं इसी कारण उनको अनेकप्रकारके कष्टउठाने पडतेहैं तथा तंदुरुस्तीके कारणों को बसबब अपने रुजगारके नहीं करसक्ते अतएव उनको महामारी आदि छूतके रोग अत्यंत दुःख देते हैं ॥

स्त्रियोंका स्वभावकोमल और निर्बल होताहै और प्रायः घरमें ही बैठी हुई सब घरके कामोंको कराकर्ती हैं बाहर डोलना फिरना कम होता हैं अतएव इनको छूतके रोगभी कम बाधा करें हैं

स्त्रियोंके निर्बलतासे रोगहोते हैं वो पुरुषोंकी अपेक्षा असाध्य कम होते हैं उसका प्रत्यक्ष दृष्टांत यहीहै कि मनुष्य संख्या (मर्दुम सुमारी) के अनुसार पुरुषोसै स्त्री अधिकहैं तथा स्त्रियोंके महीने के महीने रजोदर्श होनेके कारण संचित दुष्टदोषनिकलजातेहैं परंतु गर्भजन्य रोग प्रगट होते हैं इसप्रकार वैद्यको जाति विचारकरके यत्नकरना चाहिये

श्रीः।

अथ कालज्ञानमाह।

कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि यदुक्तं शंभुना स्वयम्।
येन विज्ञानमात्रेण त्रिकालज्ञो भवेन्नरः॥

अर्थ–अब हम कालज्ञानको कहते हैं। जो साक्षात् श्रीशिवने कहाहै। जिसके जाननेमात्रसे ही यह मनुष्य त्रिकालज्ञ (अर्थात् भूत भविष्यत् और वर्त्तमानका जाननेवाला) होताहै

कालेन सृजते ब्रह्मा कालेन हरते हरः।
कालेन पाल्यते विष्णुस्तस्मात्कालं च चिंतयेत्॥

अब कालको मुख्यत्व दिखाते हैं–जैसे कि ब्रह्मा कालकरके सृष्टीको रचै हैं, श्रीरुद्र संहार करैहैं, और विष्णु उसीकाल करके जगत्को पालन करते हैं अतएव वैद्य कालको चिंतवन करैं॥

कालज्ञानं कलायुक्तं शम्भुना यच्च भाषितम्।
येन षण्मासतो मृत्युः पूर्वं ज्ञायेत रोगिणाम्॥

अर्थ–श्रीशिवका कहा कलायुक्त (शक्ति सहित अथवा छलयुक्त) कालज्ञान जिसके जाननेसे छःमहीने पहिले रोगियोंकी मृत्युको वैद्य जान सकता है [उसको कहते हैं]

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
कालः सुप्तेषु जागर्त्ति तस्मात्कालं च चिंतयेत्॥

अर्थ–कालही प्राणियोंको उत्पन्नकर और संहार करता है। तथा प्राणियोंके सोनेपरभी काल जागता रहताहै। अतएव कालको चिंतवन करे॥

काले देवास्तथा नागा यक्षाश्चासुरपन्नगाः।
विद्याधरा मनुष्याश्च सर्वे नश्यंति कालतः॥

अर्थ–कालमें देव, नाग, यक्ष, असुर, पन्नग, विद्याधर, और मनुष्य सर्व नष्ट होते हैं॥

विरंचिदिनमध्ये तु पतन्तीन्द्राश्चतुर्दश।
सोऽपि चाब्दशतांते तु स्वयं कालेन नश्यति॥

अर्थ–जिसके १ दिनमें चौदह इन्द्र पतन होतेहैं, ऐसाभी ब्रह्मदेव सौवर्षके अंतमें काल करके स्वयं नष्ट होताहै ॥

मानुषस्तु शतंजीवी पुरावेदेषु भाषितम् ।
सोपि कालप्रभावेण विनश्यति न संशयः ॥

अर्थ–वेदमें यह लिखाहै कि मनुष्य सौवर्षजीताहै परंतु वोभी सौवर्ष के उपरांत कालके प्रभावकरके नष्ट होताहै. ॥

वर्षाशीतं तथा चोष्णं प्रत्यूषं मध्यमं दिनम् ।
अपराह्णं तथा नक्तं रूपं कालस्य कथ्यते ॥

अर्थ–वर्षा, शीत, गरमी, प्रातःकाल, मध्याह्न, अपराह्न, तथा रात्रि ये कालकेही रूपहैं. । अर्थात् इन्हीमें यह जीव मरताहै ॥

काले फलंति तरवः काले बीजं प्ररोहति ।
काले पुष्पवती नारी सर्वं कालेन जायते ॥

अर्थ–कालमें वृक्ष फलतेहै, कालमें बीज उपजताहै । कालमें स्त्री रजोदर्शवती होतीहै एवं यावन्मात्र वस्तुहै सबकालकरके होतीहै ।

कालेऽशनं च तोयं च काले मेघःप्रवर्षति ।
काले कर्म समुद्दिष्टं विपरीतं न शोभनम् ॥

अर्थ–कालमें भोजन पान होताहै । मेघवर्षताहै । और जिस कालमें जो कर्म करना कहाहै उसमें करनेसे शुभ होताहै और विपरीत करनेसे शुभ नही है ॥

कालाग्निर्जठरे जातस्तस्य वांछा चतुर्विधा ।
आहारमुदकं निद्रा कामश्चैव चतुर्थकः ॥

अर्थ–जब कालाग्नि उदरमें होतीहै तब उसप्राणीकी इच्छा चार प्रकारकी होतीहै भोजन, जल, निद्रा, और चौथा कामदेव ॥

षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्षं व्योमपंचकम् ।
स्वदेहे यो न जानाति कथं वैद्यः स उच्यते ॥

अर्थ–जो वैद्य अपनीदेहमें स्थित छःचक्र, सोलह आधार, और तीनलक्ष व्योमपंचक को नहीं जाने उसको वैद्य किसप्रकार कहना चाहिये ।

तत्रादौ षट् चक्राण्याह

प्रथमं ब्रह्मचक्रं तु लिंगचक्रं द्वितीयकम् ।

तृतीयं नाभिचक्रं तु हृदि चक्रं चतुर्थकम् ॥
पंचमं कंठचक्रं तु भ्रुवोर्मध्ये तु षष्ठकम् ।
एतानि षट्चक्राणि यो जानाति स वैद्यराट् ॥

अर्थ-अब छः चक्रोंको कहतेहैं-ब्रह्मरंध्र अर्थात् कपाल प्रथमचक्रहै, दूसरा लिंगचक्र, तीसरा नाभिचक्र, चतुर्थ हृदयचक्र, पंचम कंठचक्र और भौंहोंके बीचमें छठा-चक्रहै, इन छःचक्रोंको जो जानताहै वो वैद्योंका राजाहै ।

मतान्तर

प्रथमं कपाटचक्रं ज्योतिश्चक्रं द्वितीयकं ।
तृतीयं नाभिचक्रं तु हृदि चक्रं चतुर्थकं ॥
पंचमं नासिकाचक्रं गुदचक्रं तु षष्ठकम् ।
एतानि षट्चक्राणि यो वेत्ति सतु वैद्यभाक् ॥

अर्थ-मतांतरसे कहतेहैं-प्रथम कपाट (वक्षस्थल) चक्रहै, दूसरा ज्योतिः (प्राण) चक्रहै, तृतीय नाभिचक्र,चौथा हृदयचक्र, पांचवा नासिका-चक्र, और गुदाचक्र छठाहै इन छः चक्रोंको जो जानता है वह वैद्य-शब्दका भागी है ॥

अथ षोडशाधाराण्याह

अहंकारो मनो बुद्धिश्चित्तं कारणमेव च ।
प्राणोऽपानःसमानश्च उदानो व्यान एव च ॥
पृथ्वी आपश्च तेजश्च वायुराकाशएव च ॥
ज्योतीरूपं च तत्रैव षोडशाधारउच्यते ॥

अर्थ-सोलह आधारयेहैं-जैसे १ अहंकार, २ मन, ३ बुद्धि, ४ चित्त, ५ कारण, ६ प्राण, ७ अपान, ८ समान, ९ उदान, १० व्यान, ११ पृथ्वी, १२ जल १३ तेज, १४ वायु, १५ आकाश, और १६ ज्योति रूपजीव ये इसदेहमें सोलह आधारहैं ॥

त्रिलक्षाण्याह

ऊर्ध्वलक्षं भवेत्तालौ मध्यलक्षं भवेद्धृदि ।
अधोलक्षं भवेन्नाभ्यां लक्षातीतं निरंजनम् ॥

अर्थ-तालुएमे ऊर्ध्वलक्ष (जाननेयोग्य) है । हृदयमें मध्यलक्षहै और

नाभिमें अधोलक्षहै परंतु जो लक्षमें न आवे ऐसा निरंजन (परमात्मा) है

एकस्तंभं नवद्वारं त्रिशून्यं पंचदेवता ।
पञ्चेन्द्रियकुटुंबेषु यत्रात्मा तत्र मे गृहम् ॥

अर्थ–एकस्तंत्र (अहंकाररूपखंभ) नवद्वार (नेत्रनासिकाआदि नौ दरवाजे) तीनशून्य, (रजसत्वतम) पंचदेव (पंचतत्त्वदेवरूप) और पंचइन्द्रिय सोई हुआ कुटुंब इनमें जहां आत्माहै वही मेरा घरहै, ये व्योमपंचक हुआ ॥

कुविंशतिसहस्राणि षट्शतान्यधिकानि च ।
निशाह्नि चलते प्राणः सोऽपि स्तंभोऽत्र कथ्यते ॥

अर्थ–२१६०० इक्कीस हजार छःसो श्वास इसप्राणीकी दिनरातमें चलती हैं इसकोभी स्तंभ कहतेहैं ॥

आत्माशरीरमित्युक्तमन्तरात्मा मनो विदुः ।
परमात्मा भवेत्प्राणः पञ्च तत्त्वानि धारयेत् ॥

अर्थ–शरीरको आत्मा, मनको अंतरात्मा और प्राणोंको परमात्मा कहते हैं, येही पंचतत्वोंको धारण करतेहैं ॥

कायानगरमध्ये तु प्रतोली शून्यवद् भवेत् ।
नरेन्द्रो गच्छते तेन तत्पुरं शून्यकं भवेत् ॥

अर्थ–देहरूप नगरमे नस नाडी और इन्द्रिय आदि जो गलीहैं ये शून्यहोजातीहैं अर्थात् इनके कार्य वंद होजातेहैं तव प्राणरूप राजा उस गलीमें होकर निकल जाताहै । तव यह देहरूप पुर शून्य होजाताहै ।

स्वरोदयमतात्

कायानगरमध्येतु मारुतो रक्षपालकः ।
प्रवेशो दशभिः प्रोक्तो द्वादशाङ्गुलनिर्गमः ॥

अर्थ–अव स्वरोदयके मतसे कालज्ञानको कहतेहैं कि इस देहरूप नगरमें श्वासरूप पवनही रखवाली वालाहै उसका १० अंगुल करके प्रवेश और वारह अंगुलनिर्गमकहाहै इस्से न्यूनाधिक अरिष्टहोनेका चिन्हहै.

उदयं सूर्यमार्गेण चन्द्रेणास्तमयं यदि ।
ददाति गुणसंघातं विपरीतं विनाशकृत् ॥

अर्थ–स्वरका उदय नासिकाके दहने मार्गसे हो और वाममार्गसे अस्तहो

तो अत्यन्त गुणदाताहै इस्से विपरीतहो अर्थात् वामस्वरसे उदय और दहने स्वरसे अस्तहोवे तो विनाश कर्त्ता है

संपूर्णं वहते सूर्यः सोमश्चैव न दृश्यते ।
पक्षेण जायते मृत्युः कालज्ञानेन भाषितम् ॥

अर्थ–यदि सदैव दहना स्वर चले वाम स्वर कभी चले नहीं उस प्राणीकी १५ दिनमें मृत्युहो यह कालज्ञानने कहा है ॥

मासश्चैव तु षण्मासः पक्षश्चैव त्रिमासकः ।
पंचरात्रिर्वहेच्चैक स्तस्य मृत्युर्न संशयः ॥

अर्थ–जिस प्राणीका एकही स्वर एक महीने या छः महीने या एक पक्ष तथा तीनमहीने. या पांचरात बराबर चले उसकी निस्संदेह मृत्युहो

शुक्लपक्षे वहेद्वामं कृष्णपक्षे च दक्षिणम् ।
उभयोस्त्रीणि चाहानि दृश्यते चंद्रसूर्ययोः ॥

अर्थ–शुक्लपक्षमें प्रथम वामस्वर चलताहै, और कृष्णपक्षमें दहनास्वर एवं शुक्लकृष्णपक्षोंमें चंद्र और सूर्य दोनो स्वर तीन २ दिन चलतेहैं ॥

पंचभूतात्मकं दीपं चन्द्रस्नेहेन पूरितम् ।
रक्षेच्च सूर्यवातेन तेन जीवस्थिरो भवेत् ॥

अर्थ–यह पंचभूतात्मक देह रूप दीपक चंद्रस्वररूप तैलसे भराहुआहै इसको सूर्यस्वररूप पवनसें रक्षा करनी चाहिये तो यह जीव स्थिर रहे॥

आत्मादीपः सूर्यज्योतिरायुस्नेहकलात्मकः ।
कायाकज्जलसंसारे वृत्तिरेखा तनोर्मता ॥

अर्थ–आत्मारूप दीपक सूर्यस्वररूपज्योति आयुरूपी तेल भराहै, इसमें काया रूपी कज्जलहै और इस संसारमें इसप्राणीकी वृत्तिहै वोही इस देहकी रेखा कही है

अरुंधतीं ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च ।
आयुर्हीना न पश्यंति चतुर्थं मातृमंडलम् ॥

अर्थ–अरुंधती, ध्रुव, और विष्णुकेत्रिपद (श्रवणनक्षत्रकेतीनतारे) एवं चतुर्थ मातृमंडल(कृत्तिकाके छःतारे)इनको हीनायु मनुष्य नहीं देखसकते ।

अरुधंती भवेज्जिह्वा ध्रुवो नासाग्रमेव च ।
विष्णुस्तु भ्रूद्वयोर्मध्ये भ्रूद्वयं मातृमंडलम् ॥

अर्थ-इस कालज्ञानमें अरुंधती जीभको कहते हैं। और नासाका अग्रभाग है वोही ध्रुवका तारा है। दोनो भौंहका बीचहै वोही विष्णुपदहै। और दोनोंभौंहको मातृमंडल कहते हैं। अर्थात् मरणासन्न मनुष्य इनको नहीं देखसकता ॥

अक्षैर्लक्षितलक्षणेन पयसा पूर्णेन्दुना भानुना।
पूर्वादक्षिणपश्चिमोत्तरदिशां षट्त्रिद्विमासैककम् ॥
छिद्रं पश्यति चेत्तदा दशदिनं धूम्राकृतिं पश्चिमे।
ज्वालां पश्यति सद्य एव मरणं कालोचितज्ञानिनाम् ॥

अर्थ-जो रोगी जलमें सूर्य अथवा चंद्र इनके प्रतिबिंबमें पूर्वकी ओर या दक्षिणकीयापाश्चिम अथवा उत्तरकी तरफ छिद्र देखे तो क्रमसे छः-तीन दो -और एक इतने महीने बचे और सूर्यचंद्रका धूम्रवर्णदेखे तो दशदिन और उसप्रातिबिंबके पश्चिमकी तरफज्वाला देखे तो तत्काल मरण हो यह कालज्ञान के जानने वालोंने कहा है. ॥

मरणमें अरिष्टको मुख्यत्व।

पुष्पं यथा पूर्वरूपं फलस्येह भविष्यतः।
तथा लिंगमरिष्टाख्यं पूर्वरूपं मरिष्यतः ॥
अप्येवतु भवेत्पुष्पं फलेनाननुबंधि यत्।
फलं चापिभवेत्किञ्चिद्यस्य पुष्पं नपूर्वजम् ॥

अर्थ-जैसे पुष्प होनेवाले फलका बोधक अर्थात् वृक्षमें फूलके आतेही अनुमानद्वारा निश्चय होताहै कि अब इसमें फलभी आवेगा उसी प्रकार अरिष्टलक्षण (निश्चयमरणसूचक चिन्ह) द्वाराभावी (होनहार) मृत्युका निश्चय होता है। अनेक पुष्पोंमें फलनही आताहै इसी प्रकार कोई २ पुष्पकेबिनाभी होते हैं (जैसे गूलर-पीपरमें।

नत्वरिष्टस्य जातस्य नाशोऽस्ति मरणादृते।
मरणं चापितन्नास्ति यन्नारिष्टपुरःसरम् ॥
मिथ्यादृष्टमरिष्टाभमनरिष्टमजानता।
अरिष्टं चाप्यसंबुद्धमेतत्प्रज्ञापराधजम् ॥

अर्थ-परंतु अरिष्ट चिन्हके होनेसे अवश्य मृत्युहोवे। वह मृत्युही नहीं जिसमें प्रथम अरिष्ट लक्षण उपस्थित नहो। अनेकजगेऐसा बोधहोताहै

कि अरिष्ट लक्षणहुएहैं और रोगीकी मृत्युनहीं हुई औरकहीं २ मृत्युहो गई परंतु मृत्युके पूर्व कोई अरिष्ट चिन्ह दृष्टनहीं आए। परंतु ऐसाबोध भ्रमात्मकहै इसमें कोईसंदेह नहींहै। जिसको वैद्य अरिष्टजानताहै वह प्रकृति अरिष्ट चिन्हनहींथा अज्ञानसे उसको ऐसाभ्रमहोगया ॥

तानिसौक्ष्म्यात्प्रमादाद्वातथैवाशुव्यतिक्रमात् ।
गृह्यन्तेनोद्धतान्यज्ञैर्मुमूर्षुर्नत्वसंभवात् ॥
असिद्धिमाप्नुयाल्लोके प्रतिकुर्वन्गतायुषः ।
अतोरिष्टानियत्नेन लक्षयेत्कुशलो भिषक् ॥

अर्थ—किसी२ मृत्युके पूर्व अरिष्टलक्षण संपूर्ण जानेनही जाते इसका यह कारणहै किये उक्तलक्षण समस्त जो हैं वो अत्यंत सूक्ष्म (बारीक) रूपसे उठतेहैं अथवा जल्दी२एकलक्षणके होनेपर दूसरालक्षण होनेलगताहै उसका अनुमान मरनेवाले रोगीको नहींहोता। अथवा जैसेये अरिष्टकाज्ञानहो ऐसाविशेष मनको नहींलगाता इसीसे यथार्थज्ञान नहीहोता। इससे यह निश्चयहुआ कि मृत्युके पूर्व ये अरिष्टलक्षण अवश्य उत्पन्नतो होतेहैं, परंतु उससमय यह निश्चय नहीं करता । इसमें निश्चय नहीं होनेका कारण अज्ञानता अथवा यथार्थ निश्चयात्मक मनका न लगाना मात्रहै ॥

गतायुमनुष्यकीचिकित्साकरनेसे अवश्य व्यर्थ परिश्रम होताहै [अर्थात् उसको यश और धन इनमेंसे किसीवस्तुकी प्राप्तिनही होती] अत एव वैद्यको समस्त अरिष्ट लक्षणोंका जानना अति आवश्यकहै ॥

अथातः पंचेन्द्रियार्थविप्रातिपत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः॥

अर्थ—अब पंचेन्द्रियार्थविप्रातिपत्ति अध्यायकी व्याख्याकरैंगे ॥

शरीरशीलयोर्यस्य प्रकृतिर्विकृतिर्भवेत् ।
तत्त्वरिष्टं समासेन व्यासतस्तु निबोधमे ॥

अर्थ—जिस प्राणीके शरीर मानसिक स्वभाव और प्रकृति ये तीनों पलटजावें वो मरणकेलक्षणहैं। यह मैंने संक्षेपसे कहा अब इनको हे वत्स ! तू विस्तारसे सुन ॥

कर्णेन्द्रियकीविकृति ।

शृणोति विविधान् शब्दान् यो दिव्यानामभावतः ।
समुद्रपुरमेघानामसंपत्तौ च निःस्वनम् ॥

तान् स्वनान्नावगृह्णाति मन्यते चान्यशब्दवत् ।
ग्राम्यारण्यस्वनांश्चापि विपरीतान् शृणोत्यपि ॥
द्विषच्छब्देषु रमते सुहृच्छब्देषु कुप्यति ।
न शृणोति च योऽकस्मात्तं ब्रुवंति गतायुषम् ।

अर्थ-जो मनुष्य विविधशब्द (बोलना, पाठ, गीत, बाजे, आदि) और दिव्य (सिद्ध, गंधर्व, किन्नर, आदिके) तथा समुद्र, पुरमेघ, आदिके न होनेपर इनका शब्द सुने, अथवा इन समुद्रादिके होनेपरभी इनका शब्द न सुने, अथवा इनके शब्दको औरही शब्दके समान सुने, तथा गाँवके शब्दोंको वनके शब्द समान सुने और बनके शब्दोंको गाँवके शब्द समान सुने, एवं शत्रुके वाक्यमें प्रीतिकरे, और माता, पिता, भाई, मित्रादिके शब्दको सुनकर कुपितहो, अथवा सुनते २ अकस्मात् न सुने उस प्राणीको गतायु (मरणासन्न) जानना। ये कर्णेन्द्रिके चिन्ह कहे ॥

त्वचाकी विकृति ।

यस्तूष्णमिव गृह्णाति शीतमुष्णं च शीतवत् ॥
संजातशीतपिडको यश्च दाहेन पीडचते ॥
उष्णगात्रोऽतिमात्रं च यः शीतेन प्रवेपते ।
प्रहारान्नाभिजानाति योऽङ्गच्छेदमथापि वा ॥
पांशुनेवावकीर्णानि यश्चगात्राणि मन्यते ।
वर्णान्यभावो राज्यो वा यस्य गात्रे भवंति हि ॥
स्नातानुलिप्तं यश्चापि भजंते नीलमक्षिकाः ।
सुगंधिर्वाति योऽकस्मात्तं वदंति गतायुषम् ॥

अर्थ-अब रोगीके स्पर्शकी विप्रातिपत्ति (विपरीतता) दिखातेहैं। कि जो मनुष्य शीतलवस्तुको गरमके समान ग्रहणकरे, और गरमवस्तुको शीतलके समान, एवं शीतपिडिका देहमें होनेपरभी दाहके मारे पीडित हो। जिसका देह गरमहो परंतु मारेशीतके थर्रथर्रकाँपे । और लकडी तलवार आदिकी चोट लगनेको तथा अंगकटजानेकोभी नजाने, एवं जो अंगोंको धूलसे आच्छादितमाने, तथा देहका वर्ण पलट जावे अथवा जिसके देहमें काली, लाल, रेखा होजावे। एवं तत्काल स्नानकराहो और

चंदनादि लेपभी कर रक्खाहो इस प्रकार सुगंधित देहवालेके देहमें नीलीमक्खी चारों तरफसे आनकर बैठें, तथा जिसकी देहमें अकस्मात् सुगंध आने लगे वो १ वर्षमें अवश्य मरे ॥

विपरीतेन गृह्णाति रसान् यश्चोपयोजितान् ।
उपयुक्ताः क्रमाद्यस्य रसा दोषाभिवृद्धये ॥
यस्य दोषाग्निसाम्यं च कुर्युर्मिथ्योपयोजिता ।
यो वा रसान्न संवेत्ति गतासुं तं प्रचक्षते ॥

अर्थ-जो मनुष्य खट्टेरसको मीठा और मीठेरसको खट्टा इसी प्रकार सर्व, रसोंको विपरीतजाने और क्रमपूर्वक सेवनकरेहुएभी मधुरादिरस दोषोंको बढावे और जो वैपरीत्यसे सेवनकरे हुए रस दोष और अग्निको समानता करे [अर्थात् हितकारी पदार्थ उपद्रव करे । और उपद्रवकारी पदार्थ जिसको हितहो] तथा जो अन्नके रसको न जाने उसको गतआयु जानना यह एकमहीनेमें मरे ॥

सुगंधं वेत्ति दुर्गंधं दुर्गंधस्य सुगंधिताम् ।
यो वा गंधान्न जानाति गतासुं तं विनिर्दिशेत् ॥

अर्थ-जो मनुष्य सुगंधको दुर्गंध और दुर्गंधको सुगंध समझे अथवा जो सुगंध और दुर्गंध किसीको न जाने उसे गतप्राण जानना ये भी एकमहीनेमें मरताहै ॥

द्वंद्वान्युष्णहिमादीनि कालावस्थादिशस्तथा । विपरीतेन गृह्णाति भावानन्यांश्च यो नरः ॥ दिवाज्योतींषि यश्चापि ज्वलितानीव पश्यति॥रात्रौ सूर्यं ज्वलंतं वा दिवावा चन्द्रवर्चसम् ॥ अमेघोपप्लवे यश्च शक्रचापतडिद्गणान्॥तडित्वतोऽसि नान्यो वा निर्मले गगने घनान् ॥ विमानयानप्रासादैर्यश्च संकुलनंबरं ॥ यश्चानिलंमूर्त्तिमंतमन्तरिक्षं च पश्यति ॥ धूमनीहारवासोभिरावृतामिव मेदिनीम् ॥ प्रदीप्तमिव लोकं च यो वा प्लुतमिवाम्भसा ॥ भूमिमष्टापदाकारां लेखाभिर्यश्चपश्यति ॥ न पश्यतिसनक्षत्रांयश्च देवीमरुंधतीम् ॥ ध्रुवमाकाशगंगां वा तंवदंतिगतायुषम् ॥

अर्थ-जो मनुष्य गरमी. सरदी काल की अवस्था (प्रवातनिर्वात)

और वर्षादि, और दिशा इनको तथा अन्यभाव कहिये द्रव्य गुण कर्मादिकोंको विपरीततासे ग्रहणकरेवो १ मासमें मरे ॥ अब रूपग्रहणको दिखाते हैं कि जो मनुष्य दिनमें ज्योतिवाले पदार्थ (सूर्यचंद्रआदिको) अग्निके समान जलते से देखे और रात्रिमें सूर्यको प्रज्वलित देखे अथवा दिनमें सूर्यको चंद्रमाके समान शीतल तेजवाला देखे ॥ एवं बिनाबादलके जो इन्द्रधनुष और बिजली चमकती देखे, तथा बिजलीवाले बादलोंको काले पीले देखे और निर्मलआकाशको बादलोंसे व्याप्त देखे, तो दो या तीन महीनेमें मरे, जो मनुष्य आकाशको विमान यान (रथ घोडा हाथीआदि) और महलोंसे व्याप्त देखे तथा चलती हुई पवनको मूर्त्तिमान (देवताके आकार अथवा अन्यपुरुषाकार) देखे तथा विना नेत्ररोगके जो मनुष्य पृथ्वीको धूंआ, कुहल और वस्त्रोंसे आच्छादित देखे तथा विना ग्रीष्मऋतुके जगतको फुकताहुआ देखे, तथा जलमें डूबाहुआ देखे, तथा पृथ्वीको रेखारचित चतुष्पथके आकार देखे । और जो मनुष्य नक्षत्र सहित अरुंधती ध्रुवकातारा और शिशुमारचक्रको न देखे वो मरणके समीप जानना ॥

ज्योत्स्ना दर्शोष्णतोयेषु छायां यश्च न पश्यति ॥
पश्यत्येकांगहीनां वा विकृतां वाऽन्यसत्वनाम् ॥
श्वकाककंकगृध्राणां प्रेतानां यक्षरक्षसम् ॥
पिशाचोरगनागानां भूतानां विकृतामपि ॥
योवा मयूरकंठाभं विधूमं वन्हिमीक्षते ॥
आतुरस्य भवेन्मृत्युःस्वस्थो व्याधिमवाप्नुयात् ॥

अर्थ-जो मनुष्य धूप चांदनी आदिप्रकाशमें दर्पण, पसीने और जलमें अपनी छायाको न देखेयदि देखेतो (हाथ, पैर, मस्तक आदि) एक अंगरहित देखे, अथवा विकृत तथा अन्यसत्व (और प्राणी गधा कुत्ते आदि) कीसी देखे, तथा कुत्ता, काक, कंक, गीध, प्रेत, यक्ष, राक्षस, पिशाच, सर्प, नाग, और मनुष्य इनकी छायाको विकृतदेखे ॥ तथा जो मनुष्य धुआं रहित अग्निका वर्ण मोरकंठके समान नील देखे तो आतुर (रोगी) की मृत्युहोवे और नैरोग्य पुरुष देखेतो रोगी होय-इति

अथातःछायाविप्रतिपत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः

अर्थ-अब छायाविप्रतिपत्ति अध्यायकी व्याख्या करेंगे इस जगे

छायाशब्दके पश्चात् हीश्री तुष्टयादिकीभी विपरीतता जाननी अर्थात् इनकीभी व्याख्या करेंगे

श्यावा लोहितका नीला पीतिका वापि मानवम्
अभिद्रवंति यं छायाः स परासुरसंशयम् ॥

अर्थ-अब छायाकी विपरीतता दिखातेहैं जैसेकि जिस पुरुषके साथ काली, लोहित, (लाल) नीली और पीली छाया दीखे वो गतप्राण जानना अर्थात् मरेगा ॥

ह्रीश्रियो नश्यतो यस्य तेज ओजः स्मृतिः प्रभा ।
अकस्माद्यं भजंते वा स परासुरसंशयम् ॥

अर्थ-अब प्रभाकी विपरीतता दिखातेहैं । जिस रोगीकी लज्जा,लक्ष्मी. ओज, स्मरणशक्ति, और कांति, ये अकस्मात् जातीरहें । अथवा जो लज्जा आदिसे रहितहो वह अकस्मात् लज्जा आदि युक्तहोजावे तो वह मनुष्य अवश्य मरे ॥

यस्याधरोष्ठः पतितः क्षिप्तश्चोर्ध्वं तथोत्तरः ।
उभौ वा जाम्बवाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥

अर्थ-जिसका नीचेका होठ नीचेको गिरपडे और ऊपरका होठ ऊपरको चिपट जावे, अथवा दोनो होठ जामुनके समान काले हो जाँय उस मनुष्यका जीना कठिन है ॥

आरक्ता दशना यस्य श्यावा वा स्युः पतंति च ।
खञ्जनप्रतिमावापि तं गतायुषमादिशेत् ॥

अर्थ-जिस मनुष्यके दांत लाल अथवा काले होजावें, अथवा गिर पडें या खंजन पक्षीके समान सपेद और काले होजावें उसे गतायु अर्थात् मरेगा ऐसा जाने ।

कृष्णा स्तब्धावलिप्ता वा जिह्वा शूना च यस्य वै ।
कर्कशा वा भवेद्यस्य सोऽचिराद्विजहात्यसून् ॥

अर्थ-जिसकी जीभ-काली, लठर, कफसें लिहसी, सूजी और कठोर होजावे वह थोडे समयमें मरेगा ऐसा वैद्य जाने । यह एकमहीनेमेंमरै है॥

कुटिला स्फुटिता वापि शुष्का वा यस्य नासिका ।
अवस्फूर्जति मग्ना वा न सजीवति मानवः ॥

अर्थ-जिसकी नाक टेढी, फटीसी, सूखीसी और शब्दयुक्तहो, अथवा भीतरको बैठ जावे वह मनुष्य नहीं जीवे । यह मनुष्य सातरात्रिमें मरैहै॥

संक्षिप्ते विषमे स्तब्धे रक्ते स्रस्ते च लोचने ॥
स्यातां वा प्रस्नुते यस्य स गतायुर्नरो ध्रुवम् ॥

अर्थ-जिसके नेत्र संकुचित, ऊंचेनीचे, निश्चेष्ट, लाल, और नीचेको गिरजावें, अथवा जलबहे वो मनुष्य निश्चय गतायु जानना ॥

केशा सीमंतिनो यस्य संक्षिप्ते विनते भ्रुवौ
लुनंति चाक्षि पक्ष्माणि सो चिराद्याति मृत्यवे ॥

अर्थ-जिसके बालोंकी वेनीसी गुथजावे, और दोनों भौंह संकुचित और नीचेको गिरजावें, और जो पलकोंके बालोंको वारं वारखोले, मूंदे वो थोडेकालमें यमराजके गृहको पधारे । यदि ये लक्षण नैरोग्यपुरुषके होतो वो छः महीनेमें मरे । और रोगी तीनदिनमें मरे ॥

नाहरत्यन्नमास्यस्थं न धारयति यः शिरः ।
एकाग्रदृष्टिर्मूढात्मा सद्यः प्राणान् जहाति सः ॥

अर्थ-अब देहकेअवयवक्रियाकी विपरीतताको कहते हैं, जैसेकि जो मनुष्य मुखमें धरे हुए अन्नको न निगले और जो मस्तकको धारण न करे अर्थात् गेरगेर देवे एकही स्थानमें दृष्टी लगाय दे, शीलताजाती रहे वह तत्कालप्राणोंको परित्यागकरे ॥

बलवान् दुर्बलो वापि संमोहं योऽधिगच्छति ।
उत्थाप्यमानो बहुशस्तंधीरः परिवर्जयेत् ॥

अर्थ-बलवान् हो या दुर्बलहो जिसको बहुतसा उठानेपरभी वारंवार मूर्च्छा आवे उसको धीर पुरुष त्यागदे ॥

उत्तानः सर्वदा शेते पादौ विकुरुते च यः ॥
विप्रसारणशीलो वा न स जीवति मानवः ॥

अर्थ-जो सदैव चित्त सोवे और पैरोंको कभी उठावे कभीधरे कभी मोडे इत्यादि विकृतिकरे. अथवा सुकडेही रक्खे वो रोगी नहीं जीवे ॥

शीतपादकरोच्छ्वासश्छिन्नश्वासश्चयो भवेत् ।
काकोच्छ्वासश्च यो मर्त्यस्तंधीरः परिवर्जयेत् ॥

अर्थ- जिसके हाथपैर और श्वास शीतलहो तथा श्वास टूट २ जावे, अथवा काककेसमान श्वासलेवे उसेधीरवैद्य त्याग देवे ये सद्यमरणके चिन्हहैं

निद्रा न छिद्यते यस्य यो वा जागर्त्ति सर्वदा ।
मुह्येद्वा वक्तुकामस्तु प्रत्याख्येयः स जानता ॥

अर्थ-जो सोयाही करे जागे नहीं, अथवा जो सदैव जागाकरे सोवे नहीं और जब बोलाचाहे तभी मूर्च्छित होजावे उसे वैद्य त्याग देवे ॥

उत्तरोष्ठञ्च यो लिह्यादुद्गारांश्च करोति यः ।
प्रेतैर्वा भाषते सार्द्धं प्रेतरूपं तमादिशेत् ॥

अर्थ-जो ऊपरके होठको चाटाकरे, और जो वारंवार डकारलेवे, तथा मृतपुरुषोंके साथ जो भाषण करे, उसको प्रेतरूपही जानना ।

स्वेभ्यः सरोमकूपेभ्यो यस्य रक्तं प्रवर्त्तते ।
पुरुषस्य विषार्त्तस्य सद्यो जह्यात्स जीवितम् ॥

अर्थ-अब शरीर देश विशेषाश्रित व्याधि विशेष अरिष्ट कृतोंको दिखातेहैं-जैसे जिसके रोमांचोंमेसे रुधिर वहवे लगे वो विषार्त्त पुरुष तत्काल जीवनको परित्याग करे ॥

वातष्ठीला तु हृदये यस्योर्ध्वमनुयायिनी ।
रुजान्नविद्वेषकरी स परासुरसंशयम् ॥

अर्थ-जिसके वातष्ठीला हृदयमें प्रगटहो ऊपरको चढे, और उसमें पीडाहो तथा अन्नमें प्रीत न होवे, वह रोगी मरेगा ऐसा जाने ॥

अनन्योपद्रवकृतः शोफः पादसमुत्थितः ।
पुरुषं हन्ति नारीं तु मुखजो गुह्यजो द्वयम् ॥

अर्थ-पैरोंमें सूजनहो और उसमें सोफकेही उपद्रव श्वास प्यास आदि होवे । वो पुरुषको नाशकरे । और मुखसे उठी सूजन उक्त उपद्रवों करके युक्तहो वह स्त्रीको नाश करे, और गुदाकी सूजन स्त्रीपुरुष दोनोंको नष्ट करती है ॥

अतिसारो ज्वरो हिक्का छर्दिः शूनांडमेढ्रता ।
श्वासिनो कासिनो वापि यस्य तं परिवर्जयेत् ॥

अर्थ-खांसी श्वासवाले रोगीके अतिसार, ज्वर, हिचकी, और वमन ये उपद्रव होतेहों तथा अंडकोष और लिंग भग परसूजनहो उसे वैद्य त्याग देवे ॥

स्वेदो दाहश्च बलवान् हिक्का श्वासश्च मानवम् ।
बलवंतमपि प्राणैर्वियुज्यंति न संशयः ॥

अर्थ-जिसके पसीना और दाह अत्यंतहो ऐसे बलवान् पुरुषको हिचकी और श्वासरोग प्राणरहित करतेहैं इसमें संदेह नही है ॥

श्यावा जिव्हा भवेद्यस्य सव्यं चाक्षि निमज्जति ।
मुखं च जायते पूति यस्य तं परिवर्जयेत् ॥

अर्थ–जिसकी जीभ कालीहो और दहना नेत्र बैठ जावे, तथा मुख-मेंसे दुर्गंध आवे उसको वैद्य त्याग देवे ॥

वक्त्रमापूर्यतेश्रूणां स्विद्यतश्चरणावुभौ।
चक्षुश्चाकुलतां याति यमराष्ट्रं गमिष्यतः ॥

अर्थ–जिसका मुख आंसुओंसे भरजावे, और दोनो पैर पसीजैं तथा नेत्र जिसके व्याकुल होजाय वह यमराजके देशको जायगा ऐसा जाने। यह रोगी प्रहर अथवा दोघडीमें मरै है. ॥

अतिमात्रं लघूनि स्युर्गात्राणि गुरुकाणि च ।
यस्याकस्मात्स विज्ञेयो गंता वैवस्वतालयम् ॥

अर्थ–जिस रोगीका भारी देह अकस्मात् अत्यंत हलका होजावे वह रोगी यमराजके घर जानेवालाहै ॥

पङ्कमत्स्यवसातैलघृतगंधांश्च ये नराः ।
मृष्टगंधांश्च ये वांति गंतारस्ते यमालयं ॥

अर्थ–जिन रोगियोंकी देहमेंसे कीच, मछली, वसा, तेल, और घृतकी सीबास आवे, तथा जो दिव्य सुगंधवान् वमनकरे वो यमालयको जाँयेग। यह एक ब र्षमें मरताहै ॥

यूकाललाटमायांति बलिं नाश्नन्ति वायसाः ।
येषां वापि रतिर्नास्ति यातारस्ते यमालयम् ॥
ज्वरातीसारशोकाः स्युर्यस्यान्योऽन्यावसादिनः ।
प्रक्षीणबलमांसस्य नासौ शक्यश्चिकित्सितुम् ॥

अर्थ–जिनके मस्तकपर जूंआ आवे और कौआ काक बलिको न खांय तथा जिनको कहीं सुखनहो वो यमालयजाने वाले हैं। ऐसा जानना यह अरिष्ट एक वर्षकाहै जिसके परस्पर उपद्रव करता ज्वर अतिसार और सूजनहो।तथा बल मांस ये क्षीण होजांय वह रोगी चिकित्साके योग्यनहीहै

क्षीणस्य यस्य क्षुत्तृष्णे हृद्यैर्मिष्टैर्हितैस्तथा ।
न शाम्यतोऽन्नपाने श्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥

अर्थ-जिस क्षीणपुरुषकी भूख प्यास हृद्य मिष्ट और हितकारी अन्न जलसे भी शांत न हो उसकी मृत्यु खडीहुई है ऐसा जाने ॥

प्रवाहिका शिरःशूलं कोष्ठशूलं च दारुणम् ।
पिपासा बलहानिश्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥

अर्थ-जिस रोगीकेप्रवाहिका, मस्तकशूल, घोर उदरशूल, प्यास, और बलहानिहो उसकी मौत खडी है ऐसा जानो ॥

विषमेणोपचारेण कर्मभिश्च पुराकृतैः ।
अनित्यत्वाच्च जंतूनां जीवितं निधनं व्रजेत् ॥

अर्थ-अब यह कहते हैं कि इस मनुष्यके अरिष्ट किस तरह उत्पन्न होतेहैं जिनसे यह निश्चय मरताहै । तहां विषम चिकित्सा करनेसे और पूर्वजन्मके कर्मोंकरके, तथा प्राणीमात्रोंको अनित्य होनेसे, जीवोंका जीवन विनाशको प्राप्तहोताहै ॥

प्रेतभूतपिशाचाश्च रक्षांसि विविधानि च॥मरणाभिमुखं नित्यमुपसर्पंति मानवम् ॥ तानि भेषजवीर्याणि प्रतिघ्नंति जिघांसया ॥ तस्मान्मोघाः क्रियाः सर्वा भवंत्येव गतायुषः ॥

अर्थ-मरणके समय सब क्रिया निष्फल क्यों होजाती हैं इसवास्ते कहते हैं कि इसमनुष्यके मरण समय प्रेत, भूत, पिशाच अनेक प्रकारके ब्रह्मराक्षसआदि नित्य इसके मारनेको समीप आते हैं, इसीसे गतायु मनुष्यकी सर्वक्रिया निष्फल होजाती है ॥

इति ।

अथातः स्वभावविप्रतिपत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ-अब स्वभाव (प्रकृति) विप्रतिपत्ति अध्यायकी व्याख्याकरेंगे । यहां स्वभाव शब्दके अनंतर आदिशब्द लुप्तहै अर्थात् स्वभावादि विप्रत्तिपत्ती अध्यायकी व्याख्या करेंगे ॥

स्वभावादप्रसिद्धानां शरीरैकदेशानामन्यभावित्वं मरणाय तद्यथा शुक्लानां कृष्णता कृष्णानां शुक्लता रक्तानामन्यवर्णत्वंस्थिराणामस्थिरत्वं मृदूनांस्थिरता चलानामचलत्वमचलानां चलता पशूनां संक्षिप्तत्वं संक्षिप्तानां पृथुता दीर्घाणां ह्रस्वत्वं ह्रस्वानां दीर्घताऽपतनधर्मिणां पतनधर्मित्वं

पतनधर्मिणामपतनधर्मित्वमकस्माच्चशैत्यौष्ण्यस्नैग्ध्यरौक्ष्यप्रस्तम्भवैवर्ण्यावसदनाश्चाङ्गानाम् ॥

अर्थ-जो देहमें स्वभाव सिद्धपदार्थ हैं उनका शरीरके एकदेशमें विपरीतहोजाना मरणके अर्थ है। जैसे अकस्मात् सपेदपदार्थोंका काला होजाना, और कालोंका सपेद होजाना, लालपदार्थ (होठ, तालुआदि) का सपेद काला पीला होजाना, स्थिरपदार्थोंका अस्थिर होना और (केश श्मश्रु आदि कठोर पदार्थोंका) नम्र होजाना और नम्रपदार्थ (मांस, रुधिरादिकोंका) कठोर होजाना इसी प्रकार चलपदार्थोंका स्थिरहोजाना और अचलपदार्थोंका चलायमान होना मोटेन्को सुकडजाना सुकडेहुओंका मोटा होना, दीर्घोंका ह्रस्वहोना, और ह्रस्वोंका दीर्घहोना विनागिरने वालोंका गिरजाना, और गिरनेवालोंका स्थिरहोना, तथा, शीतलता, गरमी, चिकनाई, रुखाई, स्तब्धता विवर्णता, और विकलता ये अंगोंके विपरीत होना मरणके अर्थ जानने ॥

स्वेभ्यः स्थानेभ्यः शरीरैकदेशानामवस्रस्तोत्क्षिप्तभ्रांतावाक्षिप्तपतितविमुक्तनिर्गतांतर्गतगुरुलघुत्वानि ॥

अर्थ-शरीरके एकदेशोंका अपनेस्थानसे सिथिलहोना, उनको ऊपरको जाना नेत्रादिकोंका भ्रमणहोना, तिरछागिरना, शिरग्रीवादिकोंका गिरना, संधी, आदिकाछुटना, जिव्हाआदिका निकलना, जिव्हा नेत्रादिकोंका भीतरप्रवेशहोना, बाहुशिरआदि भारीहलकोंका विपरीतहोना, ये लक्षण अरिष्टकरतेहैं ॥

प्रवालवर्णव्यंगप्रादुर्भावोऽप्यकस्मात् । सिराणां च दर्शनं ललाटे नासावंशे वा पिडकोत्पत्तिः । गोमयचूर्णप्रकाशस्य वारजसो दर्शनमुत्तमांगे निलयनं वा कपोतकंकप्रभृतीनां मूत्रपुरीषवृद्धिरभुंजानानां तत्प्रणाशो भुंजानानां । स्तनमूलहृदयोरःसु च शूलोत्पत्तयः मध्ये शूनत्वमन्तेषु परिम्लायित्वंविपर्ययो वा तथार्द्धांगे श्वयथुः ॥

अर्थ-अकस्मात् लालवर्णका व्यङ्गरोग प्रगटहो, लालवर्णकी नस दीखने लगे मस्तकमें और नासिकाकी हड्डीमें पिडकाकी उत्पत्तिहो, मस्तकमें गोबरकी धूलसमान रजदीखे, तथा कबूतर कंकआदि पक्षियोंका

मस्तकपरबैठना, बिनाभोजनके मल मूत्रकी वृद्धिहोना, अर्थात् अधिक उतरना, और भोजन करेहुओंका मलमूत्रका नाशहोना,स्तनमूल, हृदय, छाती, इनमें शूलकी उत्पत्तिहो । और जिसका देहका मध्यभाग सूज- जाय और अंतकेभाग मुरझाए हुएसे होजावें अथवा अंतकेभाग (हाथ- पैरआदि) सूजजांय, और बीचकाभाग मुरझायासाहो अथवा अर्द्धाङ्गमें सूजनहो उसको अरिष्ट है ऐसाजानना यह एकमहीनेका है ॥

शोषोंगपक्षयोर्वा नष्टहीनविकलविकृतिस्वरता । विवर्णपुष्पप्रादुर्भावो वा दन्तनखशरीरेषु । यस्य वाप्सु कफपुरीषरेतांसिनिमज्जंति । यस्य वा दृष्टिमंडले भिन्नविकृतानि रूपाण्यालोक्यंते ! स्नेहाभ्यक्तकेशांगइव यो भाति यश्च दुर्बलो भक्तद्वेषातिसाराभ्यां पीडचते । कासमानश्च तृष्णा भिभूतः । क्षीणच्छर्दिभक्तद्वेषयुक्तः सफेनपूयरुधिरोद्वामी हतस्वरः शूलाभिपन्नश्च मनुष्यः ॥

अर्थ–अंगोंका सूखना अथवा आधे देहका शोषहोना, एवं स्वर अत्यंत क्षीण हो जाय वा विकलस्वरहो जाय । (गदगदादि स्वर हो जाय) वा विकृत अर्थात् स्वभावसे विपरीतहोजावे तथा दांत नख और शरीरमें विवर्णपुष्प अर्थात् दुष्टरंगकी बिंदु प्रगट होजावें जिसके जलमें कफ, मल और वीर्य डूबजावे । और नेत्रोंके सामने भयानक अनेकप्रकार (तीनशिर,शिर रहित) रूपदीखे । तेल लगाएहुए बाल रूखेसे दीखें,और जो दुर्बल पुरुष अन्नसेद्वेष और अतिसारकरके पीडितहो । जब खाँसै तब तृषासे पीडितहो । क्षीणरोगी वमन, अन्नद्वेषयुक्तहो । तथा झागयुक्त राध रुधिरकी वमन करै । स्वर बैठ जावे, और शूलसे पीडित हो, उसको अरिष्ट जानना ॥

शूनकरचरणवदनःक्षीणोऽन्नद्वेषी स्रस्तपिंडिकांसपाणिपादो ज्वरकासाभिभूतः यस्तु पूर्वाण्हे भुक्तमपराण्हे छर्दयत्यविदग्धमतिसार्यते वा ज्वरकासाभिभूतः स श्वासान्म्रियते । वस्तवन् विलपन् यश्च भूमौ पतति स्रस्तमुष्कस्तब्धमेढ्रो भग्नग्रीवःप्रनष्टमहेनश्च मनुष्यः ॥

अर्थ–जिसके हाथ. पैर मुख सूजेहुए हों, अन्य अंग क्षीण होगये हों,

अन्नमें अरुचि, सिथिल हैं घोटू, कंधे, हाथ और पैर जिसके, ज्वर खांसी-करके युक्त एवं जो प्रातःकालमें भोजनकरेहुएको अपराह्णमें वमनकरदेवे, और जिसके बिनपचा अन्न दस्तके मार्गहोके निकले, और ज्वर खाँसीसे व्याप्तहो, वो श्वासरोगसे मरे । एवं बकरेका शब्द समान विलापकरता हुआ पृथ्वीमें गिर पडे । अंडकोशस्थान छूटजावे, लिंगस्तंभितहो जाय, नारगिरपडे, तथा लिंगभीतरको चलाजाय । उसको अरिष्टजानना ॥

प्राग्विशुष्यमाणहृदय आर्द्रशरीरोयश्चलोष्टंलोष्टेनाभिहन्ति काष्ठंकाष्ठेन तृणानि वाछिनत्तिअधरोष्ठंदशत्युत्तरोष्ठंवाले ढि॥आलुंचतिवाकर्णौकेशांश्च देवद्विजगुरुसुहृद्वैद्यांश्चद्वेष्टि॥

अर्थ-जिस पुरुषका सब देह गीला रहते प्रथम हृदय ही सूखजावे उसको पक्षभरका अरिष्ट है और मिट्टीके ढेलेसे ढेलेको तोडे लकडीसे लकडीको और तिनकोंको तोडे. नीचेके होठको दांतोसे डसे और ऊपर-के होठको चाटे. और कान माथेके बालोंको तोडे । एवं देव, ब्राह्मण, गुरु, सुहृद और वैद्य इनसे द्रोहकरे तो उसको १ वर्षका अरिष्ट जानना ॥

यस्यवक्रानुवक्रगाग्रहागर्हितस्थानगताःपीडयंतिजन्मर्क्षंवा-यस्योल्काशनिभ्यामभिहन्यतेहोरावागृहदारशयनासनया नवाहनमणिरत्नोपकरणगर्हितलक्षणनिमित्तप्रादुर्भावोवेति॥

अर्थ-जिसके वक्रीग्रह जोग्रह उपस्थितराशिको छोडकरपूर्व भुक्तराशि पर आजावे और मार्गीग्रह ये दुष्टस्थानपर आनकर जन्म नक्षत्रको पीडित करे तथा जिसका जन्म नक्षत्र और होरा उल्का (जिसे तारा टूटा कहते हैं) और बिजली करके हतहो एवं घर, स्त्री, शय्या, आसन, सवारी, वाहन, मणि, रत्न, और सामग्री आदिमें दुष्ट लक्षण इनके निमित्त करके अरिष्टकी उत्पत्ति होती है ॥

चिकित्स्यमानःसम्यक्चविकारोयोऽभिवर्द्धते
प्रक्षीणबलमांसस्यलक्षणंतद्गतायुषः ॥
निवर्त्ततेमहाव्याधिःसहसायस्यदेहिनः
नचाहारफलंयस्यदृश्यतेसविनश्यति ॥

अर्थ-जिस रोगीका उत्तम रीतिसे चिकित्सा करते २ परभी रोगबढे और बलमांस जिसके क्षीण हो जावें वो गतायु जानना । जिस रोगीका

घोररोग अकस्मात् जातारहे और जो भोजनकरे उसका कुछ देहमें (पुष्टाई क्षुधा शांति आदि) फल न दीखे वो रोगी अवश्य मरे ॥

ज्ञानसंबोधनार्थंतुलिंगैर्मरणपूर्वकैः ॥
पुष्पितानुपदेक्ष्यामोनरान्बहुविधान्बहून् ॥
नानापुष्पोपमोगंधोयस्यवातिदिवानिशम् ॥
पुष्पितस्यवनस्यैवनानाद्रुमलतावतः ॥
तमाहुःपुष्पितंधीरानरंमरणलक्षणैः ॥
स वै संवत्सराद्देहंजहातीतिविनिश्चयः ॥

अर्थ-मरणपूर्वक लक्षणों करके कालज्ञानके जाननेके लिये अनेक प्रकारके बहुतसे पुष्पित मनुष्योंको कहताहूं । अनेक वृक्ष लतावान् फूले हुए वनकीसी जिसके देहमें दिनरात्रि फूलोंकीसी गंध आवे उसको धीर वैद्य पुष्पित कहते हैं. वो १ वर्षके भीतर निश्चय मरणको प्राप्तहो ॥

एवमेकैकशःपुष्पैर्यस्यगंधःसमोभवेत् ॥ इष्टैर्वायदिवानिष्टैः सचपुष्पितउच्यते ॥ तद्यथाचन्दनंकुष्ठंतगरागुरुणीमधु॥माल्यमूत्रपुरीषेवामृतानिकुणपानिवा ॥ येचान्येविविधात्मानो गंधाविविधयोनयः॥तेऽप्यनेनानुमानेनविज्ञेयाविकृतिंगते ॥

अर्थ-उसी प्रकार एक एक फूलकी पृथक२सुगंध या दुर्गंध आवे तो उसको पुष्पित कहतेहैं जैसे-चंदन, कूठ, तगर, अगर, सहत, माला, मूत्र, मल मुरदेके समान दुर्गंध, तथा और अनेक प्रकारकी आपको दुर्गंध आवे वो भी इसी अनुमानसे अरिष्ट गत मनुष्यके देहमें जाननी चाहिये ॥

इदंचाप्यतिदेशार्थलक्षणंगंधसंश्रयम् ॥
वक्ष्यामोयदभिज्ञायभिषक् मरणमादिशेत् ॥

अर्थ-इस प्रकार वैद्योंके जाननेके लिये गंधसंश्रयलक्षणोंको कहूंगा जिन लक्षणोंको वैद्य जानकर रोगी का मरण कहे (अर्थात् ये रोगी इतने दिनमे मरेगा)

वियोनिविज्वरोयस्यगन्धोगात्रेषुदृश्यते ॥इष्टोवायदिवानिष्टो नसजीवतितांसमाम् ॥ एतावद्गंधविज्ञानंरसज्ञानमतःपरम्॥

अर्थ-जिस मनुष्यके देहमें पशु पक्षी आदि कीसी और अनेक प्रकारके रोगोंकीसी गंध आवे चाहिये वो अच्छीहो वो मनुष्य वर्षभर नहीं जीवे यह हमने गंध विज्ञान कहा अब रसज्ञानको कहते हैं ॥

आतुरेषुशरीरेषुवक्ष्यामोविधिपूर्वकम् ॥योरसःप्रकृतिस्थानां नराणांदेहसंभवः ॥ सएषांचरमेकालेविकारंजतेद्वयम् । कश्चिदेवास्यवैरस्यमत्यर्थमुपपद्यते ॥ स्वादुत्वमपरंचापि विपुलंभजतेरसः ॥ तमनेनानुमानेनविद्याद्विकृतिमागतम्॥

अर्थ–अब रोगीके शरीरमें रसज्ञानको विधि पूर्वक कहेंगे नैरोग्य पुरुषोंके देहका रस जो स्वस्थावस्थामें होताहै वही मरणके समय दो प्रकारके भावको होजाताहै किसीके तो मुखमें विरसता हो जाती है और किसीके मुखमें अत्यंत स्वादुता आयजातीहै उसको वैद्य अनुमान द्वारा जानें कि विकृति आनपहुची है ॥

मनुष्योहिमनुष्यस्यकथंरसमवाप्नुयात् ॥ मक्षिकाश्चैवयक्षा श्चदंशाश्चमशकैःसह ॥ विरसादपसर्पंतिजन्तोःकायान्मुमुर्ष तः॥अत्यर्थरसकंकायङ्कालपक्कस्यमक्षिकाः ॥ अपिस्नाता नुलिप्तस्यभृशमायांतिसर्वशः ॥ यान्येतानिमयोक्तानिलिंगा निरसगंधयोः ॥ पुष्पितस्यनरस्यैतैःफलंमरणमादिशेत् ॥

अर्थ–कदाचित् कोई प्रश्नकरे कि मनुष्य मनुष्यके देहका रस कैसे जान सक्ता है इस लिये धन्वन्तरि कहते हैं कि जिस समय यह मनुष्य मरणोन्मुख होता है तब इस मनुष्यकी देह विरस हो जाती है अतएव उस गंधके प्रभावसे मख्खी, यक्ष, मच्छर, डास इत्यादि इसके ऊपर नहीं बैठते हैं और जब कालकरके अत्यंत देह पक्कहोजाताहै तब इसप्राणीके स्नान करनेके पश्चात् और चंदन आदि लगाने परभी मक्खी पीच्छा नहीं छोडतीं तब वैद्य जानलेवे कि इस मनुष्यके देहका रस पलटगया है यह हमने पुष्पित मनुष्यके रस, और गंधके लक्षण कहे इस्से वैद्य रोगीका मरणकहे॥

दंतपंक्त्यन्तरे न्यस्तं न विशेदंगुलित्रयम् ।
स याति सप्तरात्रेण निश्चितं यमसादनम् ॥

जिसके दांतोंके भीतर देनेसे तीन उंगली न जावें,वो निश्चय सातादिनमेंमरे

छायां विधोर्न ध्रुवमृक्षमालामालोकयेद्यो न च मातृचक्रम् ।
खंडंपदं यस्य च कर्दमादौ कफश्च्युतो मज्जति चाम्बुचुंबी॥

अर्थ–जो मनुष्य चंद्रमाके कलंकको, ध्रुवको, नक्षत्रोंको और मातृमंडलको न देखे और कीचआदिमें पैर रखनेसे आधा पैरकाही चिन्ह दीखे

और जलमें कफ गेरनेसे जलको लेकर नीचे बैठजावे, उसे अरिष्ट जानना चाहिये ॥

उरः पुरःशुष्यति यस्य चार्द्रं न मांति तिस्रोंगुलयश्च वक्त्रे।
स्नातस्य मूर्द्धन्यपि धूमवल्ली निलीयते रिक्तमुखः खगो वा

अर्थ–जिसकादेह चंदन अथवा जलआदिसे गीलाहोकर प्रथम छाती-सूखे,और जिसके मुखमें तीन उंगली न अमावे और जलमें स्नानकरेहुए मस्तकमें धूम (धूआं) की शिखाउठे एवं जिसके मस्तकपर फलधान्यादिसे रीती चोंचवाले पक्षीबैठें, उसको अरिष्टहै ऐसा जानना ॥

नाकीर्णकर्णः शृणुयाच्च घोषं नो वा सुभुक्तोऽपि धृतिं नधत्ते।
निःश्रीरकस्मात्सुतरां च सुश्रीःकृशःस्थवीयानपि योप्यकस्मात्

अर्थ–जो मनुष्य उंगलियोंसे कानोंको वंदकर कानोंके भीतरका स्वाभाविक शब्दको न सुने, और जो बहुत भोजन करनेपर भी तृप्त न होवे, तथा अशोभित अकस्मात् शोभावान् होजाय, और शोभावान् अशोभित हो जाय, एवं जो कृशहै वो मोटाहोजावे और मोटा मनुष्य अकस्मात् पतलाहोजावे तो उसको अरिष्टजानना ॥

अतीवतुच्छं बहुचाल्पहेतोरतीतसात्म्यः सदसत्प्रवृत्तौ।
अप्यंगुलिक्रांतविलोचनांतो न मेचकं चान्द्रकमीक्षते यः॥

अर्थ–जो ज्वरादि रोगके विना अत्यंतथोडा भोजन करनेलगे, और भस्मकादिरोगके विना बहुत भोजन करनेलगे, और जो उत्तमविषय तथा दुष्टविषयोंमें अपने सात्म्यको छोड देवे, अर्थात् जो उत्तमकर्मकर्ता वो दुष्ट कर्म करने लगे और दुष्टकर्म वाला अच्छेकर्म करने लगे, एवं उंगलियोंसे नेत्रोंको ढकने पर मोरचंद्रकके समान तिलमिले अनुभवसिद्धको न देखे उसको अरिष्ट जानना ॥

मध्येललाटं मणिबंधधारी न चालिपकां पश्यति यःकलावीम्
अहेतुकं यः शवगन्धिगात्रः सर्वत्र सीमंतितमूर्धजो वा ॥

जो ललाटपर पहुँचेको धरकर थोडाभी पहुँचेको (कलाईको) न देखे, और विनाकारण जिसमें मुरदेकीबास आनेलगे, और जिसके समस्त मस्तकमें बालोंकी वेनीसी गुथजावे उसको अरिष्ट जानना ॥

अपिक्षरद्रोमनखः शरीरात्सद्यः स्रवद्वामविलोचनो वा।
निरीक्षते सत्त्वममानुषं वा विस्रस्तनासानयनश्रुतिर्वा ॥

अर्थ–जिसके शरीरसे रोम और नख स्वयं उखडकर गिरनें लगें,

और जिसका वामनेत्रसे आंसु वहनेलगे और जो भूतपिशाचादि प्राणियोंको देखे, एवं जिसके नाक, नेत्र और कान ये सिथिलहोजावें, उसको अरिष्ट जानना चाहिये ॥

फलाग्निजलवृष्टीनां पुष्पधूमाम्बुदा यथा ॥
ख्यापयंति भविष्यत्वं तथा रिष्टानि पंचताम् ॥

अर्थ–जैसे–पुष्प, धुंआ, और बादल, ये फल, अग्नि, और जलके भविष्यको प्रगटकरतेहैं, उसीप्रकार अरिष्ट मरणको सूचना करताहै। अर्थात् फूलफलको और धुंआहोनेसे अग्नि, एवं बादल होनेसे पानीवर्षने का भविष्यसूचनाहोताहै। उसी प्रकार अरिष्टद्वारा मरणका बोध होता है.। अरिष्ट दोप्रकारकाहै एक नियत (निश्चित) और दूसरा अनियत (अनिश्चित) है ॥

तानि सौक्ष्म्यात्प्रमादाद्वा तथैवाशुव्यतिक्रमात् ।
गृह्यन्ते नोद्धतान्यज्ञैर्मुमूर्षोर्नत्वसम्भवात् ॥

अर्थ–उन प्रगटहुए अरिष्टोंको मरणेच्छू मूढमनुष्य अत्यंत सूक्ष्महोनेसे और शीघ्रनष्टहोजानेसे नहीं जानसक्ता अर्थात् वो परमाणुके समान अत्यंत सूक्ष्म होतेहैं। और रोगी मतवालासा होताहै इसकारण तथा जिस समय अरिष्टहुआ उसी समय रोगी मरगया इन सबकारणोंसे मूर्ख नहीं जानते किंतु यह नहींहै कि वो अरिष्ट उनके न होतेहों इसकारणको नही जाने ॥

नक्षत्रपीडा बहुधा यथा कालाद्विपच्यते ।
तथैवारिष्टपाकं च ब्रुवते बहुधा जनाः ॥

अर्थ–अब यह कहतेहैं कि। ये अरिष्ट पीडा पच्चीसवर्षादिमें क्यो होती है। इसवास्तेहै कि जैसे नक्षत्रजनित पीडा प्रायः कालांतरमें पचती है उसीप्रकार अरिष्टफलको बहुतसे मनुष्य कहते हैं ॥

असिद्धिमाप्नुयाल्लोके प्रतिकुर्वन् गतायुषः ।
अतोरिष्टानि यत्नेन लक्षयेत्कुशलो भिषक् ॥

अर्थ–जो वैद्य गतायु अर्थात् मरणोन्मुखकी चिकित्सा करताहै वो इसलोकमें सिद्धि (चिकित्साफलधनयशादि) को नहींप्राप्तहोता, अतएव कुशलवैद्य यत्नपूर्वक अरिष्टोंको देखे ॥

अथसंगृहीतश्लोकः व्यस्ताङ्गादिस्वभावा भुवि च पददलं भाविकारोऽनुपूर्वे स्वस्थोऽब्जांकं न पश्येत्तनुमितरदृशि स्वाक्षि वा पीडचतेजः । ध्रौवादीन्वाथ पश्येद्भ्रमहनि च तडिच्चापपूर्वं निरभ्रे सूर्येन्द्वोश्छिद्रपूर्वं मृतिकृदिह च मृत्युञ्जयाज्जाप्यहोमौ ॥ १ ॥

ध्रुवं तु मरणं रिष्टे ब्राह्मणैस्तत्किलामलैः ।
रसायनतपोजप्यतत्परैर्वा निवार्यते ॥

अर्थ-अब दोषज अरिष्टों करके मरण निश्चयको दिखातेहैं कि अरिष्ट होनेसे इसप्राणीका अवश्य मरण होताहै । वो अरिष्ट जन्ममरण रागादि दोषरहितब्राह्मणोंकीसेवा, रसायन औषधोंका सेवन,तपश्चरण और गायत्र्यादिमंत्रोंके जपकरनेसे निवारण होते हैं।यहकेवल अनियत अरिष्टमें भिषक् उपायहै और नियतहै वो दानपुण्यआदि किसी उपायसे दूरनहीं होते॥

अथ छाया पुरुषलक्षणम् ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामिछायापुरुषलक्षणम् ।
येनविज्ञानमात्रेणत्रिकालज्ञोभवेन्नरः ॥

अर्थ-अब हम छायापुरुषके लक्षण कहते हैं जिसके जाननेसे यह प्राणी त्रिकालज्ञ (भूत-भविष्यत्-वर्त्तमानका जाननेवाला) होता है ॥

कालोदूरस्थितश्चापियेनोपायेनलक्ष्यते ।
तंवक्ष्यामिसमासेनतथोक्तंशंभुनापुरा ॥

अर्थ-दूरस्थितभी काल जिसउपायकरके दृष्टिगोचरहो उसको मैं संक्षेप करके कहूं जैसे पहिले शिवजीने कहा है ॥

एकांते विजने गत्वा कृत्वादित्यं च पृष्ठतः ।
निरीक्षेतनिजांछायांकंठदेशेसमाहितः ॥

अर्थ-कालज्ञानका परीक्षक मनुष्य निर्जन एकांतवनमें जाय समानभूमिमें सूर्यको पिछाडीकरके सीधा खडाहो फिर अपनी छायाके कंठदेशमें देखताहुआ सावधानीसे परीक्षा करे ॥

ततश्चाकाशमीक्षेततत:पश्यतिशंकरम् ।
ॐह्रीं परब्रह्मणेनमः इतिमंत्रः अष्टोत्तरशतवारंजपेत् ॥

अर्थ-बराबर [दोघडी पर्यंत छायाको देखाकरे] फिर उसछायापरसे दृष्टिको उठाकर आकाशकी तरफ देखैतो साक्षात् शिवको देखेगा जिससमयछाया देखनेको खडाहो तब १०८ बार इसमंत्रको पढे " ॐह्रींपर ब्रह्मणेनमः " ॥

शुद्धस्फटिकसंकाशं नानारूपधरंहरम् ॥
षण्मासाभ्यासयोगेनभूचराणांपतिर्भवेत् ॥

अर्थ-इसप्रकारकरनेसे शुद्धस्फटिकमणिके समान अनेक रूप धारण क-

र्त्ताशिवको देखे इसप्रकार छःमहीने करनेसे संपूर्णप्राणीमात्रका अधिपतिहो

वर्षद्वयेन हेनाथ कर्त्ताहर्त्ता स्वयंप्रभुः ॥
त्रिकालज्ञत्वमाप्नोति परमानंदमेवच ॥

अर्थ-दो वर्ष इसक्रियाके साधनकरनेसे स्वयं कर्त्ता हर्त्ता और त्रिकालका जाननेवाला परमआनंदयुक्त होवे ॥

सतताभ्यासयोगेननास्तिकिंचनदुर्ल्लभम् ॥

अर्थ-इसीप्रकार बराबर नित्यप्रति साधनकर्त्ता रहेतो इस संसारमें ऐसीकोई वस्तुनहीं है जो इससाधकको प्राप्ति नहो ॥

तद्रूपंकृष्णवर्णंयः पश्यतिव्योम्निनिर्मले ॥
षण्मासान्मृत्युमाप्नोतिसयोगीनात्रसंशयः ॥

अर्थ- यदि यहयोगी आकाशमें उसछायापुरुषका वर्ण कालेरंगका देखेतो छःमहीनेमें निःसंदेहमृत्यु हो ॥

पीतेव्याधिभयंरक्ते नीलेहत्यांविनिर्दिशेत् ।
नानावर्णस्वरूपोस्मिन्नुद्वेगोजायतेमहान् ॥

अर्थ-यदि पीलावर्ण देखेतो इसको रोगहो लाल देखेतो भयहो और नीले वर्णकी छाया देखेतो हत्यालगे एवं अनेक प्रकारके रंगकी छाया देखेतो इसके चित्तमें घोर उद्वेग होवे ॥

पादेगुल्फेचजठरे विनष्टेमृत्युमादिशेत् ।
अर्धवर्षेणवर्षेणक्रमाद्वर्षद्वयेनच ॥

अर्थ-छाया पुरुषके पैर-टकना-और पेट न दीखनेसे क्रमपूर्वक छः महीने वर्षदिन और दोवर्ष में मृत्यु हो अर्थात् पैर नदीखने से छःमहीनेमें टकना न दीखनेसे वर्षदिनमें और पेटनदीखनेसे दो वर्षमें मरे ॥

विनष्टेदक्षिणेबाहौस्वबंधुर्म्रियतेध्रुवम् ।
वामे बाहौ तथा भार्या विनश्यतिनसंशयः ॥

अर्थ-छाया पुरुषका दहिना हाथ न दीखनेसे अपना भाई मरे और बाँयाँ हाथ न दीखनेसे अपनी स्त्रीमरे इसमें संदेह नही है ॥

शिरोदक्षिणबाव्होस्तुविनाशेमृत्युमादिशेत् ।
अशिरामासिमरणंविनाजंघेदिनेनवा ।
अष्टभिः कंधरानाशे छायालुप्तेचतत्क्षणात् ॥

अर्थ–छाया पुरुषके शिर और दहिना हाथन दीखनेसे मृत्युहो यदि कवंधदीखे तो महीनेमें मरे और विना पिंडरीके दीखेतो एकदिनमें मरे कंधानदीखनेसे आठदिनमें और सर्व छाया न दीखेतो तत्कालमृत्युहो. परंतु यह ज्ञान केवल योगियों को होता है अन्यको नहीं ॥

इति कालज्ञानं समाप्तम्।

वृत्तिभेद (पेशा)

वृत्ति अर्थात् पेशाभी एक रोगका कारणहै जैसे जो अत्यंत कष्टकी मेहनत करते हैं जैसे बोझा उठानेवाले उनको बातकी बिमारी होती है.

और जो आनंदसे बैठे रहतेहैं उनको अरुचि मंदाग्नि–बवासीर आदि रोग होयहै जैसे-शेठसाहूकार-लेखक-चितेरे आदिको लुहार घडीसाज-सुनार-रसोय्या और चूडी बनानेवाले नेत्रहीन और अन्य २ नेत्रके रोगोंसे ग्रसित होते हैं.

धुनिया, बुहारी (झाडू) देनेवाले चून मैदा छाननेवाले प्रायः श्वास रोगी होते हैं.

सीसेके कामकरनेवाले प्रायः पतले हाथके या झुकेहुए पहुँचेके होते हैं

दिया सलाईके बनानेवाले हनुस्तंभ आदि रोगमें ग्रसित होते हैं

परंतु जंगली मनुष्य खेती करनेवाले गैया, भेड, बकरीके चरानेवाले प्रायः स्वच्छ पवनके सेवन करनेसे रोगहीन होते हैं.

इत्यादि पेशेका विचारभी वैद्य अवश्य करके पश्चात् चिकित्सा करे.

रीतिभांतिके भेदसे जातिभी रोग होनेका कारण है जैसे कि मुसलमान एकही कुलमें विवाह करलेते हैं इस कारण माँबापके रोग पीढीदर पीढीचले जाते हैं और हिंदू जो बहुत छोटी अवस्थामें विवाह करते हैं इसीसे उनकी संतान अत्यंत दुर्बल होती जाती है जैसा कि हिन्दुवोंकी संतान प्रथमकी होते ही मरजाती है कदाचित् बचजावे तो बहुतही कमजोर होतीहै कि उसकी संपूर्ण अवस्था दुःख और अनेक प्रकारके रोग भोगनेमें कटती हैं तथा जो जवानीमें विवाह करते हैं उनकी संतान हृष्ट पुष्ट और रोगरहित होती है ॥

स्वरूपपरीक्षा।

वातादीनांस्वरूपंतुप्राङ्मयाकथितंप्रिये
दूषणंपुनरुक्तिःस्यात्तस्मान्नात्रप्रकाशितम् ॥

अर्थ–वातपित्तादिकोंका स्वरूप प्रथम शारीरस्थानमें कह आएहैं फिर कहनेसे पुनरुक्ति दूषण आताहै इस कारण यहांपर नहीं कहा ॥

जठरस्थरोगोंकीपरीक्षा ।

तातास्माभिः श्रुतंपूर्वंनेत्रादीनांपरीक्षणम् ।
अधुनोदररोगाणांपरीक्षावक्तुमर्हसि ॥ १ ॥
तस्यतद्वचनंश्रुत्वाप्रियशिष्यस्यधीमतः
आत्रेयोवक्तुमारेभेतत्सर्वंशिष्यवत्सलः ॥ २ ॥

अर्थ-हारीतऋषि परम कारुणिक सर्वशास्त्रविशारद अपने गुरु श्रीमहर्षि आत्रेयके चरणकमलमें प्रणामकर बोले कि हे तात ! आपने प्रथम नेत्र आदि परीक्षा कही की जिस्से हमको उस विषयमें बहुत कुछ लाभ हुआ अब आप कृपा करके उदरयंत्रोंकी परीक्षा कहनेको योग्यहो। इस प्रकार शिष्यवत्सल आत्रेय भगवान् प्रियशिष्य हारीतके वचन सुन इस प्रकार कहनेका प्रारंभ करते भए ॥

यकृदामाशयप्लीहाग्रहण्यान्त्राणिवृक्ककौ
मलमूत्राशयोयंत्राण्यौदराण्यपराणिच ॥ ३ ॥
तेषांविकृतितोयानिलक्षणानिभवंतिहि ।
शृणुतावहितावत्सावच्मिसोऽहंसमासतः ॥ ४ ॥

अर्थ-यकृत आमाशय प्लीहा संग्रहणी संपूर्णआँत वृक्कक दोनो मलाशय और मूत्राशय ये सब इसी प्रकार औरभी अनेक उदरयंत्र विद्यमान होकर अपने २ कार्यको करते हुए प्राणियोंकी जीवनरक्षा करते हैं। इनमें किसी प्रकारका विकार होनेसे जो लक्षण होते हैं उनको मैं संक्षेपसे वर्णन करताहूं उनको तू सावधान होकर सुन ॥

उदरेसर्वहस्तस्यस्थापयेन्मध्यमांगुलीम् ।
तामन्यस्यकरस्याग्रैरंगुलीनांविधानतः ॥ ५ ॥
अभिहत्याभिघातोत्थैर्ध्वनिभिर्विविधैर्भिषक् ।
क्रियाविशेषान्यंत्राणांविद्यादुदरवर्तिनाम् ॥ ६ ॥

अर्थ-तहां प्रथम अभिघात परीक्षा कहते हैं जैसे-परीक्षा करनेवाले रोगीके पेटपर वैद्य अपना बायें हाथके बीचकी अँगुली धरके उसके ऊपर दहने हाथकी सब अँगुलियोंको एकत्रितकर ताडना । करनेसे पृथक् २ शब्दद्वारा उदर यंत्रोंकी पृथक् २ अवस्थाका ज्ञान होता है सो आगे लिखते हैं ॥

यकृद्देशान्मन्दतरःशब्दः प्रकृतितोभवेत् ।

शून्यामाशयतःशब्दोजायतेशौन्यगर्भिकः ॥ ७॥
वातैर्वायदिवाबाष्पैःपूर्णश्चामाशयोभवेत् ।
ततःप्रादुर्भवेच्छब्दोवाताध्मातोद्दृतेर्यथा ॥ ८॥

अर्थ–यकृतके ऊपर स्थितउदरके भागमें ताडना करनेसे अस्फुट धीरा शब्दप्रतीतहोवे । शून्य अमाशयके ऊपर ताडना करनेसे जैसाशून्य (रीते) पात्रकी आवाजहो ऐसी ध्वनि निकलती है । यदि आमाशय-वायु अथवा बाष्प द्वारा पूर्ण होनेसे हवाभरी हुई धौंकनीके शब्दसदृश आवाजनिकलती है ॥

वायुनास्फीतिमापन्नेप्रहतेचमलाशये ।
प्रतिध्वनिर्भवेच्छब्दोमन्दःस्यान्मलपूरिते ॥ ९ ॥
उदकोदरिणंकृत्वासर्वथापार्श्वशायिनम् ।
तस्योर्ध्वपार्श्वविधिनापरीक्षेताभिघाततः ॥ १० ॥

अर्थ–वायु पूर्ण मलाशयके ऊपर आघात (चोटदेने) से प्रतिध्वनि अर्थात् जैसी चोटदेने से आवाजहोती है (उसीके माफिक) आवाजहो यदिमलाऽशय मलपूरीत होवे तो मंद २ शब्दनिकले । जलंधर रोगीको किसी एककरवटसुलायकर ऊपरके पार्श्वमें आघात (चोट) से परीक्षाकरे

स्वभारात्संचितंतोयंमध्येव्रजतिनिश्चितम् ।
तदूर्ध्वमुपतिष्ठंतेक्षिप्रमंत्राणिवत्सकाः ॥ ११ ॥
ऊर्ध्वगतेभ्यश्चांत्रेभ्यःशब्दश्चाध्मानिकोभवेत् ।
अभिघातपरीक्षेयंमयाप्रोक्तासमासतः ॥ १२ ॥

अर्थ–इसप्रकार सोते हुए जलंधररोगीके पेटका संचित जलसमूह अपने भारीपनेके बससे नीचेको उतर बीचमें रहता है और आंतडें सब उपरहीके पसवाडेमें रहजाती हैं इसकेऊपरके पसवाडेमें आघात करनेसे आध्मानिक शब्दहोता है यह मैंने अभिघातपरीक्षा संक्षेप से कही है ॥

भोजनादुदरस्योर्ध्वंगौरवंजायतेमहत् ।
शिरोरुग्वक्त्रवैरस्यंहृद्दाहोवमथुस्तथा ॥ १३ ॥
रसनामलसंपूर्णाक्लान्तिर्हृदयवेपनम् ।
निद्रानाशोऽग्निमान्द्येस्याज्जाड्यंचदुःस्वप्नदर्शनम् ॥ १४ ॥

अर्थ–आमाशयकी विकृति से मंदाग्निका रोग होता है भोजनके उप रांत पेट अत्यंत भारीहो मस्तकपीडा–मुखमें विरसता–हृदयमें दाह-

वमन--जीभपरमैलका जमना--क्लांति-हृदयका फडकना-निद्रानाश-तथा निद्रा आवेतो बुरे २ स्वप्न दीखे-और इसमंदाग्नि रोगमें प्राणी जकड़ासाहो जाता है ये सबलक्षण होते हैं ॥

आमाशयव्रणेनॄणांजायतेपरिकर्त्तिका ।
वांत्यातदाशयेशून्येवेदनासाप्रशाम्यति ॥ १५ ॥
भोजनाद्वांतिरेवस्याच्छ्लेष्मशोणितसंयुता ।
रुधिरस्यापिवमनंरक्तपित्तस्यवाभवेत् ॥ १६ ॥
पुरीषैर्मलिनंरक्तंनिर्यायाद्गुदतोऽपिच ।
प्रायशोयोषितामेवव्याधिःस्यादृतुरोधतः ॥ १७ ॥

अर्थ-आमाशयमें घावहोने से उसमें कतरने कीसी पीडा होवे, जब वमन होनेसे आमाशय खाली होजावे तब पीडाभी शांति होजावे। तथा भोजनके पश्चात् कफ अथवा रुधिर मिली वमन (रद्द) वा केवल रुधिरकी रद्द अथवा रक्तपित्तकी वमनहो एवं मल (विष्टाके) साथ रुधिर निकले ये संपूर्ण लक्षण होते हैं । यह व्याधि प्रायःस्त्रियोंके होतीहै स्त्रियोंके ऋतुके न होनेसे यह रोग होताहै ॥

पर्शुकाधोयकृत्प्लीहानाविकृत्योऽनुभूयते ।
दक्षिणाच्चूचुकान्निम्नेद्व्यंगुलाद्यकृतःस्थितिः ॥ १८ ॥
अतीत्यैकांगुलिस्थानंपर्शुकाभ्यश्चनिश्चितम् ।
उरःप्राचीरसंकोचाद्विवृद्ध्याहृदयस्यच ॥ १९ ॥
वायुनाफुप्फुसस्फीत्यक्षोभणैरपरैरपि ।
यकृत्स्थानात्प्रच्यवतेनतद्वृद्धंविधारयेत् ॥ २० ॥

अर्थ-रोगरहित प्राणिके यकृत (कलेजा) प्लीहा (तिल्ली) पसलीके नीचे टटोरनेसे प्रतीत नही होती । दक्षिण स्तनके दो अंगुल नीचेसे पसलीके नीचे एक अंगुलपर्यंत स्थानमें व्याप्त यकृत् को जानना । वक्षस्थल प्राचीका संकोच हृदयकी संवृद्धि-वायुकर्के फुप्फुसका परिपूर्ण होना-तथा अन्य २ क्षोभकारक कारण द्वारा यकृत हटकर नीचेको आजातीहै इसप्रकार नीचेको आई हुई यकृतको बढीहुई कहनेसे भ्रमनहीं होता ॥

दक्षिणेशकलेप्रायोविद्रधिर्यकृतोभवेत् ।
हिक्काश्वासोवमिःकासोजायतेतीव्रवेदना ॥ २१ ॥
नशक्तिःशयनेतस्यसव्येपार्श्वेभवेच्चतु ।

इतिप्रोक्तंसमासेनयकृद्विद्रधिलक्षणम् ॥ २२ ॥

अर्थ–यकृतमें विद्रधि रोगहोनेसे हिचकी–श्वास–वमन–खांसी–इत्यादिसे तीव्रपीडा हो तथारोगीसे वांइ करवट नही सोया जावे इत्यादि संपूर्ण लक्षण होते हैं इसप्रकार यकृत विद्रधि के लक्षण मैंने कहे हैं यकृतके प्रायःदहने खंडमें विद्रधि होती है ॥

अनुभूयेतहस्तेनप्लीहाचयदिकस्यचित्
तदातंव्याधितंविद्यात्तेनरक्तक्षयोभवेत् ॥ २३ ॥

अर्थ–प्लीहा (तिल्ली) यदि हाथोंसे प्रतीत होने लगे अर्थात् टटोरनेसे मालूम होनेलगे तो जानैकि इसके रोग है प्लीहाके वढनेसे मनुष्यका रुधिर क्षीण होता है ॥

पश्चान्मलाशयाद्वृक्कौवर्त्तेतेचोदरान्तरे ।
तत्ररक्तावरोधेनमूत्रंस्तोकंत्यजेन्नरः ॥ २४ ॥
मूत्रंसशोणितंवापिवेदनातत्रदारुणा ।
तथास्पर्शासहत्वंचवृक्कविकृतिलक्षणम् ॥ २५ ॥

अर्थ–मलाशयको पिछाडी दोवृक्क हैं उसवृक्कमें रुधिर रुकनेसे मूत्र थोडा उतरता है अथवा रुधिरयुक्त मूत्रउतरे तथा उसमें दारुणपीडाहो इसपीडाके कारण स्थानके इस छूनेसे रोग न सहाजाय । ये वृक्कमें विकार होनेसे लक्षण होते हैं ॥

विकृतेतिलकेनॄणांमलंमेदोयुतंभवेत् ।
अग्निमांद्यंभवेच्चापिदौर्बल्यंचाप्यजीर्णता ॥ २६ ॥
अंत्रावरोधाद्भ्रान्तिःस्यादवसादश्चचेतसः ।
विट्संगो वेदनात्युग्रा पुरीषवमनं तथा ॥ २७ ॥

अर्थ–तिलक (क्लोम) की विकृति होनेसे समेदमल–मंदाग्नि–दुर्बलता और अजीर्ण रोग होते हैं तथा अंत्रावरोधरोग–वमन–चित्तकी असावधानता कोष्ठ रोग उग्रपीडा और मलकीरद्द–ये सब लक्षण होते हैं ॥

रोगस्थानादधश्चांत्रेशून्यतापरिपूर्णता ।
रोगेणानेनचाक्रांतोनरः प्रायस्त्यजत्यसून् ॥ २८ ॥
मलमूत्राशयौदुष्टौमेहानाहादिकान्बहून् ।

व्याधीन्जनयतोदुष्टाग्रहणीवह्निमन्दताम् ॥

अर्थ–रोगस्थानके नीचे अंत्राशयमें शून्यता और ऊपरके भागमें पूर्णता प्रतीत होती है । इससे व्याप्त रोगीके जीनेकी आशा नकरे । इसजगे संक्षेपसे उदरयंत्र आदिकी विकृति लक्षण लिखते हैं । मलमूत्राशयोंकी दुष्टी होना अनेक प्रमेहअफराआदिरोगोंको–तथा संग्रहणी और मंदाग्नि आदि दुष्टरोगोंको प्रगट करे है ॥

इत्यौदराणांयंत्राणांबिक्रियायांसमासतः
यान्युद्भवंतिचिन्हानिमयाप्रोक्तानिवत्सकाः ॥ २९ ॥
प्रतिरोगंप्रवक्ष्यामिकृत्स्नशश्चपराणिच ।
तानिसर्वाणिवेद्यानिभिषजासिद्धिमिच्छता ॥ ३० ॥

अर्थ–ये उदरयंत्रोंकी विकृतिसे होनेवाले जो चिह्न हैं वो मैंने हेवत्स! संक्षेपसे तेरे आगे कहे हैं । बाकी संपूर्ण लक्षण रोग २ के प्रति पृथक् २ कहूंगा उनको सिद्धिकी इच्छाकरनेवाले वैद्यको अवश्य जानना चाहिये॥

इति जठरस्थरोगोंकीपरीक्षा ।

बालकोंके रोगकी परीक्षा ।

नकिंचिदस्तिकर्मदुरूहतरंयथाशिशूनांरोगपरीक्षणम्
परंधैर्यशीलगांभीर्यशान्त्यादिभिस्तेषांप्रियदर्शनप्रदा
नाभ्यां तथान्यैस्तोषणकर्मभिश्चतदपिसुकरंभवति ॥

अर्थ–बालकके रोगपरीक्षाके समान और कोई विषय कठिन नहीं है । अतएव वैद्य धीरज–शीलता और गांभीर्यके आश्रयसे सांत्वनवादद्वारा [पुचकारी देकर] तथा बालकको प्रिय खिलौने आदि दिखाके वा देकर एवं अन्य प्रकारों करके बालकको फुसलाकर रोगोंकी परीक्षाकर सकता है [अन्यथा नही] ॥

बालाह्यात्मवेदनानिवेदनेसर्वथैवासमर्थारोदनमात्रस-
हाया आत्मशुभाशुभबुद्धिपरिहीनाः सर्वथान्येषुसम-
र्पितप्राणाभृशंपरावलम्बिनः परदयाभाजनानि ॥

अर्थ–बालक अपने दुःखके कहनेमें सर्वथा असमर्थ होता है केवल रुदन मात्र सहाय अर्थात् रुदनके सिवाय वो कुछ नहीं करसक्ता तथा

आपकेलिये हित और अहित बुद्धि करके रहित होताहै एवं सर्वथा औरोंके हाथमें समर्पित प्राण होतेहैं अतएव इनके समान दयाका पात्र दूसरा नहीं है ॥

जगतिनतस्मात्कश्चिदपरः पापीयान्नयः सर्वथासर्वे प्रयत्नेनसमाहितचेताः सम्यग्विचार्यतान्भेषजैरुप पादयेत्। भिषजासर्वएवातुराअविशेषेणपुत्रवद्द्रष्ट-व्याविशेषतःशिशवःातेनात्यर्थमवधानपरेणावश्यंभा वयितव्यम्। यथातेनतस्माद्भीतिमापादयन् ॥

अर्थ—उस प्राणीके समान दूसरा घोर पापी कोई नहींहै जो सर्वथा सर्व यत्न करके सावधानीके साथ विचार पूर्वक बालकोंकी चिकित्सा नहीं करता। वैद्यको उचितहै कि संपूर्ण रोगियोंको प्रायः पुत्रके समान देखें [जैसे अपने पुत्रकोंकिं चिन्मात्रभी पीडा युक्त नही देख सके इसी प्रकार सब रोगियोंको देखे] इनमेंभी बालकोंके ऊपर परम कृपादृष्टि से देखे। वैद्यको इस प्रकार सावधान होना अत्यंत आवश्य कहै कि जिस प्रकार बालक डरपे नहीं ॥

भिषजापरीक्षार्थंगृहंप्रविश्य प्रथमंशिशोर्धात्रीतःएता न्यवश्यंवेद्यानि। यथा। वर्त्तमानरोगोत्पत्तेःप्राक्त स्यदैहिकोवस्थाविशेषः अतीतापूर्वरूपप्रकृतिर्जात रोगसंपृक्ताविविधाश्चपराविकृतयः शिशुःपुमान् स्त्री वात्यक्तस्तनोवानवासयदाहारप्रियस्तस्यवयःपरिमा णंमलमूत्रादीनां प्रकृतिरित्याद्यानिं।

अर्थ—वैद्य बालकको देखकै उसके घरमें प्राप्त होतेही उसकी धाय [अथवा मातासे] इतनी वार्त्ता प्रथमहीं अवश्य जान लेवे। जैसे वर्त-मान रोगके उत्पन्न होनेके पूर्व उसकी कैसी दशाथीं। किस प्रकार पूर्व रूप लक्षण हुए थे। उपस्थित रोग संयुक्त होनेके पीछे विकृति स्वरूपका जानना एवं बालक पुरुष है या स्त्री है स्तनको पीताहै या नहीं पीवे। यदि बाल भोजन प्रिय होवे तो उसकी अवस्थाका परिमाण पूछना तथा मल मूत्रादिकी प्रकृति इत्यादि ॥

शिशुर्यदिस्वपितिनतंप्रबोधयेत्सुप्तस्यैवतस्याकृत्यंग संस्थितिप्रभृतीनिविशेषेणेक्षणीयानि। सउत्तानशायी

पार्श्वशायी वा विस्तीर्णजंघः कुंचितजंघोवाइत्यादि-
भिस्तस्यांगसंस्थितिविशेषैर्व्याधेःकृच्छ्रत्वमकृच्छ्रत्वं
वावगम्येत।

अर्थ-यदि बालक सोता होवे तो उसको जगाने नहीं सोते हीकी आकृति अंगोंकी स्थिति आदिकी परीक्षा करलेवे बालक सीधा सोताहै या करवटसे सोताहै पैरपसारके या पैरोंको सिकोडिकर सोताहै इत्यादि उसको अंगसंस्थिती विशेष करके लक्षकरे। इत्यादि संपूर्ण अवस्था विशेषों करके कृच्छ्रसाध्य और सुखसाध्य व्याधि जानना॥

ज्वरेसान्निपातिकेफुप्फुसेच व्यथाकुलेगण्डौलोहितौ
स्याताम्। कूजनात्सहसानिद्राछेदादकस्मादाक्षेपाद्।
विक्रोशनाद्धस्तग्रहाच्चतस्यमस्तिष्कविकृतिरनुमेया।
आमाशयेऔग्रतामापन्नेऽकस्मान्मुखविवरमाक्षिप्य
ते। नयनयोरसम्यङ्निमीलनान्मस्तिष्कविक्रियारोग
स्यकृच्छ्रसाध्यत्वंचावगम्यम्।

अर्थ-संनिपातज्वरमें-और फुप्फुसकी पीडामें बालकके गंड दोनो लालरंगके होते हैं। कुंजना सहसा निद्रा जाती रहना अकस्मात् आक्षेपकीक मारना और हाथोंका जकडना ये संपूर्ण लक्षण मस्तिष्क विकारके सूचक है अर्थात् इन लक्षोंसे बालकके मस्तिष्क संबंधी रोग जानना आमाशयमें उपद्रव होनेसे अकस्मात् मुखमिच जाताहै। दोनों नेत्रोंके आधे आधे मूंदनेंसे उस बालकके पीडाकी आधिक्यता तथा मस्तिष्क विकृति ज्ञापक है॥

॥ इति बालरोग परीक्षाविधिः समाप्ता॥

अथवस्त्रपरीक्षा।

ज्वरव्याप्तशरीरस्य ऊष्मा भवति दारुणः।
सऊष्माबहिराप्नोतिवस्त्रेतिष्ठतिनिश्चितम्॥

अर्थ-ज्वरयुक्त देहमें दारुणगरमी रहती है वह गरमी देहसे निकल वस्त्रमें ठहरतीहै अतएव इस प्राणीके वस्त्रोंकी परीक्षा करनी चाहिये॥

वातपित्तकफानांचद्वित्रिदोषस्यलक्षणम्।

परीक्षेज्ज्वरिणोवस्त्रं वैद्यो वै शुद्धवंशजः ॥

अर्थ-ज्वरवाले प्राणीके वात-पित्त कफ द्विदोष तथा त्रिदोषके लक्षण शुद्ध वंशोत्पन्नवैद्य वस्त्रद्वारा परीक्षाकरे सो इसप्रकार ॥

वातेवस्त्रंसौरभंघ्राणतःस्यात्
पौष्पंपैत्तेमत्स्यतुल्यंविगंधि ॥
पाकास्थोणंश्लेष्मणः संप्रकोपात्
द्वंद्वैर्द्वंद्वोत्युल्बणैरुयेकताच ॥

अर्थ-वादीसे रोगीके वस्त्रोंमें फूलकीसी गंध आती है पित्तसे मछली कीसी और कफके कोपसे पकेहुए फोडे किसी और द्विदोष तथा त्रिदोषके लक्षणमिलनेसे त्रिदोषके लक्षणजानने ॥

यदावस्त्रेभवेद्गंधः सटिताजालकर्दमः ।
तदादीर्घोभवेद्रोगोम्रियतेशवगंधकः ॥

अर्थ-जिसके वस्त्रोंमें सड़ीहुईजाल और कीचकीसी दुर्गंध आवे उसके बहुत दिनोंका रोगजानना और जिसके वस्त्रोंमें मुरदेकीसी दुर्गंध आवे उसकी मृत्यु हो ॥

इति वस्त्रपरीक्षा।

अथ देशाः ।

भूमिदेशस्त्रिधाऽनूपोजाङ्गलोमिश्रलक्षणः ॥

अर्थ-भूमिदेश तीनप्रकारका है एक अनूप दूसरा जांगल और तीसरा मिश्र संज्ञक (मिलाझुला) है तहां प्रथम अनूप देशके लक्षण कहते हैं ॥

अनूपक्षलणम् ।

नदीपल्वलशैलाढ्यः फुल्लोत्पलकुलैर्युतः ॥
हंससारसकारण्डचक्रवाकादिसेवितः ॥
शशवाराहमहिषरुरुरोहिकुलाकुलः ॥
प्रभूतद्रुमपुष्पाढ्योनीलसस्यफलान्वितः ॥
अनेकशालिकेदारकदलीक्षुविभूषितः ॥

अर्थ-जिसमें नदीनाले-तलैया-पर्वत-फूलेहुए कमल-हंस-सारस

चवका आदि पक्षी शशा-सूकर-भैसा-रुरू (हरिणकाभेद) और रोहिस इत्यादि चतुष्पद समूहयुक्त-तथा अत्यंत वृक्ष-फूलकेवृक्ष-नीलवर्णपुष्प हरी २ घास और फलयुक्तहो तथा अनेक प्रकारके चावल खेती केलाके वृक्ष और गन्ना ऐसे अनेक प्रकार धान्यादिकों करके जो देश युक्त हो उसको अनूपेदश कहते हैं जैसे कश्मीर काबुल तिब्बत, आदिदेश हैं.

अनूपदेशकेभेद।

तच्चोक्तकृत्स्ननिजलक्षणधारिभूरिच्छायावृतांतरवहद्बहुवारिमुख्यम्। ईषत्प्रकाशसलिलंयदिमध्यमंतदेतच्चनातिबहुलांबुभवेत्कनीयः॥

अर्थ-जिसदेशमें अनूपदेशके उक्तलक्षणसमग्र पाये जावे और अत्यंत छाया युक्तहो तथा अत्यंत जलयुक्तहों वो उत्तम अनूपदेश जानना। और जिसमें थोडी छाया और थोडा जलहो तथा उक्तलक्षण कुछ २ मिलते हों वहमध्यम अपूपदेश है और जिसमें बहुतही थोडा जलहो उसको कनिष्ठ अनूपदेश जानना॥

जांगललक्षणम्।

आकाशशुभ्रउच्चश्चस्वल्पपानीयपादपः।
शमीकरीरबिल्वार्कपीलूकर्कंधुसंकुलः॥
हरिणैणर्क्षपृषतगोकर्णखरसंकुलः
सुस्वादुफलवान्देशोवातलोजांगलः स्मृतः॥

अर्थ-जोदेश आकाशके समान शुभ्र और ऊंचाहो, थोडे जलाशय (कूआबावडीआदि) और थोडे जहां तहां वृक्षहों तथा छोकरा-करील वेल आक पीलू-और वेर इत्यादि वृक्षजहां हों तथा हरिण--एण (काला हरिण) रीछ चीता-रोज-और गधा ए अधिकहों. तथा जिसदेशमें स्वादु फलप्रगट होते हों वह वातकारक जांगल देशजानना॥

यत्रानूपविपर्ययस्तनुतृणास्तीर्णाधराधूसरा।
मुद्गव्रीहियवादिधान्यफलदा तीव्रोष्मवत्युत्तमा॥
प्रायःपित्तविवृद्धिरुद्धतवलाः स्युर्नीरुजःप्राणिनो।
गावोजाश्च पयः क्षरंतिबहुतत्कूपेजलंजांगलम्॥

अर्थ-अब ग्रंथान्तर से जांगल देशके लक्षण कहते हैं कि जिसमें अनूप देशसे विपरीत लक्षण मिलते हों तथा थोडे तिनकाओंसे पृथ्वी आच्छादितहो और धूसरे रंगकी हो तथा मूंग-मोठ-मक्का यवआदि धान्य अत्यंत होते हों. तीव्र गरमी करके युक्त और पित्तके बढानेवाली एवंजिसमें बलवान् और रजोगुण रहित प्राणी होते हों और गौओंके थनोमें दूध बहुतहो तथा कूआसे जलप्रायः प्राप्त हो उसे जांगल देशकहते हैं जैसे मारवाडके देश (आफ्रिकाकामुल्क और) अरब आदिकी विलायत जाननी

एतच्चमुख्यमुदितंस्वगुणैःसमग्रमल्पाल्पभूरुहयुतंयादिमध्यमंतत् । तच्चापिकूपखननेसुलभांबुयत्तज्ज्ञेयंकनीयइतिजांगलकंत्रिरूपम्

अर्थ-जिस जांगल देशमें सर्व लक्षण मिलतेहों वह उत्तम है । और जिसमें बहुत थोडे वृक्ष और थोडे दूरपर पानी मिले तथा जांगल देशके कुछ लक्षण मिलते हों और कुछ न मिलतेहों वह जांगलदेश मध्यमहै । और जिसमें कूआखोदनेसे पासही जल निकल आवे वह कनिष्ठ जांगल देशहै ॥

साधारणलक्षणम् ।

संसृष्टलक्षणोपेतो देशः साधारणोमतः
समाः साधारणे यस्माच्छीतवर्षोष्णमारुताः ॥
समतातेनदोषाणांतस्मात्साधारणोवरः

अर्थ-जो अनूपदेश और जांगलदेशके मिले हुए लक्षण युक्तहों उसे साधारण देशकहतेहैं इससाधारणदेशमें शीत-वर्षा-गरमी-और पवन समान रहती है इसीसे दोष भी समान रहते हैं अतएव यह साधारण देश उत्तमकहाहै. साधारणदेश जैसे मथुरा आगरा दहली काशी पटना आदिजानने ॥

लक्ष्मोन्मीलतियत्रकिंचिदुभयोस्तज्जांगलानूपयोर्गोधूमोल्बणयावनालविलसन्माषादिधान्योद्भवम्।नानावर्णमशेषजंतुसुखदंदेशंबुधामध्यमंदोषोद्भूतिविकोपशांतिसहितंसाधारणंतंविदुः ॥

अर्थ-जिसदेशमें जांगल और अनूप ए दोनोंदेशोंके लक्षणमिलतेहों और गेहूं जो उडद आदि धान्य प्रगट होतेहों-तथा अनेक वर्णके पशुपक्षी आदि सबको सुखकारी उसको पंडितजन मध्यमदेशकहते हैं इसमें

विकारोंका कोप और शांति स्वयं होती रहती है इसीको साधारण देशजानना चाहिये ॥

तच्च साधारणं द्वेधाऽनूपजांगलयोः परम् ।
यत्रयत्रगुणाधिक्यंतत्रतस्यगुणंभजेत् ॥

अर्थ-इससाधारणकेभी दो भेद हैं एक अनूप साधारण दूसरा जांगल साधारण इनदोनोंमें जिस २ देशके अधिक गुणमिलतेहों उसको उसी नामसे विख्यात जानना ॥

सुश्रुतात्-उचितेवर्तमानस्यनास्तिदुर्देशजंभयम् ।
आहारस्वप्नचेष्टादौतद्देशस्यकृतेसति ॥

अर्थ-जो प्राणी उचित आहार विहारकरताहै-उसको दुष्टदेशसे कुछ भयनही है. अतएव जिसदेशमें रहे उसके अनुसार आहार-निद्रा-और विहारका सेवन करना चाहिये यह सुश्रुतमें लिखाहै. ॥

वृद्धवाग्भटात्-यस्यदेशस्ययोजंतुस्तज्जंतस्यौषधंहितम् ।
देशादन्यत्रवसतस्तत्तुल्यगुणमौषधम् ॥

अर्थ-वृद्धवाग्भट कहते हैं कि जिसदेशका जो प्राणीहै उसको उसी देशकी प्रगटहुई औषध हितकरी होती है और अपने देशकोत्यागके जो अन्यदेशमें रहते हैं उसको उसदेशके तुल्यगुणकारी औषधदेवे ॥

स्वदेशेनिचितादोषाअन्यस्मिन्कोपमागताः ।
बलवंतस्तथानस्युर्जलजाः स्थलजास्तथा ॥

अर्थ-जो अपने देशमें संचित दोषहैं. वो दूसरे देशमें जायकर यदि कुपितहों वो बली नही होते उसीप्रकार जलजदेशके स्थलमें और स्थलजदेशके जलमें बलहीन होते हैं ॥

अथ मानपरिभाषा।

अव्यक्तानुक्तलेशोक्तसंदिग्धार्थप्रकाशिकाः ।
परिभाषाःप्रकथ्यन्तेदीपभूताःसुनिश्चिताः ॥

अर्थ-शास्त्रकी विधि सर्वत्र स्पष्टनहीं लिखी बहुतसी जगे संदेहयुक्तहै उसीउसी स्थलमें अर्थजानना दुष्करहै वह इस परिभाषाध्यायमें समग्र सांकेतिक अर्थ प्रकाशकरते हैं ॥

प्रथम मानसूत्र लिखतेहैं।

नमानेनविनायुक्तिर्द्रव्याणांज्ञायतेक्वचित् ।

अतःप्रयोगकार्यार्थंमानमत्रोच्यतेमया ॥

अर्थ-विना मान (परिमाणज्ञान) के सर्व द्रव्यप्रयोगकी युक्ति नहीं हो सकती इसी हेतुसे प्रथम हम परिमाणज्ञानको प्रयोगकार्यके अर्थ लिखते हैं। मानपरिभाषा अनेक देशमें अनेकप्रकारकी हैं और मानभेदभी भिन्नभिन्न हैं इससे हम प्रथम मागधपरिभाषा जो मध्येदेशमें प्राचीन आचार्योंने बाँधी है उसे लिखते हैं ॥

त्रसरेणुर्बुधैःप्रोक्तस्त्रिंशद्भिःपरमाणुभिः ।
त्रसरेणोस्तुपर्यायोनाम्नावंशीनिगद्यते ॥

अर्थ-तीस परमाणुका १ त्रसरेणु वैद्योंने कहा है वंशी इस त्रसरेणुका पर्यायवाचक नाम है अर्थात् उसीत्रसरेणुको वंशीभी कहते हैं ॥

परमाणुकेलक्षण।

जालांतरगतेभानौयत्सूक्ष्मंदृश्यतेरजः ।
तस्यत्रिंशत्तमोभागः परमाणुःसउच्यते ॥

अर्थ-अब परमाणुके लक्षण कहते हैं कि, घरमें जाली झरोखा आदिमें सूर्यकी किरण पडती है उनकिरणोंमें जो बहुत सूक्ष्म धूलके किनके उडते दीखते हैं उस किनकेका तीसवाँ जो भाग है उसको परमाणु ऐसा कहतेहैं॥

वंश्यादिकोंकेपरिमाण।

षड्वंशीभिर्मरीचिःस्यात्ताभिःषड्भिस्तुराजिका ।
तिसृभीराजिकाभिश्चसर्षपः प्रोच्यतेबुधैः ।
यवोष्टसर्षपैःप्रोक्तोगुञ्जास्यात्तच्चतुष्टयम् ।

अर्थ-अब फिर उसी त्रसरेणुसे प्रमाण कहते हैं कि६ वंशी (त्रसरेणु) की १ मरीची होती है। छःमरीची की १ राई, ३ राई की १ सरसों, आठ सरसोंका १ यव (जों), चार जौं की १ रत्ती (घूंघची) होती हैं ॥

मासेकापरिमाण।

षड्भिस्तुरक्तिकाभिःस्यान्माषकोहेमधान्यकौ ।

अर्थ-छःरत्तीका एक मासा इस मासेको हेम और धान्यकभी कहतेहैं॥

शाणका और कोलकापरिमाण।

माषैश्चतुर्भिःशाणःस्याद्धरणःसनिगद्यते ।

१ बहुतसे इसपरिभाषाको कलिंगपरिभाषा कहतेहैं और कलिंगको मागधपरिभाषा कहतेहैं.

टंकःसएवकथितस्तद्द्वयंकोलउच्यते ॥
क्षुद्रभोवटकश्चैवद्रंक्षणःसनिगद्यते ।

अर्थ–चारमासेका १ शाण होता है, इसशाणको धरण और टंकभी कहते हैं, दोशाणका १ कोल कहाता है इसे क्षुद्रभ, वटक और द्रंक्षणभी कहते हैं [कोलनाम भाषामें बेरका है अतएव तोलमें बेरके प्रमाण होने से इसकी कोल संज्ञा वैद्योंने कही है]

कर्षकापरिमाण ।

कोलद्वयंतुकर्षःस्यात्संप्रोक्तः पाणिमानिका ।
अक्षः पिचुः पाणितलंकिंचित्पाणिश्चतिंदुकम् ॥
बिडालपदकंचैवतथाषोडशिकामता ।
करमध्यंहंसपदंसुवर्णंकवलग्रहम् ॥
उदुंबरंचपर्यायैःकर्ष एवनिगद्यते ॥

अर्थ–दोकोलका १ कर्षहोताहै इसकर्षको पाणिमानिक-अक्ष-पिचु-पाणितल-किंचित्पाणि-तिंदुक-विडालपदक–षोडशिका–करमध्य-हंसपद-सुवर्ण-कवलग्रह-और उदुंबर भी कहते हैं अर्थात् ये तेरह नामभी उसी कर्षके हैं । कर्षको लौकिकमें तोला कहते हैं । तोलेभर वस्तुका प्रमाण गूलरके समान होताहै इसीसे इसकी उदुंबरभी संज्ञाकही है ।

अर्द्धपल तथा पलकापरिमाण ।

स्यात्कर्षाभ्यामर्धपलंशुक्तिरष्टमिकातथा ।
शुक्तिभ्यांचपलंज्ञेयंमुष्टिराम्रचतुर्थिका
प्रकुंचः षोडशीबिल्वंपलमेवात्रकीर्त्यते ॥

अर्थ–दोकर्षका १ अर्धपल इसको शुक्ति (सीप) और अष्टमिकाभी कहतेहैं दोशुक्तिका १ पलहोताहै उसको मुष्टी (मुट्ठीभर) आम्र चतुर्थिका-प्रकुंच-शोड़शी और बिल्वभी कहते हैं [आम और वेलकी बराबर वस्तुका परिमाण होनेसे पलकी आम्र और बिल्वसंज्ञाहै]

प्रसृतिसे आदिलेके मानिकापर्यंतका परिमाण ।

पलाभ्यांप्रसृतिर्ज्ञेयाप्रसृतश्चनिगद्यते ॥
प्रसृतिभ्यामंजलिःस्यात्कुडवोर्धशरावकः ॥

अष्टमानंचसंज्ञेयंकुडवाभ्यांचमानिका ॥
शरावोष्टपलंतद्वज्ज्ञेयमत्रविचक्षणैः ॥

अर्थ–दोपलका १ प्रसृति इसे प्रसृतभी कहते हैं-दोप्रसृतिकी १ अंजली इसको कुडव अर्ध शरावक और अष्टमानभी कहते हैं. [कुडवको लौकिकमें पावभर कहते हैं] दो कुडवकी मानिका होती है उसे शराव, और अष्टपल भी कहते हैं. [मानिकाकी लौकिकमें आधसेर संज्ञाहै शरावके भरजानेसे इस तोलका नाम शराव है]

प्रस्थका और आढककापरिमाण।

शरावाभ्यांभवेत्प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाढकम्।
भाजनंकंसपात्रंचचतुःषष्टिपलंचतत् ॥

अर्थ–दोशरावका १ प्रस्थ अर्थात् सेर होताहै और चार प्रस्थका १ आढक, आढकको भाजन और कंसपात्रभी कहतेहैं इसके ६४ पल और २५६ तोले होते हैं.

द्रोणसे लेकर द्रोणीपर्यंतपरिमाण।

चतुर्भिराढकैर्द्रोणःकलशोनल्वणोन्मनौ ॥
उन्मानश्चघटोराशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञकः ॥
द्रोणाभ्यांशूर्पकुंभौचचतुःषष्टिशरावकाः ॥
शूर्पाभ्यांचभवेद्द्रोणीवाहोगोणीचसास्मृता ॥

अर्थ–चार आढकका १ द्रोणहोताहै उसको कलश नल्वण उन्मन उन्मान घट और राशि कहतेहैं (एकघडेभर वस्तूकी आढकसंज्ञाहै) दो द्रोणका एक शूर्प और कुंभ होताहै. उस सूर्पके ६४सराव अर्थात् ५१२ पल और १०४८तोले होते हैं दोशूर्पकी १ द्रोणी उसको गोणीभी कहते हैं ॥

खारीकापरिमाण।

द्रोणीचतुष्टयंखारीकथितासूक्ष्मबुद्धिभिः ॥
चतुःसहस्रपलिकाषण्णवत्याधिकाचसा ॥

अर्थ–चार द्रोणकी १ खारी होती है उस खारीके ४०९ पल तथा १६३८४ तोले होते हैं ॥

भारका और तुलाकापरिमाण।

पलानांद्विसहस्रंचभारएकः प्रकीर्त्तितः॥
तुलापलशतंज्ञेयासर्वत्रैषविनिश्चयः॥

अर्थ-दो हजार पलका एकभार होताहै और सौ पलकी १ तुला होती है ऐसा निश्चय सर्वत्र जानना॥

सुखबोधार्थउक्तमानकोएकश्लोकमेंकहतेहैं।

माषटंकाक्षबिल्वानिकुडवः प्रस्थमाढकम्॥
राशिर्गोणीखारिकेतियथोत्तरचतुर्गुणाः॥

अर्थ-मासेसे लेकर खारी पर्यंत एकसे दूसरी तोल चौगुनी जाननी जैसे चार मासेका १ शाण-चारशाणका १ कर्ष-चारकर्षका १ बिल्व चारबिल्वकी १ अंजली चार अंजलीका १ प्रस्थ चार प्रस्थका १ आढक चार आढककी १ राशि चार राशिकी १ गोणी चार गोणीकी १ खारी इस प्रकार समझनी चाहिये॥

परिभाषाकेमतभेदकीऐक्यता।

द्वात्रिंशन्माषकैर्माषश्चरकस्यतुतैःपलम्।
अष्टचत्वारिंशतास्यात्

अर्थ-रत्तीके आधीन माषेका माषेके आधीन कर्षपलादिकका ज्ञानहै अर्थात् जबतक यह निश्चय न करलेवे कि रत्ती कितने वजनको कहते हैं तथा कितने रत्तीका माषा और कितने माषेका कर्ष होता है तबतक किसी तोलका प्रमाण नहीं होता। अतएव माषकादि मानके स्थापनके अर्थ परिभाषा कहते हैं ३२ धान्य माषकोंका (माषकलायोंका) चरकके मतसे माषा होता है और उन्हीं ४८ मासेका चरकके मतसे पल होता है इसी कारण कर्षकी लौकिकमें तोला संज्ञा कही है॥

सुश्रुतस्यतुमाषकः।
द्वादशभिर्धान्यमाषैश्चतुषट्यातुतैःपलम्॥

अर्थ-सुश्रुतके मतसे १२ ब्रीही मासक चावलोंका एकमासा होताहैं और ६४ मासेका पल होता है॥

एतच्चतुलितंपञ्चरक्तिमाषात्मकंपलम्।
चरकार्द्धपलोन्मानम्

अर्थ-अब चरक सुश्रुत इन दोनोंके मतसे जितनी रत्तियोंका माषा

होताहै उसको कहते हैं-बारह धान्यमाषक कर्के करे हुए ६४ मासोंका जो सुश्रुतने पल कहाहै वो रत्तियोंके तोलनेसे ५ रत्तीका माषा होकर चरकके मतसे आधा पल होवेगा ॥

चरकेदशरक्तिकैः ॥
माषैः पलं चतुःषष्ट्या यद्भवेतत्तथेरितम् ॥

अर्थ–चरकके मतसे दश रत्तीका माषा होता है और ऐसे६४मासेका पल होताहै अर्थात् ३२ माषकलाय कर्के करे हुए ४८ मासेका जो पल-मान है वो दशरत्तीका मासा मानकर ६४ माससे तोले तो पूर्वोक्त मान होता है क्यों कि २४ माषकलाय (मटर) दशरत्तीके बराबर होतीहै ॥

तो अब दशरत्तिका मासा मानकर ऐसे ६४ मासोंको २४ से गुण दिया तो १५३६ मासकलाय होगये ॥

इसी प्रकार चरकके मतसेभी ३२ माषकलायका माषा मानकर ऐसे ४८ मासोंको ३२ से गुण दिया तो १५३६ माषकलाय होते हैं ॥

तो अब दशरत्तीके मासेवाले पलको३२ माषकलाय प्रमाण मासेवाले पलके साथ मिलान करनेसे समानता प्रत्यक्ष मिलतीहै सुश्रुतके मतसे बारह माषिकलाय वाले ६४ मासेका पल होता है ॥

उनको ६४ मासोंको १२ माषकलायसे गुणा तो ७६८ ये चरकके मतसे आधामान सुश्रुतका हुआ ॥

तस्मात्पलंश्चतुःषष्ट्यामाषकैर्दशरक्तिकैः ।
चरकानुमतंवैद्यैश्चिकित्सासूपयुज्यते ॥

अर्थ–अब चरक सुश्रुत दोनोंके मानमें चरककाही मान व्यवहारो-पयोगी है यह कहते हैं–पूर्वोक्त कारणकर्के दशरत्ती मासेके हिसाबसे ६४ मासेकाही पल चरकके मतका वैद्योंको चिकित्सामें लेना चाहिये सुश्रुतका नहीं ॥

अब हमने लौकिकोदाहरणमें १ पलकी छटंकी मानी है तो इसकोभी विचारकर देखा जावे कुछ थोडाही फरक पडेगा जैसे चरकके मतसे १० रत्ती वाले मासोंसे ६४ मासेका पलकहा है यदि चौंसठको दशसे गुणा तो ६४० छः सौ चालीस रत्ती होवेंगी ।

परंतु आजकल अंग्रेजी राज्यमें ८ रत्तीका मासा मानते हैं तो इस हिसाब पांचतोले और पांचमासे की छटंकी हुई और हिसाबमें बडा फरक पडता है ॥

पतली गीली और शुष्कऔषध इनके योगकामान।

गुंजादिमानमारभ्ययावत्स्यात्कुडवस्थितिः ॥
द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणांतावन्मानंसमंमतम् ॥
प्रस्थादिमानमारभ्यद्विगुणंतद्द्रवार्द्रयोः ॥
मानंतथातुलायास्तुद्विगुणंनक्वचित्स्मृतम् ॥

अर्थ-जलआदि पतले पदार्थ गीलीऔषध और सुखी औषध ये रत्तीसे लेकर कुडव पर्यंत बराबर लेवै तथाजलआदि पतले पदार्थ और गीली औषध ये लेनी होय तो प्रस्थसे लेकर तुलापर्यंत दुगनीलिवे ऐसा कहीं नहीं लिखा अतएव इनकामान सूखी औषधके समानही लेनाचाहिये ॥

दूधआदिपतलीवस्तु नापनेकी युक्ति।

मृदुस्तुवेणुलोहादेर्भाण्डंयच्चतुरंगुलम्।
विस्तीर्णंचतथोच्चंचतन्मानंकुडवंवदेत् ॥

अर्थ-नम्रवाँसा लोह आदिका चौखुटा बरतन लंबा चौडा और ऊँचाई निचाईमें चारही अंगुलका हो उसको कुडव नाम कहते हैं, कुडव नाम पावसेरका है परंतु व्यवहारका पौआ कुछ अधिक बजनवाला होता है इस कुडवपात्र द्वारा घी-दूध तेल आदि पतली वस्तु नापीजातीहै॥

कालिंग्यःपञ्चगुञ्जाभिर्मागधाःसप्तभिस्तथा।
[1]माषकंदशभिर्गौडामानज्ञाःकीर्तयंतिच ॥

अर्थ-कलिंग परिभाषामें पांचरत्तीकामाषाहोता है [यही भास्कराचार्यनेभी माना है] और मागध परिभाषाके मतसे सातरत्ती का माषा होता है और गौडदेशवासी १० रत्तीका मासा मानते हैं ॥

कालिंग्यंसौश्रुतंमानंमागधंचरकादिषु ॥
गौडादिदेशेगौडंच मानं मानविदोविदुः ॥

अर्थ-सुश्रुत कलिंग परिभाषाको कहता है और चरकादि ग्रंथमागध परिभाषाको एवं गौडदेशवासी गौड परिभाषाको मानते हैं परंतु " कालिगान्मागधं श्रेष्ठं " इसवाक्यसे मागध परिभाषा उत्तम है. मध्ये देशमें इसका प्रचारहुआ इसी से मागध परिभाषा कहलाती है ॥

१ सत्कालिंगद्वादशभिःरक्तिभिर्मासकःस्मृतः।

औषध तोलनेके विषयमें मागधपरिभाषाका वजन ।

३ परमाणुका १ त्रसरेणु इसे वंशीभी कहते हैं.
६ वंशीकी १ मरीची.
६ मरीचीकी १ राई.
३ राईकी १ सरसो.
८ सरसोंका १ यव.
४ यव (जों) की १ रत्ती (घुंघची) होती है इसे कुंचभी कहते हैं.
६ रत्तीका १ मासा इसको हेम और धान्यकभी कहते हैं.
४ मासेका १ शाण इसके व्यवहारिक मासे ३ होते हैं.
उस शाणको निष्क धरण और टंकभी कहते हैं.
२ टंकका १ कोल होता है उसके व्यवहारिक मासे ६
उसकोलको क्षुद्रभ, वटक और द्रंक्षणभी कहते हैं.
२ कोलका १ कर्ष होता है जिसके व्यवहारिक तोला १
उसकर्षको पाणिमानिका-अक्ष-पिचु-पाणितल-किंचित्पाणि-तिंदुक-बिडालपदक-षोडशिका-हंसपद सुवर्ण कवलग्रह और उदुंबरभी कहते हैं.
२ कर्षका १ अर्धपल होता है उसके व्यवहारिक तोले २
इसअर्धपलको शुक्ति और अष्टमिका भी कहते हैं.
२ अर्ध पलका १ पल होता है जिसके व्यवहारिक तोले ४
इसपलको मुष्टि-आम्र चतुर्थिका-प्रकुंच-षोडशी और बिल्वभी कहते हैं.
दोपलकी प्रसृति होती है जिसके व्यवहारिक तोले ८
इसप्रसृतिको प्रसृत भी कहते हैं.
२ प्रसृती की १ अंजली होती है जिसके व्यवहारिक तोले १६
इस अंजलीको कुडव-अर्धशराव और अष्टमानभी कहते हैं.
२ अंजलीकी १ मानिका जिसके व्यवहारिक तोले ३२
उस अंजलीको शराव और अष्टमिकाभी कहते हैं.
२ मानिकाका १ प्रस्थ जिसके व्यवहारिक तोले ६४
४ प्रस्थका १ आढक जिसके व्यवहारिक तोले २५६
उस आढकको भाजन और कंसपात्रभी कहते हैं.
४ आढकका १ द्रोण जिसके व्यवहारिक तोले १०२४
उस द्रोणको कलश=नल्वण-उन्मान घट और राशिभी कहते हैं.

२ द्रोणकाशूर्प जिसके शराव ६४ और व्यवहारिक तोले २०४८
इसशूर्पको कुंभभी कहते हैं.
२ शूर्पकी १ द्रोणी जिसके व्यवहारिक तोले ४०९६
इस द्रोणको वाँह और गोणीभी कहते हैं.
४ द्रोणीकी १ खारी जिसके व्यवहारिक तोले १६३८४
दोहजार पलका १ भार जिसके व्यवहारिक तोले ८०००
सौपलकी १ तुला जिसके व्यवहारिक तोले ४००

यदौषधंतुप्रथमंयस्ययोगस्यकथ्यते।
तन्नाम्नैवसयोगोहिकथ्यतेऽत्रविनिश्चयः॥

अर्थ-जिस प्रयोगमें जो प्रथम औषध हो उसी औषधके नामसे वह प्रयोग जानना जैसे पीपरपाक पेठापाक शुंठ्यादिकाढा प्रसारणी तेल इनमें पीपरपाकमें प्रथम पीपरलिखी है इसीसे पीपरपाक कहतेहैं शुंठचादि काढेमें प्रथम सोंठहैं अतएव शुंठ्यादि काढा कहताहै इसी प्रकार प्रसारणीतेलमें प्रथम प्रसारणी औषध कहीहै इसीसे उसका नाम प्रसारणी औषध कहीहै इसीसे उस का नाम प्रसारणी तेलहै इसी प्रकार औरभी उदाहरण जानने॥

नाल्पं हंत्यौषधंव्याधियथाल्पांबुमहानलम्।
दोषवच्चातिमात्रंस्याच्छस्यमत्युदकंयथा॥

अर्थ-थोडी औषध रोगको दूर नहीं करती जैसे थोडाजल बहुतसी अग्निको शांति नहीं करता उसी प्रकार बहुत औषधभी रोगको नहीं दूरकरे जैसे बहुत सा जल नवीन वृक्षादिकको नष्ट करदेता है॥

मात्रयाहीनयाद्रव्यंविकारंननिवर्त्तयेत्।
द्रव्याणामतियोगाच्चव्याधिस्संजायतेध्रुवम्॥

अर्थ-थोडी मात्रासे विकार दूर नहीं होता उसी प्रकार बहुत मात्राके खानेसे अनेक प्रकारकी व्याधि होतीहै अतएव दोष काल अवस्था आदिके अनुसार औषधीखाना चाहिये॥

भक्षणरूपमात्राकाअनियम।

स्थितिर्नास्त्येवमात्रायाः कालमग्निंवयोबलम्।
प्रकृतिंदोषदेशौचदृष्ट्वामात्रांप्रकल्पयेत्॥

अर्थ-औषधिकी मात्राके प्रमाणकी स्थिति नहीं अर्थात् निश्चय नहींहै अतएव वैद्य काल अग्नि अवस्था बल प्रकृति दोष और देश इनका विचार करके अपनी बुद्धिके अनुसार मात्राकी कल्पना करे ॥

औषधसेवनकाप्रमाणकलिंगपरिभाषाकरकेऊहतेहैं ।

यतोमन्दाग्नयोह्रस्वाहीनसत्वानराःकलौ ।
अतस्तुमात्रातद्योग्याप्रोच्यतेसुज्ञसंमता ॥

अर्थ-कलियुगमें मनुष्य मंदाग्निवाले छोटे और बलहीन हैं अत एव उनके उपयोगी तथा वैद्योंको मान्य ऐसी औषधीका प्रमाण कहताहूं ॥

कलिंगपरिभाषाकावजन ।

यवोद्वादशभिर्गौरसर्षपैः प्रोच्यतेबुधैः ॥ यवद्वयेनगुञ्जास्या त्रिगुंजोवल्लउच्यते ॥ माषोगुंजाभिरष्टाभिःसप्तभिर्वाभवे त्क्वचित् ॥ स्याच्चतुर्माषकैःशाणःसनिष्कष्टंकएवच ॥ गद्या णोमाषकैःषड्भिःकर्षःस्याद्दशमाषकः ॥ चतुःकर्षैःपलंप्रोक्तं दशशाणमितंबुधैः॥ चतुःपलैश्चकुडवंप्रस्थाद्याःपूर्ववन्मताः ॥

अर्थ-बारहसपेद सरसोंका १ यव होता है दोयवकी १ रत्ती ३ रत्तीका १ वल्ल आठरत्ती अथवा कहीं सातरत्तीका मासाहोता है. चार मासेका १ शाण उसको निष्क और टंकभी कहते हैं छः मासेका १ गद्याणक दशमासेका १ कर्ष चारकर्षका १ पल कि जिसके दशशाण अर्थात् ४० मासे होते हैं चार पलका १ कुडव होता है और प्रस्थ आढक आदिका प्रमाण पूर्वोक्त मागधीपरिभाषाके समान जानने अर्थात् ४ कुडवका १ प्रस्थ चार प्रस्थका एक आढक इसीप्रकार और भी जानो यह कलिंगपरिभाषा कही है ॥

अथ कृष्णात्रेयात्।

रजांसित्रीणिसिकताताभिःषोडशभिस्तथा ।
सर्षपश्चभवेद्गौरस्तेचाष्टौतण्डुलंविदुः ॥
तद्द्वयंधान्यकंमाषंतद्द्वयंरक्तिकामता ।
रक्तिकाद्वितयेनापिवल्लःप्रोक्तोविशारदैः ॥
चतुर्भिश्चंडिकातैःस्यादेवंमानपरंपरा ॥

अर्थ-तीनरजकी १ सिकता १६ सिकता ओंकी १ सपेदसरसों ८ सपेद सरसोंका १ चावल २ चावलोंका १धान्यक और माष २ धान्यककी १ रत्ती २ रत्तीका १ वल्ल ४ वल्लकी १ चंडिका होती है इसप्रकार मानपरंपरा जाननी यह कृष्णात्रेय ऋषिका मत है ॥

औषधोंकायुक्तायुक्तविचार।

नवान्येवहियोज्यानिद्रव्याण्यखिलकर्मसु।
विनाविडंगकृष्णाभ्यांगुडधान्याज्यमाक्षिकैः॥

अर्थ-संपूर्ण कार्यमें नवीन औषधोंकी योजनाकरनी चाहिये परंतु वायविडंग पीपर-गुड चावल घी और सहत ए छः पदार्थ पुराने ही लेने चाहिये ॥

गीलीऔषधग्रहणी।

वासानिंबपटोलकेतकबलाकूष्मांडकैंद्रीवरी
वर्षाभूकुटजाश्वकंदसहिताः सापूतिगंधाःस्मृताः॥
मांसीनागबलाकुरंटकपुरोहिंग्वार्द्रकंचैक्षवं
गृह्णीयात्सरसान्यमूनिनपुनःकुर्याद्विभागानिच॥

अर्थ-अडूसा नीमकीछाल परवल केतक पेठा इंद्रायण सतावर पुनर्नवा कूडा असकंद गंधप्रसारणी छड गुलसकरी कटसरैया गूगल हींग अदरख और ईख इतनी वस्तु सरस लेय परंतु गीली जानके दूनी न लेवे जितनी लिखी हो उतनी लेवे ॥

साधारणऔषधोंकीयोजना।

जीर्णमेवप्रशस्तंस्यात्तांबूलंकांजिकंतथा॥
शुष्कंनवीनद्रव्यंचयोज्यंसकलकर्मसु॥
आर्द्रंचद्विगुणंयुंज्यादेषसर्वत्रनिश्चयः॥

अर्थ-पान सुपारी और कांजी ये पुरानेही उत्तम होते हैं। सर्वकार्यमें उक्तविडंग और पानसुपारी आदिको त्यागकर सब वस्तु नवीन और सूखी लेनाचाहिये यदी वह औषध गीली होय तो वाँसे आदिको त्याग कर बाकी की औषध दुनी लेवे यह सर्वत्र निश्चय है ॥

अनुक्तकालादिकोंकीयोजना।

कालेऽनुक्तेप्रभातंस्यादंगेऽनुक्तेजटाभवेत्।

भागेनुक्तेतुसात्म्यंस्यात्पात्रेनुक्तेचमृन्मयम् ॥

अर्थ-जिसप्रयोगमें कालनहीं कहाहो उसजगेप्रातःकाल लेना चाहिये और जहां औषधीका अंग न कहा हो तहां औषधीकी जडलेवे और जिसप्रयोगमें भाग न कहा हो तहां समान भाग लेवे. जिसजगे पात्र न कहाहो वहां पर मिट्टीका पात्रलेना चाहिये ॥

पात्रोक्तौचापिमृत्पात्रमुत्पलेनीलमुत्पलम् ।
मूत्रेगोमूत्रमादेयंविशेषोयत्रनेरितः ॥

अर्थ-सामान्यता करके पात्र शब्द करके मिट्टीका पात्रलेवे उत्पल शब्द करके। नीलकमललले-मूत्रशब्द से गोमूत्रलेना चाहिये यह जहां विशेष नाम न कहा हो तहांकरे ॥

पयःसर्पिःप्रयोगेषुगवामेवप्रशस्यते ।
स्त्रियश्चतुष्पदेग्राह्याःपुमांसोविहगेषुच ॥
जांगलानांवयस्थानांचर्मरोमनखादिकम् ॥
हित्वाग्राह्यंपूतमांसंसास्थिकंखंडशःकृतम् ॥

अर्थ-जहां केवल दूध घी लिखा हो तहां गौका घी दूध लेवे। चौपाए जानवरोंमें स्त्रीग्राह्य है· जैसे गौभैंस और पखेरुओंमें पुरुष लेना जैसे कबूतर चिडा जंगली जीवोंमें जवान जीवले उसके चर्म नख रोम आदिको त्याग करके हड्डी सहितटुकडे २ करके मांसलेना चाहिये ॥

पक्त्व्यमाजमांसंचविधिनाघृततैलयोः ॥
हित्वास्त्रींपुरुषंचापिक्लीबंतत्रापिदापयेत् ॥

अर्थ-स्त्री पुरुषकी त्याग नपुंसक बकरालेकर उसके मांसको घी तेलमें भूने यदि नपुंसक बकरा न मिले तो वंध्या बकरी लेवे ॥

शृगालबर्हिणोः पाके पुमांसंतत्रदापयेत् ॥
मयूरी जम्बुकीछागीवीर्यहीनास्वभावतः ॥

अर्थ-स्यार और मोरके पाकमें पुरुष लेवे-क्योंकि मोरनी स्यारनी और बकरी ये स्वभावसे ही वीर्यहीन होती हैं ॥

स्त्रीणांतीक्ष्णंगवांमूत्रंनतुपुंसांविधीयते ॥
पित्तात्मिकाः स्त्रियोयस्मात्सौम्यास्तुपुरुषामताः ॥

क्षीरमूत्रपुरीषाणिजीर्णाहारेतुसंहरेत् ॥

अर्थ–यदि गोजातिकामूत्रलेना होयतो स्त्रीजातिकालेवे इसका कारण यह है कि स्त्री गोजातिका मूत्र तीक्ष्ण और पित्तात्मक होता है. एवं पुरुषजातिका मूत्र शीतल और तीक्ष्णता रहित होता है । यदि दूध, मूत्र और गोबर लेना होवे तो जब पशुका आहार पचजावे तब लेय अजीर्ण वालेका न लेय ॥

विशेषकथन ।

एकमप्यौषधंयोगेयस्मिन्यत्पुनरुच्यते ।
मानतोद्विगुणंप्रोक्तंतद्द्रव्यंतत्वदर्शिभिः ॥

अर्थ–प्रयोगमें एक औषध दोवार आवे तो वह औषध वैद्यको दुगनी डालनी चाहिये ॥

औषधोंकेहीनवीर्यहोनेमेंप्रमाण ।

गुणहीनंभवेद्वर्षादूर्ध्वंतद्रूपमौषधम् ॥ मासद्वयात्तथाचूर्णंहीनवीर्यत्वमाप्नुयात् ॥ हीनत्वंगुटिकालेहौलभेतेवत्सरात्परम् । हीनाःस्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकास्तथा ॥ ओषध्योलघुपाकाःस्युर्निर्वीर्यावत्सरात्परम् ॥ पुराणाःस्युर्गुणैर्युक्ताआसवाधातवोरसाः ॥

अर्थ–एक वर्षके पश्चात् औषधोंका तेज और उनके गुणहीन हो जाते हैं उनमेंभी दोमहीनेके बाद चूर्ण हीनवीर्य होता है तथा गुटिका और अवलेह ये एक वर्षके उपरांत हीनवीर्य होते हैं तथा घृत और तैलादिक ये चारमहीनेसे हीनवीर्य होते हैं तथा औषधी हलके पाकवाली वर्षके पश्चात् निर्विर्य हो जाती है एवं आसव (कुमार्यासव द्राक्षासवआदि) धातु (सोने चांदी रांगा लोहा आदि की भस्म) और रस (चंद्रोदयादि) ये जितने पुराने होवें उतनेही गुणमें उत्तम होते हैं ॥

व्याधेरनुक्तंयद्द्रव्यं गणोक्तमपितत्त्यजेत् ।
अनुक्तमपियुक्तंयद्युज्यतेतत्रतद्बुधैः ॥

अर्थ–रोगमें चूर्ण और काढे आदि की योजना गणकरके करते समय यदि उसगणमें एक दो औषध रोगके विरुद्ध होवें तो वैद्य त्यागदेवे और जिसजगे गुणदायक औषध गणमें नहीं कही हो तो उसको वैद्य स्वबुद्धिसे मिलाय देवे ॥

देशभेदकर्केऔषधोंकेभेद ।

आग्नेयाविंध्यशैलाद्याः सौम्येहिमगिरिर्मतः ॥
अतस्तदौषधानिस्युरनुरूपाणिहेतुभिः ॥
अन्येष्वपिप्ररोहंतिवनेषूपवनेषुच ॥

अर्थ-विंध्याचलपर्वत आदिकी औषध उष्णवीर्य होती है. और हिमालय पर्वत आदिकी सौम्य (शीतल) औषधी होती हैं । अतएव जैसी २ पृथ्वी होती है उसी २ प्रकारकी औषधी और २ वनोंमें तथा उपवनोंमें होती है उनको विचारकर वैद्य ग्रहण करे ॥

औषधीलानेकाप्रकार ।

गृह्णीयात्तानिसुमनाः शुचिःप्रातःसुवासरे ॥
आदित्यसन्मुखोमौनीनमस्कृत्याशिवंहृदि ॥
साधारणधराद्रव्यंगृह्णीयादुत्तराश्रितम् ॥
वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोषरमार्गजा ॥
जंतुवह्निहिमव्याप्तानौषधीकार्यसिद्धिदा ॥

अर्थ-औषधी लानेके समय प्रातःकाल उठकर स्वस्थचित्त करके पवित्रहो उत्तमदिन और मुहूर्तमें सूर्यके सन्मुख खडाहोके नमस्कार करे, और हृदयमें शिवका ध्यान करके और मौनधारण करके जो औषध लानीहो उसके समीप जायकर औषधीके उत्तरके तरफकी छाल अथवा जड खोदके लावे

जो औषध सर्पकी वांवीके ऊपरहो, दुष्ट पृथ्वीमेंहो, जलमय पृथ्वीमें हो, श्मसान ऊखर और मार्ग (रास्ते) में हो, तथा जिसको कीडे खाय गयेहों अग्निसे या धूपसे झूलसगई हो तथा जाडेकी मारीहो ऐसी औषधको न लेवे क्योंकि ऐसी औषध कार्यकर्त्ता नहीं होती (परंतु यहां हिंदुस्थानमें वैद्य अहेरिया वा पसारी आदिसे औषध लेतेंहैं भला वो इस बातको क्या जाने कि ऐसी जगेसे औषध लेना और ऐसी जगेसे नलेना दूसरे देखो शास्त्रवैद्यकोही आज्ञा देताहै कि आप जायकर औषध लावे परंतु पश्चात्तापहै यहांके वैद्य औषधके जाननेमें सर्वथा मूढहैं) ॥

ऋतुविशेषकरकेरोगविशेषोंपरऔषधलेनेकाकाल ।

शरद्यखिलकार्यार्थंग्राह्यंसरसमौषधम् ।
विरेकवमनार्थंचवसंतांतेसमाहरेत् ॥

अर्थ-आश्विन और कार्तिक इन दो महीनोंमें सर्व औषधी रससे भरी

होतीहैं अतएव सर्व कार्यके वास्ते इन्हीं दो महीनोंमें औषधी लेना चाहिये, और दस्त करानेको तथा वमनकेलिये वसंतांत (वैशाख और ज्येष्ठ) इन दो महीनोंमें औषधी वनसे लावे ॥

औषधविशेषकाअंगग्रहण।

अतिस्थूलजटायाः स्युस्तासांग्राह्यास्त्वचोबुधैः।
गृह्णीयात्सूक्ष्ममूलानिसकलान्यपिबुद्धिमान् ॥

अर्थ-जिस वृक्षकी जड अत्यंत स्थूलहो उस वृक्षकी छाल लेय जैसे नीम, वड, जामुन आदि जानना और जिस वनस्पतिकी जड छोटीहो उस रूखडीकी जडलेय तथा सर्व अंग (जड फल पत्ते आदि) लेवे जैसे कटेरी गोखरू धमासा अडूसा आदि जानना तथा कितने वैद्योंका यह मतहै कि ऐसी २ छोटी वनस्पतियोंकी जडही लेना।

न्यग्रोधादेस्त्वचोग्राह्याः सारंस्याद्बीजकादितः।
तालीसादेश्चपत्राणिफलंस्यात्त्रिफलादितः
धातक्यादेश्चपुष्पाणिस्नुह्यादेः क्षीरमाहरेत् ॥

अर्थ-वड आदि शब्द करके पापरी, जामुन, आम और पीपर इत्यादिकोंकी छाल लेना चाहिये, बीजकवृक्ष आदि शब्दसे खैर, महुआ इनकासार लेना जैसे बिजेसार, खैरसार लेवे तालीस आदि शब्द करके तमालपत्र, ग्वारपाठा, नागरवेल इत्यादिकोंके पत्ते लेना चाहिये त्रिफला आदि शब्दसे सुपारी, आम, वेर इत्यादिकोंके फललेना चाहिये धाय आदि शद्बसे गुलाब, केवडा आदिके फूल लेवे थूहर आदि करके आक, तिधारा, थूहर इत्यादिकोंका दूधलेय इस प्रकार औषधी लेना चाहिये ॥

क्वचिन्मूलंक्वचित्कंदः क्वचित्पत्रंक्वचित्फलम्।
क्वचित्पुष्पंक्वचित्सर्वंक्वचित्सारः क्वचित्त्वचः ॥

अर्थ-किसीकी जड किसीका कंद किसीके फल किसीके पत्ते किसीके फूल किसीका सर्व अंग और किसीका सार अथवा गोंद वैद्यको यथायोग्य लेना चाहिये ॥

चित्रकःसूरणोनिंबोवासाचत्रिफलाक्रमात्।
धातकीकंटकारीचखदिरः क्षीरपादपः ॥

अर्थ-चित्रकलीछाल, जमीकंद नीम अडूसेके पत्ते हरड वेहडा आमला इनके फल, धायकेफूल, कटेरीका सर्वांग, खैरकासार, इसप्रकारलेना चाहिये

क्वचिन्निंबस्यगृह्णीयात्पत्राभावेत्वचामपि।
बालंफलंतुबिल्वस्यपक्कमारग्वधस्यतु ॥

अर्थ–कहीं नींमके पत्ते न मिलनेसे छाललेना चाहिये बेलका कोमल फल लेवे और अमलतासकी पक्की फलीलेना चाहिये ॥

पक्कपदार्थोंकोफिरपक्ककरनेमेंदोष।

घृतंतैलंचपानीयंकषायंव्यंजनादिकम्।
पक्त्वाशीतीकृतंतप्तंतत्सर्वस्याद्विषोपमम् ॥

अर्थ–घृत तेल पानी काढा भोजनके पदार्थ (दालभात रोटी आदि) को एकवार सिजायकर जब शीतल होजाय तो फिर गरम न करे पुनः गरम करनेसे ये विषके समान होजाते हैं ॥

द्रव्योंकीपरीक्षा।

सूक्ष्मास्थिर्मांसलापथ्यासर्वकर्मणिपूजिता।
क्षिप्तांभसिनिमज्जेद्याभल्लातक्यभयोत्तमा ॥

अर्थ–जितनी बारीक तथा ऊपरकी त्वचामोटीहो वो छोटीहरड सर्व कार्यमें अति उत्तमहै. और जो जलमें गेरनेसे डूबजावे वो हरड और भिलावां उत्तमहै ऐसा जानना ॥

वाराहीकंदसंचरऔरसैंधवइनकीपरीक्षा।

वराहमूर्धवत्कंदोवाराहीकंदसंज्ञितः।
सौवर्चलंतुकाचाभंसैंधवंस्फटिकप्रभम् ॥

अर्थ–सूकरके मस्तक समान जो कंद होय वोवाराहकंद, जो कांचके समान चमके वो संचरनोन, और स्फटिकमणिके समानचमके वो सैंधानोन उत्तम होता है ॥

सुवर्णमाक्षिकतथारौप्यमाक्षिककीपरीक्षा।

सुवर्णछविकंज्ञेयंस्वर्णमाक्षिकमुत्तमम्।
उडुपुष्पप्रतीकाशामनोह्वाचोत्तमोत्तमा ॥

सोंनेके रंगका सुवर्णमाक्षिक उत्तम होताहै, और जो चंद्रमाके समान स्वच्छ और सपेद होय वो रौप्यमाक्षिक उत्तम जानना ॥

शिलाजीतपरीक्षा।

श्रेष्ठंशिलाजतुज्ञेयंयत्क्षिप्तंनविशीर्यते।

तोयपूर्णेकांस्यपात्रेप्रतानेनविवर्द्धते ॥

अर्थ–वो शिलाजीत उत्तम जाने जो जलमें गेरनेसे फूटे नही किंतु-कासीके पात्रमें जलभरके शिलाजीत डालेतो तारसे छूटने लगें वो उत्तम है

कपूर इलायची औरचंदनकीपरीक्षा ।

कर्पूरस्तुवरस्निग्धएलासूक्ष्मफलावराः ।
श्वेतचंदनमत्यंतंसुगंधिगुरुपूजितम् ॥

अर्थ–कपूर कषेला और चिकना उत्तम होता है इलायची छोटी सुगंधदार उत्तम होतीहै सपेदचंदन अत्यंत सुगंधदार और भारी उत्तम होता हैं ॥

रक्तचंदनपरीक्षा ।

रक्तचंदनमत्यंतंलोहितंप्रवरंमतम् ।
काकतुंडनिभःस्निग्धोगुरुःश्रेष्ठोगुरुर्मतः ॥

अर्थ–जो रक्तचंदन अत्यंत काला तथा कौएके मुखमांस समान लाल हो और चिकना तथा भारी हो वह उत्तम है ॥

देवदारुऔरसरलकीपरीक्षा ।

सुगंधिलघुसूक्ष्मंचसुरदारुवरंमतम् ।
सरलंस्निग्धमत्यर्थंसुगंधिचगुणावहम् ॥

अर्थ–सुगंध, हलका, सूक्ष्म, ऐसा देवदारु। और चिकना तथा सुगंध-वाला सरल बहुत उत्तम गुणकारी जानना ॥

दारुहल्दी और जायफलकीपरीक्षा ।

अतिपीताप्रशस्तातुज्ञेयादारुनिशाबुधैः ।
जातीफलंगुरुस्निग्धंसमंशुभ्रेतरद्वयम् ।

अर्थ–अत्यंत पीली ऐसी दारुहल्दी उत्तम होती है और जायफल भारी चिकना–गोल और काला उत्तम होता है ॥

दाखकीपरीक्षा ।

मृद्वीकासोत्तमाज्ञेयायास्याद्गोस्तनसन्निभा ।
करमर्दफलाकारामध्यमासाप्रकीर्त्तिता ॥

अर्थ-गौके थनों के समान जो दाखहो वो उत्तम जानना और करोंदे के फलके समान हो वह मध्यमजानना ।

खांड और सहतकीपरीक्षा ।

खंडंतुविमलंश्रेष्ठंचन्द्रकांतिसमप्रभम् ॥
गवाज्यसदृशंरुच्यंगंधंमधुवरंमतम् ॥

अर्थ-मिश्री चंद्रमाके कांतिके समानसपेदवो उत्तमहोती है (यह जोधपुरमें होती है) और गौके घृतके समान रुचिकारी-गंधवाला ऐसा सहत उत्तम जानना

स्वभावसैं हितकारीद्रव्य ।

शालीनांलोहितःशालिःषष्टिकेषुचषष्टिका ।
शूकधान्येष्वपियवोगोधूमःप्रवरोमतः ॥

अर्थ-सर्वशालीयोंमें लालशाली (धान्य विशेष) और सांठियोंमें सांठी-चावल उत्तम होतेहैं. शूकधान्योंमें गेंहू और जौ उत्तम होते हैं ॥

शिंबीधान्योंमेंउत्तमधान्य ।

शिंबीधान्येवरोमुद्गोमसूराश्चाढकीतथा ।
रसेषुमधुरः श्रेष्ठोलवणेषुचसैंधवम् ।

अर्थ-फलीके धान्योंमें मूंग-मसूर और अरहर उत्तम होतीहै रसोंमें मधुर रस श्रेष्ठहै. नोंनमें सैंधानिमक उत्तम जानना ॥

उत्तमफल ।

दाडिमामलकंद्राक्षाखर्जूरंचपरूषकम् ।
राजादनंमातुलुंगंफलवर्गेप्रशस्यते ॥

अर्थ-अनार आमले. दाख-छुहारे फालसे-खिन्नी-और बिजोरा ये फल वर्गोंमें उत्तम जानना ॥

पत्रफल औरकंद इन शाकोंमेंउत्तम ।

पत्रशाकेषुवास्तूकंजीवंतीपोतिकावरा ॥
पटोलंफलशाकेषुकंदशाकेषुसूरणम् ॥

अर्थ-पत्तेके शाकमें वथुएका साग, डोडीकासाग, और पोयकासाग, उत्तम है । फलके सागोंमें परवलका साग उत्तम होताहै । कंदोंमें जमी कंदका साग उत्तम होता है ॥

मृग पक्षीऔरमछलीइनमेंउत्तम ।

एणः कुरंगो हरिणो जंघालेषु च शस्यते ।
पक्षिणांतित्तिरिर्लावोवरोमत्स्येषुरोहितः ॥

अर्थ–जंघाल (दौडनवाले) पशुओंमें एण. कुरंग और हरिण ये उत्तमहोतेहैं पक्षियोंमें तीतर और लवा उत्तम होतेहैं एवं मछलियोंमें रोहूमछली उत्तम होतीहै ॥

हरिणोंकेभेद ।

हरिणस्ताम्रवर्णःस्यादेणःकृष्णस्तथामतः ।
कुरंगस्ताम्रउद्दिष्टो हरिणाकृतिकोमहान् ॥

अर्थ–लालवर्णके मृगको हरिणकहते हैं काले रंगकेका एण तथा कुछ-लाल और शरीरमें भारीहो उसको कुरंग कहतेहैं येहरिणोंके भेदजानने

जल, दूध घृत, तेल, इक्षुविकारइनमें उत्तम ।

जलेषुदिव्यंदुग्धेषुगव्यमाज्येषुगोद्भवम् ।
तैलेषुतिलजंतैलमैक्षवेषुसिताहिता ।

अर्थ–जलोंमें मेघकाजल–दूध और घृतोंमें गौकादूध घी-तेलोंमें तिलका तेल-तथा ईखके सर्व पदार्थों में मिश्रीउत्तम होती है ॥

स्वभावसेअहितकारीद्रव्य ।

शिंबीषुमाषान्ग्रीष्मतौंलवणेष्वौखरंत्यजेत् ।
फलेषुलकुचंशाकेसार्षपंनहितंमतम् ॥

अर्थ–दो दलके अन्नोंमें उडद त्याज्य है, निमकोंमें रेहूका निमक और फलोंमें छोटा वडहर और सागोंमें सरसोंका साग त्याज्य है ॥

गोमांसंग्राम्यमांसेषुनहितामहिषीवसा ॥ मेषीपयःकुसुंभस्यतैलंत्याज्यंचफाणितम् ।इक्षुरसः परिपक्वोयोर्धघनःफाणितंतद्धि॥

अर्थ–मांसोंमें गौका मांसत्याज्य है, भैंसकी वसात्याज्य हैं, दूधोंमें मेढीका दूध, तेलोंमें कुसुमका तेल त्याज्य है, ईखका रसनिकाले जब पकानेसे आधारहजावे उसको फाणितकहते हैं वो राव अपथ्य है ॥

संयोगविरुद्धद्रव्य ।

मत्स्यमानूपमांसंचदुग्धयुक्तंविवर्जयेत् ।

कापोतंसार्षपस्नेहभर्जितंपरिवर्जयेत् ॥

अर्थ–मछली और जलसमीप जीवोंकामांसदूध मिलायके नखावे कबूतरकामांस सरसोंके तेलमें भूनके नखाय क्योंकिये संयोग विरुद्धहै॥

मत्स्यानिक्षोर्विकारेणतथाक्षौद्रेणवर्जयेत् ।
सक्तून्मांसपयोयुक्तानुष्णैर्दधिविवर्जयेत् ॥

अर्थ–ईखके पदार्थसे मछलीका खाना अथवा सहतके साथ खाना निषेध है सत्तू मांस और दूध इनके साथभी मछली नखाय तथा गरम पदार्थके साथ दही नखावे ॥

उष्णैर्दध्यंबुनाक्षौद्रंपायसंकृसरान्वितम् ।
रंभाफलंत्यजेत्तक्रंदधिबिल्वफलान्वितम् ॥

अर्थ–उष्णपदार्थ दहीके साथ, तथा दूध खिचडीके साथ, सहतजलके साथ, केलेकी फली छांछके साथ और बेलका फल दहीकेसाथ नभक्षणकरे

दशाहमुषितंसर्पिःकांस्येमधुघृतेसमम् ।
कृतान्नंचकषायंचपुनरुष्णीकृतंत्यजेत् ॥

अर्थ–घी कांसेके वासनमें दसदिन धरारहने से त्याज्य है, सहत और घी बराबरका मिलाहुआत्याज्य है भोजनका अन्न और काढा दूसरे बार गरमकराहुआ त्याज्य है ॥

एकत्रबहुमांसानिविरुध्यंतेपरस्परम् ।
मधुसर्पिर्वसातैलपानीयानि यथा तथा ॥

अर्थ–एकत्रकरे हुए अनेक पशुपक्षियोंका मांस त्याज्य है-और सहत, घृत वसा–तेल–और जल एकत्रकरे हुए अपथ्य होते हैं अतएव इनको नखाय ॥

औषधग्रहणमेंसंकेत ।

लवणंसैंधवंप्रोक्तंचंदनंरक्तचंदनम् ॥ चूर्णलेहासवस्नेहाः साध्याधवलचंदनैः॥ कषायलेपयोः प्रायोयुज्यतेरक्तचंदनम् ॥ अंतःसंमार्जनेज्ञेयाह्यजमोदायवानिकाः॥बहिःसैवचविद्वद्भिर्विज्ञातव्याजमोदिका ॥ पयःसर्पिःप्रयोगेषुगव्यमेवहिगृह्यते ॥ सकृद्रसोगोमयजोमूत्रंगोमूत्रमुच्यते॥

अर्थ–औषधि ग्रहणमें जहां सामान्यकरके लवण कहाहो तहाँ सैंधानिमक लेना और चंदन कहने से काढेमें लालचंदन लेना तथा चूर्ण, घृत तैलादि-अवलेह-और आसवमें सपेदचंदन डालना-परंतु लेपमें लाल चंदनडालना-भीतरकीशुद्धि करनेवाली औषधोंमें जहां अजमोद लिखा हो तहां अजवायन डालना और बाहरकी शुद्धिमें अजमोदके स्थानमे अजमोदही लेना-दूध घृतके प्रयोगमें गौका दूधही लेना-गोबरकारस और मूत्रके स्थानमें गोमूत्र लेनाचाहिये ॥

अंतः संमार्जनेयोज्यंवचास्थानेकुलिंजनम् ।
बहिः संमार्जनेसैवप्रयोक्तव्यामनीषिभिः ॥

अर्थ–अंतर्गतकी शुद्धिमें वचके स्थानमें कुलिंजन डाले और बाहर लेपादिकोंमें वचके स्थानमें वचही लेना चाहिये ॥

औषधभक्षणमेंकाल ।

भैषज्यमभ्यवहरेत्प्रभातेप्रायशोबुधः ।
कषायांश्चविशेषेण तत्रभेदस्तुदर्शितः ॥

अर्थ–वैद्य रोगीको बहुधाकरके औषध प्रातःकालमें भक्षण करावे तथा स्वरस कल्क-काढे-फांट-हिम होयतो विशेषकरके प्रातःकालमें पिवावे. इसमेंभी कालका भेद वक्ष्यमाणप्रकार करके कहते हैं ॥

औषधभक्षणकेपांचकाल ।

ज्ञेयःपंचविधःकालोभैषज्यग्रहणेनृणाम्
किंचित्सूर्योदयेजातेतथादिवसभोजने ।
सायंतनेभोजनेचमुहुश्चापितथानिशि ॥

अर्थ–मनुष्योंको औषध भक्षणके विषयमें पांचकाल हैं उनको कहते हैं, किंचित्सूर्योदयहोने पर औषध लेना वह प्रथमकाल है, तथादिनमें भोजनके समय औषधलेना द्वितीयकाल, सायंकालमें व्यारीके समय औषधलेना तृतीयकाल, वारंवार औषधलेना वहचतुर्थ काल है, और रात्रिमें औषधलेना वो पंचमकाल है इसप्रकार औषधसेवनके पांचकालकहे हैं अबइनको क्रमसे कहते हैं ॥

प्रथमकाल ।

प्रायः पित्तकफोद्रेके विरेकवमनार्थयोः ।
लेखनार्थेच भैषज्यं प्रभातेनान्नमाहरेत् ॥

एवंस्यात्प्रथमःकालोभैषज्यग्रहणेनृणाम् ॥

अर्थ–पित्त और कफ इनका प्रकोप होनेसे पित्तको विरेचन और कफको वमन-तथा लेखन कहिये पतेलीकरण इनविषयोंमें प्रातःकाल औषध लेवे।परंतु प्रातःकाल रोगीको अन्ननदेवे यह औषधग्रहणमें प्रथमकालकहा

द्वितीयकाल।

भैषज्यंविगुणेपानेभोजनाग्रेप्रशस्यते ॥ अरुचौचित्र भोज्यैश्चमिश्रंरुचिरमाहरेत् ॥ समानवातेविगुणेमंदेग्ना वग्निदीपनम् ॥दद्याद्भोजनमध्येचभैषज्यंकुशलोभिषक्॥ व्यानकोपेचभैषज्यंभोजनान्तेसमाहरेत् ॥ हिक्काक्षेपक कंपेषुपूर्वमंतेचभोजनात् ॥ एवंद्वितीयकालश्चप्रोक्तोभै-षज्यकर्मणि ॥

अर्थ–गुदासंबंधी वायुके कुपित होनेमें भोजनके कुछ थोडी देरपहले औषध खाय । और अरुचि होनेसे अनेक प्रकारके अन्न तथा अनेक प्रकारके रुचिकारी पदार्थोंके साथमिलायके वैद्य रोगीको औषध देवे। और नाभि संबंधी वायुके कुपित होनेसे तथा मंदाग्निहोनेमें जैसे अग्निप्रदीप्त होवे ऐसी औषधभोजनके मध्यमें वैद्यरोगीको देवे। तथा सकल देह व्यापी व्यानवायुके कुपित होनेसे भोजनके अंतमे औषध भक्षण करावे। और हिचकी-तथा आक्षेपक वायु एवं कंपवायु इनका कोप होनेसे भोजनके प्रथम और अंतमें वैद्य रोगीको औषधी भक्षण करावे इसप्रकार औषध भक्षणमें दूसरा कालकहा ॥

तृतीयकाल।

उदानेकुपितेवातेस्वरभंगादिकारिणि ॥
ग्रासेग्रासांतरेदेयंभैषज्यंसांध्यभोजने ॥
प्राणेप्रदुष्टेसांध्यस्यभक्षस्यान्तेचदीयते ॥
औषधंप्रायशोधीरैःकालोऽयंस्यात्तृतीयकः ॥

अर्थ–कंठ संबंधी उदान बातके कोपहोनेसे जो प्रगटहुएस्वरभंगादि-रोग उनमें सायंकालमें भोजनके समय-ग्रासके साथ औषध देवे अथवा दो

१ वातादि दोषोंको स्नेहादिक योगकरके पतले करना उसीप्रकार स्थूल मनुष्यको सहतपानी इत्यादि देकर कृश करना ॥

ग्रासोंके बीचमें देय और हृदय स्थित प्राण पवनके कुपित होनेसे प्रायः सायंकालके भोजनके अंतमें वैद्य औषधी देवे इस प्रकार औषधि भक्षणका तीसरा कालकहा ॥

चतुर्थकाल ।

मुहुर्मुहुश्चतृट्छर्दिहिक्काश्वासगरेषुच ।
सान्नंचभेषजंदद्यादितिकालश्चतुर्थकः ॥

अर्थ-प्यास वमन और हिचकी श्वास विषदोष ये रोग होनेसे वारं, वार अन्नके साथ औषध भक्षण करावे श्लोकमें जो चकारहै इस्से अन्न रहितभी भक्षण करे ऐसा जानना यह औषध भक्षणका चतुर्थ कालकहा

पंचमकाल ।

ऊर्ध्वजत्रुविकारेषुलेखनेबृंहणेतथा ॥
पाचनंशमनंदेयमनन्नंभेषजंनिशि ॥
इतिपंचमकालःस्यात्प्रोक्तोभैषज्यकर्मणि ॥

अर्थ-नाडके ऊपरके भागोंके विकार (कर्ण नेत्र मुख नासिका आदि रोगों) में तथा प्रवृद्धवातादि दोषोंके घटानेमें और अति क्षीण दोषोंके बढानेके वास्ते रात्रिमें पाचन रूप और शमनरूप औषध अन्नरहित भक्षणकरे इसप्रकार औषध भक्षणका पांचवांकालकहा ॥

औषधिप्रतिनिधि ।

कदाचिद्द्रव्यमेकंवायोगेयत्रनलभ्यते ।
तत्तद्गुणयुतंद्रव्यंपरिवर्तेनगृह्यते ॥

अर्थ-कदाचित् किसी योगमें एक औषध न मिलेतो उसी उसीके समान गुणकारी दूसरी औषध तत् प्रयोगमें लेना चाहिये ॥

वज्राभावेतुवैक्रान्तंस्वर्णाभावेतुमाक्षिकम् ।
हेममाक्षिकजंसत्वंमतंहेमसमंगुणैः ॥

अर्थ-हीराके अभावमें वैक्रांत (कांसुला) लेवे सुवर्णके अभावमें सुवर्ण माक्षिकले और जहां चाँदी नही मिल सकती हो वहांपर रूपामाखी लेवे॥

विमलामाक्षिकंज्ञयंध्रुवंरजतवद्गुणैः ।
मुक्ताऽभावेक्षिपेन्नूनंमुक्ताशुक्तिंचतद्गुणाम् ॥

अर्थ--तथा माक्षिकका भेद विमला है उसको रूपेकी प्रतिनिधिमें

लेवे जहां मोती न मिलती हो तो उसकी एवजमें मोतीकी सीप डाले तो मोतीके तुल्य गुण करे ॥

अभावेऽभ्रकसत्वस्यकान्तलोहंप्रयोजयेत् ।
कान्ताभावेतीक्ष्णलोहमित्युक्तंरसदर्पणे ॥

अर्थ–जहां अभ्रकसत्व नमिले तहां कांतलोहकी भस्मलेवे, यदि कांतलोहकी भस्मभी न मिले तो खेरी लोहकी वा गजवेललोहकी भस्म लेवे ऐसा रसदर्पण ग्रंथमें लिखाहै ॥

चित्रकाभावतोदंतीक्षारः शिखिरिजोऽथवा ॥
अभावेधन्वयासस्यप्रक्षेप्तव्यादुरालभा ॥

अर्थ–चित्रकके अभावमें दंती लेवे अथवा ओंगाका क्षारलेवे जवासेके अभावमें धमासालेना चाहिये ॥

यदिनस्याद्दारुनिशातदादेयानिशाबुधैः ॥
रसांजनस्याभावेतुसम्यक्दार्वीप्रयुज्यते ॥

अर्थ–यदि दारुहल्दी न मिले तो उसके पलटेमें हल्दीही डालना और रसोत नमिले तो उसके पलटेमे दारुहलदी लेना चाहिये ॥

चविकागजपिप्पल्यौपिप्पलीमूलवत्स्मृते ।
अभावेसोमराज्यास्तुप्रपुंनाटफलंस्मृतम् ॥

अर्थ–पीपरामूलके अभावमें चव्य अथवा गजपीपर लेवे और बावचीके अभावमें पवाडके बीजलेने चाहिये ॥

पौष्कराभावतः कुष्ठंतथालांगल्यभावतः ।
स्थौणेयकस्यचाभावेभिषग्भिर्दीयतेगदे ॥

अर्थ–पुहकर मूलके कलिमारीके और ग्रंथिपर्णी इनके अभावमें वैद्यकुष्ठलेवे

जातीपुष्पंनयत्रास्तिलवंगंतत्रदीयते ।
अर्कपर्णादिपयसोह्यभावेतद्रसोमतः ॥

अर्थ–जहां जायफल न मिले उसके स्थानमें लौगडाले जहां आकके पत्तेका दूधकहा है यदि वह न मिले तो उसमें आकके पत्तोंका रस काम में लाना चाहिये ॥

बकुलाभावतोदेयंकल्हारोत्पलपंकजम् ।
नीलोत्पलस्याभावेतुकुमुदंदेयमिष्यते ॥

अर्थ-मौलसरीके अभावमें कल्हार (लालकमल) अथवा नीलकमल और नीलकमलके अभावमें कुमुद (रात्रिमें फुलनेवाला कमल) लेवे ॥

अहिंस्रायाअभावेतुमानकंदः प्रकीर्त्तितः ।
लक्ष्मणायाअभावेतुनीलकंठशिखामता ॥

अर्थ-अहिंस्रा (थूहरकाभेद) इसके अभावमें मानकंदलेना और लक्ष्मणा रूखडीके न मिलनेपर मोर शिखा (बूटी) वैद्यको लेना चाहिये ॥

तगरस्याप्यभावेतुकुष्ठंदद्याद्भिषग्वरः ।
मूर्वाभावेत्वचोग्राह्याजिंगिनीप्रभवाबुधैः ॥

अर्थ-तगरके अभावमें कूठ औषध लेवे और पूर्वा औषधके न मिलनेसे मजीठलेना चाहिये ॥

भार्ग्यभावेतुतालीसंकंटकारिजटाथवा ।
रुचकाभावतोदद्याल्लवणंपांशुपूर्वकम् ॥

अर्थ-भारंगीके अभावमें तालीसपत्र लेवे अथवा कटेरीकी जडलेवे और काले निमकके अभावमें खारी निमक लेना चाहिये ॥

सौराष्ट्र्यभावतोदेयास्फटिकातद्गुणाजनैः ।
तालीसपत्रकाभावेस्वर्णतालीप्रशस्यते ॥

अर्थ-सोरठीमाटीके अभावमें फिटकरी लेवे और तालीसपत्रके अभावमें स्वर्णतालीसपत्र लेना चाहिये ॥

अभावेमधुयष्ट्यास्तुधातकींतुप्रयोजयेत् ।
अम्लवेतसकाभावेचुक्रंदातव्यमिष्यते ॥

अर्थ-मुलहटीके अभावमें धायके फूल लेवे जहां अमलवेत न मिले उस जगे चूकालेना चाहिये ॥

लवंगकुशुमंदद्यान्नखस्याभावतः पुमान् ।
कस्तूर्यभावेकंकोलंक्षेपणीयंविदुर्बुधाः ॥

अर्थ-नख (सुगंधद्रव्य) के अभावमें लौंगलेना और कस्तूरीके अभावमें कंकोल लेना ऐसा बुद्धिमान् वैद्योंने कहा है ॥

द्राक्षायदिनलभ्येतप्रदेयंकाश्मरीफलम् ।
तयोरभावेकुसुमंमधूकस्यमतंबुधैः ॥

अर्थ- जहां दाख न मिले उसजगे कंभारीके फल लेने चाहिये, यदि दाख और कंभारीके फल दोनों न मिलें उसजगे महुआके फूललेना ॥

कंकोलस्याप्यभावेतुजातीपुष्पंप्रदीयते ।
सुगंधमुस्तकंदेयंकर्पूराभावतोबुधैः ॥

अर्थ-कंकोलके अभावमें-जावित्रीलेना-जहांकपूर न मिलता हो वहां सुगंध मुस्तक अर्थात् नागर मोथा लेना वैद्योंने कहा है ॥

कर्चूराभावतोदेयंग्रंथिपर्णविशेषतः ।
कुंकुमाभावतो दद्य त्कुसुंभकुसुमंनवम् ॥

अर्थ-कचूरके अभावमें ग्रंथिपर्णी लेवे जहांकेशर न मिलती होवे उस जगे नवीन कुसुमका फूल लेवे ॥

श्रीखंडचन्दनाभावेकर्पूरंदेयमिष्यते ।
अभावेत्वेतयोर्वैद्यःप्रक्षिपेद्रक्तचन्दनम् ॥

अर्थ-सपेदचंदनके अभावमें कपूर लेना चाहिये और जहां चंदन और कपूर दोनों नमिलें उसजगे लालचंदन लेना चाहिये ॥

रक्तचंदनकाभावेनवोशीरविदुर्बुधाः ।
मुस्ताचातिविषाभावेशिवाभावेशिवामता ॥

अर्थ-लालचंदनके नमिलनेमें नवीन खसलेनी चाहिये अतीसके अभावमें मोथालेवे और छोटीहरडके अभावमें आमले लेना चाहिये ॥

अभावेनागपुष्पस्यपद्मकेशरमिष्यते ।
मेदाजीवककाकोलीऋद्धिवृद्धेपिचासति
वरीविदार्यश्वगंधावाराहीश्चक्रमात्क्षिपेत् ॥

अर्थ-नागकेशरके अभावमें कमलकी केशर लेवे और मेदा, जीवक, काकोली, ऋद्धि वृद्धि, इनके अभावमें क्रमसे शतावर विदारीकंद असगंध और बाराहीकंद यें चार औषध पृथक् २ लेवे ॥

वाराह्याश्चतथाभावेचर्मकारालुकोमत ॥ वाराहीकंदसंज्ञस्तुपाश्चिमेगृष्टिसंज्ञकः ॥ वारहीकंदएवान्यैश्चर्मकारालुकोमतः ॥ अनूपसंभेवदेशवाराहइवलोमवान् ॥

अर्थ-सपेद विदारी कंदके अभावमें बाराही कंद लेवे इसको पछैयां

चर्मकारालु और गृष्टीभी कहते हैं यहकंदजलप्रायःभूमिमें होता है और इसके ऊपर सूअरकेसे कडे २ बाल होते हैं ॥

भल्लातकासहत्वेतुरक्तचन्दनमिष्यते।
भल्लाताभावतश्चित्रंनलश्चेक्षोरभावतः ॥

अर्थ-भिलावेके अभावमें लालचंदन अथवा चित्रकलेवे और ईखके अभावमें नरसललेवे ॥

माक्षिकस्याप्यभावेतुप्रदद्यात्स्वर्णगैरिकम्।
सुवर्णमथवारौप्यंमृतंयत्रनलभ्यते ॥
तत्रलोहेनकर्माणिभिषक्कुर्याद्विचक्षणः।
कांताभावेतीक्ष्णलोहंयोजयेद्वैद्यसत्तमः ॥

अर्थ-सुवर्ण माक्षिकके अभावमें सुवर्णगेरूलेवे और सुवर्ण तथा चांदी की भस्मके अभावमें लोहभस्मडालके कर्मकरे और कांतलोहके अभावमें गजवेल लोहकी भस्मले ॥

मधुयत्रनविद्येततत्रजीर्णोगुडोमतः ॥ पुरातनगुडाभा
वेरौद्रेयामचतुष्टयम्॥ संशोष्यनूतनंग्राह्यंपुरातनगुणैषिणा॥

अर्थ-जहां सहत नमिले उसजगे पुराना गुडलेना जहां पुराना गुड न मिलता हो वहां नएगुडको ४ प्रहर धूपमें सुखायके लेवे तो पुराने के समान गुणकरे ॥

क्षीराभावेभवेन्मौद्गोयूषोमासूरसंभवः।
सिताभावेचखंडंस्यात्शाल्यभावेचषष्टिकः ॥

अर्थ-जहां दूध नमिलताहो वहां पर मूंगकायूषले अथवा मसूरका यूष लेवे मिश्रीके अभावमें खांडलेना और शाली चांवलोंके अभावमें सांठी चावललेना चाहिये ॥

नभवेद्दाडिमोयत्रवृक्षाम्लंतत्रदापयेत् ॥
सौराष्ट्रमृदभावेचग्राह्यापंकस्यपर्पटी ॥

अर्थ-जहांअनारदाना नमिलता होय वहां तंतडीककी खटाईडाले और जहां फिटकरी न मिलती होय वहांपर कीचकी जमीहुई पपडीलेनी ॥

नतंतगरमूलंस्यादभावेसिंहलीजटा।

प्रयोगेयत्रलोहःस्यादभावेतन्मलंस्मृतम् ॥

अर्थ–छडके और तगरकी जडके अभावमें कठेरीकी जड लेवे–जहां प्रयोग में लोहलिखा है यदि न मिले तो उस लोहकी कीटी लेवे ॥

सर्षपःशुक्लवर्णोयःसहिसिद्धार्थकोमतः ।
तत्रसिद्धार्थकाभावेसामान्यःसर्षपोमतः ॥

अर्थ–सपेदरंगके सरसों को सिद्धार्थककहा है जहां यह सिद्धार्थक नमिले उस जगे सामान्यसरसों डालना चाहिये ॥

अभावेप्रश्नपर्ण्याश्चसिंहपुच्छीविधीयते ।
कुंकुमस्याप्यभावेतुनिशाग्राह्याभिषग्वरैः ॥

अर्थ–प्रश्नपर्णीके अभावमें पिठवनलेना चाहिये–केशरके अभावमें वैद्य हल्दी की योजना करे ॥

धान्यकाभावतोदद्याच्छतपुष्पांभिषग्वरः ॥
सामुद्रंसैंधवाभावेविडंवाग्ृह्यतेबुधैः ॥

अर्थ–धनियेके अभावमें सौंफलेवे सामुद्र और सैंधेनिमकके अभावमें विडनिमक लेना चाहिये ॥

पुष्पाभावेफलंचामंविड्भेदेबिल्वतःफलम् ।
कर्पूरस्याप्यभावेऽपिसुगंधंमुस्तमिष्यते ॥

अर्थ--जहां जिस द्रव्यका पुष्पलिखा है उसके अभावमें उसका कच्चा-फल लेवे उदरके रोगमें वेलकी गीरी ही डाले ॥

रास्नाभावेचवंदाकोजीराभावेचधान्यकम् ।
रसाञ्जनस्यचाभावेदार्वीक्काथंप्रयोजयेत् ॥

अर्थ--रास्नाके अभावमें वंदाक लेवे जीरेके अभावमें धनिया रसोतके अभावमें दारुहलदीका काढा लेके कार्य साधन करे ॥

मेदा भावेश्वगंधास्यान्महामेदेतुसारिवा ।
जीवकर्षभकाभावेगुडूचीचविदारिका ॥

अर्थ–मेदाके अभावमें असगंधलेवे.महामेदाके अभावमें सारिवाले जीवक और ऋषभकके नमिलनेपर गिलोय और विदारी कंद लेना चाहिये॥

ऋद्ध्यभावेबलाग्राह्यावृद्ध्यभावेमहाबला ।

काकोलीयुगलाभावेनिक्षिपेच्चशतावरीम् ॥

अर्थ–ऋद्धिके अभावमें बलालेवे वृद्धिके अभावमें महाबलालेय दोनोंकाकोलीके अभावमें शतावरी लेना चाहिये ॥

देयोमृगमदाभावे पूतिकातद्गुणाबुधैः।
रोहीतकत्वचोऽभावेपिचुमर्दस्यगृह्यते ॥

अर्थ–कस्तूरीके अभावमें गंधमार्जार (मुष्काविलाई) लेना चाहिये रोहेडेकी छालके अभावमें नीमकी छाललेवे ॥

कापोतंसर्वमांसानां तुल्यंगुणकरंस्मृतम्।
मांसक्काथापरिप्राप्तौयूषोमौद्गः प्रदीयते ॥

अर्थ–सब मांसोंमें कबूतरका मांस तुल्य गुणकारी है इसवास्ते यही देवे और जहां मांसक्काथ न मिले वहांपर मूंगकायूष देना चाहिये ॥

धेन्वाः प्रकटवत्सायाः क्षीरंकृत्स्नपयोगुणम्।
वेतसाम्लस्यचाभावेहरिमन्थाम्लमादिशेत् ॥

अर्थ–संपूर्णदुग्धके अभावमें बछरेवाली गौकादूध लेना चाहिये और अमल वेतके अभावमें चनेका खार लेना चाहिये ॥

अभावेचंदनस्यापिमेलयेद्रक्तचंदनम्।
तुगाभावेप्रदातव्यात्वक्क्षीरीतद्गुणाबुधैः ॥

अर्थ–सपेद चंदनके अभावमें लालचंदन लेवे तवाखीरके अभावमें वंशलोचन लेना चाहिये ॥

अभावेसतिपत्राणां रसादेर्भावनाविधौ।
विषमुष्टि कषायेणषड्गुणाभावनाभवेत् ॥

अर्थ–जहां रसकी भावना लिखी है यदि उस जगे वो पत्ते न मिलें. तो कुचलेके काढेकी छः गुनी भावना देनेसे पूर्ववत् गुण करे ॥

फलमाममपुष्टंचत्यजेद्बिल्वादृतेसदा।
द्राक्षाबिल्वाशिवादीनांफलंशुष्कंगुणोत्तरम् ॥

अर्थ–जितने फल हैं उनमें बेलफलके सिवाय सब फल कच्चे और पुष्टि रहित त्याज्य हैं और सूखेफलभी त्याज्य हैं परंतु दाख बेलगिरी और आमले ये सूखेही गुणकारी होते हैं ॥

यत्रयदद्रव्यमप्राप्तंभेषजेपरपूर्वतः ।
ग्राह्यंतद्गुणसाम्यात्तुनतत्रक्कापिदूषणम् ॥

अर्थ-जिस औषधके बनानेमें यदि एक औषध न मिले तो वैद्यको उचितहै कि, उसके समान गुणकारी दूसरी औषध लेनेमें किसी प्रकारका दूषण नहींहै ॥

अत्रप्रोक्तानिवस्तूनियानितेषुचतेषुच ।
योज्यमेकतराभावे परंवैद्येनजानता ॥

अर्थ-इसमें जो जो औषधादि कही हैं उनके नमिलनेपर बुद्धिमान् ज्ञाता वैद्य उक्त प्रमाण उसी २ की प्रतिनिधि ग्रहणकरे ॥

रसवीर्यविपाकाद्यैः समंद्रव्यंविचिंत्यच ।
युंज्यात्तद्विधमन्यच्चद्रव्याणांचरसादिवत् ॥

अर्थ-जो द्रव्य न मिले उसके रस वीर्य और विपाकके सदृश औषधी चिंतवन करके मिलावे-जैसे द्रव्योंमें रसादिविचारके मिलाये जाते हैं ॥

योगेयदप्रधानंस्यात्तस्यप्रतिनिधिर्मतः ।
यत्तुप्रधानंतस्यापिसदृशंनैवगृह्यते ॥

अर्थ-जो द्रव्य क्काथ-चूर्ण-गुटिका आदिमें मुख्य करके कही है (जैसे योगराजगूगलमें गूगलमुख्यहै) तो इस गूगलकी प्रतिनिधी नहीं लीना जावेगी बाकी अप्रधान और २ औषधोंकी प्रतिनिधि लेना चाहिये ॥

अथातोरसविशेषविज्ञानीयमध्यायः ।

अर्थ-अब मधुरादि रस विशेष विज्ञानीयाध्यायकी व्याख्या करते हैं तहां संपूर्ण रसोंका प्रथम कारण संभव दिखाते हैं । यह सश्रुतकी अध्याय है

आकाशपवनदहनतोयभूमिषुयथासंख्यमेकोत्तरवृ
द्धाःशब्दस्पर्शरूपरसगंधाः । तस्मादाप्योरसःपरस्प
रसंसर्गात्परस्परानुग्रहात् परस्परानुप्रवेशाच्चसर्वेषुस
र्वेषांसान्निध्यमस्त्युत्कर्षापकर्षात्तुग्रहणम् ॥

अर्थ-आकाश-पवन-अग्नि-जल-और पृथ्वी इनमें क्रमसे एक २ वृद्धिके हिसाबसे शब्द-स्पर्श-रूप-रस-और गंध ये रहते हैं [जैसे शब्दगुण आकाश, शब्द स्पर्श गुणवान् वायु, शब्द-स्पर्श-रूपगुणविशिष्ट

अग्नि, शब्द–स्पर्श–रूप–रस गुणवान् जलहै, एवं शब्द–स्पर्श रूप–रस–गंध गुणवान् पृथ्वी है]।

इसी कारण रसहै सो जलका गुणहोनेसे आप्यकहलाताहै। परंतु ये संपूर्ण पंचभूत आपसमें परस्पर संयोगहोनेसे परस्पर एक दूसरेके सहायक होनेसे और परस्पर आपसमें एकात्मी भावहोनेसे सबभूतोंमें सबभूतोंकी सान्निध्यताहै [अर्थात् जितने आकाशादि भूतहैं ये पंचीकरणकी रीतिसे एकमेंएक हो रहे हैं] परंतु वृद्धि और हासके होनेसे ग्रहण करे जाते हैं इन्हींके अंशसे पंचविधद्रव्यहै तहां आकाश अंश अधिक द्रव्यमें शब्दाधिक्य जानना,वाताधिक्यमें स्पर्शाधिक्यहै इसी प्रकार अन्य द्रव्योंमें जानो

सखल्वाप्योरसःशेषभूतसंसर्गाद्विदग्धःषोढाविभज्यते ॥

अर्थ–वहीं आप्यरस अन्यभूत (आकाश–अग्नि–पवन और पृथ्वी) के मिलापसे अप्रगटभी है परंतु कालकी सहायतासे पृथ्वी–आकाश–पवन अग्नि इनके संसर्गसे परिपाकको प्राप्त होकर छः प्रकारका होजाताहै॥

तद्यथा-मधुरोऽम्लोलवणःकटुकस्तिक्तःकषायइति ॥

अर्थ–तहां मधुर (मीठा) अम्ल (खट्टा) लवण (खारी) कटुक (चरपरा) तिक्त (कडुआ) और कषायकहिये कसेला यह छः रसहैं ॥

तेचभूयःपरस्परसंसर्गात्रिषष्टिधाभिद्यंते ॥

अर्थ–वह छःरस आपसमें मिलकर ६३भेदवाले होते हैं ये भेद आगे कहेंगे

तत्रभूम्यम्बुगुणबाहुल्यान्मधुरः। भूम्यग्निगुणबाहुल्यादम्लः। तोयाग्निगुणबाहुल्याल्लवणः। वाय्वग्निगुणबाहुल्यात्कटुकः। वाय्वाकाशगुणबाहुल्यात्तिक्तः। पृथिव्यनिलगुणबाहुल्यात्कषायइति ॥

अर्थ–तहां पृथ्वी-जल–गुण बाहुल्य मधुररसहै।पृथ्वी–अग्नि गुण बाहुल्य अम्ल रसहै। जल अग्नि गुण बाहुल्य लवण रसहै। वायु अग्निगुणबाहुल्य कटुक (तीक्ष्ण) रस है। वायु आकाश गुणबाहुल्य तिक्त (कडुआ) रस है। एवं पृथ्वी और पवनगुण बाहुल्य कषाय (कसेला) रसजानना ॥

तत्रमधुराम्ललवणावातघ्नाः ॥

मधुरतिक्तकषायाःपित्तघ्नाः ॥

कटुतिक्तकषायाःश्लेष्मघ्नाः ॥

अर्थ-तहां मधुर अम्ल और लवण ये तीन रसवादीके नाशक हैं। मधुरतिक्त और कषाय ये तीन पित्तनाशक। एवं कटु तिक्त और कषायरस कफ नाशक जानने॥

तत्रवायुरात्मनैवात्मापित्तमाग्नेयंश्लेष्मासौम्यइति।
तएवरसाः स्वयोनिवर्द्धनाअन्ययोनिप्रशमनाश्च॥

अर्थ-तहां वायु-आत्मककेंही अपनी आत्मा है-पित्त आग्नेय है अर्थात् इसकी अग्नि आत्मा है। और कफसौम्य है अर्थात् इस का शीतलता आत्मा है। ये पूर्वोक्तछःहों रस अपनी योनिके (जिस्से जो प्रगट है) बढानेवाले हैं और दूसरे की योनिको नाशकरते हैं।

केचिदाहुरग्नीषोमीयत्वाज्जगतोरसाद्विविधाःसौम्याआग्नेयाश्च। तत्रमधुरतिक्तकषायाःसौम्याः कट्वम्ललवणाआग्नेयाः॥ मधुराम्ललवणाः स्निग्धागुरवश्च॥ कटुतिक्तकषायारूक्षालघवश्च। सौम्याःशीताआग्नेयाश्चोष्णाः॥

अर्थ-कोई आचार्य ऐसाकहते हैं कि जगत् अग्नि और सोमीयत्वहोने से रस दोहीप्रकारके हैं जैसे-सौम्यरस और आग्नेयरस इनमेंभी मधुर-तिक्त-और कषले येतीनरस सौम्य (शीतल) हैं और कटु-अम्ल-और लवणरस आग्नेय (गरम) हैं। तहां मधुर-अम्ल-और लवण ये रस स्निग्ध और भारी हैं। कटुतिक्त और कषाय येतीनोंरस रूखे और हलके हैं।इनमें सौम्यरस शीतल है और आग्नेय रस सब गरम हैं॥

तत्रशैत्यरौक्ष्यलाघववैशद्यवैष्टम्भ्यगुणलक्षणोवायुस्तस्यसमानयोनिः कषायोरसः सोऽस्यशैत्याच्छैत्यंवर्द्धयति। रौक्ष्याद्रौक्ष्यंलाघवाल्लाघवं वैशद्याद्वैशद्यंवैष्टम्भ्याद्वैष्टम्भ्यमिति॥

अर्थ--तहाँ-शीतल-रूक्ष-हलका-विशद और विष्टंभ लक्षणवान् वायु उसकी समान योनि कसेला रस है वह स्वयं शीतल होनेसे वायुको बढाताहै रूक्षहोनेसे वायुमें रूक्षताको बढाता है उसीप्रकार हलकाहोनेसे हलके पनेको और विशद (फैलने) वाला होनेसे इसवायुको फैलाता है, विष्टंभीगुणहोनेसे कसेला रस इसवायुमें विष्टंभताको प्रगटकरे है-तात्पर्य ये है कि वायुके और कसेले रसके (तुल्ययोनिके) कारण जो कसेले रसमें गुण हैं वही वायुमें जानने॥

ओष्ण्यतैक्ष्ण्यरौक्ष्यलाघववैशद्यगुणलक्षणंपित्तम् ॥ तस्यसमानयोनिः कटुकोरसःसोऽस्यौष्ण्यादौष्ण्यंव र्द्धयतितैक्ष्ण्यात्तैक्ष्ण्यंरौक्ष्याद्रौक्ष्यंलाघवाल्लाघववैश द्याद्वैशद्यमिति ।

अर्थ–उष्ण–तीक्ष्ण रूक्ष हलका और विशदगुण इत्यादि लक्षणवाला पित्तहै उसके समानयोनि (तुल्यगुणवाला) कटुक (चरपरा) रसहै वो इसपित्तको उष्णताके कारण गरमी तीक्ष्णताके कारण तीखापना रूक्षताके कारण रूखापना, हलकेके कारण हलकापना विशदताके कारण वैशद्य गुणोंको बढातांहै कटुरसके सेवनसे इन गुणों की वृद्धि होती है ॥

माधुर्यस्नेहगौरवशैत्यपैच्छिल्यगुणलक्षणःश्लेष्मात स्यसमानयोनिर्मधुरोरसःसोऽस्यमाधुर्यान्माधुर्यवर्द्ध- यति॥ स्नेहात्स्नेहं, गौरवाद्गौरवं, शैत्यात्शैत्यं, पै- च्छिल्यात्पैच्छिल्यमिति॥तस्यपुनरन्ययोनिःकटुको- रससश्लेष्मणःप्रत्यनीत्कत्वाकटुत्वान्माधुर्यमाभिभव तिरौक्ष्यात्स्नेहंलाघवाद्गौरवमौष्ण्यात्शैत्यंवैशद्या- त्पैच्छिल्यमिति ॥ तदेतन्निदर्शनमात्रमुक्तम् ॥

अर्थ–मधुर–स्नेह (चिकनाई) गौरव (भारीपना) शीतल–पैच्छिल्य (लसदार) इत्यादि लक्षणवाला कफहै उसकी समानयोनि (तुल्य- गुणवाला) मधुर (मीठा) रस है वो इस कफको मधुरके कारण माधुर्यता चिकनेके कारण चिकनाई, भारीहोनेके कारण भारीपना, शीतलताके कारण शीतलत्व, और लसदार होनेके कारण कफमें लसदारपना बढावे है। अबकहते हैं कि, उस कफकी अन्ययोनी (विपरीतगुणवाला) कटुक (चरपरा) रस है वह कफके विरुद्ध होनेसे और चरपरा होनेसे मिठासको नाशकर्त्ता है, रूक्षहोनेसे चिकनाईको नाशकर्ताहै, हलके पनेसे कफके भारीपनेको, उष्णहोनेसे कफकी शीतलताको, और विशदगुणवान् होनेसे इसकेफके लसदार गुणको हरणकरे है। यह केवल एकनिदर्शनमात्र (दृष्टांतमात्र) कहा है इसी प्रकार बुद्धिमान् वैद्य सबरसोंमें उसके समान रसको पुष्टकर्ता और विपरीत रसको उसका नाशकर्ता जाने ॥

रसलक्षणमतऊर्ध्ववक्ष्यामः ॥

अर्थ–अब इसके उपरांत रसोंके लक्षण कहते हैं ॥

तत्रयःपरितोषमुत्पादयतिप्रल्हादयतितर्पयतिजीवयति मुखावलेपंजनयतिश्लेष्माणंचाभिवर्द्धयति स-मधुरः।

अर्थ–तहां जो संतोषको प्रगटकरे सुखबढावे तृप्तिकरे प्राणोंको धारण करे मुखमें मैलको प्रगटकरे और कफको बढावे उसको मधुर (मीठा) रस जानना अर्थात् इतने गुण मिष्टरस कर्त्ता है ॥

योदन्तहर्षमुत्पादयतिमुखस्रावंजनयतिश्रद्धाञ्चो त्पादयति सोऽम्लः ॥

अर्थ–जो दंतहर्ष (दांतोकाखट्टापना)प्रगटकरे मुखसे पानी गिरावे और श्रद्धाप्रगटकरे उसको अम्लरस जानना। अर्थात् अम्लरसमें इतने गुणहैं ॥

योभक्तरुचिमुत्पादयति कफप्रसेकंजनयतिमार्दवंचा पादयति सलवणः ॥

अर्थ–जो भोजनमें रुचिको प्रगट करे मुखसे कफके स्रावको प्रगट करे और नम्रताको प्रगट करे उसको लवण रस जानना। अर्थात् लवण रसमें इतने गुणहैं।

योजिह्वाग्रंबाधतेउद्वेगंजनयतिशिरोगृह्णीतेना सिकांचस्रावयतिसकटुकः ॥

अर्थ–जो जिह्वाके अग्रभागमें बाधाकरे अर्थात् बुरालगे तथा उद्वेगको प्रगट करे तथा उद्वेगके कारण मस्तक पकडे और नाकसे पानीका स्राव करे उसको कटुरस (चरपरारस) जानना ॥

योगलेचोषमुत्पादयतिमुखवैशद्यंजनयतिभक्त रुचिंचापादयतिहर्षंच स तिक्तः ॥

अर्थ–जो गलेका आकर्षण करे अर्थात् खींचे मुखमें विशब्दता प्रगट करे भोजनमें रुचि बढावे और जिस्के खानेसे रोमांचखडे हों वो तिक्त-रस (कडुआरस) जानना ॥

योवक्त्रंपरिशोषयतिजिव्हांस्तंभयतिकंठंबध्नाति हृदयंकर्षयति पीडयतिच सकषायः ॥

अर्थ–जो खानेसे मुखको सुखावे जीभका स्तंभन (जकडीसी) कर देवे कंठ बांधे हृदयका आकर्षण करे और पीडा करे उसको कषाय (कसेला) रस जानना ये रसोंके लक्षण कहे ॥

रसगुणानतऊर्ध्वंवक्ष्यामः ।

अर्थ–अब इसके उपरांत रसोंके गुणोंको वर्णन करेंगे–

तत्रमधुरोरसोरसरक्तमांसमेदोऽस्थिमज्जौजः शुक्रस्तन्य वर्द्धनश्चक्षुष्यः केश्योवर्ण्योबलकृत्संधानः शोणितरस प्रसादनो बालवृद्धक्षतक्षीणहितः षट्पदपिपीलिकाना मिष्टतमस्तृष्णामूर्च्छादाहप्रशमनः षडिन्द्रियप्रसादनः क्रमिकफकरश्चेतिसएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमासेव्यमानः कासश्वासालसकवमथुवदनमाधुर्यस्वरोपघातक्रमीगल गंडानापादयति तथार्बुदश्लीपदबस्तिगुदोपलेपाभिस्य न्दप्रभृतीन् जनयति ॥

अर्थ–तहां मधुर (मीठा) रस, रस रुधिर मांस मेदा हड्डी मज्जा ओज शुक्र और स्त्रीके दूध इनको बढाताहै तथा नेत्रोंको परम हितकारी है. बालोंको बढाताहै वर्णको उजलाकर्त्ता है. बलकारी टूटे हाडको जोडता है रुधिर रसको स्वच्छ कर्त्ता है बालक वृद्ध और क्षतक्षीण (घावोंसे दुर्बल) इनको हितकारी है मक्खी चींटी इनको प्रियहै ये प्यास मूर्च्छा और दाह इनको नष्टकर्त्ता है तथा मनको प्रसन्न करे है एवं कफ और कृमिरोगको प्रगटकर्त्ता है वही मधुर रसऐसे गुणवालाभी है परंतु यदि केवल इसी मिष्टरसका अत्यंत सेवन करे तो श्वास खांसी अलसक वमन मुखका मीठा रहना स्वरभंग (गलेका बैठजाना) कृमि रोग गलगंड आदि अनेक रोगोंको प्रगटकरे है तथा अर्बुद श्लीपद वस्ती गुदाका उपलेप और अभिष्यंदी आदि रोगोंको उत्पन्न करताहै ॥

अम्लोजरणः पाचनः पवननिग्रहणोऽनुलोमनः कोष्ठवि विदाहीबहिःशीतः क्लेदनः प्रायशोहृद्यश्चेति सएवंगुणो प्येकएवात्यर्थमपसेव्यमानो दन्तहर्षनयनसंमीलनरोम संवेजनकफविलयनशरीरशैथिल्यान्यापादयति तथा क्षताभिहतदग्धदष्टभग्नशूलरुग्णप्रच्युतावमूत्रितविसर्पि तच्छिन्नभिन्नविद्धोत्पिष्टादीनिपाचयत्याग्नेयस्वभावात् परिदहति कंठमुरो हृदयश्चेति ॥

अर्थ-अम्ल (खट्टा) रस आहारको जरानेवाला-पाचक वादीका नाशक सूजन आदिका अनुलोम कर्त्ता (चढाने वाला) कोष्ठमें दाहकर्ता बाहर शीतलकर्त्ता क्लेदन और प्रायः हृदयको प्रिय है. ऐसा गुणवालाभी है परंतु केवल खट्टे रसकेही सेवन करनेसे दाँतोंका कुंदहोना वा खट्टे होना नेत्रोंका मूँदना रोमांचोंका खडा होना-कफविलीन कर्त्ता-शरीरको शिथिलकरे है तथा क्षताभिहत (घावसे पीडित) अग्निसें फुका-सर्पादिकसे काटा-चोटलगा सूजन-हड्डीका टेढाहोना तथा स्थानसे हड्डीका हटना जहरीजानवरकामूत्रलगना-तथा जहरी जानवरका स्पर्श होना छिन्न भिन्न-विद्ध-उत्पिष्टादि भमरोग इनसबको अम्लरस आग्नेय स्वभाव होनेसे पाचनकर्त्ता है और इसी कारणसे कंठ छाती और हृदयमें दाहकर्त्ता है ये लक्षण अम्लरसके कहे ॥

लवणःसंशोधनःपाचनविश्लेषणःक्लेदनःशैथिल्यकृदुष्णः सर्वरसप्रत्यनीकोमार्गविशोधनःसर्वशरीरावयवमार्दवकरश्चेतिसएवंगुणोऽप्येक एवात्यर्थमासेव्यमानो गात्रकंडूकोठशोफवैवर्ण्यपुंस्त्वोपघातेन्द्रियोपतापान् तथामुखाक्षिपाकंरक्तपित्तवातशोणिताम्लीकाप्रभृतीनापादयति॥

अर्थ-अब लवणरसके गुणकर्म कहते हैं। तहाँ लवणरस वमनविरेचन द्वारा व्रणका शोधनकरे है पाचनहै. प्रत्येक अवयवोंको न्यारे २ करे है आर्द्र और शिथिलकरे है तथागरमहै. सर्वरसमात्रकाविरोधी है मूत्र, नाडी-व्रणादिकके मार्गोंका शुद्धिकर्त्ता है शरीरके सर्व अवयवोंका नम्र करने वालाहै। यदि केवल निमकही निमक सेवनकरे तो देहमें खुजली कोढ (चकते) सूजन-देहका विवर्ण और पुरुषार्थ (शुक्र) का क्षयकरे है तथा नेत्र आदि इन्द्रियोंका घातकहै तथा मुखपाक नेत्र पाक रक्त और खट्टी डकार आदि रोगोंको करे है ॥

कटुकोदीपनःपाचनोरोचनःशोधनः स्थौल्यालस्यकफक्रिमिविषकुष्ठकंडूपशमनः संधिबंधाविच्छेदनोऽवसादनःस्तन्यशुक्रमेदसामुपहन्ताचेति सएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपसेव्यमानोभ्रमदगलताल्वोष्ठशोषगात्रसंतापबलविघातकम्पतोदभेदकृत्करचरणपार्श्वपृष्ठप्रभृतिषुचवातशूलानापादयति

अर्थ-अब चरपरे रसकी प्रकृति और कर्मदिखाते हैं कटुक (चरपरा)

रस दीपन-पाचन-रोचन-शोधनहै स्थूलता आलस्य-कफ-कृमि-विष कुष्ठ खुजली इनको नाशकरे। संधिबंधनको खोलनेवाला-अनुत्साहकर्ता-स्तन्य (स्तनसंबंधीदूध) शुक्र मेदइनको नष्टकरे है ऐसाभी है परंतु केवल इसी रसकाअत्यंत सेवनकरेतो भ्रमकरे मदकरे गला-तालुए-होठ-इनका शोषकरे-देहमें संताप-बलको नष्टकरे कंप-सुईकीसी चभक-तथा तोडने कीसीपीडा-तथा हाथ-पैर दोनों बगल-पीठ इत्यादि अंगमें वात शूलोंको प्रगट करे है॥

तिक्तश्छेदनोरोचनोदीपनःशोधनःकंडूकोष्ठतृष्णामूर्च्छाज्वरप्रशमनः स्तन्यशोधनोविण्मूत्रक्लेदमेदोवसापूयोपशोषणश्चेतिसएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपसेव्यमानोगात्रमन्यास्तंभाक्षेपकादितः शिरः शूलभ्रमतोदभेदच्छेदास्यवैरस्यान्यापादयति॥

अर्थ-अब कडुएरस की प्रकृति और कर्म दिखाते हैं-कडुआरस छेदन रोचन (अन्यवस्तुओंका है किंतुस्वयंरोचननहीं है) दीपन-शोधन है तथा खुजली-चकत्ते-प्यास-मूर्छा और ज्वर इनको नाशकर्त्ता है। स्त्रीके-स्तनसंबंधी दूधका शोधनकरे मलमूत्र-क्लेद-मेद-वसा-पूय (राध) इन इनको शोषणकर्ता है। इत्यादि गुणविशिष्टभी है परंतु यदि केवल यही रस अत्यंत सेवनकराजाय तो देहस्तंभ और मन्यास्तंभ तथा आक्षेपकसे आदिले मस्तकशूल-भ्रम-चभका छेदनेकीसी पीडा और मुखमें विरसता इत्यादि रोगोंको करे है॥

कषायःसंग्राहकोरोपणःस्तंभनशोधनोलेखनःशोषणःपीडनःक्लेदोपशोषणश्चेतिसएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपसेव्यमानो हृत्पीडास्यशोषोदराध्मानवाक्यग्रहमन्यास्तंभगात्रस्फुरणचुमचुमायनाकुंचनाक्षेपणप्रभृतीन्जनयति॥

अर्थ-अब कषायरसके गुण-कर्म दिखाते हैं-कषेलारस संग्राही व्रणको रोपणकर्ता है देहको स्तंभनकारी है-अथवा मृदुको दृढकरे है-व्रणका शोधनकारी है व्रणाच्छन्न मांसकालेखनकारी है द्रवधातुका शोषणकर्त्ता है-अथवा व्रणप्रमेहकाशोषणकर्त्ता है तथा व्रणका वा हृदयकापीडनकर्त्ता और क्लेदका शोषणकर्ता है इत्यादि गुणवालाभी है परंतु केवल इसही रसका अत्यंतसेवनकरे तो हृदयपीडा मुखकासूखना-उदररोग-अफरा-

बाणीका रुकना मन्यास्तंभ अंगोंका फड़कना राई लगानेके समान त्वचामें चुमचुमपीडाहो. देहसंकोच-देहका काँपना प्रभृतिके कहनेसे अन्यभीवातके विकार अर्दित आदिहोवे ॥

अतः सर्वेषामेवद्रव्याण्युपदेक्ष्यामः

तद्यथा । कांकोल्यादिः क्षीरघृतवसामज्जाशालिषष्टिकयवगोधूममाषशृंगाटककसेरुकत्रपुसैर्वारुककर्कारुकालांबुकालिंदकतकगिलोडयपियालपुष्करबीजकाश्मर्यमधुकद्राक्षाखर्जूरराजादनतालनालिकेरेक्षुविकारबलातिवलात्मगुप्ताविदारीपयस्यागोक्षुरकक्षीरमोरटमधूलिकाकूष्मांडप्रभृतीनिसमासेन मधुरोवर्गः ।

अर्थ–अब संपूर्ण रसोंकी द्रव्योंको कहते हैं तहां प्रथम मधुरवर्ग कहते हैं जैसे कांकोल्यादिगण-दूध-घी-वसा- मज्जा शालि और साँठी चावल जौ गेंहू उडद सिंघाडे कसेरू खीरा आर्या ककडी घीया तरबूज कतकफल गिलोडय (गिल्लोठी) चिरौंजी कमलगट्टा कंभारी महुआ दाख खजूर (छुहारा) खिरनी तालफल गरी ईखके विकारमात्र वला अतिवला तालमखाने बिदारीकंद क्षीरकांकोली गोखरू दूधका मोरट (छाछकाभेद) मधूलिका और पेठा इनसे आदि ले औरभी यह मधुरवर्ग संक्षेपसे कहा है ॥

अम्लवर्गः ।

दाडिमामलकमातुलुंगाम्रातककपित्थकरमर्दबदरकोलप्राचीनामलकतिंतिडीककोशाम्रभव्यपारावतवेत्रफललकुचाम्लवेतसदन्तशठदधितक्रसुराशुक्तसौवीरकतुषोदकधान्याम्लप्रभृतीनि समासेनाम्लोवर्गः ॥

अर्थ–अनार, आमले, बिजोरा, अंबाड़े, कैथा, करोंदा, बेर, बडावेर, पानी आमला, तिंतिडीक लालवनकाआंब कमरख, फालसा, वेतकाफल बडहर, अमलवेत, जँभीरी, दही, छाँछ, दारू सिरका गेंहूंकी कांजी तुषोदक (जौकीकाँजी) धान्याम्ल इत्यादि संक्षेपसे यह अम्लवर्ग कहा ॥

लवणवर्गः ।

सैंधवसौवर्चलविडपाक्यरोमकसामुद्रकपक्तिमयवक्षा-

रोषप्रसूतसुवर्चिकाप्रभृतीनिसमासेनलवणोवर्गः ॥

अर्थ-सैंधानिमक-कालानिमक-बिड-खारी-साम्भर-समुद्रकानिमक-फुल्ला निमक-जवाखार-रेहकानिमक-सज्जी-वा सोरा इत्यादिक यह संक्षेपसे लवण वर्ग कहा है ॥

कटुकवर्गः।

पिप्पल्यादिः सुरसादिः शिग्रुमधुशिग्रुमूलकलशुनसुमुखशीतशिवकुष्ठदेवदारुहरेणुकावल्गुजफलचंडागुग्गुलुमुस्तलांगलकीशुकनाशापीलुप्रभृतीनि सालसारादिश्च प्रायशः कटुकोवर्गः ॥

अर्थ-पिप्पल्यादिगण. सुरसादिगण-सहँजना-सहत-सहँजनेकीजड लहसन-वैजयंती-तुलसी-कपूर-कूठ-देवदारु-हरेणु-बावची-अजमोद के आकार सुगंधद्रव्य-गूगल-नागरमोथा-कलियारी-टेंटु-पीलू-और सालसारादिगण इत्यादि यह सब संक्षेपसे कटुकवर्ग हैं ॥

तिक्तवर्गः।

आरग्वधादिगुडूच्यादिर्मण्डूकपर्णीवेत्रकरीरहरिद्राद्वयेन्द्रयववरुणस्वादुकंटकसप्तपर्णबृहतीद्वयशंखिनीद्रवंतीत्रिवृत्कृतवेधनकर्कोटककारवेल्लकवार्त्ताककरीरकरवीरसुमनःशंखपुष्प्यपामार्गत्रायमाणाऽशोकरोहिणीवैजयन्तीसुवर्चलापुनर्नवावृश्चिकालीज्योतिष्मतीप्रभृतीनिसमासेनतिक्तोवर्गः ॥

अर्थ-आरग्वधादिगण-गुडूच्यादिगण-मंडूकपर्णी (ब्राह्मीकाभेद) वेत करीरके अंकुर,हरदी-दारुहल्दी-इन्द्रजौ-वरना विकंकत-सतोना छोटी-कटेरी बडी कटेरी यवतिक्ता दंती-निसोत-कडूइतोरई-ककोडा-करेला वैंगन-करीर-चमेली-शंखपुष्पी-ओंगा-त्रायमाण-कुटकी-अरनी-हुल-हुल-सोंठ-वृश्चिकपत्री-मालकाँगनी इत्यादि सबवस्तु संक्षेपसे तिक्तवर्गहै॥

कषायवर्गः।

न्यग्रोधादिरंबष्टादिः प्रियंग्वादि रोध्रादिस्त्रिफलाशल्लकीजम्ब्वाम्रबकुलतिन्दुक फलानि कतकशाकपाषा-

णभेदकवनस्पतिफलानि सालसारादिश्चप्रायशःकुर वककोविदारकजीवंतीचिल्लीपालक्यासुनिषण्णकप्र भृतीनि निवारकादयोमुद्गादयश्चसमासेनकषायोवर्गः॥

अर्थ–न्यग्रोधादिगण-अंबष्टादिगण-प्रियंग्वादिगण रोध्रादिगण-त्रिफला (हरड–बहेडा–आमला) सालवृक्ष–जामुन–आम्र–मौलसिरी–तेंदूकेफल निर्मली–खरशाक–पाषाणभेद–वड आदि वृक्षोंकेफल–सालसारादिगण कुरवक–कोविदार (कचनारकाभेद) जीवंतीकाशाक-चिल्ली (खेतका-वथुआ) पालक चौपतिया आदि साग और समापसाई आदि तथा मूंग आदि ये संक्षेपसे कषायवर्ग हैं॥

तत्रैषांरसानांसंयोगास्त्रिषष्टिर्भवन्तितद्यथा। पंचदशाद्वि का विंशतिस्त्रिकाः पंचदशचतुष्काःषट्पंचकाएकशः षड्रसाएकःषट्कइतितेषांमन्यत्रप्रयोजनानिवक्ष्यामः॥

अर्थ–पूर्वोक्त रसोंके संयोग होनेसे ६३ भेद होते हैं जैसे दो दोरसके मिलापसे १५ तीनके मिलापसे २० चार २ केमिलापसे १५ पांचपांचके मिलापसे ६ छः रसोंके मिलापसे १ भेद और एक२ पृथक् होनेसे ६ भेद ऐसे कुलजोडनेसे ६३ भेद होते हैं इनका प्रयोजन अन्यत्रवर्णन करेंगे॥

इनकेभेदपद्यमें लिखते हैं।

पद्येनच सुखस्मृत्यै रसभेदाञ्छृणुष्वमे। मधुरोम्लेन पटुनातिक्तेन कटुकेनच॥१॥ कषायेण पृथक् सार्धमम्लःसुलवणेनच। तिक्तेनकटुना सार्धं कषायेणपृथक् पृथक्॥२॥ पटुस्तिक्तेन कटुनाकषायेण पृथक्पृथक्। तिक्तस्तुकटुनासार्धं कषायेण पृथक् पृथक्॥ ३॥ कटुकस्तु कषायेण द्विसंयोगे इतिस्मृताः। दशपंचच भेदास्तुसंख्याता विंशतिस्त्रिके॥ ४॥ मधुराम्लौतु पटुना तिक्तेन कटुना तथा। कषायेण तथा सार्द्धं तथा स्वादुपटू पृथक्॥ ५॥ तिक्तेन कटुकेनापि कषायेण तथासह। स्वादु-तिक्तौतु कटुनाकषायेण पृथक् सह॥ ६॥ स्वादूषणौ कषायेण स्वादो-रेवंदश त्रिके। भेदास्युरम्ललवणौ तिक्तेन कटुना पृथक्॥ ७॥ कषायेण तथासार्धमम्लतिक्तौ पृथक्सह। कटुकेनकषायेण तथाम्लकटुकौ सह॥ ८॥ कषायेणेतिषट्प्रोक्ता भेदा अम्लस्यतुत्रिके। पटुतिक्तौ तु कटुना कषायेण पृथक् सह॥ ९॥ पटूषणौकषायेण भेदाइति पटोस्त्रयः॥ तिक्तोषणौ कषायेण तिक्तस्यैवंसकृत्स्मृतः॥ १० त्रिकंभेदाइतिप्रोक्ता चतुष्के दशपंचच। स्वाद्वम्ल लवणा सार्द्धं तिक्तेन कटुकेनच॥ ११॥ पृथक्कषायेण तथा मधुराम्लौ सतिक्तकौ। कटुकेनतुसंपृक्तौ कषायेणपृ-

थक्तथा ॥१२॥ स्वाद्वम्लकटुकाः सार्द्धंकषायेणेति षट्स्मृताः। सप्तमश्चात्र मधुरोलवणोषणतिक्तकैः ॥१३॥ भेदोष्टमोमतः स्वादुकटुतिक्तकषायकैः । नवमस्तत्र मधुरः षड्रूषणकषाय कैः ॥ १४ ॥ दशमोऽत्रभवेत्स्वादुतिक्तो षणकषायकैः । दशभेदा भवंत्येवं मधुरेणचतुष्कके ॥१५॥ कटुतिक्ताम्ल-लवणैर्भेदएवश्चतुष्कके । द्वितीय स्त्वम्ल लवण कषायकटुकैःस्मृतः ॥१६॥ तृतीयोऽत्रभवेदम्लकटुतिक्त कषायकैः चतुर्थोत्रभवेदम्लतिक्तोषणकषायकैः ॥ १७ ॥ एवमम्लेनभेदास्युश्चत्वारोत्रचतुष्कके । पटुनैकोत्रलवण तिक्तोषणकषायकैः ॥ १८ ॥ एवपंचदशख्याताश्चतुष्करससंख्यया । षट् भेदान् पंचके प्राहुस्तान्वक्ष्याभि विभागशः ॥ १९ ॥ एकोभेदोम्ललवण तिक्तोषणकषायकैः । द्वितीयः स्वादुलवण तिक्तोषणकषायकैः ॥ २० ॥ तृतीयस्त्वम्लमधुरतिक्तोषणकषायकैः । चतुर्थस्त्वम्लमधुरषडूषणकषायकैः ॥ २१ ॥ पंचमस्त्वम्लमधुरपटुतिक्तकषायकैः । षष्ठोभेदोम्लमधुरलवणो षणतिक्तकैः ॥ २२ ॥ षड्भेदा इतिनिर्दिष्टाः पंचकेप्रविभागशः । भेदः स्वाद्वम्ललवणतिक्तोषणकषायकैः ॥ २३ ॥ एकएवषड्रसेन पृथक्त्वेनतुषट् स्मृताः । स्वादुरम्लोऽथलवणतिक्तकश्चकटुस्तथा ॥ २६ ॥ कषायइतिभे दाःस्युः सर्वतोऽत्रत्रिषष्टिधा । क्षीरंसुराविडंनिबश्चव्यापन्नं रसाश्रयम्२५॥ द्रव्यंस्वादुरसादीनांषण्णांविद्धियथाक्रमम् । द्रव्यंद्रव्यांतरेणैववोजयेद्धि रसादिषु ॥ २६ ॥ धात्रीफलं शर्करयालवणेनार्द्रकंतथा । एवमादीनि द्रव्याणियोजयेद्भिषगुत्तमः ॥ २७ ॥ कानिचिद्विरसादीनिद्रव्याणिस्युः स्वभावतः । यथैणः षड्रसः कृष्णो यथापंचरसाभया ॥ २८ ॥ मद्यंपंच रसंयद्वत्तिक्तोयद्वच्चतूरसः । एरंडतैलं त्रिरसंमाक्षिकंद्विरसंयथा ॥ ॥ २९ ॥ घृतमेकंस्वादुरसंमधुरादिविभागतः ॥ दिङ्मात्रादुदितादे वंशेषमूह्यमनीषिणा ॥ ३० ॥

उदाहरण ।

एकरसकेभेद	दोरसकेभेद	दोरसकेभेद
१ स्वादु	१ मधुर–अम्ल	८ अम्ल–कटुक
२ अम्ल	२ मधुर–लवण	९ अम्ल–कषाय
३ लवण	३ मधुर–तिक्त	१० लवण–तिक्त
४ कटु	४ मधुर–कटुक	११ लवण–कटुक
५ तिक्त	५ मधुर–कषाय	१२ लवण–कषाय
६ कषाय	६ अम्ल–लवण	१३ तिक्त–कटुक
	७ अम्ल–तिक्त	१४ तिक्त–कषाय
		१५ कटु–कषाय

तीनरसकेभेद.

१ मधुर–अम्ल–लवण
२ मधुर–अम्ल–तिक्त
३ मधुर–अम्ल–कटुक
४ मधुर–अम्ल–कषाय
५ मधुर–लवण–तिक्त
६ मधुर–लवण–कटुक
७ मधुर–लवण–कषाय
८ मधुर–तिक्त–कटुक
९ मधुर–तिक्त–कषाय
१० मधुर–कटु–कषाय
११ अम्ल–लवण–तिक्त
१२ अम्ल–लवण–कटुक
१३ अम्ल–लवण–कषाय
१४ अम्ल–तिक्त–कटुक
१५ अम्ल–तिक्त–कषाय
१६ अम्ल–कटु–कषाय
१७ लवण–तिक्त–कटुक
१८ लवण–तिक्त–कषाय
१९ लवण–कटु–कषाय
२० तिक्त–कटु–कषाय

चाररसके भेद.

१ मधुर–अम्ल–लवण–तिक्त
२ मधुर–अम्ल–लवण–कटुक
३ मधुर–अम्ल–लवण–कषाय
४ मधुर–अम्ल–तिक्त–कटुक
५ मधुर–अम्ल–तिक्त–कषाय
६ मधुर–अम्ल–कटु–कषाय
७ मधुर–लवण–तिक्त–कटुक
८ मधुर–लवण–तिक्त–कषाय
९ मधुर–लवण–कटु–कषाय
१० मधुर–तिक्त–कटु–कषाय
११ अम्ल–लवण–तिक्त–कटुक
१२ अम्ल–लवण–तिक्त–कषाय
१३ अम्ल–लवण–कटु–कषाय
१४ अम्ल–तिक्त–कटु–कषाय
१५ लवण–तिक्त–कटु–कषाय

पांचरसोंकेभेद

१ मधुर–लवण–तिक्त–कटुक–कषाय
२ मधुर–अम्ल–तिक्त–कटु–कषाय
३ मधुर–अम्ल–लवण–कटु–कषाय
४ मधुर–अम्ल लवण–तिक्त–कषाय
५ मधुर–अम्ल–लवण–तिक्त–कटुक
६ अम्ल–लवण–तिक्त–कटु–कषाय

छःरसका एकहीभेद है।

१ मधुर–अम्ल–लवण–कटु–तिक्त–कषाय.

घीमें केवलमिष्टरसरहे हैं–सहतमेंदोरसरहते हैं–अंडकेतेलमें३रसहैं ·

तिलमें चाररस हैं-हरड और मद्यमें पांचरस हैं तथा काले हरिणकेमांसमें छःरसरहतेहैं मिष्टरस दूधमें-अम्लरसदारूमें-निमकमें लवणरस-नीममें कडुआरस-चव्यमें चरपरा-और पद्ममें कसेलारसरहता है.

जग्धाःषडधिगच्छन्तिवलिनोवशतांरसाः ॥
यथाप्रकुपितादोषावशंयांतिवलीयसः ॥

अर्थ-भोजनकरेहुए छहोंरसमें जो बलवान् होताहै उसीके वशीभूत होते हैं अर्थात् उसीकासा फलदेतेहैं-जैसे कुपित वातादिदोषोंमें जो दोष बलवान् होताहै उसीके अनुगामी अन्यदोष होजातेहैं अथवा अभ्यासकरेहुए एक २ रस बली पुरुषके आधीन होते हैं अर्थात् उसको अवगुण नहीं करते जैसे बलीदोष-

मधुरादिकोंकेअन्यविशेषगुणतहांमधुररसकेगुण ।

मधुरंश्लेष्मलंसर्वमृतेशालेःपुरातनात् ।
मुद्गाद्गोधूमतःक्षौद्रात्सितायाजांगलामिषात् ॥

अर्थ-मधुर पदार्थमात्र सब कफकारी होतेहैं.परंतु पुराने शाली चावल मूंग=गेंहूं-सहत-खांड- और जंगली जीवोंका मांस ये पदार्थ त्यागकर अर्थात् ये पदार्थ मधुरहोने परभी कफकारी नहीं है ॥

अम्लरसकेविशेषगुण ।

अम्लंपित्तकरंप्रायोविनाधात्रींचदाडिमम् ।

अर्थ-प्रायःकरके संपूर्ण खट्टे पदार्थ पित्तकर्त्ता हैं परंतु आमले और अनारदानेके विना अर्थात् आमले और अनार दाने पित्तनहीं करते-

लवणरसकेविशेषगुण ।

लवणंप्रायशोद्वेषिनेत्रयोःसैंधवंविना ॥

अर्थ-संपूर्ण लवण प्रायः नेत्रोंको विगाडने वाले हैं. परंतु सैंधेनिमकके विना अर्थात् सैंधानिमक नेत्रोंको हितकारी हैं ॥

तीक्ष्णरसकेगुण ।

प्रायःकटुतयातिक्तमवृष्यंवातकोपनम् ।
शुंठीकृष्णारसोनानिपटोलममृतंविना ॥

अर्थ-प्रायः तीक्ष्ण द्रव्य वातकोपकारी है परंतु सोंठ-पीपर-लहसुन परवल-और गिलोय ये वातकोपकर्ता नहीं हैं॥

पिप्पलीनागरं मुस्तंकटुचावृष्यमुच्यते।
प्रायशःस्तंभनंप्रोक्तंकषायमभयांविना॥

अर्थ-पीपल-सोंठ-नागरमोथा इनके बिना प्रायः संपूर्ण तीक्ष्ण पदार्थ धातुनाशक हैं और हरडको त्यागके बाकी कसेलारस स्तंभनकारी है॥

सामान्येनात्रनिर्दिष्टागुणाः षड्रससंभवाः।
रसानांयोगतस्तुस्यादन्यएवगुणोदयः॥

अर्थ-ये छः रसोंके सामान्य गुणकहे हैं. परंतु दूसरे रसोंके योग करके अन्य गुणभी होते हैं॥

संयोगीगुण।

संयोगाद्विषतांयातिसममाज्येनमाक्षिकम्।
अमृतत्वंविषंयातिसर्पदष्टस्यवैयथा॥

अर्थ-घी और सहत ये संयोगमें समान होनेसे विषरूप होतेहैं जैसे सर्पकेकाटेहुए पुरुषको अमृत विषरूप होताहै उसी प्रकार जानना॥

पृथिव्यादिभूतोंकेगुण।

गुरुर्लघुस्तथास्निग्धोरूक्षस्तीक्ष्णइतिक्रमात्।
भूनभोवारिवातानांवह्नेरेतेगुणाः स्मृताः॥

अर्थ-गुरु लघु स्निग्ध रूक्ष तीक्ष्ण यह क्रमसे आकाश पृथ्वी जल पवन और अग्नि इनके गुण जानने।

गुरुलघुइत्यादिपदार्थोंकेगुण।

गुर्वादयोगुणाद्रव्येपृथिव्यादौरसाश्रये॥
रसेषुव्यपदिश्यंतेसाहचर्य्योपचारतः॥

अर्थ-गुरु आदि गुण पृथ्व्यादिके द्रव्यमें रहतेहैं वो उन पृथिव्यादिके साहचर्यसे पृथिव्यादिके रसादिगुणोंमें रहतेहैं।

सुश्रुतोक्ताविंशतिगुणाः।

सुश्रुतेतुगुणाएतेविंशतिस्तानहंब्रुवे। गुरुर्लघुस्निग्ध
रूक्षोतीक्ष्णः श्लक्ष्णः स्थिरः सरः॥ पिच्छलोविशदः

शीतउष्णश्चमृदुकर्कशौ। स्थूलसूक्ष्मौद्रवः शुष्कआशु मंदः स्मृतागुणाः ॥

अर्थ–सुश्रुतमें ये वीसगुण कहेहैं उनको हम कहते है १ गुरु २ लघु ३ स्निग्ध ४ रूक्ष ५ तीक्ष्ण ६ श्लक्ष्ण ७ स्थिर ८ सारक ९ पिच्छल १० विशद ११ शीत १२ उष्ण १३ मृदु १४ कर्कश १५ स्थूल १६ सूक्ष्म १७ द्रव १८ शुष्क १९ शीघ्र और २० मंद ये वीस गुणकहे हैं।

गुरुगुण।

गुरुवातहरंपुष्टिश्लेष्मकृच्चिरपाकिच ॥

अर्थ–गुरु (भारी) द्रव्य वातनाशक पुष्टता और कफको करैहै तथा देरमें पचताहै।

लघुगुण।

लघुपथ्यंपरंप्रोक्तंकफघ्नंशीघ्रपाकिच ॥

अर्थ–लघु (हलका) द्रव्य अत्यंत पथ्यकारकहै कफनाशक और जल्दी पचनेवालाहै ॥

स्निग्धगुण।

स्निग्धंवातहरंश्लेष्मकारिवृष्यंबलावहम् ॥

अर्थ–स्निग्ध (चिकना) द्रव्य वातहरण करता कफकारी वृष्य और बल बढानेवाला जानना ॥

रूक्षगुण।

रूक्षंसमीरणकरंपरंकफहरंमतम् ॥

अर्थ–रूक्षपदार्थ अत्यंत वादीकरै और कफको हरण करनेवालाहै।

तीक्ष्णगुण।

तीक्ष्णंपित्तकरंप्रायोलेखनंकफवातनुत् ॥

अर्थ–तीक्ष्णपदार्थ प्रायः पित्तकारी लेखन कफ और वातकोनाशकरै।

श्लक्ष्णगुण।

श्लक्ष्णःस्नेहंविनापिस्यात्कठिनोऽपिहिचिक्कणः ॥

अर्थ–श्लक्ष्णद्रव्य विनाचिकनाईकेभी कठिन और चिकना होताहै जैसे उडद पत्थरकीसिलीआदि ॥

स्थिर और सरगुण।

स्थिरोवातमलस्तंभीसरस्तेषांप्रवर्तने ॥

अर्थ-स्थिरपदार्थ-वात और मलका रोकनेवाला है और सर पदार्थ वात और मलको निकालने वाला है अर्थात् दस्तावर है ॥

पिच्छलगुण ।

पिच्छलस्तंतुलोबल्यः संधानःश्लेष्मलोगुरुः ॥

अर्थ-पिच्छलपदार्थ तंतुछूटनेवाला-बल-भमसंधानकर कफ और भारीहै.

विशदगुण ।

क्लेदच्छेदकरःख्यातोविशदोव्रणरोपणः ॥

अर्थ-विशद पदार्थ-क्लेदकानाशक-दस्तावर-और व्रणको भरनेवाला ऐसाहै

शीतगुण ।

शीतस्तुह्लादनस्तंभीमूर्च्छातृट्स्वेददाहनुत् ॥

अर्थ-शीतपदार्थ-आनंदकारी-स्तंभक-और मूर्च्छा, तृषा, पसीना, दाह, इनका नाशक है ॥

उष्णगुण ।

उष्णोभवतिशीतस्यविपरीतश्चपाचनः ॥

अर्थ-उष्णपदार्थ-आनंदनाशक-रेचक-मूर्च्छा-प्यास-पसीना-दाहको करनेवाला-तथा पाचक है ॥

स्थूलगुण ।

स्थूलःस्थौल्यकरोदेहेस्रोतसामवरोधकृत् ॥

अर्थ-स्थूलपदार्थ देहको स्थूलकरे, तथा देहके छिद्रोंको रोकता है ॥

सूक्ष्मगुण ।

देहस्यसूक्ष्मछिद्रेषुविशेद्यत्सूक्ष्ममुच्यते ॥

अर्थ-जो देहके बहुत बारिक छिद्रोंमें प्रवेशकरे उसको सूक्ष्म कहतेहैं ॥

द्रवगुण ।

द्रवःक्लेदकरोव्यापी

अर्थ-द्रवपदार्थ-देहको आर्द्रकरे-और सर्व देहमें व्याप्त होवे ॥

शुष्कगुण ।

शुष्कस्तद्विपरीतकः ॥

अर्थ-शुष्क पदार्थ-देहको शुष्ककरे और सर्वदेहमें व्याप्त नहीं हो ॥

आशुकारीगुण ।

आशुराशुकरोदेहेधावत्यंभसितैलवत् ॥

अर्थ–आशुकारीपदार्थ देहमें–शीघ्र फैले है जैसे जलमें तेलकी बिंदु फैलती है ॥

मंदगुण ।

मन्दःसकलकार्य्येषुशिथिलःसोपिकथ्यते ॥

अर्थ–मंदद्रव्य संपूर्ण कार्यमें शिथिल रहता है ॥

मृदु और कर्कश ।

प्रसिद्धौद्वाविमौलोकेगुणौचमृदुकर्कशौ ॥

अर्थ–इससंसारमें दोगुण प्रसिद्ध हैं एक मृदु (नम्र) दूसरा कर्कश (कठोर)

प्रस्तावाद्दीपनादयोगुणाःसलक्षणानि ।

पचेन्नामवह्निकृच्च दीपनंतद्यथामिशिः ॥

अर्थ–जो औषधी आमको न पचावे और अग्निको दीप्त करे वो औषध दीपनसंज्ञक जानना–उदाहरण–जैसे सोंफ–

पाचनादिऔषध ।

पचत्यामंनवह्निंचकुर्य्याद्यत्तद्धिपाचनम् ॥

नागकेशरवद्विद्याच्चित्रोदीपनपाचनः ॥

अर्थ–जो औषध आमको पचावे परंतु जठराग्निको दीप्त न करे उस औषधको पाचन कहते हैं जैसे–नागकेशर । और जो आमकोभी पचावे तथा जठराग्निको दीप्तभी करे उस औषधकी दीपन पाचन संज्ञा है जैसे चित्रक (चीता) ॥

संशमनऔषध ।

नशोधयतिनद्वेष्टिसमान्दोषांस्तथोद्धतान् ।

समीकरोतिविषमान्शमनंतद्यथामृता ॥

अर्थ–जो औषध वातादिसमान दोषोंको न शोधन करे न बिगाडे किंतु उद्धत (विषम) भाव स्थितोंको जो समानकर देवे उस औषधीकी शमनसंज्ञा कही है जैसे गिलोय ॥

अनुलोमनऔषध ।

कृत्वापाकंमलानांयद्भित्वाबंधमधोनयेत् ॥

तच्चानुलोमनंज्ञेयंयथाप्रोक्ताहरीतकी ॥

अर्थ-जो औषध मल (वातादिदोषों) को पाककर तथा परस्पर मिलेहुएनको पृथक २ कर अधोभाग (नीचेगुदा लिंग) में प्राप्तकरे अथवा अधोवात-मल-मूत्र इनके बंधनको (अर्थात् बद्धकोष्ठताको) पृथक २ कर नीचेके भागमें लायके गुदाके द्वारा निकाले उस औषधको अनुलोमन कहते हैं-जैसे हरड ॥

स्रंसनऔषध।

पक्तव्यंयदपक्त्वैवश्लिष्टंकोष्ठेमलादिकम्।
नयत्यधःस्रंसनंतद्यथास्यात्कृतमालकः॥

अर्थ-पश्चात् पाक होनेवाले ऐसे वातादिदोष कोष्ठके आश्रित रहने वालोंको विनापाककरे ही उनको नीचेलाय गुदाके द्वारा बाहर पटके उस औषधको स्रंसनसंज्ञक जानना उदाहरण-जैसे-अमलतासकागूदा ॥

भेदनऔषध।

मलादिकमबद्धंवायद्बद्धंपिंडितंमलैः।
भित्त्वाधःपातयातितद्भेदनंकटुकीयथा॥

अर्थ-वातादिदोष करकें अबद्ध अथवा बद्ध (बँधाहुआ) जो मल-मूत्रादि वोग्रथित (गांठदार) हुएनको भेदकर जो औषध अधोभागमें लाय गुदाद्वारा बाहरगेरे उसको भेदन कहतेहैं उदाहरण जैसै-कुटकी ॥

रेचनऔषध।

विपक्वंयदपक्वंवामलादिद्रवतांनयेत्।
रेचयत्यपितज्ज्ञेयं रेचनंत्रिवृतायथा ॥

अर्थ-पेटमें विशेषकरके अन्नादिकको उत्तमपाक होनेपर अथवा कुछ कच्चा रहनेपर उस अन्नको तथा वातादिकका पतलाकरके जो औषध अधोभागमें लाकर गुदाके द्वारा दस्तकरावे उस औषधकी रेचनसंज्ञाहै जैसे-निशोथ-जमाल गोटा-सनाय आदि-

वमनऔषध।

अपक्वपित्तश्लेष्माणंबलादूर्ध्वंनयेत्तुयत्।
वमनंतद्धिविज्ञेयं मदनस्यफलंयथा॥

अर्थ-पक्वदशामें नहीं प्राप्तहुए ऐसे पित्तकफको बलपूर्वक जो औषध

१ आदि शब्दकरके मलमूत्रादि जानने।

मुखके द्वारा वमन करावे उसको वमनसंज्ञक जानना उदाहरण जैसे-मैनफल ॥

संशोधनऔषध ।

स्थानाद्बहिर्नयेदूर्ध्वमधोवामलसंचयम् ।
देहेसंशोधनंतत्स्याद्देवदालीफलंयथा ॥

अर्थ-अपने स्वस्थानमें वातादिकोंका हुआ जो संचय उसको ऊपरके भागमें लायकर मुखके द्वारा-अथवा नाकके द्वारा बाहर काढे अथवा उस संचयको अधोभागमें प्राप्तकर गुदाके द्वारा दस्तोंमें होकर या लिंग-के द्वारा मूत्रमें होकर निकाले उस औषधको देहमें संशोधनजानना जैसे-देवदाली (सोनैया-वंदाल)

छेदनऔषध ।

श्लिष्टान्कफादिकान्दोषानुन्मूलयतियद्बलात् ।
छेदनंतद्यवक्षारो मरिचानिशिलाजतु ॥

अर्थ-जो औषध परस्पर एकसे एक मिले ऐसे जे कफादिदोष उनको अपनी शक्ति करके तोडफोड न्यारे २ करे उस औषधको छेदन कहते हैं जैसे-जवाखारादि तथा कालीमिरच-सोंठ-पीपल और शिलाजीत इत्यादिक जानना ॥

लेखन ।

धातून्मलान्वादेहस्यविशोष्योल्लेखयेच्चयत् ।
लेखनंतद्यथाक्षौद्रंनीरमुष्णंवचायवाः ॥

अर्थ-जो औषध रसादिधातु और वातादि दोष इनका शोधनकर उनको पतलाकरे उसको लेखन जानना जैसे-सहत-गरमजल वच और जौ॥

ग्राहीऔषध ।

दीपनंपाचनंयत्स्यादुष्णत्वाद्द्रवशोषकम् ।
ग्राहीतच्चयथाशुंठीजीरकंगजपिप्पली ॥

अर्थ-जो औषध अग्निको प्रदीप्तकरे तथा आमादिकोंका पाचन करे तथा उष्णवीर्यहोकर जलस्वरूप जों कफादिदोष-धातु-और मलका शोषण करे उस औषधको ग्राही जानना उदाहरण-सोंठ, जीरा,गजपीपल॥

१ देवदालीको भाषामें वंदाल और सोनैयाकहते हैं इसके फलके काढेका आबदस्त बवासीरके ऊपरलेना लिखाहै ॥

स्तंभनऔषध।

रौक्ष्याच्छैत्यात्कषायत्वाल्लघुपाकाच्चयद्भवेत्॥
वातकृत्स्तंभनंतत्स्याद्यथावत्सकटुंटुकौ॥

अर्थ–जो औषध रूक्षगुण करके–कसेले रसकरके युक्तहो और शीतल वीर्य करके तथा लघुपाकके कारण वादीकरे उसको स्तंभनसंज्ञक कहते हैं–जैसै–कूडाकी लाछ–टैंटू इत्यादि॥

रसायनऔषध।

रसायनंचतज्ज्ञेयंयज्जराव्याधिनाशनम्।
यथामृतारुदंतीचगुग्गुलुश्चहरीतकी॥

अर्थ–जो औषध शरीर का जरा (बुढापा) और रोगोंको दूरकरे उसको रसायन कहते हैं जैसे गिलोय–रुदंती–गूगल–और हरड॥

मैथुनशक्तिवर्द्धकऔषध।

यस्माद्द्रव्याद्भवेत्स्त्रीषुहर्षोवाजीकरंचतत्।
यथानागवलाद्यास्तुबीजंचकपिकच्छुजम्॥

अर्थ–जिस औषधसे धातुबढकर स्त्रियोंके विषय हर्षयुक्त शक्तीबढे अर्थात् मैथुन करनेकी अधिक शक्तिहोवे उसको वाजीकरणसंज्ञक जानना जैसे नागवला आदि और कौछकेबीज।

धातुवर्द्धकऔषध।

यस्माच्छुक्रस्यवृद्धिःस्याच्छुक्रलंचतदुच्यते।
यथाश्वगंधामुशलीशर्कराचशतावरी॥

अर्थ–जिस औषधसे धातुकी वृद्धि होय उस औषधको शुक्रल कहते हैं उदाहरण–असगंध–मूसली–शतावर–मिश्री आदि॥

वीर्योत्पादकतथावीर्यप्रवर्त्तकऔषध।

दुग्धंमाषाश्चभल्लातफलमज्जामलानिच।
प्रवर्त्तकानिकथ्यंतेजनकानिचरेतसः॥

अर्थ–शुक्रधातुको चैतन्य करनेवाली और शुक्रको उत्पन्न करने वाली औषध दूध–उडद–भिलावे–फलकी मज्जा (वेलकी गीरी) और आमले इत्यादिक जानना॥

वाजीकरणऔषधकानिषेध।

प्रवर्त्तनीस्त्रीशुक्रस्यरेचनंबृहतीफलम्।
जातीफलंस्तंभकंच शोषणीचहरीतकी॥

अर्थ-शुक्रधातुको चैतन्यकरनेवाली-स्त्रीहै तथा वीर्यका रेचककर्ता कटेरीकाफलहै अथवा वनके बैंगनहैं एवं स्तंभनकर्त्ता जायफल है-तथा-वीर्य शोषणकारी हरड है" शोषणीच हरीतकी" इसठिकाने श्लोकमें "कालिंगं क्षयकारिच" ऐसा भी पाठ है उसका यह अर्थ है कि तरबूज वीर्यका नाशकर्त्ता है कोई इन्द्रजव वीर्यका नाशकर्त्ता कहते हैं॥

सूक्ष्मऔषध।

देहस्यसूक्ष्मछिद्रेषुविशेद्यत्सूक्ष्ममुच्यते।
तद्यथासैंधवंक्षौद्रंनिंबस्तैलंरुवूद्भवम्॥

अर्थ-शरीरमें बहुत छोटे २ छिद्र हैं उनमें जो औषध प्रवेशकरे उसको सूक्ष्म औषध जानना उदाहरण-जैसे-सैंधानिमक-सहत-कडु-आनीम-तिलको तेल और अंडीकातेल इत्यादिक जानना॥

व्यवायीऔषध।

पूर्वंव्याप्याखिलंकायंततः पाकंचगच्छति।
व्यवायितद्यथाभंगाफेनं चाहिसमुद्भवम्।

अर्थ-जो औषध अपक्कही प्रथम सर्व देहमें फैलकर फिर पाकदशाको प्राप्तहोवे अर्थात् मद्य विषके समान पाकहोय-उस औषधको व्यावायी जानना जैसै-भांग-और अफीम॥

विकाशीऔषध।

संधिबंधांस्तुशिथिलान्यत्करोतिविकाशितत्।
विश्लेष्यौजश्चधातुभ्योतथाक्रमुककोद्रवाः॥

अर्थ-जो औषधी सर्वदेहके संधिबंधनोंको शिथिल कर रसादिधातुसे उत्पन्न हुए ओजकहिये बलको शिथिलकरे उस औषधको विकाशी जाननी जैसै-सुपारी और कोदों॥

१ किसी २ आचार्यके मतमें "निंबतैलम्" ऐसा पाठ है उसके मतसे नींबका तेल लेवे। २ पेटमें पाक होते समय।

मदकारीपदार्थ।

बुद्धिंलुंपतियद्द्रव्यंमदकारितदुच्यते।
तमोगुणप्रधानंच यथामद्यंसुरादिकम्॥

अर्थ–जो पदार्थ तमोगुण प्रधानहोकर बुद्धिका आच्छादनकरे अर्थात् बुद्धि का नाशकरे उस औषधको मदकारी जानना जैसे-मद्य-सुराआदि॥

प्राणहारकद्रव्य।

व्यवायिचविकाशिस्यात्सूक्ष्मछेदिमदावहम्।
आग्नेयंजीवितहरंयोगवाहिस्मृतंविषम्॥

अर्थ–पूर्वोक्त व्यवायी–विकाशी–सूक्ष्म–छेदि–मदकारी अग्नेय औषध इन छः द्रव्योंके गुणकरके जो यु॰ होय उसद्रव्यको प्राणहारी जानना उदाहरण–जैसे विषवच्छनागादिक ये योगवाहीभी है–इसका यह कारण है कि कोईआचार्य " योगवाह्यमृतंविषं " ऐसा पाठ कहते हैं उसका अर्थ वही है कि, विषयोगवाही अर्थात् उसको किसी संस्कारविशेषकरके जिस २ अनुपानके साथ देय उसी २ अनुपानके गुण बढायकर अमृतके तुल्यगुण करे॥

प्रमाथीऔषध।

निजवीर्येणयद्द्रव्यंस्रोतेभ्योदोषसंचयम्।
निरस्यतिप्रमाथिस्यात्तद्यथामरिचंवचा॥

अर्थ–जो औषध अपने वीर्यकरके कान–मुख–नासिका इत्यादि छिद्रोंमेंसे कफादि दोषसंचय हुएको दूर करे उस औषधको प्रमाथी कहते हैं उदाहरण जैसे वच–और कालीमिरच इत्यादि॥

अभिष्यंदिपदार्थ।

पैच्छिल्याद्गौरवाद्द्रव्यंरुद्ध्वारसवहाःशिराः।
धत्तेयद्गौरवंतत्स्यादभिष्यंदियथादधि॥

अर्थ–जो पदार्थ अपने पिच्छल गुणकरके रसवाहिनी शिराओंको रोक शरीरको जडके समान करदेवे उस पदार्थको अभिष्यंदी अर्थात् कफकारक जानना उदा॰जैसे दही॥

विदाहीपदार्थ।

विदाहिद्रव्यमुद्गारमम्लंकुर्यात्तथातृषाम्।

हृदिदाहंचजनयेत्पाकंगच्छतितच्चिरात् ॥

अर्थ–जो खट्टी डकार–तृषा–दाह–इनको उत्पन्न करके बहुत देरमें पचे उस द्रव्यको विदाही कहते हैं ॥

योगवाहीद्रव्य।

गृह्णातियोगवाहिद्रव्यंसंसर्गवस्तुजांश्चगुणान्।
पचमानवद्यथैतन्मधुजलतैलाज्यसूतलोहादि ॥

अर्थ–योगवाही द्रव्य जिस द्रव्यके साथ जिसद्रव्यका संयोग करे वह उसीकेसे गुणकरे है जैसे-जल-तेल घी-पारा लोहा ये पदार्थ दूसरेके गुणके समान अपने गुणकरे है उसी प्रकार अन्ययोगवाही पदार्थ जानना॥

अथ वीर्यम्।

उष्णशीतगुणोत्कर्षाद्बुधैःवीर्यंद्विधास्मृतम्।
तत्सर्वमग्निषोमीयंदृश्यतेभुवनत्रयम् ॥

अर्थ–उष्ण (गरम) और शीत (शीतल) इन गुणोंका वीर्य दोप्रकारका है अतएव सब त्रिलोकीमें संपूर्ण वस्तुमात्र अग्नि और जल स्वरूपकी दीखती है ॥

उष्णशीतवीर्योंकेगुण।

उष्णवातकफौहन्यात्पित्तंतुतनुतेतराम्।
शीतं वातकफातंकान्कुरुतेपित्तहृत्परम् ॥

अर्थ–उष्णगुण–वात और कफको नष्टकरे है और पित्तको बढाताहै एवं शीतगुण वात और कफके रोगोंको प्रगटकरे है तथा पित्तका शमन करे है ॥

अन्यच्च।

तत्रोष्णंभ्रमतृट्ग्लानिस्वेददाहाशुपाकताः ॥
शमंचवातकफयोः करोतिशिशिरंपुनः ॥
ह्लादनंजीवनस्तंभंप्रसादं रक्तपित्तयोः ॥

अर्थ–तहां उष्ण गुण-भ्रम, प्यास, ग्लानि, पसीने, दाह और शीघ्रपाकको करे है एवं वायु और कफ इनको शांतिकरे।शीतगुण-आनंद, जीवन और स्तंभनको करे है तथा रुधिर और पित्त इनको स्वच्छ करे है ॥

अथविपाकाः।

जाठरेणाग्निनायोगाद्यदुदेतिरसान्तरम्॥
रसानांपरिणामान्तेसविपाकइतिस्मृतः॥
मिष्टःपटुश्चमधुरमम्लोम्लंपच्यतेरसः॥
कटुतिक्तकषायाणांपाकःस्यात्प्रायशःकटुः॥
त्रिधारसानांपाकःस्यात्स्वाद्वम्लकटुकात्मकः॥

अर्थ–जठराग्निके योगसे रस उत्पन्न होकर उस रससे जो रस उत्पन्न होवे उसको विपाक ऐसा कहते हैं, तहां मिष्ट और खारे पदार्थका पाक मीठा होता है और खट्टे पदार्थका पाक खट्टाही होताहै। एवं चरपरा कडुआ और कसेले पदार्थका पाक प्रायः चरपराही होताहै इसप्रकार सब रसोंका मीठा खट्टा और चरपरा ऐसे तीन प्रकारहीका पाक होता है चतुर्थ प्रकारका नहीं॥

विपाककेगुण।

श्लेष्मकृन्मधुरः पाकोवातपित्तहरोमतः॥ आम्लस्तु कुरुतेपित्तंवातश्लेष्मगदापहः॥ कटुकरोतिपवनंकफं पित्तंचनाशयेत्॥ विशेषएपरसतोविपाकानांनिदर्शितः॥

अर्थ–मीठा पाक कफकारक और वात पित्तका नाशक, एवं खट्टापाक पित्तकारक और वायु तथा कफका नाशकारी है एवं तिक्त (कडुआ) पाक वातकारी और कफ पित्त इनका नाशक है। यह रसविपाकका विशेष गुण कहाहै॥

प्रभाव।

रसादिसाम्येयत्कर्मविशिष्टंतत्प्रभावजम्॥ दंतीरसाद्यै-स्तुल्यापिचित्रकस्यविरेचनी॥ मधुकस्यचमृद्वीकाघृ-तंक्षीरस्यदीपनम्। प्रभावस्तुयथाधात्रीलकुचस्यफ लादिभिः॥ समापिकुरुतेदोषत्रितयस्यविनाशनम्। क्वचित्तुकेवलंद्रव्यंकर्मकुर्यात्प्रभावतः॥ ज्वरंहंतिशि-रोबद्धासहदेवीजटायथा॥

अर्थ–परस्पर औषधोंके रसादि साम्य होनेसे जो विशिष्ट गुणहोता है उसे प्रभाव कहतेहैं। जैसे दंती रसादिकरके चीतेके समान होनेपरभी

उसमें दस्त कराना यह गुण अधिकहै इसीको प्रभाव जानना। और दाख मुलहटी ये समान रस होनेपरभी दाख दस्तलाती है मुलहटी नही तो यहां दाखमें अधिक प्रभाव है। तथा घृत और दूधके समान गुण हैं परंतु घृतमें दीपन शक्ति अधिकहै। एवं आमले और वडहर ये समान रसहैं तथापि आमला त्रिदोश नाशकहै वडहर नहीं और कहीं २ केवल एकही द्रव्य प्रभाव करके विलक्षण कर्मकरे है जैसे सहदेईकी जड मस्तकमें बांधनेसे ज्वरको नाशकरे है इत्यादि प्रभावके उदाहरण जानने।

अमीमांस्यान्यचिंत्यानिप्रसिद्धानिस्वभावतः।
आगमेनोपयोज्यानिभेषजानिविचक्षणैः॥

अर्थ-जो औषध स्वभावकरके प्रसिद्धहै उसको जहां शास्त्र कहे उसी जगे देवे क्योंकि औषधियोंमें तर्क वितर्क नहीं करीजाय इनमें अचिंत्यवीर्य है अतएव विचार न करे।

प्रत्यक्षलक्षणफलाः प्रसिद्धाश्चस्वभावतः।
नौषधीर्हेतुभिर्विद्वान्परीक्षेतकदाचन॥

अर्थ-जो औषधी प्रत्यक्ष फल देनेवाली और लक्षण जिसके प्रसिद्ध हैं उसकी विद्वान् हेतुओं करके कदाचित् परीक्षा न करे [अर्थात् इस हेतुसे ये औषध शीतल होनी चाहिये इसने उष्णगुण कैसे करा] यह परीक्षा त्याग देवे॥

विरुद्धगुणसंयोगेभूयसाल्पंहिजायते।
रसंविपाकस्तौवीर्यंप्रभावस्तान्व्यपोहति॥

अर्थ-विरुद्ध गुण औषधी बहुतसी एक ठिकाने पर होनेसे विपाक रसका नाशकरे है तथा रस और विपाक इनका वीर्य नाशकर्त्ता है और रस-विपाक और वीर्य इनका प्रभाव नाशकरे है ऐसा जानना॥

॥ इति रसवीर्यविपाकनिर्णयं समाप्तम्॥

अथपंचकषायाः।

स्वरसश्चतथाकल्कःक्काथश्चहिमफांटकौ।
ज्ञेयाःकषायाःपञ्चैतेलघवःस्युर्यथोत्तरम्॥

अर्थ-स्वरसकल्क-क्काथ-हिम-फांट-ये पांच कषाय हैं क्रमसे एककी अपेक्षा दूसरी हलकी है-अर्थात् स्वरसकी अपेक्षा-कल्क कल्ककी अपेक्षा क्काथ क्काथकी अपेक्षा हिम हलका है इसी प्रकार और भी जानो॥

तत्रादौस्वरसविधिः ।

आहतात्तत्क्षणाकृष्टादद्रव्यात्क्षुण्णात्समुद्धरेत् ॥
वस्त्रनिष्पीडितोयः सरसःस्वरसउच्यते ॥ आहतात्
शीताग्निकीटादिभिरनुपहतात् ॥ क्षुण्णात्संपिष्टात् ॥

अर्थ-कीडा शीत अग्नि इत्यादिकरके अदूषित ऐसी वनस्पती को लायकर उसको कूटपीस कपडेमें डालके निचोडनेसे जो रस निकले उसको स्वरस अथवा अंगरस कहते हैं ॥

दूसराप्रकार ।

कुडवंचूर्णितंद्रव्यंक्षिप्तंचाद्विगुणेजले ।
अहोरात्रंस्थितंतस्माद्भवेद्धारसउत्तमः ॥

अर्थ-पावभर सूखी औषधको कूट आधसेर जलमें भिगोय देवे उसको एकदिन रात्रि धरा रहनेदे फिर दूसरे दिन उसपानीको कपडेमें छान लेवे तो उसकोभी रस वा स्वरस कहते हैं. यहभी एकप्रकार स्वरसका है ॥

तीसराप्रकार ।

आदायशुष्कद्रव्यंवास्वरसानामसंभवे ।
जलेष्टगुणितेसाध्यंपादशिष्टंचगृह्यते ॥

अर्थ-जिस सूखी औषधका स्वरस न निकलता होय उसको लाय कूटकर आठगुने पानीमें डालके मंदाग्निसें औटावे जब चतुर्थांश जल बाकी रहे तब उतारके छानलेवे तो इसको भी स्वरस कहते हैं-यह तीसरा प्रकार कहा ॥

स्वरसस्यगुरुत्वाच्चपलमर्द्धंप्रयोजयेत् ।
निःशोषितंचाग्निसिद्धंपलमात्रंरसंपिबेत् ॥

अर्थ-किसी औषधका स्वरसहो सब भारी अधिक होते हैं अतएव यदि उस रसको किसी औषधमें डालना होवे तो अर्द्धपल (२ तोले) डाले । तथा सुखायकर काढा हुआ अथवा अग्निपर काढाकरके काढा हुआरस ४ तोले पीनाचाहिये ॥

कल्कविधिः ।

द्रव्यमार्द्रंशिलापिष्टंशुष्कंवासज्जलंभवेत् ।
प्रक्षेपा[1]वापकल्कास्तेतन्मानंकर्षसंमितम् ॥

---

१ प्रक्षिप्यगालयेद्वस्त्रे तन्मानं कोलसंमितम् । इतिपाठांतरम् ।

अर्थ-गीली औषधको लाय चटनीके समान बारीक पीसे यदि सूखी औषध होवे तो पानीडालके बारीक पिसावे उसको कल्क ऐसा कहते हैं इसके लेनेका प्रमाण, कर्ष कहा है अर्थात् एक तोला है इसको प्रक्षेप और आवापभी कहते हैं ॥

कल्केमधुघृतंतैलंदेयंद्विगुणमात्रया।
सितागुडौसमौदद्याद्द्रवादेयाश्चतुर्गुणाः ॥

अर्थ-कल्कमें सहत घृत और तेल ये डालनाहोय तो कल्कसे दुगना मिलावे तथा खांड और गुडये पदार्थ डालना होयतो कल्कके समान मिलावे तथा दूध जल आदि शब्दकरके पतले पदार्थ मिलाने होय तो कल्कके चौगुने मिलाने चाहिये ॥

क्काथ (काढेकी) विधिः।

पानीयंषोडशगुणंक्षुण्णेद्रव्येपलेक्षिपेत्। मृत्पात्रेक्काथयेद्ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम् ॥ तज्जलंपाययेद्धीमान्कोष्णमृद्वग्निसाधितम्। शृतःक्काथःकषायश्चनिर्यूहः सनिगद्यते ॥ आहारेरसपाकेचजातेचद्विपलोन्मितम्। वृद्धवैद्योपदेशेनापिबेत्क्काथंसुपाचितम् ॥

अर्थ-पलप्रमाण औषधले जो कूटकर उस औषधका सोलहगुना जलडाल किसी मिट्टीके पात्रमें भरके चूल्हेपर चढावे फिर नीचे मंद २ अग्नि देवे जबजलका आठवाँ भाग शेष रहे तब उस काढेको उतारलेवे और कपडेसे छानकर कुछ गरम २ रोगीको पिलावे तथा रोगीके उत्तमप्रकार अन्नका परिपाक होनेबाद इसको वृद्धवैद्यकी आज्ञासेदेवे इसकाढेको शृत-क्काथ-कषाय-और निर्यूहभी कहते हैं अर्थात् ये नाम पर्यायवाचक हैं ॥

कर्षादौतुपलं यावद्द्यात्षोडशिकंजलम् ॥
ततस्तुकुडवं यावत्तोयमष्टगुणंक्षिपेत् ॥
चतुर्गुणमतश्चार्द्धं यावत्प्रस्थादिकंजलम् ॥

अर्थ-कर्षसे लेकर पल पर्यंत सोलह गुनाजल डाले, पलसे उपरांत कुडव पर्यंत आठगुना जल डाले और कुडवसे लेकर प्रस्थ पर्यंत क्काथमें चौगुना जल डाले, यह क्काथमें जल डालनेकी क्रियाकही ॥

मात्रोत्तमापलेनस्यात्त्रिभिरक्षैस्तुमध्यमा। जघन्यातु पलार्द्धेनस्नेहक्काथौषधेषुच ॥ पानेक्काथादिद्रव्यावस्था।

अर्थ–स्नेह–काढा–और औषध इसकी उत्तम मात्रा १ पलकी है और तीन अक्षअर्थात्३ तोलेकी मध्यम है–और पलार्ध (२ तोले)की मात्रा मध्यमहै॥

क्काथमेंतोलकापरिमाण ।

दशरक्तिकमानेनगृहीत्वातोलकद्वयम् ।
दत्वाम्भःषोडशगुणंग्राह्यंपादावशेषितम् ॥

अर्थ–दशरत्तीका मासा इसप्रमाणसे २ तोले औषध लेकर उसमें ३२ तोले जल मिलायमंदाग्निसे काढाकरे जब चतुर्थांश रहे तब उतार कर छानके रोगीकोदेवे ॥

क्काथमेंमिश्रीसहतडालनेकाप्रमाण ।

क्काथेक्षिपेत्सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः ।
वातपित्तकफातंकेविपरीतंमधुस्मृतम् ॥

अर्थ–काढेमें खांडडालनाहोयतो वातरोगमें काढेके चतुर्थांश डाले, पित्तरोगमें आठवांहिस्साडाले, औरकफरोगमें सोल्हवांहिस्साडाले और यदिसहत डालनाहोयतो खांडसे विपरीत डाले अर्थात् कफकेरोगमें सहत चतुर्थांश. वातमें षोडशांश और पित्तमें अष्टमांश. ॥

हिमाविधिः ।

क्षुण्णद्रव्यपलंसम्यक्षड्भिर्नीरपलैःप्लुतम् । निःशोषितंहिमः सस्यात्तथाशीतकषायकः । तस्यमानंमतंपानेपलद्वयमितंबुधैः

अर्थ–१ पल कुटी हुई औषध को ६ पलजलमें भिगोयदेवे रात्रिभर धरी रहनेदे. इसको हिम अथवा शीतकषाय कहतेहैं । इसकी मात्रा ८ तोले कीहै ॥ "तन्मानफांटवज्ज्ञेयं सर्वत्रैष विनिश्चयः" अर्थात् इस हिमकी मात्रा फांटकेसमान जाननी यह सर्वत्र निश्चयहै ॥

मंथ ।

मंथोपिफांटभेदःस्यात्तेनचात्रैवकथ्यते । जलेचतुःपलेशीतेक्षुण्णंद्रव्यंपलंक्षिपेत् ।मृत्पात्रेमंथयेत्सम्यक्तस्माच्चाद्विपलंपिबेत्॥

अर्थ–मंथभी फांटकाभेदहै अतएवउसको भी इसीजगे कहतेहैं । एक पल औषधले उसको कूटके ४ पलशीतलजलमें भिगोयदेवे, फिरमिट्टीके पात्रमें उसको मंथन करे फिर उसपानीको छानके देवे उसको मंथकहतेहैं इसकी मात्रा दोपलकी है ॥

अवान्तरभेदेतंडुलोदकमाह ।

तंडुलंकनशःकृत्वापलंग्राह्यंहितंडुलात् ।

चतुर्गुणंजलंदेयंतंडुलोदककर्मणि ॥
शीतंकषायमानेनतंडुलोदककल्पना ॥

अर्थ–१ पल चावलोंको कूट किनकीकरले उसको ४ पलवा ६ पल जलमें भिगोयदेवे थोडीदेरकेबाद उसका नितराहुआ पानी लेलेवे तो तंडुलोदकबने जहांकहींतंडुलोदककाजल लिखाहोय वहां इसप्रकार-बनाहुआजल लेवे ॥

फांटविधिः।

क्षुण्णेद्रव्यपलेसम्यक्जलमुष्णंविनिक्षिपेत्।
मृत्पात्रेकुडवोन्मानंततस्तुस्रावयेत्पटात् ॥
तन्मानंफांटवज्ज्ञेयंसर्वत्रैषसुनिश्चयः।
मधुश्वेतागुडादींश्चक्काथवत्तत्रनिक्षिपेत् ॥

अर्थ–१ पलऔषधको कूटके मिट्टीकेपात्रमें एककुडवप्रमाण गरमजल डालके भिगोवे फिर थोडी देरके बादउसको छानके पीवे-इसे-फांट–तथा चूर्णद्रव ऐसा कहतेहैं इसफांटकी मात्रा दोपलकीहै-तथा फांटमें सहत-मिश्री-तथा-गुडआदि शब्दसे और जो वस्तु डालनीहो वो जिस-प्रमाण काढेमेंडालनीकहीहै उसी प्रकार डाले।

यवागूकीविधिः।

साध्यंचतुःपलंद्रव्यंचतुःषष्टिपलेजले।
तत्क्काथेनार्धशिष्टेनयवागूंसाधयेद्घनाम् ॥

अर्थ–चारपलप्रमाण औषधकोकूटके ६४ पलजलमें आधा रहने पर्यंत औटावे जब आधा रहे तब उतारके उसको छानलेवे. उस छाने हुए जलमें चावल. मूंग आदि द्रव्य जो कहे हैं डालके फिरकाढाकरे तो इसको यवागू कहते हैं ॥

विलेपीलक्षण।

विलेपीचघनासिक्थासिद्धानीरेचतुर्गुणे।
बृंहणीतर्पणीहृद्यामधुरापित्तनाशिनी।

अर्थ–चौगुने पानीमें डालके औटायके लपसीके समान गाढी और चिपकनेवाली बनावे उसको विलेपी ऐसा कहते हैं। यह विलेपी धातु-वर्द्धक शरीरको पुष्टकारी–हृदयको हितकारी–तथा मधुर होनेसे पित्तका नाशकर्त्ता है ॥

---

१ सस्याच्चूर्णद्रवःफांटस्तन्मानंद्विपलोन्मितम्।

पानादिकल्पना ।

क्षुण्णंद्रव्यपलंसाध्यंचतुःषष्टिपलेंबुनि ।
अर्द्धशिष्टंचतद्देयंपानेभक्तादिसंविधौ ॥

अर्थ-कुटाहुआ १ पलद्रव्य ६४ पलजलमें डालके आधापानी रहने पर्यंत औटावे फिरउसको छानके प्यासलगनेमें पीनेको थोडा २ देवे-तथा भोजनके समय देनेका प्रकार आगे कहेंगे ॥

मधुश्वेतगुडक्षारान्जीरकंलवणंतथा ।
घृतंतैलंचचूर्णादीन्कोलमात्रान्रसेक्षिपेत् ॥

अर्थ-सपेद सहत-गुड-क्षार-जीरा-लवण-घी-तेल-और इतर चूर्णादिक ये रसमें डालने होयतो छःछःमासे डालने चाहिये ॥

प्रमथ्याकीविधिः ।

प्रमथ्याप्रोच्यतेद्रव्यपलात्कल्कीकृताच्छ्रृतम् ।
ततोष्टगुणितेतस्याः पानमाहुः पलद्वयम् ॥

अर्थ-एकपल औषधको कूटकर कल्ककरे यदि सूखी औषधहोयतो पानीमें पीसके कल्ककरे उसमें अठगुनापानी डालके दोपलरहने पर्यंत उसको औटावे इसको प्रमथ्या कहते हैं इसके सेवनकी मात्रा २पलकी है॥

यूषकीविधिः ।

कल्कद्रव्यपलंशुंठीपिप्पलीचार्द्धकार्षिकी ।
वारिप्रस्थेनविपचेत्सद्रवोयूषउच्यते ॥

अर्थ-कल्ककी औषध सामान्य १ पललेय तथा जिस प्रयोगमें सोंठ० और पीपर होय वह प्रयोग तीक्ष्ण होनेसे आधा २ कर्षलेवे अथवा दोनोंमिलायके आधा कर्षलेय फिर उनका कल्ककर उसमें पानी एक प्रस्थडालके औटावे जब औंटके कुछ गाढापेयाके समान होजावे तब उतारले इसको यूषऐसा कहते हैं ॥

पेयालक्षणम् ।

द्रवाधिका स्वल्प सिक्था चतुर्दश गुणे जले ॥ सिद्ध पेया बुधैर्ज्ञेया यूषः किंचिद्घनःस्मृतः ॥ पेयालघुतराज्ञेयाग्राहिणीधातुपुष्टिदा ॥ यूषोबल्यस्ततःकंठ्योलघुपाकःकफापहः॥

अर्थ-द्रव्यसे चौगुना जलडालके पतली पेजके समान तथा कुछ गाढी

होय तबतक औटावे इसको पेया ऐसा कहते हैं। पेयाकी अपेक्षा जो कुछ अधिक गाढाहो उसको यूषकहते हैं। तहां वहपेया बहुत हलकी होनेसे मलादि कोंका स्तंभन करतीहै तथा धातु पुष्टकरे। और यूषबलदेताहै, कंठको हितकारी-हलका तथा कफको दूर करने वालाहै॥

पुटपाककीविधिः।

पुटपाकस्यकल्कस्यस्वरसोगृह्यतेयतः।
अतस्तुपुटपाकानांयुक्तिरत्रोच्यतेमया॥

अर्थ-पुटपाक और कल्क इन दोनोंका स्वरस लेते हैं इसी कारण पुटपाककी युक्ति मैं कहताहूं॥

पुटपाककीकृति।

पुटपाकस्यमात्रेयंलेपस्यांगारवर्णता॥ लेपंचद्व्यंगुलं-स्थूलंकुर्याद्वांगुष्ठमात्रया॥ काश्मरीवटजंब्वादिपत्रैर्वेष्टनमुत्तमम्॥ पलमात्ररसोग्राह्यः कर्षमात्रंमधुक्षिपेत्॥ कल्कचूर्णद्रवाद्यास्तुदेयास्वरसवद्बुधैः॥

अर्थ-पुटपाककी मात्राका प्रमाण इसप्रकारकरे कि ऊपरकराहुआलेप अग्निमें अंगारके समान लालवर्ण होने पर्यंत उसको अग्निमें राखे-तथा जिसद्रव्यपरलेप देना होयतो दो अंगुल अथवा एक अंगुल मोटा देवे और लेपके ऊपरनीचे पत्ते लपेटनेके लिये-कंभारी वड जामुन इत्यादिके उत्तम होते हैं तथा पुटपाकमें रसडालना होयतो चारतोले तथा तोलेभर सहत और कल्कचूर्ण द्रवादिकपदार्थ स्वरसके मान प्रमाण उत्तम जाननेवाला वैद्य मिलावे॥

पाठान्तरम्।

द्रव्यमापोथितंजंबूवटपत्रादिसंपुटैः॥ वेष्टयित्वाततो वध्वादृढंरज्ज्वादिनातथा॥ मृल्लेपद्व्यंगुलंकुर्यादथवाङ्गुलिमात्रकम्॥ दहत्पुटान्तरादग्नौयावल्लेपस्यरक्तता॥

अर्थ-जिसवस्तुका पुटपाक करनाहो उसको कूटके गोलाबनावे उसको जामुन वड आदिके पत्तोंसे लपेट ऊपर रस्सी आदिसे कसदे फिर ऊपर दोदो अंगुल मोटा मिट्टीका लेपकरे अथवा एक अंगुल मोटा-लेपकरे उसको अग्निके बीचमें धरके अग्निदेवे जबलाल होजावे तब निकाल रसनिचोडले-यह दूसरीविधि कही॥

चावलधोनेकीक्रिया ।

कंडितं तंडुलपलंजलेष्टगुणिते क्षिपेत् ।
भावयित्वाजलंग्राह्यंदेयंसर्वत्रकर्मसु ॥

अर्थ-एक पल विने फटके हुए चावललेकर उसमें आठपल जलडालके हाथोंसे मीडकर धोवे फिर उसपानीको सर्व कर्ममें देवे ॥

अवलेहकल्पना ।

क्काथादीनांपुनःपाकात्घनत्वंसारसक्रिया । सोवलेहश्चलेहश्च प्राशइत्युच्यतेबुधैः । सिताचतुर्गुणाकार्याचूर्णाच्चद्विगुणोगुडः । द्रवंचतुर्गुणंदद्यादितिसर्वत्रनिश्चयः । सुपक्वेतन्तुमत्त्वंस्यादवलेहेऽप्सुमज्जनम् । स्थिरत्वंपीडितेमुद्रागंधवर्णरसोद्भवः ॥ दुग्धमिक्षुरसंयूषंपंचमूलकषायजम् । वासाक्काथंयथायोग्यमनुपानंप्रशस्यते ॥

अर्थ-औषधोंके काढे तथा फांटादिकको फिर औटाकर चासनीके समान गाढीकरे उसको रस क्रिया कहते हैं। उसरसक्रियाके पर्याय शब्द अवलेह-लेह-और प्राश येहैं । उस अवलेहके लेनेका प्रमाण एकपल कहाहै । तथा उसमें खांड क्काथचूर्णसे चौगुने गुड चूर्ण से दुगना-और पानी-दूध-मूत्र-और दूसरे पतले पदार्थ चूर्णसे चौगुने लेने चाहिये ऐसा अवलेहमें सर्वत्र नियमहै । उस अवलेहके उत्तम पाककी परीक्षा कहते हैं कि पाकहोनेपर अवलेहमें तार निकलने लगता है तथा उस अवलेहकी बूंदको पानीमें गेरनेसे डूब जाता है । तथा अवलेहको कडछुलेमें लगानेसे चिपक जाता है तथा उस पाकका गंध वर्ण और रस ये अपूर्व होते हैं इसप्रकार क्काथका उत्तम पाक होनेके लक्षण जानने । तथा उस अवलेहका अनुपान दूध ईखका रस-पंच मूलके काढेकायूष-अडूसेका काढा इत्यादिक हैं वो रोगका तारतम्य देखकर वैद्य अपनी बुद्धिके साथ योजनाकरे ॥

चूर्णविधिः ।

अत्यंतशुष्कंयद्द्रव्यंसुपिष्टंवस्त्रगालितम् ।
तत्स्यात्चूर्णंरजःक्षोदस्तन्मात्राकर्षसंमिता ॥

अर्थ-उत्तम सूखी औषधको लायकर कूटपीस वारीककरे उसको कप

१ तन्मात्रास्यात्पलोन्मिता इति पाठान्तरम् । २ खरत्वमितिपाठांतरम् ।

डेमें छानलेवे उसे चूर्ण ऐसा कहते हैं तथा रज और क्षोद ऐसाभी कहते हैं उसचूर्णके भक्षणकी मात्रा १ तोलेकी है ॥

चूर्णमेंगुडादिडालनेकानियम।

चूर्णेगुडःसमोदेयःशर्कराद्विगुणाभवेत्। चूर्णेषुभर्जितंहिंगुदेयंनोत्क्लेदकारकम्। लिहेत्चूर्णंद्रवैःसर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः पिबेच्चतुर्गुणैरेवचूर्णमालोडितंद्रवैः।चूर्णावलेहगुटिकाकल्कानामनुपानकम्। पित्तवातकफातङ्केत्रिद्व्येकपलंहरेत् ॥

अर्थ—चूर्णमें गुडडालना होयतो चूर्णके बराबर डाले। खांडदूनी मिलावे। तथा हींग भुनीहुई डालनी तो वह विकार नहीकरे। घी-सहत-और अन्य चिकनी वस्तुइसमें मिलानी होयतो वो चूर्णसे दुगनी मिलावे। दूध-गोमूत्र जल तथा अन्य पतलीवस्तु चूर्णसे चौगुनीले उसजलादिमें चूर्णको डाल मिलायके पीवे। चूर्ण अवलेह गुटिका तथा कल्क इनका अनुपान जो कहाहै वो पित्तरोग होयतो ३ पललेवे—बातरोग होयतो २ पल और कफरोग होयतो एकपलले इससे औषध उत्तमरीतिसे देहमें फैल जाती है ॥

यथातैलंजलेप्राप्तंक्षणेनैवप्रसर्पति।
अनुपानबलादङ्गेतथासर्पतिभेषजम् ॥

अर्थ—इसविषयमें दृष्टांतहै जैसे पानीमें तेलकी बूंदक्षणमात्रमें फैल जाती है उसी प्रकार औषधी अनुपानके बलसे अंगमें शीघ्र फैल जातीहै

भावनाविधिः।

द्रवेणयावतासम्यक्चूर्णंसर्वंप्लुतंभवेत् भावनायाःप्रमाणंतुचूर्णेप्रोक्तंभिषग्वरैः। भाव्यद्रव्यसमंक्काथ्यंक्काथ्यादष्टगुणंजलम् ॥ अष्टांशशेषितःक्काथोभाव्यानांतेनभावना ॥ दिवादिवातपेशुष्कंरात्रौरात्रौनिवासयेत् ॥ शुष्कंचूर्णीकृतंद्रव्यंसप्ताहंभावनाविधिः

अर्थ—चूर्णमें नींबूके रसकी—अथवा अन्य विजोरे आदिके रसकी पुटदेनी होयतो इतनारस डालेकिवो चूर्ण उसरसमें बूडजावेयह चूर्णमें भावना का प्रमाण वैद्योंने कहाहै।जिस औषधीमें भावनादेनी है उसद्रव्यके समान

काथ द्रव्य ले और उसमें अठ गुनाजल मिलावे फिर अग्निपर चढाय मंद २ आंचसे काढाकरे जब जल अष्टमांस रहे तब उतार छानके उसरसकी भावना देवे दिनदिन भावनादेके धूपमें सुखायदे और रात्रिमें उठायके धरदेवे इस प्रकार उस भावनका सब रससूख जावे तब चूर्णकर धररक्खे इस प्रकार सातदिन भावनादेनी चाहिये ।

॥ इति भावनाविधिः ॥

उष्णोदकविधिः ।

अष्टमेनांशशेषेणचतुर्थेनार्द्धकेनवा । अथवाक्कथनेनैवसिद्धमुष्णोदकंभवेत् । श्लेष्मामवातमेदोघ्नंबस्तिशोधन दीपनम् । कासश्वासज्वरान्हन्तिपीतमुष्णोदकंनिशि ।

अर्थ–जल अग्निपरगरम करके अष्टमांश (अष्टावशेष) चतुर्थांश अथवा अर्धांशावशेषकरे अथवा केवल भतौबालकरे तो उसको उष्णोदक कहते हैं । गरमजल कफ–आमवात–और मेदोरोग (मोटापन) इनको नाशकरे तथा अग्निको दीप्त करे–रात्रिको सोते समय गरम जल पीवे तो खांसी–श्वास–और ज्वरको नाशकरे ॥

वटक (गोली)

वटकाश्चाथकथ्यन्तेतन्नामगुटिकावटी ॥ मोदकोवटिका पिंडीगुडोवर्त्तिस्तथोच्यते । लेहवत्साध्यतेवह्नौगुडोवा-शर्कराथवा । गुग्गुलुर्वाक्षिपेत्तत्रचूर्णंतन्निर्मितावटी ॥

अर्थ–अब वटका कहते हैं कि जिसका नाम गुटिका–वटी–मोदक वटिका पिंडी गुड और वर्त्ती है इसके बनानेकी विधि अवलेहके समान गुड अथवा खांडकापाककर उसमें गूगल वा चूर्ण मिलाय गोलीबनावे ॥

कुर्यादवह्निसिद्धेनक्वचिद्गुग्गुलुनावटीम् । द्रवेणमधुनावापि-गुटिकांकारयेद्बुधः । सिताचतुर्गुणादेयावटीषुद्विगुणोगुडः। चूर्णेचूर्णसमःकार्योगुग्गुलुर्मधुसंयुतम् ।द्रवंतुद्विगुणंदेयंमोद-केषुभिषग्वरैः। कर्षप्रमाणातन्मात्राबलंदृष्ट्वाप्रयुज्यते ॥

अर्थ–कहीं कहीं अग्निके पाकविना शुद्ध गूगलडाल चूर्ण मिलायके एक जीवकर गोली बनायलेवे–अथवा जल–सहत–दूध इत्यादिक पतली वस्तु मिलायके गोली बनाय लेवे । यदि खांडसे गोली बनानी होय

तो चूर्णसे चौगुनी खांडडालके गोली बनावे। और गुडके साथ बनानी होय तो दूना गुडडालके गोली बनावे। गूगल अथवा सहत इन दोंसे गोली बनानी होवे तो ये चूर्णके समान भाग लेकर गोलीकरे । पानी-सहत इत्यादि पतली वस्तुसे गोली बनानी होय तो वो चूर्णसें दुगना लेकर उससें गोलीकरे । गोलीकी मात्रा १ तोलेकी है अथवा रोगीके शक्त्यनुसार वैद्य मात्राकी कल्पनाकरे ।

चूर्णस्यपाकनिषेधमाह ।

प्रायोनपाकश्चूर्णानांभूरिचूर्णस्यतेनहि ।
आसन्नपाकेप्रक्षेपस्वल्पस्यपाकमागते ॥

अर्थ-चूर्ण औषधका पाक करना उचित नहीं है इसका कारण यहहै कि पाक करनेसे चूर्ण द्रव्यका वीर्य नष्टहो जाताहै । किंतु चुर्णद्रव्यका परिमाण अत्यंत अधिक होय तो मोदक आदिके बनानेमें जबचासनी होनेपर आयजावे उस समय इसको उसचासनीमें डालदेना उचितहै। अन्यथा समग्र चूर्णका उस पाकमें मिलना कठिन है । यदि चूर्ण थोडा होय तो जब चासनी लड्डुकी होकर उतारलीनी जावे और थोडीगरम रहे उससमय मिलावे तो गुणकरे अन्यथा नहीं ॥

अथानुवटिकाविधिः ।

धात्वादीनामुद्भिदावा चूर्णमुक्तैर्द्रवैःप्लुतम् ॥
अनुक्ततोययोगेनविमर्द्यविदधीतिच ॥
यवसर्षपगुंजादिप्रमाणांवटिकांभिषक् ॥
अनिर्दिष्टवटीसिद्धौप्रायोगुञ्जात्मिकामिति ॥
तत्सेवनंयथादोषमनुपानेनचेष्यते ॥

अर्थ-जडी बूंटी अथवा धातु आदि संपूर्ण द्रव्यका बारीकचूर्ण यथोक्त द्रव पदार्थके साथ अथवा जहां न कहाहो वहां जलके साथ सरसों-जो अथवा रत्तीआदिके प्रमाण गोली बनानी. चाहिये। जहां गोलीके विषयमें विशेष कुछनहीं लिखा उस जगे रत्ती २ की गोली बनानी. इस प्रकार बनाई हुई गोलियोंको अनुवटिका अथवा सामान्य करके वटिका कहते हैं । ये दोष विशेषसे अनुपान-विशेष करके सेवन करना चाहिये ॥

रसचूर्णम् ।

रसराजयुतंवलिहेममुखं विधिनापुटितंमनुशैत्यगतम् ॥

उपनीयततःपरिमर्दयतां रसचूर्णमिदंकथितंमुनिभिः॥

अर्थ-गंधक और स्वर्णादिक द्रव्यपारेके साथ खरलकर यथाविधि पुटपाक देकर जब स्वांगशीतलहो जावे तब चूर्णकर औषधार्थ प्रयोगों में वर्त्ते। इस प्रकारकी औषधको रसचूर्ण कहते हैं॥

धन्वंतरीकाभाग।

अर्द्धसिद्धरसस्य तैलघृतयोर्लेहस्यभागोऽष्टमः
संसिद्धाखिललोहचूर्णगुटिकादीनां तथा सप्तमः॥
योदीयेतभिषग्वरायसरुजानिर्दिश्यधन्वंतरिम्।
देहारोग्यसुखाप्तयेनिगदितो भागःसधन्वंतरिः॥ १॥

अर्थ-सिद्धरस (पारदकी भस्म-चंद्रोदयादि) में वैद्यका आधाभाग तेल घृत और अवलेह इनमें आठवां भाग तथा संपूर्ण लोहोंकी भस्म (सुवर्ण-चांदी तांमा-रांगा लोहकी-भस्म) चूर्ण-गोली, आदिशब्दसे पाक-अर्क इत्यादिकमें सप्तमभाग जो रोगी-धन्वंतरिके उद्देश करके वैद्यके वास्ते देता है उसकी देहमें आरोग्यहो-और सुखकी प्राप्ती होती है ये भागधन्वंतरिका कहलाता है इस वास्ते, अवश्य देना चाहिये॥

क्रीतद्रव्यस्यभैषज्यभागश्चैकादशोहियः॥
वणिग्भ्योगृह्यते वैद्यै रुद्रभागः सकथ्यते॥ २॥

अर्थ-खरीदी हुई औषधमें ग्यारहवां भागजो दुकानदारसे वैद्यलेता है वह रुद्रभाग कहलाता है-तात्पर्य यह है कि विकती औषधमें वैद्य रोगीसे कुछ न लेवे किंतु वेचने वालेने जितनी औषध वेची है उसका ग्यारहवां भाग वैद्यको लेना चाहिये ये उसका हक्क है॥

गृहीत्वाधिकमीशांशाद्योऽसमीचीनमौषधम्
दापयेल्लुब्धवद्वैद्यःसस्याद्विश्वासघातकः॥

अर्थ-जो वैद्य ग्यारहवें भागसे अधिकलेता है-अथवा उस वेंचनेवाले-से मिलकर आप कुछ अपने लिये हिस्सा ठहरायकर विकवावे वो लोभी वैद्य विश्वास घाती जानना-उसका न इस संसारमें भला होवे न पर लोकमें। प्रसंगवस यहां एकबात और लिखते हैं कि जिस्से मनुष्य जाली मनुष्यके फंदेमें न पडे॥

यहां मथुरा-दिल्ली-आगरेमें सतिये लोग जो जातिके कायथ होते हैं और अकसर जर्राहीका वा नेत्रोंका इलाज किया करतेहैं ये बाजारमें

एकांतमें बैठे रहते हैं जहां कोई गामका गमेरू मनुष्य अथवा परदेशी मनुष्य दीखा उसको इसारेसे अपने पास बुलाकर कुछ न कुछ ऐसा रोग बतावे कि जिस्से वो डरजावे, और उस्से कहते हैं कि इस रोगसे तुह्मारी बगलमें पसीने आते होंगे, और जब तुम सोकर सुबहको उठते होगे तब बडे जोरसे पेशाव उतरता होगा–यदि गरमी देखें तो कहते हैं कि तुह्मारे पैरोंके तलवा बहुत पसीजते होंगे–प्यास अधिक लगती होगी और आलकस जियादह आता होगा–बस ऐसी २ बात कहनेसे उस विचारे भोले भाले परदेशीको इनका विश्वास आजाता है–और उस्से बीचबीचमें यहभी कहते जाते हैं कि भाई यह तुम्हारा बुरा रोग देखके हमको तरस आगया यदि इसका इलाज न करोगे तो महीने दो महीनेमें मरजाओगे इस वास्ते हम खुदाकी राहपर तुम्हारा इलाज बताते हैं सो तुमकरो अल्लातालाके फजलसे बहुत जल्द तुमको आराम हो जावेगा। इस तरह उसको काबूमें कर जहां इसकी सट्ट लगी हुई होती है उसी दुकानपर चट्ट ले पहुंचते हैं–जाते खेम उस्से कहते हैं किफलां दवाई तेरेपास है वो कहे है अच्छानिकाल जब निकाले तब ये खरल लेकर बैठ जातेहैं और कहे ये छः मासे डाल–दूसरी तोलेभर डाल, इस तरह पहले दमडी २ छदाम २ की दवाई बताए, फिर एक अनख टूटी नामलेकर दवाई मांगें वो पसारी कहे साहव वो बडे मोलकी दवाई है तब ए कहें क्या मुजाका है निकालतो सही जब वो निकाल कर लावे तो पिसा हुआ गोंद होता है उसको कुछ अपनी जीभपर डाले और एक चुटकी भरके अपने ग्राहकके मूंमें डलवावें जब वो चिपकने लगे तब कहें कि देखो जैसी ये मूंमें चेपदेती है। ऐसी ही तुह्मारी धातको गाढीकर देवेगी–फिर पसारीसे पूछें ये क्या तोले देवेगा वो कहे एकरूपे तोले तब ए कहें नहींनहीं आठ आने तोले दे–आखिर को आठ आने दश आने पक्कीकर तुलाते हैं तब यह देखते हैं इस आदमीके पास कितना पैसा है उस वखत पसारीसे कहते हैं कि भाई इस दवाईको रुपया डालके तोलो हम और तरहसे नहीं माननेके पसारी सधा हुआ होताही है चट कहदेता है कि मेरे पास अभी रुपयानही आया नहीं तो मैं रूपयेसे तोलदेता उसवख्त ये हकीमसाहब अपने मवक्किलसे कहते की आपके पास रुपया होय तो तोलनेके वास्ते देदीजिये ज्योंही उसने रुपया निकाला और हकीम साहब ताडगए कि इसके पास इतनी जमाहै बसउसीके माफिक १ रु० की–दो रुपेकी ८ आनेकी या बारह आनेकी दवाई कुटाई और दामदिलाए उसकी पुडिया बांध उसको सौंपदेते हैं और उसके साथ २ चलकर शहरबाहर निकाल आते

हैं कि जिस्सेकोई सख्स उसको भैकाए नहीं और उसको अपनी नेकी जताते हैं कि देखो तुझारे इसकाममें हमनें कौडीभी नहीं खाई ईश्वरकी राहपर आपको दवाई वनवायदीनी है–इसतरह उसको शहरबाहरकर चट उसपंसारीके पास आनकर जैसा उस्से ठहराव हो वैसा रुपयेमें बारहआने या दशआने लेकर फिर उसी मुकाम पर आन जमते हैं और दूसरी शिकारकी तलास करते हैं॥

इसलिखनेसे हमारा यही प्रयोजनहै कि,सब भोले मनुष्योंको जाहिर होजावेकि ऐसे २ ठगिया–हकीम–जर्राह–ज्योतिषी–और मंत्रशास्त्री या जादूगरीके जालसे बचे ऐसाकोईसा सहर नहीं है जहाँये पामर (नीच) ठगियानहीं रहते इनकी मुख्य पहचानयही है कि ये विना जानपहचानके आनकर खुसामदकी और लोभ की बात से आदमीके दिलको लुभाते हैं–वसउसी समय बुद्धिमान् जान ले कि ये विनाकारण यहपरदेशीहमारी क्यों खुसामद करताहै–यह शिक्षा दत्तराम चौबेकीयादरहे॥

अथ स्नेहपाकस्यसाधारणोविधिः।

तत्रादौतिलतैलमूर्च्छा।

कृत्वातैलंकटाहेदृढतरविमलेमन्दमन्दानलैस्तत् तैलं
निष्फेनभावं गतमिहयदाशैत्ययुक्तंतदैव॥ मंजिष्ठारा
त्रिलोध्रैर्जलधरनलिकैः सामलैः साक्षपथ्यैः॥ सूचीप
त्रांघ्रिनीरैरुपहितमथितैः गंधयोगंजहाति॥

अर्थ–तैलमूर्च्छाके नियम कहते हैं–लोहेके दृढकढावमें मंद २ अग्निसे तैलपाककरे–जब यहतेल झागरहित होय तब चूल्हेसे उतारलेवे कुछशीतल होनेपर–पिसी हलदीको जलमें घोरकरक्रमसे धीरे २ उसतेलमें डाले और औटाता जाय इसी प्रकार कुटी मजीठको जलमें घोरके धीरे २ क्रमसे डाले–फिर लोध नागरमोथा–नलिका–आँवला–बहेडा हरड–केतकीकीजड–वडकीकोपल और नेत्रवाला इन सबको पीस जलमें मिलाय पृथक् २ तेलमें क्रमसे डाले–तथा इसतेलमें चौगुना जलमिलाय फिर पाककरे जब कुछजल बाकीरहे तब उतारके ७ दिनधरा रहनेदे तो तैलकी दुर्गंध दूरहोय। इसी हलदी और मजीठ आदि द्रव्यको मूर्च्छा द्रव्य कहते हैं॥

तैलस्येन्दुकलांशिकैकविकसाभागोऽपिमूर्च्छाविधौ॥
येचान्येत्रिफलापयोदरजनीह्रीबेरलोध्रान्विताः॥
सूचीपुष्पवटावरोहनलिकास्तस्याश्चपादांशिका॥

दुर्गंधंविनिहंतितैलमरुणंसौरभ्यमाकुर्वते ॥

अर्थ-अबइनके परिमाणका नियम कहते हैं कि जितनातेल होवे उसके षोडशांश मजीठ लेनी चाहिये और बाकी सब द्रव्य मजीठकी चतुर्थांश लेनी-जैसे तेल १६ सेर तो मजीठ १ सेर एवं हलदी-लोध-हरड-बहेडा-आमला-नागरमोथा-नेत्रवाला-इत्यादि द्रव्य सब पाव २ भर-लेनीचाहिये मूर्च्छाके करनेसें तेलकी दुर्गंध दूरहोती है और उत्तम सुगंध आने लगें हैं तथा उस तेलका लालवर्ण उत्पन्न होताहै ॥

कटुतैलमूर्च्छा।

वयस्थारजनीमुस्ताविल्वदाडिमकेशरैः । कृष्णजीरकह्रीवेरनलिकैः सविभीतकैः ॥ एतैः समांशैःप्रस्थेचकर्षमात्रंप्रयोजयेत् । अरुणोद्विपलंतत्र तोयंचाढकसंमितं कटुतैलंपचेत्तेन आमदोषोपशान्तये ॥

अर्थ-कटुतैलकेमूर्च्छाकी औषध ये हैं-आमला-हरदी-नागरमोथा-वेलकीछाल अनारकी छाल-केशर-कालाजीरा-नेत्रवाला-नलिका बहेडा-और मजीठ। मूर्च्छा करनेकी विधि पूर्ववत् जाननी । अर्थात तैल निस्फेन होजावे तब उतारके हरदीजलमें घोरके तैलमें छिरके फिरमजीठको छिडके-फिरअन्य २ सब वस्तुओंको तेलमें डाले ४ सेर कडुआतेल-मजीठ २ पल-और २ द्रव्य प्रत्येक दोदो तोलालेवे और जल १६ सेरमिलायके पाककरे ॥

एरंडतैलमूर्च्छा।

विकसामुस्तकंध्यान्यंत्रिफलावैजयन्तिका ॥ ह्रीवेरवनखर्जूरवटशुंगानिशायुगम् । नलिकाभेषजंदेयंकेतकीचसमंसमम् । प्रस्थेदेयंशुक्तिमितंमूर्च्छनेदाधिकांजिकम् ॥

अर्थ-एरंडतेलकी मूर्छा द्रव्य ये हैं-मजीठ-नागरमोथा-धनिया-त्रिफला अरनीके पत्ते नेत्रवाला-वनखजूर-वडकीकोपल-हरदी-दारहलदी-नलिका-केतकीकीजड-दही-काँजी-प्रत्येक चार २ तोला, तेल अंडीका ४ सेर-पूर्वोक्तरीतिके अनुसार मजीठ आदिसे मूर्छा करे ॥

घृतमूर्च्छा।

पथ्याधात्रीविभीतैर्जलधररजनीमातुलुंगद्रवैश्चद्रव्यै

रेतैःसमस्तैः पलकपरिमितैर्मन्दमन्दानलेन । आज्यं प्रस्थंविफेनंपरिचपलगतंमूर्च्छयेद्वैद्यराजः तस्मादा-मोपदोषंहरतिचसकलंवीर्यवत्सौख्यदायि ॥

अर्थ–हरड–आमले–बहेडा–नागरमोथा–हलदी और नींबूकारस येसब वस्तु घृतकी मूर्च्छाद्रव्यहैं । प्रथमहलदी–पश्चात् नींबूका रस फिर और २ द्रव्य संपूर्ण डालके पूर्ववत् मूर्च्छित करे–मूर्च्छाद्रव्य प्रत्येक एक२ पल लेवे घृत ४ सेरले और जलपाकार्थ १६ सेर मिलावे ॥

वातहरतैलानांविशेषमूर्च्छाविधिः ।

आम्रजंबूकापित्थानांबीजपूरकबिल्वयोः ॥
गन्धकर्मणिसर्वत्रपत्राणिपञ्चपल्लवम् ॥
पंचपल्लवतोयेनगंधानां क्षालनंमतम् ॥

अर्थ–वातघ्न (नारायणतैल–विषगर्भादि) तैलोंकी मूर्छामें पूर्वोक्त साधारण नियमकरे । तथा पंचपल्लवजलमें फिरशोधनकरे । उसका नियम यह है कि आम–जामुन–कैथ, विजोरा–और वेल इनसबके-पत्ते तेलके अष्टमांस लेकर चौगुने जलमें काढाकरे, जबचतुर्थांश बाकी रहे तबउतारके छानलेवे । फिरइसकाढे केसाथ उत्तममूर्छित तैलको फिरपाककरे ॥

स्नेहपाकमेंकालकानियम ।

मूर्च्छास्यात्सप्तभिः सिद्धारात्रिभिर्बुधसंमता ॥ व्रीहि प्राण्यंगयोःपाकःसद्यःसिध्यतिनान्यथा ॥ स्यात्पाकः पयसोद्वाभ्यांस्वरसादेस्तुतिसृभिः ॥ दधिकांजिकत क्राणांसिद्धोभवतिपञ्चभिः ॥ मूत्रादीनामेकयास्यात्ततः कल्कस्यसप्तभिः॥ गंधानांपंचभिर्ज्ञेयः स्नेहपाकेत्वयंक्रमः॥

अर्थ–तैलादिककी मूर्च्छा ७ दिनमें होतीहै–अर्थात् मूर्च्छा द्रव्य संपूर्ण पाकके अंतर ७ दिन तकउतारके डालते हैं । तत्पश्चात् मटरआदिका काढा और उसके पीछे मांसादिक काढेके साथ तैलकापाक करना । इत्यादिकमें एकएक दिनलगता है, फिरदूधके साथ पाककरना इसमें दो-दिन लगते हैं फिर स्वरस तथा क्काथके साथपाककरनेमें तीनदिन लगते

हैं, फिरदही-काँजी और छाछइनके साथ पाकमें पांच५दिनलगते हैं।तत्प-श्चात् मूत्रादिकके साथपाककरनेमें एकदिनलगता है । फिरकल्कपाक ७ दिनमें होता है-सबके पीछे गंधपाक अर्थात् गंधद्रव्य के साथपाक ५ दिनमें होता है,तथादूध-दही-इनकेसाथ पाक करनेमें एकएक दिनगलगता है

चतुर्विधस्नेह ।

स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तोघृतंतैलंवसातथा ॥
मज्जाचतांपिवेन्मर्त्यः किंचिदभ्युदितेरवौ ॥

अर्थ-स्नेह (चिकनाई) चारप्रकार की है-जैसै-घी-तेल-वसा (मांसस्नेह) और मज्जा (हड्डी से निकलातेल) येचारोंप्रकारके तेल किंचित् सूर्योदय होनेपर तथा नहोनेपर पीनेचाहिये ॥

द्विविधस्नेह ।

स्थावरंजंगमंचैवद्वियोनिः स्नेहउच्यते ॥
तिलतैलंस्थावरेषुजंगमेषुघृतंवरम् ॥

अर्थ-वो स्नेह दोप्रकारका है एकस्थावर और दूसराजंगम ये दोही स्नेहकी योनि हैं, तिनमें स्थावर पदार्थके स्नेह बहुत हैं उनमें तिलका तैल उत्तम है । और जंगमपदार्थोंमें घी आदिशब्दसे वसादिक अनेक है उनमें घीश्रेष्ठ है इसप्रकार स्नेहके दोभेद जानने ॥

स्नेहकेभेद ।

द्वाभ्यांत्रिभिश्चतुर्भिस्तैर्यमकस्त्रिवृतोमहान् ॥

अर्थ-घी और तेल दोनोंके मिलनेसे उसको यमक कहते हैं और घी-तेल-तथा वसा (चर्वी) येतीन एकत्र होनेसे उसकी त्रिवृत संज्ञा है तथा घी-तेल-वसा-और मज्जा इन चारोंके एकत्र मिलने से उसकी महान् संज्ञा है इसप्रकार स्नेहके तीन भेद जानने ॥

स्नेहपाकविधिः ।

विघ्नेशक्षेत्रपालौवटुकमपिशुभेवासरेपूजयित्वातैल ।
स्याज्यस्यकिंवारचयतुनिपुणः संस्कृतिसंप्रदायात् ॥

१ मांसादष्टगुणं घृतं, अर्थात् मांसकी अपेक्षा घृत अठगुना अधिकहै, इसी कारण प्रथम घृत लिखाहै । २ मांससे घृतके समान तेल निकलता है अतएव उसको मांस स्नेह अथवा चर्बी कहते हैं। ३ जो नहीं चले (जैसे वृक्षादि उनको स्थावर) ४ और चलनेवाले (गौं भैंस-मनुष्य आदि) को जंगम कहते हैं।

आदौवन्हिंप्रदद्याल्लघुरथशनकैःफेनशब्दावधिःस्यात् ॥
पश्चान्मृत्पिंडकैस्तद्दशभिरलघुभिर्नातिपीनैर्विशोध्यम्॥

अर्थ–श्रीगणपति–क्षेत्रपाल और वटुक इनका शुभदिनमें पूजनकर-फिर तेल–अथवा घीकी विधिको कुशल वैद्य गुरु संप्रदायानुसार प्रारंभ करे प्रथम तेलको लोह आदिके कढावमें चढाय चूल्हे पररखके मंद मंद अग्नि देवे कि जबतक तैलमें झागन आवे और घीमें शब्द न होवे–फिरक्रमसे अग्निको बढावे।पश्चात् मिट्टीके दशगोला कि जो न बहुत बडे और न बहु, त छोटे हों ऐसे लेकरउनसे शोधनकरे ॥

कल्काच्चतुर्गुणीकृत्यघृतंवातैलमेववा ॥
द्रव्येचतुर्गुणेसाध्यंतस्यमात्रापलोन्मिता ॥

अर्थ–कल्कसे चौगुना घीवा तेल लेवे उसको चतुर्गुण द्रव्यमें साधन करे जिसकी मात्रा एकपल (४ तोले) की है ॥

स्नेहसाधनमेंक्वाथ्यऔरजलादिकाप्रमाण ।

निक्षिप्यक्वाथयेत्तोयंक्वाथ्यद्रव्याच्चतुर्गुणम् ॥ पादशिष्टं गृहीत्वातुस्नेहस्तेनैवसाधयेत् ॥ चतुर्गुणंमृदुद्रव्यकाठिनेऽष्टगुणंजलम् । मृद्वादिक्वाथ्यसंघातेदद्यादष्टगुणंपयः॥ अत्यंतकठिनेद्रव्येनीरंषोडशिकंमतम् ॥

अर्थ–अनेक स्थलमें क्वाथके साथ घी वा तैलका पाककरते हैं इसीसे क्वाथबनानेका नियम लिखतेहैं। क्वाथ्यद्रव्य (जिसकी क्वाथकरीजावेगी) यदिनम्रहोवे तो चौगुनाजलडाले-और यदिमध्यमहोय अर्थात् न बहुत करडी और न बहुत नरम तो अठगुना जलमिलावे, तथा जो द्रव्य अत्यंत कठोर होवे तो सोलह गुनाजलडालके क्वाथ सिद्धकरे-जबचतुर्थांशशेषरहे तब उतारके छानलेवे । ऐसाकाढा स्नेहसे चौगुनालेना चाहिये ॥

अन्यच्च ।

कर्षादितःपलंयावत्क्षिपेत्षोडशिकंजलम् ॥ तदूर्ध्वंकुडवंयावद्भवेदष्टगुणंपयः ॥ प्रस्थादितःक्षिपेन्नीरंखारीयावच्चतुर्गुणम् ।

अर्थ–अन्यत्रभी लिखाहै कि क्वाथबनानेमें क्वाथ द्रव्यका परिमान १ कर्षसे लेकर पलपर्यंत होनेसे सोलहगुनाजल डालना-और पलसे लेकर कुडव पर्यंत अठगुना जलडालना एवं प्रस्थसे लेकरखारी पर्यंत द्रव्य होवेतो उसमें चौगुना जलडालना न्यूनाधिक नहीं डालना ॥

तुलाद्रव्येजलद्रोणोद्रोणेद्रव्यतुलामता ।

अर्थ—जहांजलका परिमाणकुछ नहीं कहा वहाँ १२॥ सेर द्रव्यमें ६४ सेर जलडालके क्वाथकरे । एवं ६४ सेर जलमें क्वाथ्यद्रव्य १२॥ सेर डालनी चाहिये ॥

अनिर्दिष्टप्रमाणानांस्नेहानांप्रस्थइष्यते ।
जलस्नेहौषधानांचप्रमाणंयत्रनोदितम् ॥
तत्रस्यादौषधात्स्नेहः स्नेहात्तोयंचतुर्गुणम् ॥
स्नेहसिद्धौद्रव्येऽनुक्तेसर्वत्राम्भश्चतुर्गुणम् ॥
गन्धद्रव्याणिचेच्छन्तिकल्कस्यार्धांशिकानिच ॥

अर्थ—स्नेह पाकमें जहां विशेष कुछनहीं लिखा उसजगे स्नेह[1] १ सेर लेना चाहिये, तथा जलस्नेह—और कल्कद्रव्यका परिमाण न लिखाहो तहां कल्कचौगुनालेना स्नेह और कल्कपाकार्थ जलका परिमाण स्नेहसे चौगुनालेना चाहिये । स्नेह पाकमें द्रव्य पदार्थका जहां उल्लेख न होवे तहां चौगुना जलडालके पाक करना । तथा तैल पाकमें गंधद्रव्यका परिमाण कल्कके परिमाणसे आधा जानना चाहिये ॥

स्नेहपाकविधौयत्रक्षीरमेकंतुकथ्यते ।
तोयादीनामनिर्देशेक्षीरमेवचतुर्गुणम् ॥
द्रव्यान्तरेणयोगेतुक्षीरंस्नेहसमंविदुः ॥

अर्थ—स्नेह पाकमें यदि दुग्धके सिवाय और पदार्थ नहो अर्थात् केवल दूधसे ही पाककरना होवे तो दूधस्नेहसे चौगुनालेना चाहिये । और यदि पाकमें जल अथवा अन्य द्रव्यका संयोग होवे तो दूधस्नेहके बराबरही लेना यह नियम है ।

वृन्देतु ।

स्वरसक्षीरमाङ्गल्यैर्पाकोयत्रेरितः क्वचित् ॥
जलंचतुर्गुणंतत्रवीर्याधानार्थमावपेत् ॥
नमुंचातिरसंद्रव्यंक्षीरादिभिरुपस्कृतम् ॥
सम्यक्पाकोनजायेततस्मात्तोयंचतुर्गुणम् ॥

अर्थ—वृन्दग्रंथमें लिखा है कि स्वरस—दूध—अथवा दही इनकरके पाक करना कहाहो वहां कहीं २ चौगुना जल मिलाकर पाक करते हैं ॥

---

१ कल्काच्चतुर्गुणः स्नेहः स्नेहात्क्वाथश्चतुर्गुणः । क्वाथाच्चतुर्गुणंवारिक्वाथः क्वाथ्यसमोमतः

इसकातात्पर्य यहहै कि दूधआदिके गाढा होनेपर कल्कादिद्रव्यका रस अच्छीतरहनही निकलता अतएव उत्तम पाकभी नहीहोवे-इसी कारण चौगुना जल डालनेसे पाक ठीक२होताहै और द्रव्योंमें वीर्यकी प्राप्तिहोती है इससे चौगुना जल डालना चाहिये ॥

पंचप्रभृतियत्रस्युर्द्रव्याणिस्नेहसंविधौ ।
तत्रस्नेहसमान्याहुरर्वाक्चस्याच्चतुर्गुणम् ॥

अर्थ-स्नेहपाकमें पांच अथवा पांचसे अधिक द्रव्य होवेतो प्रत्येक द्रव्यका प्रमाणस्नेहके समानलेना चाहिये । यदि पांचसे न्यून (कम्) होवे तौ उनको स्नेहसे चौगुनालेना चाहिये ॥

अम्बुक्काथरसैर्यत्रपृथक्स्नेहस्यसाधनम् ।
कल्कस्यांशंतत्रदद्याच्चतुर्थंषष्ठमष्टमम् ॥

अर्थ-जलद्वारा स्नेह पाककरना होवे तो कल्क द्रव्यका परिमाणस्नेह से चतुर्थांशलेवे । क्वाथके द्वारापाककरना होयतो कल्कका परिमाण स्नेहसे छठाभागलेवे । एवं स्वरस द्वारापाक करना होयतो स्नेहका अष्टमांश रसलेना चाहिये ॥

दुग्धेदधिरसेतक्रेकल्कोदेयोष्टमांशिकः ।
कल्काच्चसम्यक्पाकार्थंतोयमत्रचतुर्गुणम् ॥
कल्कात्कल्कद्रव्याच्चतुर्गुणतोयंपेषणार्थं ॥

अर्थ-दूध-दही-स्वरस अथवा छांछद्वारा पाककरना होवेतो स्नेहका अष्टमांश कल्क और कल्कका चौगुनाजल डालना चाहिये । चौगुना जल कल्कके पीसनेके वास्ते लेतेहैं ॥

क्वाथेनकेवलेनैवपाकोयत्रोदितः क्वचित्॥क्वाथ्यद्रव्यस्य-
कल्कोऽपितत्रस्नेहेप्रयुज्यते । कल्कहीनस्तुयःस्नेहः
ससाध्यःकेवलेद्रवे। केवलेद्रवेक्वाथेतरस्मिन्स्वरसादिरूपे ॥

अर्थ-जहांकेवल क्वाथ द्वारा स्नेह साधन कहाहो तो उसजगे क्वाथ्य द्रव्यका कल्कभी मिलायके पाककरे । जहां कल्कके विना स्नेहपाक करनाहोय उसजगे क्वाथके शदृश अन्य द्रव पदार्थके साथ अर्थात स्वरसादि के साथ पाककरना चाहिये ॥

पुष्पकल्कस्तुयः स्नेहस्तत्रतोयंचतुर्गुणम् ।
स्नेहात्स्नेहाष्टमांशश्चपुष्पकल्कःप्रयुज्यते ॥

अर्थ–कल्कद्रव्य यदि पुष्पहोय तो उसको स्नेहका अष्टमांश लेवे और पाकार्थ स्नेहका चौगुना जल डालना चाहिये ॥

आदौकल्कःप्रदातव्योगंधद्रव्यंततःपरम्। तैलमुत्तार्यदातव्यंशिह्लकंकुङ्कुमंनखम्।गंधचंदनकर्पूरमेलावीजंलवंगकम्॥

अर्थ–प्रथम कल्कपाककरे–फिर गंधद्रव्यका पाककरे–गंधद्रव्य समग्र कल्कके परिमाणसे आधी होनी चाहिये। तैलकादूनाजलदेकर गंधपाक करे गंध द्रव्यमें शिलारस, केशर, नख,सपेद चंदन,कपूर,छोटी इलायची और लौंग इनका पाक नहींकरना इनको पाकांतमें तैल चूल्हेसे उतार शीतलकर उसमें ये द्रव्य पीसके डालदेवे और कौंचासे सबको मिलाय के एकजीव करदेना चाहिये ॥

गंधद्रव्याणि।

एलाचंदनकुंकुमागरुमुराकंकोलमांसीशटी ॥
श्रीवासच्छदग्रन्थिपर्णशशभृत्क्षौणीध्रजोशी
रकम् ॥ कस्तूरीनखपूतितैलजलमुङ्मेथीलवं
गादिकम् गंधद्रव्यमिदंप्रदेयमखिलंश्रीविष्णुतैलादिषु ॥

अर्थ–छोटी इलायची,–सफेदचंदन,–केशर,–अगर,–जटामांसी,–कचूर,–सरलकाष्ठ,–तेजपत्र,–गठीला, कपूर,–शिलाजीत,–खस,–कस्तूरी, नख,–मुश्कबिलाई, शिलारस, नागरमोथा, मेथी, लौंग, इत्यादि गंधद्रव्य कहाती हैं नारायण तेल आदिमें ये संपूर्ण गंधद्रव्य देनी चाहिये ॥

स्नेहपाकपरिज्ञानम्।

वर्त्तिवत्स्नेहकल्कःस्याद्यदाङ्गुल्याविवर्त्तितः ॥
शब्दहीनोऽग्निनिक्षिप्तः स्नेहः सिद्धोभवेत्तदा ॥
यदाफेनोद्गमस्तैलेफेनशांतिश्चसर्पिषि ॥
गंधवर्णरसोत्पत्तिः स्नेहः सिद्धोभवेत्तदा ॥

अर्थ–स्नेह पाकमें जब कल्कको उंगलियोंके मीडनसे बत्तीसी होने लगे तथा अग्निमें उसको गेरनेसे चट चटाहट शब्द नकरे तब जानना कि स्नेह, सिद्ध होगया। जिस समय तेलमें झाग आवे और घीमें झाग आना बंदहो जावे तथा उपयुक्त वर्ण गंध और रसकी उत्पत्ति होवे तब जांनना कि पाक सिद्ध होचुका ॥

त्रिविधपाक।

स्नेहपाकस्त्रिधाप्रोक्तोमृदुर्मध्यःखरस्तथा। ईषत्स्वर सकल्कस्तुस्नेहपाकोमृदुर्भवेत्॥ मध्यपाकस्यसिद्धिश्चकल्केनीरसकोमले। ईषत्कठिनकल्कश्चस्नेहपाको भवेत्खरः॥ तदूर्ध्वंदग्धपाकःस्याद्दाहकृन्निष्प्रयोजनः। आमपक्वश्चनिर्वीर्योवह्निमांद्यकरोगुरुः॥

अर्थ-स्नेहपाक तीन प्रकारका है १मृदु-२मध्य- ३खर-तहां कल्कद्रव्यका कुछ थोडासा रस अंश बाकी रहनेसे मृदुपाक कहाताहै और जो कोमल होय तथा रस रहितहो उसको मध्यपाक कहतेहैं।एवंकुछ थोडा कठिन होनेसे खर-पाक कहाताहै।इसके उपरांत कठिन पाक होनेसे दग्ध पाक कहाताहै।ऐसा स्नेह कार्य साधक नहीं होता-यह दाहको प्रगट करैहै तथा आमपक्व (कच्चे पाकका) स्नेह निर्वीर्य-मंदाग्नि करता और भारी होताहै॥

नस्यार्थंस्यान्मृदुःपाकोमध्यमःसर्वकर्मसु।
अभ्यंगार्थःखरःप्रोक्तोयुंज्यादेवंयथोचितम्॥

अर्थ-नस्यके अर्थ मृदुपाकवाला स्नेह लेना और मालिशमें खरपाक लेना तथा मध्यपाक स्नेह सर्व कार्योपयोगी जानना॥

घृततैलगुडादींश्चसाधयेन्नैकवासरे।
प्रकुर्वंत्युषिताह्येतेविशेषाद्गुणसंचयम्॥

अर्थ-घृत-तैल और गुड आदिपाक एक दिनमें न साधन करे,इसका यह कारणहै कि, उषित(वासित)अर्थात् अधिक दिनमें सिद्धकराहुआ पाक विशेष गुणोंको करताहै इसी कारण धीरे धीरे साधन करे॥

अथस्नेहसेवनविधिः।

गुरुशीतसरस्निग्धमंदसूक्ष्ममृदुद्रवम्। औषधंस्नेहनं प्रायोविपरीतंविरूक्षणम्। सर्पिर्मज्जावसातैलंस्नेहेषुप्रवरं मतम्॥ तत्रापिचोत्तमंसर्पिःसंस्कारस्यानुवर्त्तनात्। घृतात्तैलंगुरुवसातैलान्मज्जाततोऽपिच॥

अर्थ-गुरु, शीत, सर, स्निग्ध,मंद, सूक्ष्म,मृदु और द्रव, गुणयुक्त द्रव्य समस्त स्नेहन जानना।इसके विपरीत अर्थात लघु, उष्ण, स्थिर, रूक्ष,स्थूल,

कठिन और सांद्रगुण, विशेष द्रव्यमात्र प्रायः रूक्षण जानना ।स्नेहपदार्थमें घृत, मज्जा, वसा और तैल ये चार प्रधान हैं। इस स्नेहचतुष्टयमेंभी घृत उत्तम है।कारण यहहै कि, इस घृतका अन्य द्रव्यके साथ संस्कार होनेसे निजशक्ति और संस्कृत द्रव्यकी शक्तिको प्रकाश करै है।घृतसे तैल तैलसे भारी वसा है और वसासे भारी मज्जा जाननी ॥

स्नेहपीनेकाक्रम ।

पिबेत्र्यहंचतुरहं पंचाहंषडहंतथा ॥

अर्थ--घी तीन दिन पीवे और तैल चार दिन पीवे तथा मांस स्नेह पांच दिन पीवे और हड्डीका तेल६दिन पीना चाहिये।इस प्रकार क्रम करके घृतादि स्नेह पीनेका क्रम जानना ॥

सप्तरात्रात्परंस्नेहःसात्मीभवतिसेवितः ॥

अर्थ--सात दिवसके अनंतर घृतादिक स्नेह पीनेसे आहारके समान हो जाता है । फिर गुण अवगुण कुछ नहीं करता ॥

स्नेहपानमेंयुक्ति ।

दोषकालाग्निवयसांबलंदृष्ट्वाप्रयोजयेत् ।
हीनांचमध्यमांज्येष्ठांमात्रांस्नेहस्यबुद्धिमान् ॥

अर्थ--वातादिक दोष, काल, अग्नि, अवस्था इनका बलाबल विचारके घृतादिक स्नेहोंकी सेवनकी मात्रा हीन[1] (अल्प) और मध्य[2] तथा ज्येष्ठ[3] इनमेंसे शक्तिका तारतम्य देखकर देनी चाहिये ॥

अविधिस्नेहसेवनकेदोष ।

अमात्रयातथाकालेमिथ्याहारविहारतः ।
स्नेहःकरोतिशोफार्शस्तंद्रानिद्राविसंज्ञितः ॥

अर्थ-घृतादिक स्नेह पीनेका प्रमाणकहाहै उसकी अपेक्षा कम अथवा ज्यादे पीनेसे,तथापीनेका कालछोडकर अन्यकालमें पीनेसे तथाघृतादिक स्नेह पीकर मिथ्या आहार और मिथ्या विहार करनेसे उस स्नेहसे सूजन और बवासीर होतीहै तथा तंद्रा आनकर घोरनिद्रा आतीहै तथा संज्ञाका नाश होताहै

१ स्नेह पीनेमें । २ कर्षकी मात्रा हीन हैं तीन कर्षकी मात्रा मध्यम जाननी। ३ एक पल प्रमाणकी जो मात्रा है वो ज्येष्ठ (बडी) जाननी ।

स्नेहयोग्यमनुष्य ।

स्वेद्यसंशोध्यमद्यस्त्रीव्यायामासक्तचिंतकाः ।
वृद्धबालाबलकृशारूक्षक्षीणास्त्ररेतसः ॥
वातार्तस्यंधितिमिरदारुणप्रतिबोधिनः ॥

अर्थ–औषध करके जिसका पसीना काढाहो,रेचक औषध करके शुद्ध कराहुआ,मद्य पीनेवाला,स्त्रीपरिश्रमसे थकाहुआ,चिंताकरके व्याप्त,वृद्ध, बालक,कृश,रूक्ष,क्षीण,रुधिरवाला,धातुक्षीण,बादीकरके पीड़ित,तिमिररोगसे व्याप्त ऐसे प्रकारके मनुष्य घृतादिक स्नेह पीनेके योग्यहैं ऐसा जानना ॥

स्नेहक्रियाअयोग्य ।

स्नेह्यानत्वतिमन्दाग्नितीक्ष्णाग्निस्थूलदुर्बलाः ।
उरुस्तंभातिसारामगलरोगगरोदरैः ॥
मूर्च्छाछर्द्यरुचिश्लेष्मतृष्णामद्यैश्चपीडिताः ।
अपप्रसूतायुक्तेचनस्येबस्तौविरेचने ॥

अर्थ–अत्यंत मंदाग्निवाला,अत्यंत तीक्ष्णाग्निवाला,अतिस्थूल,अत्यंतदुर्बल,एवंऊरूस्तंभ,अतिसार,आम,गलरोग,विषरोग,उदररोगी,मूर्च्छा,वमन, अरुचि,कफ,तृषा और मदात्यय रोगसे पीडित,अकाल प्रसूता नारी इत्यादि रोगी तथा नस्य, बस्ती और विरेचन करचुकाहो ऐसे मनुष्योंको स्नेहन क्रिया करना निषेधहै ॥

घृतयोग्य ।

तत्रधीस्मृतिमेधाग्निकांक्षिणांशस्यतेघृतम् ॥

अर्थ–तहां बुद्धि, स्मृति (स्मरण) मेधा और अग्निवृद्धि इनके निमित्त स्नेह प्रयोग करनेवालोंको घृतप्रयोग उत्तमहै ॥

तैलयोग्य ।

ग्रन्थिनाडीक्रिमिश्लेष्ममेदोमारुतरोगिषु ॥ तैललाघवदार्ढ्यर्थेक्रूरकोष्ठेषुदेहिषु ॥ वातातपाध्वभाषास्त्रीव्यायामाक्षीणधातुषु ॥

अर्थ–गांठ,नाडीव्रण,कृमि,कफ, मेदा,वायुरोगसे पीड़ित,क्रूरकोठेवाला एवं हवा,धूप, मार्गचलना, अधिक पुकारना (पढना गाना आदि) स्त्रीसंभोग और दंड, कसरत, इत्यादि कारणोंसे क्षीण धातुवालोंके पक्षमें तथा हलकापन और दृढताके निमित्त तैलका प्रयोग अति उत्तमहै ॥

वसा और मज्जाकेअधिकारी।

रूक्षक्लेशक्षमात्यग्निवातावृतपथेषुच। शेषौवसातु-

अर्थ-रूक्षदेह, क्लेशका सहनेवाला, अत्यंत अग्निदीप्तवाला, इनको तथा बादी करके मार्गरुका हुआ ऐसे मनुष्योंको बाकीके दोस्नेह वसा और मज्जा हितकारी जानने॥

वसाकाप्रयोग।

सन्ध्यास्थिमर्मकोष्ठरुजासुच। तथादग्धाहतेभ्रष्टेयोनि कर्णशिरोरुजि॥

अर्थ-संधि, हड्डी, मर्म, कोष्ठ, कर्ण और मस्तककी पीडा, एवं दग्धयोनि, आहतयोनि और भ्रष्टयोनि ऐसीस्त्रियोंके पक्षमें वसा अत्यंत हितकारीहै॥

ऋतुपरत्वघृततेलादिकासेवन।

तैलंप्रावृषिवर्षान्तेसर्पिरन्यौतुमाधवे। ऋतौसाधारणेस्ने हःशस्तोऽह्निविमलेरवौ॥

अर्थ-प्रावृट्कालमें तेल, शरद्कालमें घृत, एवं वसंतकालमें वसा और मज्जा सेवन करने। साधारण ऋतुमें अर्थात् जिससमय शीत, गरमी और वर्षा इनकी प्राबल्यता न होवे उस समय दिनमें सूर्य निर्मल हो अर्थात् बादलादिक होय नहीं उससमय स्नेहप्रयोग करना उत्तमहै॥

तैलंत्वरायांशीतेपिघर्मेपिचघृतंनिशि। निश्येवपित्तेप- वनेसंसर्गेपित्तवत्यपि। निश्यन्यथावातकफाद्रोगाःस्युः पित्ततोदिवा॥

अर्थ-अत्यंत आवश्यकतामें अर्थात् जिसरोगसे शीघ्रही बिगाड दीखे उस रोगमें शीतकालमेंभी तेलका प्रयोग करना किंतु दिनमें जब सूर्य निर्मल होवे तब करे इसी प्रकार गरमीमें घृतकी व्यवस्था जाननी, परंतु घृतको रात्रिमें देना चाहिये।केवल पित्त अथवा केवल बादीमें अथवा पित्तयुक्त संसर्गस्थलमें रात्रिके समय स्नेहपानकी व्यवस्था जाननी।अविधिसे रात्रिमें स्नेहप्रयोग करनेसे वात कफके रोग और अविधिसे दिनमें स्नेह प्रयोग करनेसे पैत्तिक रोग उत्पन्न होतेहैं॥

स्नेहपानकीमात्रा।

देयादीप्ताग्नयेमात्रास्नेहस्यपलसंमिता।

मध्यमायात्रिकर्षास्याज्जघन्यायद्विकार्षिकी ॥

अर्थ–जिसमनुष्यकी दीप्ताग्नि होवे उसको घृतादिक स्नेहकी मात्रा १पल पिलानी चाहिये और जिसकी मध्यम अग्निहै उसमनुष्यको तीनकर्ष प्रमाणदेवेतथा जिसकी मंदअग्नि होवे उसकोदोकर्षप्रमाणकी मात्रा देनीचाहिये।

प्रकारांतर।

अथवास्नेहमात्राःस्युस्तिस्रोन्याःसर्वसंमताः।
अहोरात्रेणमहतीजीर्यत्यह्नितुमध्यमा।
जीर्यत्यल्पादिनार्द्धेनसाविज्ञेयासुखावहा ॥

अर्थ–संपूर्ण ऋषियोंको मान्य ऐसी दूसरी घृतादिक स्नेह व्यवस्थापक मात्रा तीन प्रकारकीहै उसको कहतेहैं।जोमात्रा आठप्रहरमें पचे उसको बडी मात्रा कहतेहैं वो एक पलकी जाननी और जोमात्रा एकदिनमें पचे उसको मध्यम कहतेहैं वो तीन कर्षकीहै।तथा जो मात्रा दोप्रहरमें पचे उसको अल्पा (छोटीमात्रा) कहतेहैं वो दोकर्षकी जाननी यह सुखदायकहै अर्थात् यह सबको पचन होसक्तीहै। अल्पादिकमात्राओंकेगुण।

अल्पास्याद्दीपनीवृष्यास्वल्पदोषेसुपूजिता।
मध्यमास्नेहनीज्ञेयाबृंहणीभ्रमहारिणी।
ज्येष्ठाकुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशिनी ॥

अर्थ–घृतादिक स्नेह पीनेकी जो दोकर्षकी अल्पमात्रा है वह जठराग्नि दीप्तकर स्त्रीसंगकी रुचि बढावे है, तथा वातादिक दोषोंके अल्पप्रकोपको दूरकरे है।तथा तीनकर्षकी जो मध्यममात्रा है। वो देहको पुष्टकर धातुकी वृद्धिकरेहै।तथा भ्रमको दूरकरेहै।एवं १पलकीजो ज्येष्ठमात्रा है वो कुष्ठ,विष, भूतोन्माद और अपस्मार इनका नाशकरे ॥

दोषोंमेंअनुपानविशेष।

केवलंपैत्तिकेसर्पिर्वातिकेलवणान्वितम्।
देयंबहुकफेवापिव्योषक्षारसमन्वितम् ॥

अर्थ–केवल पित्तके कोपमें घी मिलावे और वायुके कोपमें घी और निमक मिलायके पिवावे। तथा कफके अत्यंत कोप होनेसे व्योष[1]–तथा जवाखार इनके चूर्णके साथदेवे ॥

---

१ सोंठ, मिरच, पीपल, इन तीनोंके समुदायको व्योष कहते हैं।

घृतयोग्य।

रूक्षक्षतविषार्त्तानांवातपित्तविकारिणाम्।
हीनमेधास्मृतीनांच सर्पिःपानंप्रशस्यते॥

अर्थ—रूक्षमनुष्य उरक्षत और विषार्त्त मनुष्य—तथा वातपित्तके विकारी एवं बुद्धि स्मृति करके हीन हैं उनको घृतका पिलाना उत्तम है॥

तैलयोग्य।

कृमिकोष्ठानिलाविष्टाः प्रवृद्धकफमेदसः।
पिबेयुस्तैलसाम्यायेतैलंदीप्ताग्नयस्तुये॥

अर्थ—कृमिरोगी, उदरविकारी तथा वायुकरके व्याप्त है शरीर जिन्हों का तथा प्रवृद्धहुए हैं कफ और मेद जिनके ऐसे मनुष्योंको तैल पिलावे। तथा जिनकी प्रकृतिको तेल सुहाता हो एवं प्रदीप्त है अग्नि जिनकी उन मनुष्योंको तैल पिलाना चाहिये॥

चर्बीयोग्य।

व्यायामकर्षिताःशुष्करेतोरक्तामहारुजः।
महाग्नि[1]मारुतप्राणावसायोग्यानराःस्मृताः॥

अर्थ—कुश्ती कशरत तथा धनुष्यादिकका खींचना इनकरके पीडित है शरीर जिसका तथा क्षीणहै धातु और रक्त जिनका तथा देहमें घोरपीडाहै जिनके एवं अग्नि और वायुहैं प्रवल जिसके ऐसे मनुष्योंको मांस स्नेह पिलाना चाहिये॥

मज्जा (हड्डीकातेल)।

क्रूराशयाःक्लेशसहावातार्तादीप्तवह्नयः।
मज्जानंचपिबेयुस्तेसर्पिर्वासर्वतोहितम्॥

अर्थ—दुष्ट है कोष्ठ[2] जिन्होंका तथा दुःख सहन करनेवाले मनुष्य तथा जो मनुष्य वायुकर्के पीडित हैं एवं प्रदीप्त हैं जठराग्नि जिन्होंकी ऐसे मनुष्योंको हड्डीका तेलपिलानाअथवा घी पिलावे तो इसकार्यसे शरीरको हितहोताहै

---

१ जिनमनुष्योंकी प्रदीप्त अग्निहै—तथा वायुका शरीरमें जैसा वर्त्ताव चाहिये ऐसा वर्त्ते तथा अग्निके साथहो अन्नको पचन करे इसीसे अग्नि और वायु ये शक्ति देनेवाले हैं तथा ये अनुकूल होवे तो मांसका स्नेह पचन होय और ये अनकूल न होंय तो नहीं पचे।

२ आम २ अग्नि ३ पक्क ४ मूत्र ५ यकृत् ६ प्लीहा ७ हृदय ८ उंदुक ९ और फुप्फुस नौ स्थानोंको कोष्ठ कहतेहैं अर्थात् ये पदार्थ कोष्टमें रहते हैं।

स्नेहपानकाल।

शीतकालेदिवास्नेहमुष्णकालेपिबेन्निशि।
वातपित्ताधिकेरात्रौवातश्लेष्माधिकेदिवा॥

अर्थ–शीतकालमें घृतादिक स्नेह दिनमें पीवे और गरमीमें वात पित्त प्रबल होनेसे रात्रिके समय पीवे। तथा कफ वायु प्रबल होनेसे दिनमें पीवे इसप्रकार स्नेह पीनेका क्रमजानना॥

स्नेहकीस्थलविशेषमेंयोजना।

नस्याभ्यंजनगंडूषमूर्धकर्णाक्षितर्पणे।
तैलंघृतंवायुंजीतदृष्ट्वादोषबलाबलम्॥

अर्थ–नाकमें डालनेके विषयमें तथा अंगमें मालिश करना कुल्ले करना तथा मस्तक, कानऔर नेत्रोंकी तृप्तिके विषयमें वातादिकोंका बलाबल देख तेल अथवा घृतकी योजनाकरे॥

स्नेहकेपृथक् २ अनुपान।

घृतेकोष्णजलंपेयंतैलेयूषःप्रशस्यते।
वसामज्ज्ञोःपिबेन्मंडमनुपानंसुखावहम्॥

अर्थ–घृतपीकर उसके ऊपर गरम जल पीवे तथा तेल पीके ऊपर [1]यूष पीवे–मांस स्नेह अथवा हड्डीका तेल पीकर ऊपरसे [2]मंड पीवे तो सुखकारी होय इस प्रकार स्नेहका अनुपान जानना॥

भातकेसंगस्नेहदेनेयोग्य।

स्नेहद्विषःशिशून्वृद्धान्सुकुमारान्कृशानपि।
तृष्णातुरानुष्णकालेसहभक्तेनपाययेत्॥

अर्थ–घृतादिक स्नेहसे जिनको द्वेष(नफरत)है,तथा बाल वृद्ध-सुकुमार मनुष्य और कृश तथा तृषा करके पीडित ऐसे मनुष्यको गरमीके दिनोंमें भातके साथ घृतादिक स्नेह पिवावे॥

यवागूकोसद्यःस्नेहकारित्व।

सर्पिष्मतीबहुतिलायवागूःस्वल्पतंदुला।

---

१ चावल कुलथी इत्यादिक धान्य एक पल ले उसमें जल १ प्रस्थ डालके औटावे और गाढीकरे उसको यूष ऐसा कहते हैं। २ भातके पेजको मंड ऐसा कहते हैं।

सुखोष्णासेव्यमानातुसद्यःस्नेहनकारिणी ॥

अर्थ–तिलोंको कूट उसमें थोडे चावल मिलाय घी और पानी उनमें डालके चूल्हेपर चढायके औटावे मंदाग्निसे पतली लहपसीसी बनावे उसको यावगू कहते हैं। यह यवागू कुछ गरम २ सेवन करनेसे उसीसमय देहमें धातु उत्पन्न होती है अर्थात् सद्यस्नेहनकारिणी है ॥

धारोष्णदुग्धसेतत्कालधातुउत्पन्नहोतीहै।

शर्करांचूर्णसंमृष्टेदोहनस्थेघृतेतुगाम्।
दुग्ध्वाक्षीरंपिबेदुष्णंसद्यःस्नेहनमुच्यते ॥

अर्थ--मिश्रीका चूरा घीमें डालके उस घीको चूल्हेपर चढाय थोडा गरमकर दूधदुहनेके पात्र(दोहनी)में डाले फिर उसपात्रमें गौका दूध उसी समय गरम२ होय उसको पीवे ऐसा करनेसे तत्काल स्नेहन होताहै अर्थात् उसीसमय देहमें धातु उत्पन्न करता है ॥

मिथ्योपचारसेजिसकोस्नेह पचे उसका यत्न।

मिथ्याचाराद्बहुत्वाद्वायस्यस्नेहोनजीर्यति।
विष्टभ्यवापिजीर्येतवारिणोष्णेनवामयेत् ॥

अर्थ–घृतादिक स्नेह पीनेके पश्चात् व्यायामादिक परिश्रम करनेसे वो स्नेह पचे नहीं अथवा बहुत पीनेसे नहीं पचा अथवा मलके अवरोध करके जीर्ण नहीं हुआ ऐसे स्नेहाजीर्णी मनुष्यको गरम २ जल पिलायकर उलटी करावे जिस्से स्नेहके अजीर्णका दोष दूरहोय ॥

दूसरायत्न।

स्नेहस्याजीर्णशंकायांपिबेदुष्णोदकंनरः।
ततोद्गारोभवेच्छुद्धोभक्तप्रीतिरुचिस्तथा ॥

अर्थ–घृतादिक स्नेह पीनेसे यदि अजीर्णहुआ ऐसी शंका होय तो गरमागरम जल पीवे जिस्से शुद्ध उत्तम डकार आकर अन्नके ऊपर रुचि आवे आतेही अजीर्ण दूर हुआ ऐसा जानना ॥

स्नेहनकरके पित्तकोप हो तृषा लगे उसका उपाय।

स्नेहेनपैत्तिकस्याग्निर्यदातीक्ष्णतरीकृतः।
तदास्योदीयतेतृष्णाविषमांतस्यपाययेत् ॥

शीतंजलंवामयेच्चापिपासातेनशाम्यति ॥

अर्थ-जिस मनुष्यकी आधी पित्तकी प्रकृति उसमें वो मनुष्य घृतादिक स्नेह पदार्थ पीवे तो उसकरके उसमनुष्यकी अग्नि अत्यंत तीक्ष्ण हो तृषाको बढावे उसतृषाके दूर करनेको उस मनुष्यको शीतलजल पिवावे तथा उलटी करवावे कि, जिस्से अत्यंत प्यासका लगना दूरहो ॥

वर्जितस्नेहीमनुष्य।

अजीर्णीवर्जयेत्स्नेहमुदरीतरुणज्वरी।
दुर्बलोरोचकीस्थूलोमूर्च्छार्तोमदपीडितः ॥
दत्तबस्तिर्विरक्तश्चवांतितृष्णासमन्वितः।
अकालप्रसवानारीदुर्दिनेचविवर्जयेत् ॥

अर्थ-अजीर्णका विकार उदररोगी, तरुणज्वरवाला[1], दुर्बलमनुष्य अरुचिवाला, अतिस्थूल, मूर्च्छारोगी, मद्यपनिसे पीडित एवं बस्तिकर्म[2] कराहुआ-तथा जिसको दस्त होतेहो, उलटीकरताहो, प्याससे पीडित तथा अकालमें प्रसूता स्त्री इन सब रोगियोंको घृतादिक स्नेह पान नहींकरना चाहिये--तथा जिस दिन बद्दलसे आकाश घिररहाहो उस दिनभी स्नेहपान करना वर्जितहै ॥

उत्तमस्नेहकेलक्षण।

वातानुलोम्यंदीप्तोग्निर्वर्चःस्निग्धमसंहतम्।
मृदुस्निग्धांगताग्लानिःस्नेहोवेगोथलाघवम्।
विमलेन्द्रियतासम्यक्स्निग्धेरूक्षेविपर्ययः ॥

अर्थ-घृतादिक स्नेह पीकर अंगका रूखापन दूर होकर मनुष्य उत्तम स्निग्ध होनेसे उसके लक्षण दिखाते हैं कि,वायु देहमें उत्तम रीतिसे संचारकरे। तथा मल सचिक्कण होवे और अधिक उतरे तथा शरीर नम्र और सचिक्कण होवे-तथा ग्लानिरहितहो तथा घृतादिक स्नेहके सेवन करनेसे किसी प्रकारका उपद्रव न होय शरीर हलका होय तथा इन्द्री निर्मल होवे ये लक्षण उत्तमके हैं और रूक्ष मनुष्य जो होताहै उसके लक्षण इनलक्षणोंसे विपरीत होते हैं।तात्पर्य यहहै कि, देहमें यथार्थ स्नेहन(चिकनाई) न होनेसे जो ऊपर लक्षणकहे हैं उस्से विपरीत लक्षण होते हैं ॥

१ जिसका ज्वर परिपक्व न हुआ हो वो मनुष्य।
२ गुदाके द्वारा तैल आदिकी पिचकारी मारनेका प्रयोग।

अधिक स्नेहपानकेउपद्रव ।

भक्तद्वेषोमुखस्रावोगुदेदाहःप्रवाहिका ।
तन्द्रातिसारःपांडुत्वंभृशंस्निग्धस्यलक्षणम् ॥

अर्थ--जो मनुष्य घृतादिक स्नेह अधिक पीताहै उसके लक्षण ये हैं कि, अन्नसे द्वेषकरे,मुखसे लार गिरे,गुदामें दाह होय,मल पतला उतरे नेत्रोंमें तन्द्राहो, अतिसार होय तथा शरीर पीले रंगका होजावे ये अतिस्निग्धके लक्षण जानने ॥

रूक्षकोस्निग्धकरना और स्निग्धकोरूक्षकरनेकाप्रकार ।

रूक्षस्यस्नेहनंस्नेहैरतिस्निग्धस्यरूक्षणम् ।
श्यामाकचणकाद्यैश्चतक्रपिण्याकसक्तुभिः ॥

अर्थ--रूक्ष मनुष्यको स्निग्धपदार्थ मक्खन निकाला हुआ तत्कालका मट्ठा तथा तिलोंका कल्क तथा जोंका सत्व इत्यादिकरके स्निग्धकरे और स्निध मनुष्यको रूक्ष पदार्थ जे साँमाखिया, पसाई, धान्य और चना इत्यादिक करके रूक्ष करना चाहिये ॥

स्नेहसेवनका फल ।

दीप्ताग्निःशुद्धकोष्ठश्चपुष्टधातुर्जितेन्द्रियः ।
निर्जरोबलवर्णाढ्यःस्नेहसेवीभवेन्नरः ॥

अर्थ--घृतादिक स्नेहके सेवन करनेसे मनुष्यके लक्षण–जैसे कि,अग्निदीप्तहो कोष्ठ शुद्धहोय, शरीरमें रसादिक धातु पुष्टहो तथा वो मनुष्य जितेन्द्री होय तथा वृद्धावस्थारहितहो बल और कांति इनकरके युक्त होवे ये लक्षण होतेहैं ।

स्नेहसेवनकेनियम ।

उष्णोदकोपचारीस्याद्ब्रह्मचारीक्षपाशयः । नवेगरोधी व्यायामक्रोधशोकहिमातपान् ॥ प्रवातयानपानाध्वभाष्याव्यासनसंस्थिती । नीचात्युच्चोपधानाहःस्वप्नधूमरजांसिच । यान्यहानि पिबेत्तानि तावन्त्यन्यान्यपित्यजेत् ॥

अर्थ-घृतादि स्नेह सेवन करनेवाला गरमजल पीवे-शीतल नपीवे,ब्रह्मचर्यमें रहे,रात्रिमें शयनकरे,दिनमें न सोवे,मलमूत्रादिके वेगको रोकेनहीं,उसी समय त्यागे,दंडकसरत,क्रोध,शोक,शरदी,धूप,अत्यंत हवाखाना घोडे आदिकी

सवारी, मद्यआदिका पान, मार्गका चलना, बहुत बोलना, अत्यंत बैठा रहना, अत्यंत नीचा अथवा अत्यंत ऊंचा, मस्तकके नीचे तकिया धरके सोना, दिनमें सोना, धूंआके घरमें रहना, उडती धूरमें जानाआना इत्यादिक सब कर्म त्यागदेवे ये संपूर्ण नियम जितने दिन स्नेहपान करे उतनेही दिन आगेतक पालनकरने चाहिये ॥

त्र्यहमच्छंमृदौकोष्ठेक्रूरेसप्तदिनांपिबेत् ।
सम्यक्स्निग्धोऽथवायावदतःसात्मीभवेत्परम् ॥

अर्थ–मृदुकोष्ठवाला ३ दिन, क्रूरकोष्ठवाला ७ दिन, अच्छा स्नेहपानकरे, मध्यकोष्ठवाला पांच दिन सेवनकरे, तब इसस्नेहका फल दीखे । सामान्यताकरके यह नियमहै किंतु जहांतक स्नेहपानके संपूर्ण लक्षण न मालुम हों तबतक स्नेहपानकरे तत्पश्चात् स्नेहपान सात्म्य अर्थात् अभ्यासमें आय जाताहै ॥

स्नेहव्यापत्तीकायत्न ।

तक्रारिष्टखडोद्दालयवश्यामाककोद्रवम् । पिप्पली त्रिफलाक्षौद्रपथ्यागोमूत्रगुग्गुलु ॥ यथास्वंप्रतिरोगंच स्नेहव्यापदिसाधनम् ॥

अर्थ–स्नेहके उपद्रवसे यदि क्षुधा, तृषा जातीरहे वमन होय, पसीने आवे तो रूक्षपान, रूक्षअन्नका भोजन, रूक्षऔषधि तक्र, अरिष्ट, खड (कृतान्न विशेष) उद्दाल (धान्यविशेष) यव, सामखिया, कोदोधान्य, पीपल, त्रिफला, सहत, हरड, गोमूत्र, तथा गूगल इत्यादिकदेवे--तथा जिस२रोगपर जैसी २ चिकित्सा लिखी है वो स्नेह व्यापत्ती रोगोंमें करनी चाहिये ॥

अथस्वेदविधिः ।

स्नेहपानके अनंतर पसीने काढनेकी विधि कहते हैं तहां प्रथम पसीनेके भेद दिखाते हैं ॥

स्वेदश्चतुर्विधःप्रोक्तस्तापोष्मौस्वेदसंज्ञितौ ।
उपनाहोद्रवःस्वेदःसर्वेवातार्त्तिहारिणः ॥

अर्थ–पसीना निकालना चार प्रकारका है उसके नाम जैसे-ताप, उष्म, उपनाह और द्रव ये चार प्रकारके पसीने बादीकी पीडा दूर करने वाले हैं ॥

दोषकीतारतम्यतासेस्वेदविधिः ।

महाबलेमहाव्याधौशीतेस्वेदोमहान्स्मृतः ।

दुर्बलेदुर्बलस्वेदोमध्येमध्यतमोमतः ॥

अर्थ-जिसके देहमें घोर बादीका रोग है उसके अंगोंसे अत्यंत पसीना काढना चाहिये तथा हलका रोग होय तो उसके अंगसे थोडा पसीना निकाले और मध्यमरोगीके देहसे मध्यम पसीने निकालने चाहिये ॥

रोगविशेषमेंस्वेदविधि ।

बलासेरूक्षणःस्वेदोरूक्षःस्निग्धःकफानिले । कफमेदावृतेवातेकोष्णगेहरवेःकरान् ॥ नियुद्धंमार्गगमनंगुरुप्रावरणंध्रुवम् । चिंताव्यायामभारांश्चसेवेतामयमुक्तये ॥

अर्थ-कफका रोग होनेसे रूक्ष पदार्थ जो वालुकादिक उस्से देहका पसीना निकालना और कफवायुका रोग होनेसे स्निग्ध और रूक्ष इनदोनों प्रकारके पदार्थोंसे पसीना निकालना चाहिये तथा कफ मेदोयुक्त बादीका रोग होनेसे घरमें जिस जगह गरमी हो उसजगे बैठ अंगको सहन होय ऐसी थोडी२गरमी लेनी चाहिये तथा सूर्यकी किरण अंगपर लेनी चाहिये तथा कुश्तीकरे एवं कुछ थोडी रस्ता चले कंबल, धुस्सा इत्यादि ओढे तथा चिंता युक्तहोना चाहिये परिश्रमकरे तथा कोई भारी वस्तु अंगोंपर धारण करनी इतने उपाय पसीने निकालनेके अर्थ करने चाहिये जिस्से कफमें दोषयुक्त जो वायुका रोग हो सो दूर होवे ॥

पसीनेकाढनेयोग्यमनुष्य ।

येषांनस्यंविधातव्यंबस्तिश्चापिहिदेहिनाम् ।
शोधनीयाश्चयेकेचित्पूर्वंस्वेद्याश्चतेमताः ॥

अर्थ-जो नस्यकर्मके योग्यहै तथा बस्तिकर्मके योग्य तथा विरेचन देनेके योग्य उन सब मनुष्योंके अंगका पसीना प्रथम काढकर फिर नस्यादि उपाय करना चाहिये ॥

स्वेद्याःपूर्वंत्रयोपीहभगंदर्यर्शसीतथा ।
आश्मर्याचातुरोजंतुःशमयेच्छस्त्रकर्मणा ॥

अर्थ-भगंदररोगी,बवासीररोगी और पथरीरोगी इन तीनोंको प्रथम पसीने निकालके फिर शस्त्रकर्म कर रोगको शमन करना चाहिये ॥

पश्चात्स्वेदनीयमनुष्य ।

पश्चात्स्वेद्यागतेशल्येमूढगर्भगदेतथा ।

कालेप्रजाताकालेवापश्चात्स्वेद्यानितंबिनी ॥

अर्थ–जिसस्त्रीके पेटमें गर्भका शल होवे उसका पतन होने उपरांत तथा नौ महीनेके पश्चात् अथवा नौमहीनेके प्रथम प्रसूत होनेसे उसके देहका पसीना निकलवाना चाहिये ॥

स्वेदकर्मयोग्यदेशकाल ।

सर्वान्स्वेदान्निवातेचजीर्णाहारेचकारयेत् ॥

अर्थ–ये चारों प्रकारके स्वेद मनुष्यका आहार पचन होनेके अनंतर जिसजगे हवा न आतीहो उसजगे काढने चाहिये ॥

पसीनेकाढनेपरकिसमार्गदोषदूरहोतेहैं ।

स्वेदाद्धातुस्थितादोषाःस्वेदःस्विन्नस्यदेहिनः ॥
द्रवत्वंप्राप्यकोष्ठांतगतायांतिविरेकताम् ॥

अर्थ–औषधादिक करके मनुष्यके अंगका पसीना काढनेके पश्चात् उसको तथा बडे बासनमें तेल भरके उसमें मनुष्यको बैठानेसे उसके वातादिक दोष रसादि सप्तधातुमें रहनेवालेभी कोष्ठके मध्य जानेसे वो दोष पतले होकर गुदाके द्वारा दस्तके साथ निकलते हैं।प्रथम दोष पसीनेके द्वारा नम्रहो कर कोष्ठमें जाते हैं वहांसे दस्तोंके राह बाहर गिरते हैं यह इस श्लोकका तात्पर्य है ॥

स्वेदनमेंविधि ।

स्वेद्यमानशरीरस्यहृदयंशीतलैःस्पृशेत् ।
स्नेहाभ्यक्तशरीरस्यशीतैराच्छाद्यचक्षुषी ॥

अर्थ–मनुष्यके देहका पसीना काढनेसे उसयोगकरके पेटके भीतरके दोष पतले होकर गुदाके द्वारा दस्तोंसे निकलतेहै तब उसमनुष्यकी छाती में चंदनका लेपकरे जिससे प्रकृति स्वस्थ होय तथा जो मनुष्य तेलमें बैठा हुआ है उस योगसे उसके दोष पतले होकर गुदाके रस्तेसे दस्तोंके साथ निकलनेसे उसके नेत्रोंपर कमलके पत्ते अथवा केलाके पत्ते शीतलता करनेके लिये लगाने चाहिये उस ठंडकके करनेसे ग्लानि दूर होकर प्रकृति स्वस्थ होती है ॥

स्वेदकर्मवर्जितमनुष्य ।

अजीर्णीदुर्बलोमेहीक्षतक्षीणपिपासितः ।
अतिसारीरक्तपित्तीपांडुरोगीतथोदरी ॥

मदार्त्तांगर्भिणीचैवनहिस्वेद्याविजानता ।
एतानपिमृदुस्वेदैःस्वेदसाध्यानुपाचरेत् ॥

अर्थ–जिस मनुष्यको अजीर्णहो तथा दुर्बल मनुष्य तथा जिसको प्रमेहहो तथा उरःक्षत करके पीडित तथा जिसको अत्यंत प्यास लगरही हो वो तथा अतिसार, रक्तपित्त, पांडुरोगी,उदररोगी,मदार्त ये रोग जिस मनुष्योंके होय वो तथा गर्भिणीस्त्री इतने रोगीन्का पसीना नहीं काढना चाहिये ये पसीनों काढनेमें अयोग्य हैं यदि इनरोगियोंके पसीना काढनेसेही रोग नष्टहोता दीखे तो हलके उपायसे थोडा पसीना काढना चाहिये ॥

अल्पपसीनेकाढनेयोग्यस्थल ।

मृदुस्वेदंप्रयंजीततथाहृन्मुष्कदृष्टिषु ॥

अर्थ–हृदय और अंडकोश तथा नेत्र इनका पसीना काढना होवे तो हलका काढे विशेष नहीं ॥

अत्यंतपसीनेनिकलनेकेदोष ।

अतिस्वेदात्संधिपीडादाहस्तृष्णाक्लमोभ्रमः ।
पित्तासृक्पिटिकाकोपस्तत्रशीतैरुपाचरेत् ॥

अर्थ–अंगोंसे बहुत पसीना निकालनेसे सर्व संधियोंमें पीडा,तृषा, ग्लानि भ्रम रक्तपित्त ये उपद्रव होतेहैं तथा अंगमें मरोडी उत्पन्न होतीहै इनके शमन करनेको शीतल उपाय करना कि, जिस्से उपद्रव दूरहोवे ॥

उक्तचारप्रकारकेस्वेदोंमेंतापसंज्ञकस्वेदकेलक्षण ॥

तेषुतापाभिधःस्वेदोवालुकावस्त्रपाणिभिः ।
कपालकंदुकांगारैर्यथायोग्यंप्रजायते ॥

अर्थ–चारप्रकारके पसीनोंमें ताप, इसनामकरके जो पसीनाहै इसको वालू वस्त्र,हाथ,खीपडा , कपडेकी गेंद और अंगार इनकरके वालुकादिक आदि जिसमें जैसी २ शक्ती है तैसा२ पसीना उत्पन्न होता है। ये छःप्रकार कहेहैं इनकी क्रिया कैसे करे उसको कहतेहैं-खैरके अथवा कणखर लकडीके धूमरहित जलते हुए कोयले करके उसके ऊपर वालूको तपायके उसवालूको अंडके पत्तोंमें धरके उसपत्तेकी पुडिया बनाय उसपुडियासे मनुष्यके अंगोंको सेके जिस्से अंगका पसीना निकले यह एक प्रकार है तथा अंगारोंपर अपने हाथ गरम कर रोगीके अंगोंको सेके अथवा रूअड कपडेकी गेंदसी

बनाय अंगारोंपर गरम करके उसगेंदसे रोगीके अंग सिकावे तथा कपडेको गरम करके देहको सेके। अथवा अंगारोंको खीपरेमें भरके उस सुहाते २ खिपरेसे सेक करे ये सबउपाय पसीने निकालनेके कहे इनसे वैद्यको जिसउपायसे पसीने काढनेहो काढे ॥

उष्मसंज्ञकस्वेदके लक्षण।

उष्मास्वेदःप्रयोक्तव्यो लोहपिंडेष्टिकादिभिः। प्रतप्तैरम्लसिक्तैश्च काये रल्लकवेष्टिते। अथवावातनिर्णाशिद्रव्यक्काथरसादिभिः। उष्णैर्घटंपूरयित्वा पार्श्वे छिद्रं निधाय च। विमुद्र्यास्यं त्रिखंडा च धातुजां काष्ठवंशजाम्।षडंगुलास्यां गोपुच्छां नलीं युज्याद्विहस्तिकाम्॥ सुखोपविष्टं स्वभ्यक्तं गुरुप्रावरणावृतम्।हस्तिशुंडिकया नाड्या स्वेदयेद्वातरोगिणम्॥पुरुषायाममात्रं वा भूमिमुत्कीर्यखादिरैः॥ काष्ठैर्दग्धातथाभ्युक्ष्य क्षीरधान्याम्लवारिभिः॥ वातघ्नपत्रैराच्छाद्य शयानं स्वेदयेन्नरम्॥ एवं माषादिभिः स्विन्नैःशयानःस्वेदमाचरेत्॥

अर्थ–उष्मा इसनाम करके जो स्वेद(पसीना)है उसकी क्रिया कहते हैं। लोहेके गोलाको अथवा ईंटको अग्निमें तपायकर उसपर थोडा खट्टा[1] पदार्थ छिडक कर रोगीको कंबल उढाय उस गोले करके अथवा उस ईंटकरके रोगी के देहको सेके,जिस्से पसीने निकले यह एकप्रकार कहा।अथवा दशमूलादि[2] क जो वातहरणकर्ता औषधी उनका काढा अथवा उन औषधियोंका रस गरमकर मिट्टीके घडेको[3] भर उस घडेके मुखको बंदकर उसके एक बाजूमेंछेदकर धातुकी[4] अथवा लकडीकी तथा बांसकी नली बनाय उसनलीमें तीन संधी करे तथा उसका मुख छःअंगुल लंबा और चौडा करे।अथवा गौके पुच्छके आकार करे,इस नलीका आकार हाथीकी सूँडके समान होताहै अतएव इस

१ छाँछ, कांजी इत्यादिक खट्टे पदार्थ जानने। २ सालपर्णी, पृष्ठिपर्णी, कटेरी, बडी कटेरी, गोखरू, वेलगिरी, अरनी,टेंटू,पाढर और गंभारी, इनकी मूलको दशमूल कहते हैं। ३ उसघडेके मुखमें डाटदेकर दहकते हुए कौलेनपर धरदेवे-जिस्से उस नलीके रास्ते बाफ अच्छीरीतिसे निकले। ४ तांबे, पीतल, लोह आदि धातुकी नली चाहिये।

को हस्तिशुंडिका नाडी कहते हैं। फिर वायुसे पीडित जो मनुष्य उसको स्वस्थ बैठाकरके अंगमें घी अथवा तेल लेपकर उसको रिजाई अथवा कंबल उढाय उस नलीको उसके भीतर करदेवे कि, जिस्से वाफ लगकर अंगोंसे पसीना निकले। अथवा मनुष्यके साडेतीन अथवा चारहाथ लंबा जमीनमें गड्ढा खोद उसमें खैरकी लकडी भर अग्नि जलायके कोलाकरे, फिर शीघ्र कोलान्को बाहर निकाल उसजमीनको दूध अथवा धान्यके पानी अथवा छाँछ तथा कांजीसे छिडककर उस जमीनपर वातहारक औषधोंके पत्ते बिछायकर उसपर रोगीको सुलायके उसके अंगसे पसीने निकाले । इसी प्रकार उडद लेकर उनको थोडी वाफदे अधकच्चे सिजाय उस तपेहुए ठौरमें बिछाय ऊपर सूर्ती अंडके पत्ते आदि वातहारक औषधीके पत्ते डालके उसपर रोगीको सुलाय ऊपरसे कंबल उढाय उसके अंगका पसीना निकलवावे । इसप्रकार उष्मसंज्ञक पसीनेके लक्षण जानने ॥

उपनाहसंज्ञकस्वेदकेलक्षण।

अथोपनाहस्वेद्यं च कुर्याद्वातहरौषधैः ।
प्रदिह्य देह वातार्त्तंक्षीरमांसरसान्वितैः ॥
अम्लपिष्टैः सलवणैः सुखोष्णैः स्नेहसंगतैः ॥

अर्थ–उपनाह इसनामका स्वेदहै उसकी क्रिया लिखते हैं। दशमूलादि वायुहारक औषधको लाय कूटके चूर्ण करे उसमें दूध और हरिणादिकके मांसका स्नेह ये दोनों मिलाय थोडा गरमकर वायुपीडित मनुष्यके अंगोको सुहाता२ऐसा गाढा लेपकर वस्त्रादिकसे बांधके पसीना निकाले। अथवा वातहारक औषधका चूर्णकर छाँछमें अथवा कांजीमें पीस उसमें थोडा सैंधानिमक और तिलकातेल मिलाय कुछगरम करके वायुपीडित अंगमें सुहाता २ गाढा लेपकर कपडेसे बांध उसके अंगका पसीना निकाले ॥

दूसराप्रकार तथा महाशाल्वणप्रयोग ।

उपग्राम्यानूपमांसैर्जीवनीयगणेन च । दधिसौवीरकक्षारैर्वीरतर्वादिना तथा ॥ कुलित्थमाषगोधूमैरतसीतिलसर्षपैः । शतपुष्पादेवदारुशेफालीस्थूलजीरकैः ॥ एरंडमूलबीजैश्चरास्नामूलकाशिग्रुभिः । मिशिकृष्णकुठेरैश्च

१ सूर्तीअंड, आक और निर्गुंडी इत्यादिकोंके पत्ते वातहारक हैं ।

लवणैरम्लसंयुतैः॥प्रसारण्यश्वगंधाभ्यांबलाभिर्दशमूलकैः॥ गुडूचीवानरीबीजैर्यथालाभंसमाहृतैः ॥ क्षुण्णैःस्विन्नश्च वस्त्रेणबद्धैःसंस्वेदयेन्नरम् ॥ महाशाल्वणसंज्ञोयंयोगःसर्वानिलार्तिजित् ॥

अर्थ–ग्राम्य[1]मांस, अनूप[2]मांस,जीवनीयगण[3]की औषधी, तथा गौकादही, सौवीर[4], सज्जीखार,जवाखार, रेहकाखार, वीरतर्वादिगणकी औषधी और कुलथी, उडद,गेहूं,अलसी, सौंफ,देवदारु, निर्गुंडी, कलौंजी, अंडकी जड, अंडके बीज,रास्ना,मूली, सेहेंजना,छोटीसौंफ,पीपल,वनतुलसी, पांचों[5]निमक,अनारदानाप्रसारणी,असगंध,खरेटीकी जड, दशमूलकी दश औषधी और गिलोय, कौंचकेबीज ये सब औषध जो मिलसके उनको लेकर कूट थोडागरमकर कपडेमें पोटली बांधकर उससे रोगीका अंग सेंके कि, जिस्से संपूर्ण वायुकी पीडा दूरहोवे । इस प्रयोगको महाशाल्वण प्रयोग कहतेहैं । इसप्रकार उपनाहसंज्ञक स्वेद (पसीने) की विधि जाननी ॥

द्रवसंज्ञकस्वेदकेलक्षण ।

द्रवस्वेदस्तु वातघ्नद्रव्यक्काथेन पूरिते । कटाहे कोष्ठके वापि सूपविष्टोवगाहयेत् ॥ नाभेःषडंगुलं यावन्मग्नःक्काथस्य धारया । कोष्ठके स्कंधयोःसिक्तास्तिष्ठेत्स्निग्धतनुर्नरः॥ एवं तैलेन दुग्धेन सर्पिषास्वेदयेन्नरम्॥एकान्तरे द्व्यंतरे वा स्नेहो युक्तोवगाहने ॥ शिरामुखै रोमकूपैर्धमनीभिश्च तर्पयेत् ।शरीरेबलमाधत्ते युक्तस्नेहावगाहने॥

---

१ मुरगा,बकराआदि केमांसको ग्राम्यमांस कहते हैं। २ चकवा–चकवी–बतक जलमुरगा और मछलीआदि जलसंचारी जीवोंके मांसको अनूपमांस कहते हैं । ३ काकोली क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मेदा,महामेदा, जीवंती, मुलहटी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी इन दशऔषधोंके समुदायको जीवनीयगण कहते हैं । ४ कच्चे जौं अथवा भुने जौओंको कूट पानीमें तीनदिन भिगोनेसे उस पानीको सौवीर कहतेहैं, इसी प्रकार गेहूंका भी सौवीर होता है । ५ सेंधा, संचर, विड,समुद्र और रेहका निमक इन पांचोंको पंचलवण कहते हैं तथा उपनाहसंज्ञक स्वेदका दूसरा भेद महाशाल्वण प्रयोगहै ।

जलसिक्तस्य वर्द्धंते यथामूलेङ्कुरास्तरोः । तथा धातु-विवृद्धिर्हिं स्नेहसिक्तस्यजायते ॥ नातःपरतरःकश्चि-दुपायो वातनाशनः । मुहूर्त्तैकं समारभ्य यावत्स्यात्त-च्चतुष्टयम् । तावत्तदवगाहेतयावदारोग्यनिश्चयः ॥

अर्थ-द्रव या नामका स्वेद उसकी विधि लिखते हैं।दशमूलादि वायु-हारक औषधका काढा कर रोगीके देहमें घी अथवा तेल लगाय उसको क-ढाईमें अथवा तामेके बडे पात्रमें बैठारके पूर्वोक्त गरमागरम काढेको अंगपर और कंधेपर सहती२धारडाले, इसीप्रकार तेलकी अथवा दूधकी अथवा घीकी धारडाले परंतु जबतक वह काढा डाले कि,नाभिके छः अंगुल ऊपर तक न चढे। पश्चात् मनुष्यको धर्मयुक्त होना चाहिये।इसप्रकार एक२ दिनके अथवा दो २ दिन के अंतरसे करना चाहिये कि जिस्से शिराओंके मुखद्वारा रोमांचोंके मुखमें होकर तथा नाडीन्के द्वारा वो स्नेहादिक पदार्थ शरीरके भीतर प्रवेश होकर शरीरको तृप्त करके बल उत्पन्नकरे।इसमें दृष्टांतहै कि,जैसे वृक्षकीजडमें पानी देनेसे वृक्ष बढता है उसीप्रकार तैलादिकमें बैठनेसे मनु-ष्यके रसादि सातधातु बढती हैं और वायुका नाश होता है इसउपायकी अपेक्षा वायुनाशक दूसरा उपाय नहींहै यह उपाय पराकाष्ठाकाहै। एकमुहू-र्त्तसे लेकर चारमुहूर्त्त अर्थात् एकप्रहर होनेपर्यंत तैलके पात्रमें बैठना चाहिये तथा जबतक आरोग्यता न दीखे तावत्कालपर्यंत यही विधिकरै॥

स्वेदकीसमाप्ति।

शीतशूलाद्युपरमे स्तंभगौरवनिग्रहे।
दीप्तेग्नौ मार्दवे जाते स्वेदनाद्विरतिर्मता ॥

अर्थ-अंगकी शरदी और शूल इनकी शांति होनेपर तथा अंगका स्तंभ तथा जडपना ये दूरहोनेपर एवं अग्निप्रदीप्त होनेपर तथा अंगमें मृदु पना आनेपर रोगीके अंगसे पसीने न निकाले अर्थात् समाप्ति करदेवे ॥

पसीनेनिकालनेकेअनंतरउपचार।

सम्यक्स्विन्नं विमृदितं स्नानमुष्णांबुभिःशनैः।
भोजयेच्चानभिष्यंदि व्यायामं च विवर्जयेत् ॥

अर्थ-जिसमनुष्यके अंगका पसीना काढाहो उसको तथा अंगमें तेल ल-गायाहो उसको हलके२गरम जलसे स्नान करावे तथा कफकारक पदार्थ

भोजनमें न देवे तथा परिश्रम न करे, इस प्रकार द्रवसंज्ञक स्वेदमें करना चाहिये। अब आगे वमनकीविधि लिखी जातीहै ॥

वमनमेंऋतुप्रधान।

शरत्काले वसंते च प्रावृट्काले च देहिनाम्।
वमनं रेचनं चैव कारयेत्कुशलो भिषक् ॥

अर्थ-शरद् ऋतु, वसंत ऋतु, वर्षाऋतु इनमें मनुष्यको वमन और विरेचन ये कुशल वैद्यको कराने चाहिये [कुशलवैद्यके लिखनेसे यह प्रयोजनहै कि, यह वमन विरेचनका देना अत्यंत सावधानीका काम है इस्से मूर्ख वैद्यसे वमन विरेचन लेना सर्वथा त्याज्य है] ॥

वमनयोग्यमनुष्य।

बलवंतं कफव्याप्तं हृल्लासार्तिनिपीडितम्। तथा वमनसात्म्यं च धीरचित्तं च वामयेत्॥विषदोषे स्तन्य रोगे मन्देग्नौ श्लीपदेर्बुदे।हृद्रोगकुष्ठवीसर्पमेहाजीर्णभ्रमेषु च॥ विदारिकापचीकासश्वासपीनसवृद्धिषु। अपस्मारज्वरोन्मादे तथा रक्तातिसारिषु॥ नासाताल्वोष्ठपाकेषु कर्णस्रावे द्विजिह्वके। गलशुंड्यामतीसारे पित्तश्लेष्मगदे तथा॥ मेदोगदेरुचौ चैव वमनंकारयेद्भिषक्॥

अर्थ-बलवान्मनुष्य, कफसेव्याप्त, हृल्लाससे पीडित (अर्थात् जिसके मुखसे लारागिरती)हो,तथा जिसको वमनका महावरा हो और धीरचित्तहो इनको वमनकरावे।तथा विषदोष,स्तनसंबंधी रोग, मंदाग्नि,श्लीपद,अर्बुद, हृदयरोगी, कोढी, विसर्परोगी, प्रमेही, अजीर्णी, भ्रमरोगी, विदारिका, अपची रोग, खाँसी, श्वास, पीनस, अंडवृद्धि, मृगीरोगी, ज्वर, उन्माद रक्तातिसार, नासापाक, तालुपाक, ओष्ठपाक, कर्णस्राव, द्विजिह्वक, गलशुंडी, अतीसार, पित्तकफकेरोग, मेदोरोग, अरुचि, इनरोगोंमें तथा इसीप्रकारके जो अन्यरोगहैं उनमें वैद्य रोगीको वमन करावे॥

वमनकेअयोग्यमनुष्य।

न वामनीयस्तिमिरी न गुल्मी नोदरी कृशः। ना

तिवृद्धो गर्भिणी च न च स्थूलक्षतातुरः ॥ मदार्त्तोबालको रूक्षः क्षुधितश्च निरूहितः । उदावर्त्त्यूर्ध्वरक्ती च दुश्छर्दिःकेवलानिली ॥ पांडुरोगीकृमिव्याप्तःपठनात्स्वरघातकः । एतेप्यजीर्णव्यथिता वाम्या ये विषपीडिताः ॥ कफव्याप्ताश्च ते वाम्या मधुक्काथप्रपानतः।

अर्थ–तिमिररोगी, गुल्मरोगी, उदररोगी तथा कृश, अतिवृद्ध, गर्भिणीस्त्री अत्यंतमोटा, उरःक्षत करके तथा मद करके पीडित, बालक, रूक्ष, क्षुधित, निरूहित काहिये गुदाद्वारा पिचकारी माराहुआ, तथा उदावर्त रोगी, उर्ध्वरक्ती, तथा जिससे वमन न सही जावे जिसके केवल बादीका रोग हो पांडुरोगी, कृमिरोगसे व्याप्त, वेदशास्त्रके अत्यंत पढने से जिसका कंठ बैठगयाहो, इतने रोगियोंको वमन (उलटी करानेकी) औषध नहीं देनी चाहिये यदि ये पूर्वोक्त रोगवाले अजीर्णसे अथवा विषदोष करके कफकरके व्याप्त होवे तो इनको मुलहटीके अथवा मुहुआकी छालके काढेको पिलायकर वमन करानी चाहिये ॥

वमनअयोग्य ।

सुकुमारं कृशं बालं वृद्धं भीरुं न वामयेत् ।

अर्थ–सुकुमार (नाजुकमनुष्य) कृशं, बालक वृद्ध डरपोक इनमनुष्योंको वमनकी औषधी नदेनी चाहिये ॥

रद्दकरनेमेंविहितपदार्थ ।

पीत्वा यवागूमाकंठं क्षीरतक्रदधीनि च । असात्म्यैः श्लेष्मलैर्भोज्यैर्दोषानुत्क्लिश्यदेहिनः ॥ स्निग्धस्विन्नाय वमनं दत्तं सम्यक्प्रवर्त्तते ॥

अर्थ–जिस मनुष्यको उलटी करानीहो उसको प्रथम पेटभरके यवागू अथवा दूध, छांछ, दही, ये पेटभरके पिवावे, तथा प्रकृतिको जो न भावे वो पदार्थ तथा कफकारी पदार्थ खानेको देकर मनुष्यकेदोषोंको उखाडे, जिस्से

---

१ रक्तपित्तके कोप करके जिनके ऊपर मुखादिद्वारा रुधिरगिरे उसको ऊर्ध्वरक्ती जानना । २ कृश और बालक तथा वृद्ध–इनको वमन न करावे इसप्रकार प्रथम कह आयेहैं परंतु निश्चय करनेके वास्ते यहांपर फिर कहाहै । ३ चावलका चूराकर उसमें छः भाग पानी मिलायके औटावे, पतलीकरे इसको यवागू कहते हैं ।

मनुष्य अच्छीतरह उलटीकरे तथा जिसमनुष्यने घृतपान करा है उस मनुष्यको एकदिनके पश्चात् वमनकरावे तो अच्छीतरह वमन होवे ॥

वमनमेंहितकारीपदार्थ।

वमनेषुच सर्वेषु सैंधवं मधु वा हितम्।
बीभत्सं वमनं दद्याद्विपरीतं विरेचनम् ॥

अर्थ-जितने वमनके प्रयोगहैं उनमें सैंधानिमक अथवा शहत इनका मेलन कराना चाहिये तो हितकारी होताहै।अथवा बीभत्स[1] वमनदेवे और विरेचन इस्से विपरीतदे अर्थात् दस्त देना होयतो घीके विना देवे ॥

वमनमेंकाढेकाप्रमाण।

क्वाथ्यद्रव्यस्य कुडवं श्रपयित्वाजलाढके।
अर्धभागावशिष्टं च वमनेष्ववचारयेत् ॥

अर्थ-काढेकी औषधी १कुडव प्रमाण लेकर कूट उसमें एक आढक प्रमाण पानी डाले जब औटाकरआधारहे तबतक औटावे फिर उतार छानके पिवावे

वमनमें काढापीनेका प्रमाण।

क्वाथपाने नवप्रस्था ज्येष्ठामात्रा प्रकीर्तिता।
मध्यमाषण्मिताप्रोक्ता त्रिप्रस्था च कनीयसी ॥

अर्थ-जिस मनुष्यको वमनकराना होय उसको नौप्रस्थ काढा पिलाना बडीमात्राहै तथा छःप्रस्थ काढापीना मध्यममात्रा और तीनप्रस्थ काढा पीना हलकी मात्राजाननी ॥

वमनविषयमें कल्कादिकोंका प्रमाण।

कल्कचूर्णावलेहानां त्रिपला श्रेष्ठमात्रया।
मध्यमं द्विपलं विद्यात्कनीयस्तु पलं भवेत् ॥

अर्थ-कल्क, चूर्ण और अवलेह ये तीन पल मनुष्यको देनेसे बडी मात्रा जाननी तथा दोपल देनेसे मध्यममात्रा और एक एक पलदेनेसे हीन मात्रा कहलातीहै। इसवास्ते वैद्यको यथायोग्य मात्रा देनी चाहिये ॥

वमनकेउत्तममध्यमकानिष्ठवेग।

वमने चापि वेगाःस्युरष्टौ पित्तांतमुत्तमाः।

---

१ वमनकी औषधमें घी डालके वमनकरानेको बीभत्सवमन कहते हैं।

षड्वेगा मध्यवेगाश्च चत्वारस्त्ववरामताः ॥

अर्थ–मनुष्यको वमनकी औषध देनेसे सातवेग पर्यंत संपूर्ण दोष पडके आठवें वेगमें पित्तपडनेसे उत्तमवेग जानना। उसी प्रकार पांच वेगपर्यंत दोष पडकर छठे वेगमें पित्तपडनेसे मध्यमवेग जानना।तथा तीन वेग पर्यंत दोष निकलके चौथे वेगमें पित्तपडे तो कनिष्ठवेग जानने।जैदफे रद्द होवे उतने वेग जानने अर्थात् रद्दहोनेको ही वेग कहते हैं ॥

वमन विरेचन आदिमें प्रस्थका प्रमाण।

वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे।
सार्द्धत्रयोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥

अर्थ–वमनहोनेमें तथा दस्त होनेके विषयमें जो औषध प्रस्थप्रमाण लेना कहाहै तहां १३॥साडे तेरह पलका प्रस्थ लेना तथा फस्तखोलनेमें एक प्रस्थ रुधिर कढाना जहाँ लिखाहै वहाँ परभी साढे तेरह पलका प्रस्थ जानना॥

कफपित्त और वातहारकऔषधी।

कफं कटुकतीक्ष्णेन पित्तं स्वादुहिमैर्जयेत्।
सस्वादुलवणाम्लोष्णैःसंसृष्टं वायुना कफम् ॥

अर्थ–तीक्ष्ण औषध करके कफको जीते तथा मधुर और शीतल औषधों करके पित्तको जीते। एवं मधुर और खार तथा अम्ल और गरम इनकरके वायुसे मिले कफको जीते ॥

वातादिदोषोंकेनिकालनेकोपृथक् २ औषधी।

कृष्णराठफलैःसिंधुकफेकोष्णजलैःपिबेत्।
पटोलवासानिंबैश्च पित्ते शीतजलं पिबेत् ॥
सश्लेष्मवातपीडायां सक्षीरं मदनं पिबेत्।
अजीर्णे कोष्णपानीयं सिंधुंपीत्वा वमेत्सुधीः ॥

अर्थ–कफदोषमें पीपल और मैनफल तथा सेंधानिमक इनसबके चूर्णको गरम पानीके साथ पीवे तो वमनके साथ कफ गिरे।तथा पित्तके दोषमें पटोलपत्र और अडूसा तथा कडुऐनीमके पत्ते इनका चूर्णकर शीतलजल डालके पीवे तो उलटीके साथ पित्त निकले।एवं कफवायुकी पीडामें मैनफलका चूर्ण दूधमें मिलायके पीवे तो उलटीके साथ मनुष्यके कफ वायु निकल

कर पीडा दूरहो। तथा अजीर्णमें गरमजलमें सेंधानिमक डालके पीवे तो उलटी होनेसे मनुष्यका अजीर्ण दूर हो ॥

वमनकरतेसमयबाह्योपचार।

वमनं पाययित्वा च जानुमात्रासनेस्थितम्।
कंठमेरंडनालेन स्पृशंतं वामयेद्भिषक् ॥
ललाटं वमतः पुंसः पार्श्वौ द्वौ च प्रबोधयेत् ॥

अर्थ–रोगीको वमन करनेकी औषध देकर पृथ्वीमें घोंटू टेककरके बराबर ऊंचे आसनपर चाहिये। अंडके पत्तेकी लंबी बारीक नाल लेकर मुखमें डालके हलके हाथसे धीरे २ कंठको स्पर्शकरे तो उसीसमय उलटी आवे इसप्रकार आगे पीछे उसको फिरायके वैद्य रोगीको उलटी करावे। तथा उस उलटी करनेवालेके कपालके दोनों भागोंको धीरे धीरे हलके हाथसे एक मनुष्य सिराता जावे ॥

दुष्ट वमन होनेके उपद्रव।

प्रसेको हृद्ग्रहःकोठकंडुर्दुश्छर्दिताद्भवेत् ॥

अर्थ–मनुष्यको वमनकी औषध देनेसे यदि उससे कोई विकार होय तो उसके मुखसे लारगिरे तथा हृदयमें पीडाहोवे तथा देहमें खुजली होती है ॥

अतिवमनहोनेकेउपद्रव।

अतिवांते भवेत्तृष्णा हिक्कोद्गारोविसंज्ञिता।
जिह्वा निःसर्पणं चाक्ष्णोर्व्यावृत्तिर्हनुसंहतिः ॥
रक्तश्छर्दिष्ठीवनं च कंठे पीडा च जायते ॥

अर्थ–मनुष्यके अत्यंत वमन होनेसे अत्यंत प्यासलगे, हिचकी, डकारआवे और अंग जडहोवे तथा संज्ञाका नाशहो, जीभ बाहर निकल आवे, नेत्र जहाँके तहां ठैरजावें, वा चंचलहोवें तथा भ्रम होय, ठोडीका स्तंभ होय अथवा पीडाहो मुखकेरास्ते रुधिर गिरे, वारंवार थूंके और कंठमें पीडा होय ये लक्षण अत्यंत वमनके हैं ॥

अत्यंतवमनकायत्न।

वमनस्यातियोगेन मृदुकुर्याद्विरेचनम् ॥

अर्थ–जिस मनुष्यके अत्यंत उलटी होतीहो उसके बंद करनेको मृदु जुलाब देवे ॥

उलटी करते २ जीभ भीतरचली गईहो उसका यत्न।

वमनान्तःप्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहः।
स्निग्धाम्ललवणैर्हृद्यैर्घृतक्षीररसैर्हितः॥
फलान्यम्लानि खादेयुस्तस्य चान्येऽग्रतो नराः॥

अर्थ–यदि उलटी करते २ मनुष्यकी जीभ भीतर चलीगई हो उसके मनको प्रसन्नकर्त्ता ऐसे खट्टे, तीखे, मिष्ट और खारी पदार्थ भातके साथ खानेको देवे तथा घृत और दूध भातके साथ देवे तथा उसरोगीके आगे दूसरा मनुष्य बैठकर नींबू अथवा नारंगी चूस२कर खाय, ऐसा करनेसे मनुष्यकी जीभ ठिकानेपर आयके प्रकृतिस्थ होयहै॥

उलटी करते २ जीभ बाहरनिकलआईहो उसका यत्न।

निसृतां तु तिलद्राक्षाकल्कं लिप्त्वा प्रवेशयेत्॥

अर्थ–यदि उलटी करते२जीभ बाहर निकल आईहोवे तो उसको तिल और दाख इनका कल्क करके उसकी जीभमें लेपकर वैद्य धीरे भीतर करदेवे

वमनसेनेत्रोंमेंविकारहोनेकायत्न।

व्यावृत्ताक्ष्णि घृताभ्यक्ते पीडयेच्च शनैःशनैः॥

अर्थ–उलटी करते २ नेत्र फटजावे तो उसको वैद्य हाथोंमें घी चुपडकर नेत्रोंको सिरायकर ठिकानेपर स्थितकरे॥

वमन करते २ ठोडी स्तंभित होगईहो उसका उपचार।

हनुमोक्षे स्मृतःस्वेदो नस्यं च श्लेष्मवातहृत्॥

अर्थ–वमन करते करते ठोडी स्तंभित होगई होवे तो उसके अंगका पसीना निकाले कफवायुनाशक नाकमें औषध डाले अर्थात् नस्य देय तो ठोडीका स्तंभितहोना जातारहे॥

वमन करते २ रद्दमें रुधिर आनेलगे उसका उपचार।

रक्तपित्तविधानेन रक्तछर्दिमुपाचरेत्॥

अर्थ--यदि रद्द करते २ उलटीमें रुधिर गिरने लगे तो जो उपाय रक्तपित्तपर कहाहै वो उपाय करके रुधिरकी उलटीको दूरकरे॥

अत्यंत वमनके होनेसे प्यासलगे उसका यत्न।

धात्रीरसांजनोशीरलाजाचन्दनवारिभिः।

मंथं कृत्वा पाययेच्च सघृतक्षौद्रशर्करम् ॥
शाम्यंत्यनेन तृष्णाद्याः पीडाच्छर्दिसमुद्भवाः ॥

अर्थ–आंवले, रसोत[1], खस,चावलकी खील, लालचंदन, नेत्रवाला इन छः औषधोंका मंथकरके उसमें घी और शहत तथा मिश्री डालके पिवावे तो उलटी करनेसे जो तृष्णादिक उपद्रव होतेहैं वो सब दूर होय ॥

उत्तमवमनहोनेकेलक्षण ।

हृत्कंठशिरसांशुद्धिर्दीप्ताग्नित्वंचलाघवम् ।
कफपित्तविनाशश्चसम्यग्वांतस्यचेष्टितम् ॥

अर्थ–जिसमनुष्यको उत्तम उलटी होगईहो उसके लक्षण हृदय,कंठ और मस्तक इनमें जो कफादिक दोषहैं वो दूर होकर उसकी शुद्धिहो तथा अग्नि प्रदीप्त और अंग हलके होय तथा कफदोष और पित्तदोष ये दूर हों॥

उत्तमवमनहोनेकेपश्चात् पथ्य ।

ततोपराह्णे दीप्ताग्निमुद्गषष्टिकशालिभिः ॥
हृद्यैश्च जांगलरसैः कृत्वा यूषं च भोजयेत् ॥

अर्थ–मनुष्यको उत्तम उलटी होनेके अनन्तर तीसरे प्रहरमें अग्नि प्रदीप्त होवे ऐसा मूंग और सांठीचावल[2] इनको मनके प्रियकारी ऐसे जंगली जीव हरिणादिकोंके मांसरसके यूषके साथ भोजन करे ॥

उत्तमवमनकाफल ।

तन्द्रा निद्रास्यदौर्गंध्यकण्डूश्च ग्रहणी विषम् ।
सुवांतस्य न पीडायै भवंत्येते कदाचन ॥

अर्थ–जिस मनुष्यको उत्तम प्रकारकी उलटी होगईहो उसके नेत्रोंमें तंद्रा और निद्रा तथा मुखमें दुर्गंधी और खुजली तथा संग्रहणीरोग और विषदोष ये उपद्रव कदाचित् नहीं होवे ॥

---

१ दारुहलदीके काढेमें बराबर बकरीका दूध मिलायके औटावे जब गाढा होजावे सुखायके जमायले उसको रसांजन कहते हैं । २ मूंग और सांठीचावल एकपल लेवे उसमें १ प्रस्थ पानीडालके औटावे कुछ गाढा करे पेजके समानकरे उसको यूष कहते हैं इसप्रकार हरिणादिकके मांसमें पानीडालके सिजावे पेजके समान करे उसको मांस रस कहतेहैं तथा वोभी यूषहै ।

वमनकर्ममेंनिषिद्धपदार्थ ।

अजीर्णं शीतपानीयं व्यायामं मैथुनं तथा ।
स्नेहाभ्यंगं प्रकोपश्च दिनैकंवर्जयेत्सुधीः ।

अर्थ–भारीपदार्थ, शीतल जल, परिश्रम और मैथुन, देहमें तेलकी मालिश करना और क्रोधकरना इत्यादिक विषय जिसदिन वमनकी औषध लेवे उस दिन वर्जितहैं ॥

अथ रेचनाधिकारः ।

स्निग्धस्विन्नस्यवांतस्य दद्यात्सम्यक्[१]विरेचनम् ।
अवांतस्य त्वधः स्रस्तो ग्रहणीं छादयेत्कफः ॥
मंदाग्निं गौरवं कुर्याज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम् ।
अथवा पाचनैरामं बलासं च विपाचयेत् ॥

अर्थ–अब वमनके अनंतर विरेचन (जुलाब) की विधि कहते हैं । प्रथम मनुष्यको घृतादिक पिलायके स्निग्धकरे फिर उसको स्विन्नकरे अर्थात् उसके पसीने निकाले,फिर वमन करावे,वमनके अनंतर उत्तम प्रकार जुलाबकीदवाई देकर दस्तकरावे यदि विना रद्दके कराये जो वैद्य दस्तकराता है तो उस रोगीका कफ अधोभागमें(नीचे)जायकर ग्रहणी(छठी पित्तधरा और अग्निधरा जो कला उसका) आच्छादन करेहै, कि, जिस्से अग्निमांद्य तथा गौरव कहिये अंगोंका भारीपना और प्रवाहिका रोग (अतिसारका भेद) इन रोगोंको उत्पन्न करेहै अथवा अधस्रस्त (नीचेगएहुए) कफ और आमको पाचन (शुष्कएरंडमूलादिक)करके (पाचयेत्) अर्थात् पाचावे ॥

हमको इस स्थलपर इतना लिखेविना नहीं रहाजाता कि, हकीम लोग कहते हैं कि, हमारे यहां जैसा जुलाब देनेका उत्तम कायदा है ऐसा हिंदी वैद्यकमें ख्वाव (स्वप्न)मेंभी नहीं मिलनेका, जैसा हमारे जुलाबसे बिमारकी तबियत प्रसन्न रहती है और साफ होतीहै ऐसा वैद्य कभी नहीं करसकेगा, इसका कारण यही है कि, हमलोग प्रथम मरीजको

१ वमनके अनंतर दस्त क्यों करावे ऐसी शंका होनेसे कहते हैं कि,भेड, चरक, सुश्रुत और वागभट इत्यादिक ग्रंथोंका यह अभिप्रायहै कि, वमनदेकर. छः दिनके पश्चात् तीनदिन स्निग्ध करे फिर तीनदिन अंगमेंसे पसीने निकाले,फिर तीनदिन हलका भोजन देकर सोलहवें दिन रेचन (दस्त) करावे यह ग्रंथकारोंका अभिप्राय श्लोकमें "सम्यक्" पद धरनेसे जानाजाताहै ।

मुंजिश देकर मलको फुलाय मुलायम कर फिर दस्त कराते हैं तो बहुत जल्द और बहुत सफाईके साथ दस्त होते हैं और बिमारभी खुशी रहता है ॥

परंतु इस तरह कहनेवाले हकीमोंको हम निरे वैशाखनंदन ही जानैहैं खैर मुसलमान हकीम कहेतो कहे, परंतु दो दिनसे पैर अडानेवाले कि, जिन्होंने अच्छीरीतिसे हिकमतके भी पूरे २ ग्रंथ नहीं देखे, फिर हमारे ग्रंथ देखना तो उनको मानो एक बडाभारी समुद्रका तैरना है। ऐसे हमारेही हिंदू हकीम हमारी और हमारे शास्त्रोंकी निंदा करते हैं तो हमको उनकी बुद्धिपर अत्यंत शोक होता है कि, देखो जैसे कोई बालक अपने घरमें अमूल्य पदार्थ धरेहुएओंको अंधकार वश न दीखनेसे तुच्छ मोलके दूसरोंके पदार्थ लेकर अपने मनमें यह विचार करता है कि, ऐसे पदार्थ अमूल्य हमने नहीं देखे और उनकी वो अत्यंत इज्जत करता है। यदि उसका पिता आदि कोई बडा मनुष्य उसको दीपकका उजेला दिखाकर घरके धरेहुए पदार्थोंको दिखलावे और उनका गुणभी बतलावे तो उस लडकेको कितनी खुशीहो और फिर वो दूसरेकी तुच्छ वस्तुओंकी तरफ देखेभी नहीं। क्यों देखे जिसके हाथमें चिंतामणी आगई वो कौडी पैसोंकी तरफ क्यों देखेगा ॥

इसी दृष्टांतके अनुसार हमारे हिंदूभाई जो हकीमी विद्याके जालमें पडके अपनी अमोल वैद्यविद्याका प्रभाव न जानके इसकी निंदा करते हैं वो उक्त बालकके बतौर हैं;यदि उनको उनके घरकी धरीहुई वस्तु दिखलाई जाय तो अवश्य फिर जो दुराग्रही और जाहिल नहीं हैं वो इसकी प्रशंसा करते २ थकजावेंगे और उनको यह निश्चय होजावेगा कि, हकीमी और डाक्टरी आदि विद्या हमारी ही उच्छिष्ट (जूठन) है ॥

उन भोलेभाले भाइयोंको हम इसजगे हिंदी जुलाबकी विधि दिखला. कर कहते हैं कि, हमारे हिन्दी वैद्यकका कायदा ठीकहै कि,अन्य मुल्कके हकीमों का कायदा ? ॥

अब आप देखिये कि, हमारे पृथक् जिसको जुलाब लेनाहो वो प्रथम घृतआदिको पीवे कि,जिस्से देहकी रग रग और नाडीआदि कि जिन्में मवाद भराहै वो अत्यंत चिकनी होजावें। बाद इसके उसरोगीके पसीने निकाले,पसीने निकालनेका यही कारणहै कि,प्रथम घीके पीनेसे उसका देह चिकना होगया फिर जो स्वेदन करा तो जहां२पर मवाद चिकट रहा था वो पसीनेके निकालतेही तत्काल सबदेहसे अलग होगया।जैसा स्नेहन

और स्वेदनसे मवाद फूलताहै और ढीला पडता है ऐसा आप लाख मुंजिश पिलायाकरो कभी नहीं मवाद मुलायम होगा?इसीसे हमलोगोंमें मुंजिश नहीं देते ॥

अब पीछे कराई उलटी तो जितना छातीके ऊपर कफ जमा हुआ है वो सब निकलजावेगा यदि इसको विना निकाले जुलाब देवे तो वो कफ नीचे जायकर मंदाग्नि, प्रवाहिका आदि रोग करता है इसी कारण रोगीको बलाबल विचारके रद्द करावे जिस्से ऊपरका भाग साफ होजावे॥

फिर जुलाबदेना तो वो सब मवाद फुलाहुआ और अलग धराहुआ जल्द निकल जावेगा, फिर भी उसको देहमें रहे हुए मवाद साफ करनेको बस्तिकर्म करतेहैं अर्थात् दवाइयोंके रसकी पिचकारी उसकी गुदामें मारते हैं कि, जिस्से रहा सहा बिलकुल मल साफ होजावे । इस प्रकार पूर्वबस्ती और उत्तरबस्ती तथा शिरोबस्ती आदि अनेक प्रकारसे हमारे रोगीको साफ करना लिखाहै ॥

इसरीतिसे जब वो शुद्ध होजाता है तब नकाहत बहुत आयजातीहै इसके वास्ते फिर बृंहण चिकित्सा द्वारा उसको पुष्ट और बलवान् करने की विधि लिखीहै ॥

इसप्रकार शुद्धहुए मनुष्यके कदाचित् रोग नहीं होते इसीसे हमारे शास्त्रमें जहां लिखाहै तहां यही आज्ञाहै कि, " येतु संशोधने शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः " ॥

बाकी संपूर्णविधि इस हमारे बृहन्निघंटुरत्नाकरमें गौर करके देखिये और जिनको जो शंकाहोवे वो हमसे पूछें हम अपनी बुद्धिके अनुसार उनका समाधान करेंगे–इसीप्रकार प्रत्येक वस्तु हमारे शास्त्रसेही अन्य विलायतवालोंने लीनीहै कहांतक लिखें ॥

दस्तोंकादूसराप्रकार ।

स्निग्धस्य स्नेहनैःकार्यं स्वेदःस्विन्नस्य रेचनम् ॥

अर्थ–घृत दुग्धादिक स्नेहद्रव्य करके स्निग्ध मनुष्यको तथा पिंडेष्टि-[1]कादि करके स्विन्न (अर्थात् जिसके पसीना काढाहो) ऐसे मनुष्यको दस्त कराने चाहिये ॥

विनावमनकेदस्तकरानेयोग्य ।

शरदृतौ वसंते च देहशुद्धयैर्विरेचयेत् ।
अन्यदात्ययिके काले शोधनं शीलयेद्बुधः ॥

१ माटीका गोला टिकिया आदि करके ।

अर्थ–शरदऋतुमें और वसंतकालमें मनुष्यके शरीरशुद्धीके वास्ते जुलाब देवे कि, जिस्से देहशुद्धी होकर शरीर उत्तमदीखे। तथा उक्तकालके सिवाय दूसरे कालमें रोग उत्पन्नहोनेसे उसकालमें वैद्य रोगीका अच्छीरीतिसे विचार करके दस्तकरावे तात्पर्य यहहै कि, शरद् और वसंतऋतुमें विना वमनके भी दस्तकरावे, परंतु अन्य ऋतुमें नहीं ॥

दस्तकरानेयोग्यरोगी।

पित्ते विरेचनं दद्यादामोद्भूते गदे तथा।
उदरे च तथाध्माने कोष्ठाशुद्धौ विशेषतः ॥

अर्थ–पित्तके विकारमें. आमवात, उदररोग, अफारा और बद्धकोष्ठ (मल न उतरे) इन रोगोंमें वैद्यको विशेषताकरके दस्तकराने चाहिये ॥

दोषदूरकरनेमें विरेचनकी उत्कृष्टता ।

दोषाःकदाचित्कुप्यंति जिता लंघनपाचनैः ।
येतु संशोधने शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः ॥

अर्थ–कफादिकदोष लंघन और पाचन औषधसे यद्यपि शमन (शांति) हो जातेहैं फिर कालपायकर कुपित होते हैं, परंतु जो दोष वमन विरेचन आदि संशोधन करके शुद्धहुये हैं उनदोषोंकी फिर कदाचित् उत्पत्ती नहीं होती अर्थात् संशोधनद्वारा दोष जडसे नष्ट होजाते हैं ॥

दस्तकरानेयोग्यमनुष्य ।

जीर्णज्वरी गरव्याप्तो वातरक्ती भगंदरी । अर्शःपांडूदरग्रंथिहृद्रोगारुचिपीडिताः ॥योनिरोगप्रमेहार्त्तागुल्मप्लीहव्रणार्दिताः । विद्रधिच्छर्दिविस्फोटविषूचीकुष्ठसंयुताः॥ कर्णनासाशिरोवक्रगुदमेढ्रामयान्विताः । यकृच्छोथोक्षिरोगार्त्ताः कृमिक्षारानिलार्दिताः॥ शूलिनो मूत्रघातार्त्ता विरेकार्हा नरा मताः ॥

अर्थ–जीर्णज्वर,वत्सनाग विषादिकसे व्याप्त,वातरक्ती, भगंदर,बवासीर, पांडुरोगी,उदररोगी, गांठकारोगी, हृदयरोग, अरुचि,प्रमेह, योनिरोग, गोलावाला, तिल्ली, व्रणरोगी, विद्रधि, वमन, विस्फोटक, विषूची

१ उदररोगीको दस्तकरावे ये प्रथम कह आये हैं, परंतु विशेषता दिखानेको यहांपर फिर कहाहै ।

(हैजा) कोढ कर्णरोग,नासारोग, मस्तकरोग, मुखरोग गुदारोगी, लिंगमें उपदंशादिकरोग, कलेजेकारोगी, सूजन, नेत्ररोग, कृमिरोग, सोमरोग, क्षारजन्यविकार, वातरोग,शूलरोग और मूत्राघातरोग,इतनेरोगोंसे व्याप्त मनुष्य दस्तकराने योग्यहै अर्थात् इतने रोगवाले मनुष्योंको दस्तकराना चाहिये । दस्तदेनानिषेध ।

बालवृद्धावतिस्निग्धक्षतक्षीणोभयान्वितः । शांतस्तृषार्तःस्थूलश्चगर्भिणी च नवज्वरी॥नवप्रसूतानारी च मंदाग्निश्च मदात्ययी।शल्यार्दितश्च रूक्षश्च नविरेच्या विजानता॥

अर्थ–बालक, अतिवृद्ध, अतिस्निग्धमनुष्य,उरःक्षतकरके क्षीणमनुष्य, भयकरके युक्त, श्रमित (जोमेहनतकरनेसेथका)है,प्याससेघबरायाहुआ, अत्यंतमोटामनुष्य, गर्भिणीस्त्री, नवीनज्वरकरके पीडित, नवप्रसूतास्त्री, मंदाग्नि[२]वालामनुष्य,मदात्ययरोगी,शल्य[३]करकेपीडित तथा रूक्ष(निस्तेज) मनुष्य इनको चतुरवैद्य दस्त न करावे [जो करावे तो वो मूर्खजानना]

मृदु मध्य और क्रूरकोष्ठ ।

बहुपित्तो मृदुःप्रोक्तो बहुश्लेष्मा च मध्यमः । बहुवातःक्रूरकोष्ठो दुर्विरेच्यःसकथ्यते।मृद्वीमात्रा मृदौकोष्ठे मध्यकोष्ठे च मध्यमा । क्रूरे तीक्ष्णामता तज्ज्ञैर्मृदुमध्यमतीक्ष्णकैः॥

अर्थ–जिस मनुष्यका कोठा अत्यंत पित्तकरके व्याप्तहै वोमनुष्य मृदुकोष्ठ (नरमकोठेवाला) जानना।तथा जिसके कोठेमें अत्यंत कफहोवे वो मध्यम कोष्ठका जानना।तथा जिसके कोठेमें अत्यंत वायुहोवे वो मनुष्य क्रूर (कठिन) कोठेका जानना । यह क्रूरकोठेवाला दस्त करानेमें दुखदाई है [अर्थात्,इसको करडीसेभी करडी दवादेनेपरभी दस्त नहीं होते] और जिसका नरमकोठाहै उसको मृदु (नरम) औषधकरके मृदुमात्रादेवे तथा जिसका कोठा मध्यमहै उसको मध्यम औषध करके मध्यम मात्रादेनी। तथा जिसका कोठा क्रूरहै उसको तीक्ष्ण औषध करके तीक्ष्णमात्रा देनी चाहिये । वो औषध आगेके श्लोकमें कहतेहैं ॥

१ देखो हैजामें दस्त करना स्पष्ट लिखाहै,परंतु यह लोकविरुद्ध होनेसे वैद्यको वर्जितहै। २ तथा मंदाग्निवालेको भी वैद्य दस्त न करावे कारण कि, रहीसही जो जठराग्नि है, वोभी दस्त करानेसे शांति होजाती है । ३ कांच, कांटा, सुई, नख, इत्यादिक शरीरमें रहनेसे जो दुःखी होताहै उसे शल्यार्दित जानना ।

मृदुमध्यमादिकोष्ठोमें मृदुमध्यमादिक औषध ।

मृदुर्द्राक्षापयश्चंचुतैलैरपिविरच्यते ॥ मध्यकस्त्रिवृतातिक्ताराजवृक्षैर्विरिच्यते ॥ क्रूरःस्नुकूपयसा हेमक्षीरीदंतीफलादिभिः ॥

अर्थ–जिसका नरम कोठाहै उसको कालीदाख और दूध अंडीके तेलसेही दस्त होतेहैं और जिसका मध्यम कोठाहै उनको निसोथ, कुटकी और अमलतासका गूदा इन तीन औषधोंकरके दस्तहोतेहैं अतएव यही औषध देवे । तथा जिसका क्रूरकोठाहै उसको थूहरका दूध, हेमक्षीरी (चौक) जमालगोटा, आदि शब्दसे जलफ इन्द्रायणकी जड सनाय आदि इन करके दस्त करावे, तो दस्तहोवे. परंतु वैद्यको उचितहै कि, इसमें विपरीत न करे अर्थात् मृदुकोठेवालेको क्रूरकोठेकी औषध नदेय और क्रूरकोठेवालेको नम्रकोठेकी न देवे।

दस्तोंकीहीनोत्तमादिमात्रा ।

मात्रोत्तमाविरेकस्य त्रिंशद्वेगैःकफांतिका ।
वेगैर्विंशतिभिर्मध्या हीनोक्ता दशवेगिका ॥

अर्थ–दस्तके वेग ३० होकर अंतके दस्तमें कफ गिरेतो उत्तम मात्रा जाननी तथा दस्तके २० वेगहोकर कफ निकलेतो मध्यम और दशवेग होनेके उपरांत यदि कफ गिरने लगेतो हीन मात्रा जाननी। यदि दस्त चाहिये जितने होवें, परंतु जबतक कफ नहीं निकले तबतक जुलाब उत्तम नहीं कहलाता,आँव[1] और कफके निकलनेपरही जुलाबकी तारीफहै।

दस्तोंमेंकाढेआदिकीमात्राकाप्रमाण ।

द्विपलं श्रेष्ठमाख्यातं मध्यमं च पलंभवेत् ।
पलार्द्धं च कषायाणां कनीयस्तु विरेचने ॥

अर्थ–दस्तहोनेमें दोपल काढादेनेसे उत्तम दस्त होतेहैं और एकपल देनेसे दस्त मध्यमहोते हैं तथा अर्द्धपल (दोतोले) देनेसे दस्त कनिष्ठ होते हैं ॥

१ आँव ये नाभिके चारों तरफ लिपटी है और ऊपरसे बडाभारी मलका लपेटा लगाहुआ है. जब यह प्राणी दस्तकी दवाई लेताहै तो ऊपरके मलके लपेटमेंसे थोडाबहुतमल निकलताहै, परंतु जब आँव निकलनेको होती है तब इसप्राणीके नाभिके चारोंतरफ थोडा बहुत मरोडा होने लगता है उस समय जानना कि, अब आम निकलेगी ।

दस्तोंमेंकल्कादिकोंकाप्रमाण।

कल्कमोदकचूर्णानां कर्षमध्वाज्यलेहतः ।
कर्षद्वयं पलं वापि वयोरोगाद्यपेक्षया ॥

अर्थ—कल्क,—मोदक (लड्डू) और चूर्ण ये प्रत्येक सहत और घीमें मिलायके, कर्श १ दस्तहोनेके अर्थ देवे अथवा अवस्था और रोग इनका तारतम्य विचारके दोकर्ष अथवा पलमात्र देने चाहिये ॥

वातपित्तकफमेंऔषधी ।

पित्तोत्तरे त्रिवृच्चूर्णं द्राक्षाक्काथादिभिःपिबेत्।त्रिफलाक्का-थगोमूत्रैःपिबेद्व्योषं कफार्दितः ॥ त्रिवृत्सैंधवशुंठीनां चूर्णमम्लैःपिबेन्नरः।वातार्दितो विरेकाय जांगलानांरसेन च ॥

अर्थ—पित्तकी अधिकतामें निसोथका चूर्ण कर दाखके काढेमें मिलायके देवे, आदि शब्दकरके गुलकंद, गुलाबके फूल, सौंफ, सनाय इत्यादिकके काढेसे देवे और कफके प्रकोप होनेसे त्रिफलाका काढा और गोमूत्र दोनोंको मिलाय उसमें सोंठ, मिरच, पीपल इनका चूर्ण डालके देवे । तथा जो मनुष्य वायुके कोपसे पीडितहो उसको निसोथ, सेंधानिमक और सोंठ इनका चूर्णकर नींबूके रससे देना चाहिये । अथवा जंगली जीवोंके मांसरसके साथ देवे तो दस्तहोय ॥

अन्यऔषधकरकेदस्तोंकाविधान ।

एरंडतैलं त्रिफला क्काथेन द्विगुणेन च ।
युक्तं पीत्वा पयोभिर्वा नाचिरेण विरिच्यते ॥

अर्थ—अंडीके तेलसे दूना त्रिफलेका काढा मिलाय दोनोंको एककरके पीवे अथवा उस अंडीके तैलको दूधमें मिलायके पीवेतो बहुत जल्दी दस्तहोवे ॥

ऋतुभेदकरकेदस्तकीविधि ।

त्रिवृताकौटबीजं च पिप्पली विश्वभेषजम् ।
समृद्वीका रसक्षौद्रं वर्षाकाले विरेचनम् ॥

अर्थ—निसोथ, इन्द्रजौं, पीपल, सोंठ, दाखका रस और सहत इन औषधोंको दस्त होनेके वास्ते वर्षाकालमें देना चाहिये ॥

शरत्कालमेंविरेचन।

त्रिवृद्दुरालभा मुस्ता शर्करादिव्यचंदनम्।
द्राक्षांबुना सयष्टीकं शीतलं च घनात्यये॥

अर्थ–निसोथ, धमासा, नागरमोथा, शक्कर, उत्तम सपेद चंदन और मुलहटी इनका चूर्ण कर दाखके पानीमें मिलाय शरद् कालमें पीवे, तो इस्से दस्तहोवे। ये दस्त शीतलहैं ऐसा जानना चाहिये॥

हेमंतऋतुमेंविरेचन।

त्रिवृतां चित्रकं पाठामजाजींसरलां वचाम्।
हेमक्षीरी च हेमंते चूर्णमुष्णांबुना पिबेत्॥

अर्थ–निसोथ, चित्रक, पाढकी जड, जीरा, देवदारु, वच और चोक. अथवा पीलेदूधका थूहर इनका चूर्णकर गरमजलसे हेमंतऋतु (अगहन और पौषमास) में लेवे तो दस्तहोय॥

शिशिर और वसंतमेंविरेचन।

पिप्पली नागरं सिंधु श्यामात्रिवृतया सह।
लिहेत्क्षौद्रेण शिशिरे वसंते च विरेचनम्॥

अर्थ–पीपर, सोंठ, सेंधानिमक, विधायरा और निसोथ इन औषधोंका चूर्णकर सहतमें मिलायके शिशिरऋतु और वसंतऋतुमें लेवे तो इस्से दस्त होय॥

ग्रीष्मऋतुमें विरेचन।

त्रिवृताशर्करातुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम्॥

अर्थ–निसोथका चूर्णकर उसमें मिश्री मिलायके दस्तहोनेके वास्ते ग्रीष्म (गरमीकी) ऋतुमें सेवन करे तो दस्तहोय॥

सुखसे दस्तहोनेके लिये अभयादि मोदक।

अभया मरिचं शुंठी विडंगामलकानिच। पिप्पली पिप्पलीमूलं त्वक्पत्रं मुस्तमेव च॥ एतानि समभागानि दंती च द्विगुणा भवेत्। त्रिवृदष्टगुणाज्ञेया षड्गुणा चात्र शर्करा॥ मधुना मोदकं कृत्वा कर्षमात्रप्रमाणतः। एकैकं भक्षयेत्प्रातःशीतं चानु पिबेज्जलम्॥ तावद्विरिच्यते जंतुर्यावदुष्णं न सेव्यते॥ पानाहारविहारेषु भवेन्निर्यंत्र-

णं सदा ॥ विषमज्वरमंदाग्निपांडुकासभगंदरान् ॥ विदा-
हप्लीहमेहांश्च यक्ष्माणं नयनामयान् ॥ वातरोगं तथा
ध्मानं मूत्रकृच्छ्राणि चाश्मरीं। पृष्ठपार्श्वोरुजघनकटचूद-
ररुजं जयेत् ॥ सततं शीलनादेष पलितानिविनाशयेत् ।
अभयामोदकोह्येतद्रसायनवरास्मृता ॥

अर्थ–हरड, कालीमिरच, सोंठ, वायविडंग, आवले, पीपर पीपरा-मूल, दालचीनी, पत्रज और नागरमोथा ये दश औषध समान भागले, तथा दंतीकी जड तीनभागले, निसोथ आठभाग, मिश्री छःभाग इस प्रमाण सब औषधोंके भागलेकर सबका चूर्णकर सहत डाल एकएक तोलेकी गोली बनावे, इसमेंसे एकगोली प्रातःकाल दस्तहोनेके अर्थ भक्षणकरे ऊपरसे थोडा शीतलजल पीवे और जबतक दस्तहोवे तब तक गरम पदार्थोंका सेवन न करे तथा पान और भोजन तथा विहार कहिये परिश्रमादिक इनको सदैव नियमित (परमाणका) करे कि, जिस्से विषमज्वर, मंदाग्नि, पांडुरोग, खांसी, भगंदर, कुष्ठ, गुल्मरोग, बवासीर, गलगंड, भ्रम, उदररोग, दाह, तिल्ली, प्रमेह, राजायक्ष्मा, नेत्ररोग, वातरोग, पेटकाफूलना, मूत्रकृच्छ्र, पथरीरोग और पीठ पस-वाडे-कमर-ऊरु-जाँघ-उदर की पीडा इन सबरोगोंको दूरकरे । इस मोद-कको अभयादिमोदक कहते हैं । यह अभयादि मोदक निरंतर सेवन करनेसे पलित (सपेदबालोंका होना) दूर होय और कालेबालहो यह अभ-यादि मोदक उत्तम रसायनरूपहै ॥

दस्तोंकोसहायकरनेवालेपदार्थ ।

पीत्वा विरेचनं शीतजलैःसंसिच्य चक्षुषी ।
सुगंधं किंचिदाघ्राय तांबूलं शीलयेन्नरः ॥

अर्थ–मनुष्यको दस्तकी औषध देकर पश्चात् उसके नेत्रोंमें शीतल ज-लसे छिडके और सुगंधित वस्तु (अतर आदि अर्गजा आदि) सुंघावे तथा बीडा चबावे इत्यादि विधिके करनेसे उत्तम प्रकारके दस्तहोते हैं ॥

दस्तहोनेपर रहनेकानियम ।

निर्वातस्थो न वेगांश्च धारयेन्न स्वपेत्ततः ।
शीतांबु न स्पृशेत्क्वापि कोष्णनीरं पिबेन्मुहुः ॥

अर्थ—दस्त होनेके अनंतर हवामें न बैठे, मल मूत्रका जब २ वेग आवे उसी वक्त त्यागे रोके नहीं, जबतक दस्तहोय तबतक सोवे नहीं[जुलाबमें किसी २ को निद्रा अधिक आतीहै] शीतलजलका स्पर्श करे नहीं। दस्तोंमें गरमजल बीच २ में पीतारहे ऐसा करनेसे उत्तम दस्त होतेहैं ॥

दस्तोंमेंनिकलनेवाली वस्तु।

बलासौषधपित्तानि वायुर्वांते यथा व्रजेत्।
रेकात्तथा मलं पित्तं भेषजं च कफो व्रजेत् ॥

अर्थ—वमनकी औषध लेनेसे कफ तथा जो औषध लीनी है वो एवं पित्त और वायु ये पदार्थ जैसे वमनके साथ बाहर गिरते हैं।उसी प्रकार दस्तकी औषध लेनेसे मल–पित्त और जो औषध लीनी है वो एवं कफ ये पदार्थ गुदाके द्वारा बाहर गिरते हैं ॥

दुष्टविरेचनकेअवगुण।

दुर्विरक्तस्य नाभेस्तु स्तब्धत्वं कुक्षिशूलता। पुरीषवातसंगश्च कंडुमंडलगौरवाः। विदाहो रुचिराध्मानं भ्रमच्छर्दिश्च जायते।

अर्थ—उत्तम दस्त न होनेसे इस प्राणीकी नाभिमें स्तब्धता, कूखमें शूल, मल और अधोवायु इनकी अप्रवृत्ति, शरीरमें खुजली तथा चकत्ते ये उत्पन्नहो तथा अंगोंका जडपना, दाह, अरुचि, पेटका फूलना, भ्रम और वमन ये उपद्रव होते हैं ॥

जिसकेउत्तमदस्तनहुएहोउसकायत्न।

तं पुनःपाचनैःस्नेहैःपक्वासंस्नेह्यरेचयेत्।
तेनास्योपद्रवायांति दीप्तोग्निर्लघुताभवेत् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको उत्तम जुलाब न हुआहो उसे आरग्वधादि पाचन काढा देकर आमको पचन करावे, फिर उसको स्नेहपान (घृतपिलायके) उसके कोठेको चिकना करके फिर दस्त करावे। ऐसा करनेसे संपूर्ण उपद्रव दूरहोकर जठराग्नि प्रदीप्तहोय और अंग हलका होयहै ॥

अत्यंतदस्तहोनेके उपद्रव।

विरेकस्यातियोगेन मूर्च्छाभ्रंशो गुदस्य च।
शूलं कफातियोगःस्यान्मांसधावनसंनिभम् ॥

मेदोनिभं जलाभासं रक्तंचापि विरिच्यते ॥

अर्थ–मनुष्यको बहुत दस्त होनेसे मूर्च्छा–गुदा (कांचका) निकल आना और गुदामें पीडा–उपद्रव होते हैं । तथा कफ अत्यंतगिरे और मांस धुले हुए पानीके समान तथा मद्यके समान अथवा चर्बीके समान तथा जलके समान गुदाके द्वारा जल और रुधिरभी गिरे है ॥

अत्यंतदस्तोंकाउपाय ।

तस्य शीतांबुभिःसिक्तं शरीरं तंदुलांबुभिः ।
मधुमिश्रैस्तथाशीतैःकारयेद्वमनं मृदु ॥

अर्थ–दस्त अत्यंत होनेसे मनुष्यके शरीरको शीतल जलकी धारसे भिगोवे तथा चावलके धोवनके जलमें सहत मिलायके पिवावे, तथा नरम वमन करावे तो ऐसा करनेसे अत्यंत दस्तोंकी शांति होय ॥

दस्तबंदहोनेकाउपाय ।

सहकारत्वचःकल्को दध्नासौवीरकेन वा ।
पिष्टो नाभिप्रलेपेन हंत्यतीसारमुल्बणम् ॥

अर्थ–आमकी छालको गौकी छाछमें अथवा सौवीरमें पीस कल्ककर नाभीके ऊपर लेपकरे तो अत्यंत दस्तहोना बंदहोय ॥

अजाक्षीरं पिबेद्वापि वैकिरंहारिणं तथा।शालिभिःषष्टिकैः स्वल्पं मसूरैर्वापि भोजयेत् ॥ शीतैः संग्राहिभिर्दिव्यैः कुर्यात्संग्रहणं भिषक् ॥

अर्थ–दस्त बंद होनेवास्ते बकरीका दूध पिवावे। अथवा विष्किर पक्षी

---

१ कच्चे जों अथवा भुनेजवोंको कूट उसमें पानी डालके उस पात्रका मुख बंदकर तीनदिन धरा रहनेदे तो सौवीर बनकर तय्यारहो इसीप्रकार गेहूंका भी बनायलेना ।

टीकाकारोंने दस्त बंद करनेका विषय होनेके कारण, सौवीर शब्दकरके कांजीलेना ऐसा कहाहै । उसकांजी बनानेकी विधि इस प्रकार है कि, एकमिट्टीका पात्र लायके उसके भीतर सरसोंका तेल चुपडदेवे फिर उसमें निर्मल जल भरके राई, जीरा, सैंधानिमक, हींग, सोंठ, हलदी, इन छः औषधोंका चूर्ण तथा भातसहित पेज, कुलथीकाकाढा और थोडे बांसके पत्ते ये सब वस्तु उसपात्रमें डाले तथा घीके तले हुये उडदके बडे दस पांच उसमें डाले, उसका मुख बंदकर तीनदिन धरा रहनेदे जब उसमें खटाईकी वास आने लगे तब जानेकी कांजी बनकर तयार होगई ।

लवाआदिका मांसरस तथा हरिणका मांसरस सेवन करे तथा सांठी वा शाली चावलोंका भात करके थोडा खाय अथवा मसूरको सिजायके थोडी खाय और भी अनार आदिशब्दकरके शीतल और ग्राहक ऐसे पदार्थ सेवनकरे कि, जिस्से दस्त बंदहोवे ॥

उत्तमजुलाबहोनेकेलक्षण ।

लाघवे मनसस्तुष्ट्या मनुलोमगतेनिले ।
सुविरक्तं नरं ज्ञात्वा पाचनं पाययेन्निशि ॥

अर्थ–उत्तम दस्तहोनेसे देह हलका होजावे, चित्तमें प्रसन्नता अधो वायुका स्वस्थानमें गमन इतने लक्षण होनेसे उस मनुष्यको दस्त उत्तमहुए ऐसा जानना । उसको रात्रिके समय पाचन (सोंठ अंडिकीजड और धनियां, ये तीन औषधोंका काढा पाचनार्थ देवे) ॥

उत्तमजुलाबहोनेकाफल ।

इन्द्रियाणां बलं बुद्धेःप्रसादो वह्निदीप्तता ।
धातुस्थैर्यं वयःस्थैर्यं भवेद्रेचनसेवनात् ॥

अर्थ–जुलाबके लेनेसे मनुष्यकी इन्द्रियोंमें बलआवे, बुद्धि प्रसन्नहो तथा जठराग्नि प्रदीप्त और धातु तथा अवस्था इनका स्थिरपना होयहै अर्थात् रसादिधातु और आयु बढकर बहुत दिनतक रहे ॥

जुलाबमेंअपथ्य।

प्रवातसेवा शीताम्बु स्नेहाभ्यंगमजीर्णताम् ।
व्यायामं मैथुनं चैव न सेवेत विरेचितः ॥

अर्थ–मनुष्य दस्तहोने उपरांत अत्यंत हवा नखाय तथा शीतल और तैलादिककी मालिस अजीर्णकारी पदार्थ भोजन परिश्रम और मैथुन इनका सेवन न करे ॥

जुलाबमेंपथ्य ।

शालिषष्टिकमुद्गाद्यैर्यवागूं भोजयेत्कृताम् ।
जांगलैर्विष्किराणां वा रसैःशाल्योदनं हितम् ॥

अर्थ–दस्तहोनेके पश्चात् सांठीचावल और मूंग आदिशब्दसे अन्यधान्यकी यवागू करके सेवनकरे तथा जंगली जीव (हरीण ससे आदि) का मांसरस अथवा विष्करजीव (लवा बटेरआदि) पक्षियोंका और मुरगा इनके मांसरसके साथ चावलका भात सेवन करे ॥

नाराचरस ।

तुल्यं पारदटंकणं समरिचं गंधाश्मतुल्यं त्रिभिर्विश्वं च त्रिगुणंततो नवगुणं जेपालबीजं क्षिपेत् । खल्वे दंडयुगं विमर्द्य विधिवत्संन्यस्य पर्णे ततःस्विन्नं गोमय वह्निना स तु भवेन्नाराचनामा रसः ॥ गुंजैकप्रमितोरसोहिमजलैः संसेवितो रेचयेद्यावत्कोष्णजलं भजेत्खलुनरो भोज्यं तु दध्योदनम् ॥

अर्थ–शुद्धपारा–फुलायाहुआ सुहागा, कालीमिरच ये समान भाग लेवे और शुद्धगंधक तीनोंके समान लेवे तथा सोंठ तीनभाग, जमालगोटाके बीज नौ भाग इन सबको दोप्रहर खरलकर पत्तेपर निकाल आरने उपलोंकी अग्निपर स्वेदन करे इस रसका नाम नाराचरस है यह एकरत्ती खांडके साथ देवे ऊपरसे शीतलजल पीवे तो दस्तहोय और गरमजल पीनेसे दस्तबंदहोते हैं इसके ऊपर दही भात खाना पथ्य है॥

द्वितीयनाराचरसः ।

जेपालेन समैःसूतव्योषटंकणगंधकैः । नाराचःस्याद्रसोमाषमात्रःसर्पिःसितायुतः ॥ हंतिसंग्रहमानाहमामशूलं तथाज्वरम् । वेलाज्वरं विरेकेण शीतलांबुनिषेवणम् ॥

अर्थ–जमालगोटा, पारा, सोंठ, कालीमिरच, सुहागा, गंधक ये समानभागलेकर एकत्र करके खरलकरे तो यह नाराचरस सिद्धहोवे इसमेंसे६ रत्ती रस खांड और घीके साथ देवे तथा ऊपर शीतल जल पिवावे तो मलसंग्रह अनाहवायु (अफारा) आमशूल, बेलाज्वर इनका दस्तहोनेसे नाश करे है ॥

इच्छाभेदीरसः ।

शुंठीतीक्ष्णरसेन्द्रटंकणबलिःप्रोक्तःसमंतात्रिधा कुंभीबीजयुतं विमर्द्य सभवेदिच्छाविभेदीरसः । वल्लंशर्करया युतेन चुलुकं पुंसःसुखं रेचयेन्निःशेषं मलदोषमेषविनिहंत्युच्चैर्यथेभं हरिः ॥

अर्थ--सोंठ, कालीमिरच, पारा, सुहागा, गंधक ये समानभागले उसमें जमालगोटा तिगुना डालके खरलकरे इसको इच्छाभेदी रस कहते हैं इस

रसको ३ रत्तीले खांडके साथ खाय ऊपरसे जितने चुल्लू शीतलजलके पीवे उतनेही दस्त इस प्राणीको होते हैं यह सुखजुलाब सबरोगोंको नाशकरे जैसे सिंह हाथीका नाश करता है ॥

द्वितीयइच्छाभेदीरसः ।

शंभोर्वीर्यं च टंकं बालमरिचयुतं शृंगवेरं च तुल्यं योज्यं नैकुंभबीजं समशिखिसहितं मर्दितं याममेकम्॥भुक्तंगुंजाद्विमात्रं शिशिरजलयुतं त्यक्ततल्पत्वमुच्येदिच्छाभेदी रसोऽयं प्रबलमलहरःसर्वरोगैकहर्त्ता ॥

अर्थ—शुद्धपारा १ तोला, गंधक,कालीमिरच,सोंठ,जमालगोटेके बीज, चित्रक ये सब औषध समानभाग लेकर एक प्रहर खरलकरे इसको इच्छाभेदीरस कहते हैं यह प्रबलमलका नाशकर संपूर्णरोगोंको हरणकरे है।

अथ बस्तिप्रकरणम् ।

बस्तिर्द्विधानुवासाख्यो निरूहश्च ततःपरम् ।यःस्नेहैर्दीयते सस्यादनुवासननामकः ॥ कषायक्षीरतैलैर्यौनिरूहः स निगद्यते।बस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्बस्तिरितिस्मृतः ॥

अर्थ—अंडकोशादिक करके गुदामें जो पिचकारी मारते हैं उसको बस्ती कहतेहैं वो बस्ति अनुवासन और निरूहण इस भेदसे दो प्रकारकीहै उसमें तेल घी इत्यादि चिकनाईकी जो पिचकारी मारतेहैं उसको अनुवासन और काढे, दूध,तेल इनको एकत्र करके जो पिचकारी मारते हैं उसको निरूहबस्ती कहते हैं ।

प्रकारांतर ।

वातोल्बणेषु दोषेषु वातेवा बस्तिरिष्यते ।
उपक्रमाणांसर्वेषां सोग्रणीस्त्रिविधश्च सः ॥
निरूहोन्वासनोबस्तिरुत्तरःसंप्रकीर्त्तितः ॥

अर्थ—वातोल्बणदोषोंमें अथवा केवल वातके दोषमें बस्तिकर्म करना चाहिये, यह संपूर्ण कर्मोंमें अग्रगण्य (मुख्य) है । सो तीन प्रकारकीहै १ निरूहबस्ति, २ अनुवासनबस्ति और तीसरी ३ उत्तरबस्ती ॥

प्रथमअनुवासनबस्ति।

तत्रानुवासनाख्योहि बस्तिर्यःसोऽत्र कथ्यते। पूर्वमेवत-तोबस्तिनिरूहाख्योभविष्यति ॥ निरूहादुत्तरं चैव बस्तिस्यादुत्तराभिधः। अनुवासनभेदश्च मात्राबस्तिरुदीरितः ॥ पलद्वयंतस्यमात्रा तस्मादर्धापिवाभवेत् ॥

अर्थ-तहां प्रथम अनुवासन नामक बस्तिको कहके फिर निरूहबस्ती तथा उत्तरबस्ती कहैंगे। तथा उस अनुवासनबस्तिका भेद मात्रावस्ती है, उस मात्राबस्तीमें स्नेहादिकोंकी मात्रा दोपलकी है। अथवा पलमात्रकी जाननी इसप्रकार बस्तीके चार भेद जानने ॥

अनुवासबस्तीमेंयोग्यप्राणी।

अनुवास्यस्तुरूक्षःस्यात्तीक्ष्णाग्निःकेवलानिली ॥

अर्थ-रूक्ष (स्नेहपानरहित) और प्रदीप्तहै अग्नि जिसकी वो और केवल वातरोगी ऐसे मनुष्योंको अनुवासनबस्तीके योग्य जानने ॥

अनुवासनअयोग्यपुरुष।

नानुवास्यास्तु कुष्ठीस्यान्मेही स्थूलस्तथोदरी ॥नास्थाप्यानानुवास्याःस्युरजीर्णोन्मादतृड्युताः ॥शोकमूर्च्छारुचिभयश्वासकासक्षयातुराः ॥

अर्थ-कुष्ठी, प्रमेही, स्थूलपुरुष, उदररोगी ये अनुवासनबस्तीके योग्य नहीं हैं। तथा उन्माद (पागल) अजीर्ण, तृषा, शोक, मूर्च्छा, अरुचि, भय, श्वास, खांसी और क्षय इनकरके पीडित जो मनुष्यहै वो आस्थाप्य (निरूहबस्ती) में योजनाकरे " नानुवास्याः " अर्थात् उनकी अनुवासन बस्तीमें योजना न करे।

बस्तीका मुखस्थापन विषयमें सुवर्णादिकोंकीनली।

नेत्रंकार्यं सुवर्णादिधातुभिर्वृक्षवेणुभिः।
नलैर्दन्तैर्विषाणाग्रैर्मणिभिर्वाविधीयते ॥

अर्थ-नेत्र कहिये गुदामें पिचकारी मारनेके लिये नली-वो सुवर्णादि धातुकी अथवा बांसकी अथवा नरसलकी,हाथीदांतकी अथवा सींगके अग्र तथा बिल्लौर अथवा सूर्यकांतादि(आतशीकांचआदिमणियोंकी करनी चाहिये)॥

रोगीकी अवस्थानुसार नलीका प्रमाणकरे ।

एकवर्षात्तु षड्वर्षं यावन्मानंषडंगुलम् ।
ततो द्वादशकं यावन्मानंस्यादष्टसंयुतम् ॥
ततः परं द्वादशभिरंगुलैर्नेत्रदीर्घता ॥

अर्थ–बस्तीकी नली एक वर्षसे लेकर छः वर्ष पर्यंत छः अंगुल प्रमाण तथा छःवर्षसे लेकर बारह वर्षपर्यंत आठ अंगुल प्रमाण लंबी तथा बारह वर्षके पश्चात् बारह अंगुलकी लंबी नली बनानी चाहिये ॥

नलीकेछिद्रकाप्रमाण ।

मुद्गछिद्रं कालायामंछिद्रं कोलास्थिसान्निभम् । यथासं
ख्यं भवेन्नेत्रं श्लक्ष्णं गोपुच्छसंनिभम् ॥ आतुरांगुष्ठमा
नेन मूलेस्थुलंविधीयते । कनिष्ठिकापरीणाहमग्रे च-
गुटिकामुखम् ॥ तन्मूलेकर्णिके द्वे च कार्येभागाच्चतुर्थ-
कात् । योजयेत्तत्र बस्ति च बंधद्वयविधानतः ॥

अर्थ–जो छःअंगुलकी नलीहै उसका छिद्र मूंगके दानेके समान और जो आठ अंगुलकी नलीहै उसका छिद्र मटरके दानेके बराबर और जो बारह अंगुल लंबी नलीहै उसका छिद्र बेरकी गुठलीके प्रमाण इसप्रकार क्रमकरके नलीका छिद्रकरे । और वो नली चिकनी होकर गौके[१] पूंछके समान होनी चाहिये । तथा उस नलीका मूल रोगीके अंगूठाके बराबर मोटा और अग्रभागमें कनिष्ठिका उंगलीके प्रमाण मोटी करके उसका मुख गोलकरे तथा उस नलीके तीन भाग छोडके चतुर्थभागके मूलमें दोकर्णिका कमलपत्रके समान बनाय हरिणादिकोंके अंडकीबस्ती उस जगे लगाय उसकर्णिकासे बस्तीके दोनों भाग बाँधदेवे, कि, जिससे संधि न रहने पावे ॥

बस्तीकिसकेआंडोकीबनावेसोकहतेहैं ।

मृगाजसूकरगवां महिषस्यापि वा भवेत् ।
मूत्रकोशस्य बस्तिस्तु तदभावेन चर्मजः ॥
कषायरक्तःसुमृदुर्बस्तिःस्निग्धो दृढो हितः ।

---

१ जैसे गौकी पूंछ ऊपरसे पतली होती है बीचमें मोटी और नीचे फिर क्रमसे पतली होती चली गई है ऐसी बनावे ।

अर्थ-हरिण, बकरा, सूअर, बैल अथवा भैसा इनके आंडोंकी बस्ती बनानी, यदि ये न मिलेतो इनके चामकी बस्ती बनावे तथा उसबस्तिको बेरकीछाल इत्यादिकोंके काढेमें रंगे एवं नम्र और चिकनी तथा दृढ होनी चाहिये ॥

व्रणबस्तीकाप्रमाण।

व्रणबस्तेस्तु नेत्रं स्याच्छ्लक्ष्णमष्टांगुलोन्मितम्।
मुद्गच्छिद्रं गृध्रपक्षनलिकापरिणाहि च ॥

अर्थ-व्रणमें जो बस्ती योजना करीजायहै उसके नेत्र(नली)आठ अंगुल की लंबी और चिकनी तथा उसका छिद्र मूंगके समान करे।तथा गीधके पंखकी नली जितनी मोटी होतीहै इतनी मोटी इसप्रकार व्रणबस्तीकी नली बनानी चाहिये ॥

बस्तीकेगुण।

शरीरोपचयं वर्णं बलमारोग्यमायुषः।
कुरुते परिवृद्धिं च बस्तिःसम्यगुपासितः ॥

अर्थ-बस्तीका उत्तम प्रकार सेवन करनेसे शरीरकी वृद्धि, कांति, बल, आरोग्य और आयुकी वृद्धि ये गुण उत्पन्न होतेहैं ॥

बस्तीकासेवनकाल।

दिवसांते वसंते च स्नेहे बस्तिःप्रदीयते। ग्रीष्मवर्षाशरत्काले रात्रौ स्यादनुवासनम् ॥ न चातिस्निग्धमशनंभोजयित्वानुवासयेत। मदं मूर्च्छां च जनयेद्द्विधास्नेहः प्रयोजितः ॥ रूक्षं भुक्तवतोत्यन्नं बलं वर्णं च हीयते। युक्तःस्नेहमतो जंतुं भोजयित्वानुवासयेत् ॥

अर्थ-वसंतऋतुमें स्नैहबस्ती (अनुवासन बस्ती) सायंकालमें करे। ग्रीष्मऋतु, वर्षाऋतु और शरदऋतुमें रात्रिमें बस्तिकर्म करे।तथा रोगीको अत्यंत स्निग्ध भोजन करायके अनुवासनबस्तीका प्रयोग कदाचित् न करे क्योंकि, इसप्रकार करनेसे मद और मूर्छाको करेहै।तथा अत्यंत रूखा भोजन करायके बस्तीप्रयोग करनेसे बल और कांति इनकी हानी होतीहै इस वास्ते थोडा स्नेहयुक्त भोजन करायके फिर अनुवासन बस्तीदेवे ॥

बस्तीमें हीन और अतिमात्राका निषेध।

हीनमात्रावुभौ बस्तीनातिकार्यकरौ स्मृतौ।

अतिमात्रौ तथानाहक्लमातीसारकारकौ ॥

अर्थ–अनुवासनबस्ती तथा निरूहबस्ती इनकीमात्रा होनेसे अत्यंतकार्य नहींहो,अर्थात् रोग उत्तमरीतिसे दूर नहींहो।तथा पूर्वोक्तदोनों बस्तियोंकी अतिमात्रा होनेसे आनाहरोग, ग्लानि और अतिसार ये रोग उत्पन्न होतेहैं॥

उत्तमादिमात्राकथन ।

उत्तमस्य पलैः षड्भिर्मध्यमस्य पलैस्त्रिभिः ।
पलद्वयर्धेन हीनस्य युक्ता मात्रानुवासने ॥

अर्थ–उत्तम प्रकारवाले बली मनुष्यको अनुवासन बस्तिमें छः पलकी मात्रा जाननी, मध्यम बलवाले मनुष्य उसको तीन पलकी मात्रा जाननी । औरहीनबली मनुष्योंको डेढ पलके प्रमाण मात्रा जाननी । यह बस्तीकी मात्राका प्रमाण कहा ॥

स्नेहमेंसैंधवआदिकीमात्रा ।

शताह्वासैंधवाभ्यां च देयं स्नेहे च चूर्णकम् ।
तन्मात्रोत्तममध्यांत्या षट्चतुर्द्वयमाषकैः ॥

अर्थ–सतावरी और सैंधानिमक इनका चूर्ण अनुवासन बस्तीमें देना जो कहाहै उसकी मात्रा छःमासेकी है वो उत्तम और चारमासेकी मध्यम, एवं दोमासेकी हीनमात्रा जाननी । (शतावर और सैंधेनिमकका चूर्ण तेलमें मिलाया जाताहै) ॥

अनुवासबस्तीदेनेकासमय ।

विरेचनात्सप्तरात्रे गते जातबलाय च ।
भुक्तान्नायानुवास्याय बस्तिर्देयोनुवासनः ॥

अर्थ–मनुष्यको रेचन (जुलाब) देकर सातदिन जानेके बाद बल आनेपर उसको भोजन कराय अनुवासन नामक बस्तीमें जो योग्य मनुष्य उसको अनुवासन बस्ती देने चाहिये ॥

बस्तीदेनेकाप्रकार ।

अथानुवास्यं स्वभ्यक्तमुष्णांबुस्वेदितं शनैः । भोजयित्वा यथाशास्त्रं कृतं चंक्रमणं ततः ॥ उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं योजयेत्स्नेहबस्तिना । सुप्तस्य वामपार्श्वेन वामजंघाप्रसारिणः ॥ कुंचितापरजंघस्य नेत्रं स्निग्धे

गुदे न्यसेत्। बध्वाबस्तिमुखेसूत्रं वामहस्तेन धारयेत्॥ पीडयेद्दक्षिणेनैव मध्यवेगेन धीरधीः। जृंभाकासक्षवादींश्च बस्तिकाले न कारयेत्॥

अर्थ–अनुवासन बस्तीके योग्य मनुष्योंके देहमें तेल लगाय गरमजलसे अंगमें हलका पसीना काढ उसको यथाशास्त्र लिखित भोजन[1] कराय थोडासा इधर उधरको फिराय यदि उसको मलमूत्र अधोवायु त्यागनेकी इच्छा होयतो करायके फिर बस्तिकर्ममें योजना करे। और उसको बाईं करवट सुलाय बाएपैरको लंबा पसार दहने पैरको संकुचित करे और गुदाको चिकनीकर[2] बस्तीकी नली बस्तीके मुखमें डोरेसे बांध उस नलीको गुदाके ऊपर धरे तथा कुशलवैद्य उस नलीको बाए हाथमें लेकर दहने हाथसे मध्यमवेग करके दाबे तथा बस्तीके समय जंभाँईलेना खांसना और छीकना इत्यादिक रोगीको न करनेदेवे (खांसी आदिके करनेसे पिचकारीका तैल ऊपर चढ जाताहै अथवा नीचेही रहे ठीक स्थानपर नहीं पहुचे इसीवास्ते जंभाई और खांसना आदि वर्जितहैं)॥

पिचकारीलगानेमेंकाल।

त्रिंशन्मात्रामितःकालःप्रोक्तोबस्तेस्तुपीडने।
ततःप्रणिहितःस्नेहउत्तानोवाक्शतं भवेत्॥

अर्थ–पिचकारी मारनेके समय तीसमात्रा पर्यंत काल जानना और वो स्नेह भीतर जानेसे सौवाक (जितनीदेरमें सौवार आंख मिचे) इनती देरतक चित्त सोया करे उसमात्राका प्रमाण आगेके श्लोकमें कहते हैं॥

मात्राकाप्रमाण।

जानुमंडलमावेष्टय कुर्याच्छोटिकयायुतम्।
एकामात्रा भवत्येषा सर्वत्रैष विनिश्चयः॥

अर्थ–घोटूके चाऱ्योंतरफ हाथ फेरके चुटकी बजावे इतने कालकी एक मात्रा होती है। यह सर्वत्र यिश्चय है तथा मात्राका प्रमाण अन्यत्रभी ग्रंथोंमें लिखा है सो देखलेना॥

वाङ्मात्राकाप्रमाण।

निमेषोन्मेषणं पुंसामंगुल्या छोटिकाथवा।

१ उसको चावलोंकी पतली पेया करके पिवावे। २ गुदामें घी लगायकर।

गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृताबुधैः ॥

अर्थ–निमेषोन्मेषण (पलकोंका खोलना मूंदना) चुटकी बजाना, अथवा गुरुअक्षरके उच्चारण इनमें जितना समय लगता है उसको वाङ्मात्रा कहते हैं ॥

पिचकारीलगानेकेपश्चात्क्रिया ।

प्रसारितैःसर्वगात्रैर्यथावीर्यं प्रसर्पति ।
ताडयेत्तलयोरेनं त्रीन्वारांश्च शनैःशनैः ॥
स्फिजोश्चैवं ततः श्रोणिं शय्यां चैवोत्क्षिपेत्ततः ।
जाते विधाने तु ततःकुर्यान्निद्रां यथासुखम् ॥

अर्थ–पिचकारी मारनेके पश्चात् रोगी हाथ पैर आदि सब देहको ढीला करके पसारदेवे कि, जिस्से रसादिकधातु अपने २ स्थानपरजावें । तथा रोगीके हाथपैरके तलको तीनवार हलकी (धीरे २) तीन २ ताल देवे उसीप्रकार स्फिज (कूला) और श्रोणी (कटिपश्चात्भाग) में तीन २ वार ताल मारे । फिर उसको शय्या (पलँगपर) बैठावे । इसप्रकार बस्तीविधि होनेके अनंतर रोगीको सुखपूर्वक सुलायदे ॥

उत्तमबस्तिकर्महोनेकेगुण ।

सानिलःसपुरीषश्च स्नेहःप्रत्येति यस्य तु ।
उपद्रवं विना शीघ्रं स सम्यगनुवासितः ॥

अर्थ–गुदाके भीतर गयाहुया जो स्नेह वो वायु तथा मल इनके साथ उपद्रवके विना तत्काल बाहर आनेसे उस मनुष्यको बस्तीकर्म उत्तम हुआ ऐसा जानना ॥

स्नेहकाविकारदूरहोनेमेंउपाय

जीर्णान्नमथसायाह्ने स्नेहे प्रत्यागते पुनः । लध्वन्नं भोजयेत्कामं दीप्ताग्निस्तु नरोयदि॥अनुवासिताय देयंस्यादितरेह्निसुखोदकम्।धान्यशुंठीकषायो वास्नेहव्यापत्तिनाशनम्॥

अर्थ–गुदाके रास्ते स्नेहनिःशेष(संपूर्ण)बाहर आनेसे और यदि मनुष्यकी अग्नि प्रदीप्त होवे तो उसकी सायंकालमें पुराने अन्न[1] किंचित् नित्यके

[1] एक वर्षके चावल अथवा साठदिनके पकनेवाले(सौँठी)चावल पथ्यमें देवे ।

आहारकी अपेक्षा कम पथ्यमें देवे और अनुवासित मनुष्यको दूसरे दिन सुखोदक देवे अर्थात् गरमजल पीनेको देवे अथवा धनियां और सोंठ, इनका काढा करके देय तो स्नेहका विकार दूरहोय ॥

वातादिदोषोंमेंपिचकारीमारनेका प्रमाण।

अनेन विधिना षड्वा सप्त चाष्टौ नवापि वा।
विधेया बस्तयस्तेषामन्ते चैव निरूहणम् ॥

अर्थ–पूर्वोक्तविधिकरके वातादिक दोषोंमें छःवार अथवा आठवार अथवा नौवार पिचकारी मारे उस पिचकारियोंके अंतमें निरूह बस्ति योजना करे ॥

बस्तीके गुण।

दत्तस्तु प्रथमो बस्तिःस्नेहयेद्बस्तिवंक्षणौ । सम्यक्दत्तो द्वितीयस्तु मूर्धस्थमनिलं जयेत् ॥ बलं वर्णं च जनयेत्तृतीयस्तु प्रयोजितः। चतुर्थपंचमौ दत्तौ स्नेहयेतां रसासृजी ॥ षष्ठो मांसं स्नेहयति सप्तमो मेद एवच । अष्टमो नवमश्चापि मज्जानं च यथाक्रमम् ॥ एवं शुक्रगतान्दोषान् द्विगुणःसाधुसाधयेत्।अष्टादशाष्टादशकान्बस्तीनां यो निषेवते ॥ सकुंजरबलोश्वस्य रमेत्तुल्योमरप्रभः ॥

अर्थ–प्रथम बस्ति (पिचकारी) मारनेसे वह बस्ती वंक्षण (अंड सांधि) द्वारा शरीरमें स्नेहन करे है अर्थात् धातु बढावे है।दूसरी पिचकारी मारनेसे मस्तककी वायुको दूरकरे। तीसरी पिचकारी मारनेसे शरीरमें बल, कांति आवे। चौथी और पांचवी पिचकारी मारनेसे रस और रक्त इनकी वृद्धि होय। छटी और सातवी पिचकारी मारनेसे मांस और मेदमें स्निग्धता आती है। आठवीं और नवम पिचकारी मारनेसे मज्जामें और श्लोकमें जो चकारहै इस्से शुक्रधातुमें स्निग्धता आती है। इस प्रकार द्विगुण(१८)पिचकारी देनेसे शुक्रधातुगत जो दोषहैं उनका नाश होय तथा जो मनुष्य३६पिचकारियोंका सेवनकरे उसमें हाथीके समान बल और वेगमें घोडेके समान होय एवं देवस्वरूप कांतिहोयहै ॥

अनुवासनवस्तीऔरनिरूहनबस्तियोंकिसकोदेनीइसकाप्रकार।

रूक्षाय बहुवाताय स्नेहबस्तिं दिने दिने। दद्याद्वैद्यस्तथान्येषामन्याबाधामपाहरन् ॥ स्नेहोल्पमात्रो रूक्षाणां

दीर्घकालमनात्ययः । तथा निरूहस्निग्धानामल्पमात्रः प्रशस्यते ॥

अर्थ-रूक्ष होकर जो अत्यंत वायुसे पीडित मनुष्य उसको वैद्य दिन २ में स्नेहबस्ती देवे अर्थात् स्नेहकी पिचकारी नित्य मारे । उसी प्रकार " अन्येषां " कहिये स्निग्ध और स्थूलादिक मनुष्य उनके " अन्या " कहिये निरूहण बस्ती दिन२में देवेतो " बाधा " कहिये रोग दूरहोय । तथा रूक्ष मनुष्य उनके स्नेहबस्ती अल्पदेवे अर्थात् स्नेहकी पिचकारी हलकी मारे। परंतु रोगी बहुत दिनका बचाहुआ होय तो स्निग्ध मनुष्य उसके निरूहबस्ती अल्पदेवे ॥

तत्कालस्नेहबाहरनिकलेउसकाउपाय ।

अथवा यस्य तत्कालं स्नेहो निर्याति केवलः ।
तस्यान्योऽन्यतरो देयो नहि स्निग्धस्य तिष्ठति ॥

अर्थ-स्निग्ध मनुष्यकी गुदामें पिचकारी मारनेसे उसी वख्त चिकनाई बाहर निकल आती है ठहरे नहीं है इसीसे स्नेहबस्ती देकर उसी समय निरूहबस्ती देवे, इसप्रकार पलटकर दोनों प्रकारकी बस्तीदेवे ॥

स्नेहबाहर न निकले उसके उपद्रव और उपाय ।

अशुद्धस्य पलोन्मिश्रःस्नेहो नैतियदा पुन : ।तदा शैथिल्यमाध्मानं शूलं श्वासश्च जायते । पक्काशयो गुरुत्वं च तत्र दद्यान्निरूहणम्। तीक्ष्णं तीक्ष्णौषधियुता फलवर्त्तिर्हिता तथा ॥ यथानुलोमनोवायुर्मलस्नेहश्च जायते । तथा विरेचनं दद्यात्तीक्ष्णं नस्यं च शस्यते ॥

अर्थ-वमन और विरेचन इत्यादिक करके जिसकी शुद्धी नहीं करी उसकी गुदासे यदि मलमिश्रित स्नेह बाहर आवे नहीं तो उसके देहमें शिथिलता और अफरा (पेटका फूलना) शूल श्वास और पक्काशयमें भारीपना, ये उपद्रव होते हैं । इनके दूरहोनेके वास्ते तीक्ष्णनिरूहण बस्ति देनी चाहिये।इसीप्रकार तीक्ष्ण औषध करके युक्त ऐसी फलवर्त्तीदे जिस्से वायु अधोगामी होकर मल मिश्रित स्नेह गुदाके रास्ते बाहर आवे, तथा उसीप्रकार तीक्ष्णजुलाब और तीक्ष्णनस्य ये देने चाहिये ॥

स्नेह बस्ती जिसको उपद्रव करे नहीं उसका विधान ।

यस्य नोपद्रवं कुर्यात्स्नेहबस्तिरानिःसृता ।

सर्वोऽल्पो व्यावृते रौक्ष्यादुपेक्ष्यः सविजानता ॥

अर्थ–स्नेहबस्ती (स्नेहकी पिचकारी) गुदामें मारनेके अनंतर गुदाका संपूर्णभाग व्यावृत (व्याप्त) होनेसे अथवा मनुष्यके रूक्षपनेके कारण गुदाके एकदेशमें व्याप्तहोके रहनेसे शूलादिक उपद्रव नहीं करे । तो पिचकारी (स्नेहबस्ती) उसीप्रकार गुदामें धरी रहनेदे ॥

अहोरात्रिमें भी स्नेह बाहर न आवे तो उसका उपाय ।

अनायाते त्वहोरात्रे स्नेहं संशोधनैर्हरेत् ।
स्नेहबस्तावनायाते नान्यः स्नेहो विधीयते ॥

अर्थ–स्नेहकी पिचकारी मारनेसे जो स्नेह बाहर नहींआवे उसके दोवार पिचकारी मारके स्नेह बाहर आवे ऐसा यत्न करे । अथवा जो स्नेह अहोरात्र (दिनरात्रि) में बाहर न आवे उसको जुलाब देकर तेलको बाहर निकाले ॥

अनुवासनतैल ।

गुडूच्येरंडपूतीकभार्गीवृषकरोहितम् । शतावरी सहचरं काकनासा पलोन्मितम् ॥ यवमाषातसीकोलकुलित्था न् प्रसृतोन्मितान् । चतुर्द्रोणांभसा पक्त्वा द्रोणशेषेण तेन च ॥ पचेत्तैलाढके पेष्यैर्जीवनीयैःपलोन्मितैः । अनुवासनमेतद्धिसर्ववातविकारनुत् ॥

अर्थ–गिलोय, अंडकी जड, कंजाकी छाल, भारंगी, अडूसा, रोहिषतृण, शतावर, पियाँवासा, काकतुंडी, ये नौ औषध एक २ पललेवे । जौ, उडद, अलसी, बेरकी गुठली और कुलथी, ये पांच औषध दो दो पलले, इन सबको कूट पानी ४ द्रोण डालके एकद्रोण जल बाकी रहने पर्यंत औटावे, उसमें तिलका तेल एक आढक डालके और जीवनीय गणकी औषधी एक २ पल कूट चूर्णकरके मिलावे, फिर उसको औटावे जब काढा जलके तेलमात्र शेष रहे तब नीचे उतारके तेलछान लेवे।इसको अनुवासन तेल कहते हैं।ये तेल संपूर्ण वायुके रोगोंको दूर करताहै

शट्यादितैलम् ।

शटीपुष्करकृष्णाह्वामदनामरदारुभिः । शताह्वाकुष्ठयष्ट्याह्ववचाबिल्वहुताशनैः ॥ सुपिष्टैर्द्विगुणं क्षीरंतैलं

तोयं चतुर्गुणम्।पक्त्वा बस्तौ विधातव्यं मूढवातानुलोमनम् ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषमानाहं विषमज्वरम्॥कटचूरुपृष्ठकोष्ठस्थान्वातरोगांश्च नाशयेत् ॥

अर्थ–तिलतैल ४ सेर, दूध ८ सेर, कल्कके वास्ते कचूर, पुहकरमूल, पीपल, मैनफल, देवदारु, सौंफ, कूट, मुलहटी, वच, वेलगिरी और चीतेकी छाल ये सब मिलायके सेरभर लेवे।जल१६सेरले,सबको मिलाय तेलकी विधिसे सिद्धकरे । यह वस्तिक्रियामें प्रयोग करनेसे कुपित वायुको अनुलोम करे। तथा बवासीर,ग्रहणीदोष,अफरा, विषमज्वर और जांघ, कमर और पीठके वातरोगको दूरकरे। इसे शटचादि तैल कहते हैं॥

वचादितैलम् ।

वचापुष्करकुष्ठैला मदनामरसिंधुजैः । कांकोलीद्वययष्ट्याह्व मेदोयुग्मनराधिपैः॥ पाठाजीवकजीवंती भार्गीचंदनकट्फलैः।सरलागरुबिल्वाम्बुवाजिगंधाग्निवृद्धिभिः॥ विडंगारग्वधश्यामात्रिवृन्मागधिकार्द्धिभिः । पिष्टैस्तैलं पचेत्क्षीरं पञ्चमूलरसान्वितम्॥गुल्मानाहाग्निषंगार्शोग्रहणीमूत्रसंगिनाम्।अन्वासनाविधौयुक्तंशस्यतेऽनिलरोगिणाम्।

अर्थ–तिलतेल ४ सेर, छोटा पंचमूलका काढा १६ सेर, दूध १६ सेर, कल्कके वास्ते वच, पुहरकरमूल, कूट, इलायची, मैनफल,देवदार, सेंधानिमक,कांकोली,क्षीरकांकोली,मुलहटी,मेदा,महामेदा, अमलतास,पाठ,जीवक,जीवंतीशाक,भारंगी,लालचंदन,कायफल,सरलकाष्ठ,अगर, वेलगिरी नेत्रवाला, असगंध, चीता, वृद्धि, वायविडंग, कीरवारेकीगिरी, सारिवा-निसोथ, पीपर, वृद्धि यह सब औषध १ सेर ले । जल १६ सेर, तेलकी विधिसे सिद्धकरे,यह तैल गोला,अफरा,मंदाग्नि, बवासीर,संग्रहणी,मूत्ररोग और वातरोग इन समस्त रोगोंमें अनुवासन प्रयोगमें देवे ॥

चित्रकादितैलम्।

चित्रकादिविषापाठा दन्तीबिल्ववचामिषैः।सरलांशुमती राष्णा नीलिनीचतुरंगुलैः ॥ चव्याजमोदकांकोलीमेदा

युग्मसुरद्रुमैः। जीवकर्षभवर्षाभूबस्तगंधशताह्वयैः॥ रेन्व श्वगंधामंजिष्ठा शटीपुष्करतस्करैः । सक्षीरं विपचेत्तैलं मारुताभयनाशनम् ॥ गृध्रसीखंजकुब्जाढ्यमूत्रोदावर्त्तरोगिणाम्।शस्यतेऽल्पबलाग्नीनां बस्तावाशुनियोजितम् ॥

अर्थ-तिलतेल ४ सेर,दूध १६ सेर, कल्कके वास्ते चीतेकी छाल,अतीस, पाठा, दंती, वेलगिरी, वच, सौंफ, निसोत, सालपर्णी, रास्ना,नीली,अमलतास, चव्य, अजवायन, कांकोली, मेदा, महामेदा, देवदारु, जीवक, ऋषभक, सांठी, अजमोद, सौंफ, रेणुक, असगंध, मजीठ, कचूर, पुहकरमूल, चौरकाचरी, यहसब १ सेर ले ।जल १६ सेर, तेलपाककी विधिसे बनावे।यह गृध्रसी,खंजता,कुबडापना,मूत्राधिक्य और उदावर्त्तरोग,बलहीन तथा मंदाग्नि इत्यादि रोगमें इस तैलका अनुवासन कर्म उत्तमहै।

भूतिकादितैलम् ।

भूतिकैरंडवर्षाभूरास्नावृषकरोहिषैः । दशमूलसहाभांर्गीषड्ग्रंथामरदारुभिः ॥ बलानागबलामूर्वा वाजिगंधामृताह्वयैः । सहाचरवरीविश्वा काकनासाविदारिभिः । यवमाषातसीकोल कुलत्थैःक्वथितैःशृतम् । जीवनीयप्रतीवापं तैलं क्षीरं चतुर्गुणम् ॥जंघोरुत्रिकपार्श्वांशबाहुमन्याशिरःस्थिताम्॥हन्याद्वातविकारांस्तु बस्तियोगैर्निषेवितम्॥

अर्थ-तिलतैल ४ सेर क्वाथके वास्ते अजवायन, अंडकी जड, सांठ, रास्ना, अडूसा, रोहिषतृण, दशमूल, मुद्गपर्णी, भारंगी, वच, देवदारु, खरैंटी, गंगेरन, मूर्वा, असगंध, गिलोय, पियावांसा, सतावर, सोंठ, काकडोडी, विदारीकंद, जों, उडद, अलसी,बेर, कुलथी ये सब२॥सेर ले जल ६४ सेर लेके काढाकरे, जब १६ सेर रहे तब उतारके छानलेय फिर जीवनीय गणका कल्क, दूध१६सेर सबको एकत्र कर तैलकी विधिसे सिद्धकरे।इस तेलको अनुवासन द्वारा प्रयोग करेतो जंघा, ऊरू, त्रिक, पसवाडे,कंधे,भुजा,मन्यानाडी और मस्तकगत वातरोग यह नष्ट होवे ॥

जीवन्त्यादितैलम् ।

जीवन्त्यातिबलामेदाकांकोलीद्वयजीरकैः । ऋषभातिविषाकृष्णाकाकनासावचामरैः ॥ रास्नामदनयष्ट्याह्वसरलाभीरुचन्दनैः । स्वयंगुप्ताशठीशृंगीकलशीसारिवाह्वयैः॥पिष्टैस्तैलघृतं पक्वं क्षीरेणाष्टगुणेनतु । तच्चानुवासने देयं शुक्राग्निबलवर्द्धनम्॥बृंहणंवातपित्तघ्नं गुल्मानाहहरं परम् । नस्ये पाने च संयुक्तंमूर्द्धजत्रुगदापहम् ॥

अर्थ–तिलतेल ४ सेर । घृत १ सेर । जीवंती,अतिबला,मेदा,महामेदा, कांकोली, क्षीरकांकोली,जीवक, ऋषभक,अतीस, पीपल, काकडोडी,वच, देवदारु, रास्ना,मैनफल, मुलहटी, सरल, सतावर,रक्तचंदन, कौंछके बीज, कचूर,काकडासिंगी, पिठवन, सारिवा ये सब औषधी १ सेरले । दूध ४० सेर लेके विधिपूर्वक तैल सिद्धकरे । इसका अनुवासन करनेसे शुक्र, अग्नि और बलकी वृद्धिकरे, देहको पुष्टकरे, वायु और पित्तकी शांति, एवं गोला और अफरा रोगको नष्टकरे । नस्य तथा पानमें इसका व्यवहार करेतो उर्ध्वजत्रुगत रोगोंका नाशकरे । इसे जीवंत्यादि तैल कहते हैं ॥

मधुकादितैलम् ।

मधुकोशीरकाश्मर्यकटुकोत्पलचंदनैः । श्यामापद्मकजीमूतशक्राह्वातिविषांबुभिः ॥ तैलपादं पचेत्सर्पिःपयसाष्टगुणेन च । न्यग्रोधादिगणक्वाथयुक्तं बस्तिषु योजितम् ॥ दाहासृग्दरवीसर्पवातशोणितविद्रधीन् । पित्तरक्तज्वराद्यांश्च हन्यात्पित्तकृतान् गदान् ॥

अर्थ–तिलतैल ४ सेर । घृत १ सेर । न्यग्रोधादिगणकी क्वाथ २० सेर । दूध ४० सेर । कल्कके वास्ते मुलहटी, खस, कंभारी, कुटकी, कमलगट्टा, रक्तचंदन, अनंतमूल, पद्माख, नागरमोथा, इन्द्रजो, नेत्रवाला, अतीस ये सब १ सेरलेवे । सबको तैलकी विधिसे औटायके तेल सिद्ध करलेवे, उसका अनुवासन करनेसे दाह, प्रदर, विसर्प, वातरक्त, विद्रधि तथा पित्तकृत अनेक प्रकारके रोग दूरकरे ॥

मृणालादितैलम् ।

मृणालोत्पलशालूकसारिवाद्वयकेशरैः । चंदनद्वयभूनिंब पद्मबीजकसेरुकैः ॥पटोलकटुकारक्ताग़ुंद्रापर्पटवासकैः । पिष्टैस्तैलमिदं पक्कं तृणमूलरसेन च ॥ क्षीरद्विगुणसंयुक्तं बस्तिकर्मणि योजितम् । नस्येऽभ्यंजनपाने वा हन्यात्पित्तगदान् बहून् ॥

अर्थ–तिलतेल ४ सेर,तृणपंचमूलका काढा १६ सेर,दूध ८सेर । कल्कके वास्ते कमल, नीलकमल, नीलकमलकी जड़, सारिवा, अनंतमूल,केशर, रक्तचंदन, सपेदचंदन, चिरायता, कमलगट्टा, कसेरू, पटोलपत्र, कुटकी, मजीठ, भद्रमोथा, पित्तपापडा, अडूसा ये सब १ सेरले । सबका यथाविधि तैल सिद्धकरे । इस तेलकी नस्य मालिस पीना और बस्ति क्रियामें प्रयोग करनेसे अनेक प्रकारके पित्तरोगोंको निवारण करे ॥

त्रिफलाद्यंतैलम् ।

त्रिफलातिविषामूर्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः । निंबारग्वधषड्ग्रंथासप्तपर्णनिशाद्वयैः ॥ गुडूचीन्द्रसुराकृष्णा कुष्टसर्षपनागरैः । तैलमेभिःसमैःपक्कं सुरसादिरसाप्लुतम् ॥ पानाभ्यंजनगंडूषनस्यबस्तिषु योजितम् । स्थूलतालस्यकंड्वादीञ्जयेत्कफकृतान् गदान् ॥

अर्थ–तिलतेल ४ सेर। सुरसादिगणका स्वरस १६ सेर । कल्कके लिये त्रिफला, अतीस, मूर्वा, निसोथ, चीतेकी छाल, अडूसा, नीमकी छाल, अमलतासके पत्ते, वच, सतोनाकी छाल, हलदी, दारुहलदी, गिलोय, सह्मालु, पीपल, कूट, सरसों और सोंठ, सब १ सेरलेवे । तेलसिद्धकरे इसतेलके पीनेसे मालिससे कुरला, नस्य और बस्तीकर्म करनेसे स्थूलता, आलस्य और खुजलीआदि कफके विविधविकार दूरहों । यह त्रिफलादि तेलहै ।

पाठाद्यंतैलम् ।

पाठाजमोदाशार्ङ्गष्टा पिप्पलीद्वयनागरैः । सरलागरुकालीयभार्गीचव्यामरद्रुमैः ॥ मरिचैलाभयाकटीशटीग्रंथिककट्फलैः । तैलमेरंडतैलंवा पक्कमेभिःसमायुतम् ॥

वल्लीकंटकमूलाभ्यांक्काथेन द्विगुणेन च । हन्यादन्वासनैर्दत्तं सर्वान् कफकृतान् गदान् ॥

अर्थ—तिलतेल अथवा अंडीका तेल ४ सेर, वल्लीपंचमूलका काढा ८ सेर, कंटक पंचमूलका काढा ८ सेर, कल्ककेवास्ते पाढ, अजमोद, महाकरंज, पीपल, गजपीपल, सोंठ, सरल, अगर, कालीयकाष्ठ, भारंगी, चव्य, देवदारु, कालीमिरच, इलायची, हरड, कुटकी, कचूर, पीपरामूल और कायफल सब १ सेरलेवे । इनसे तेलको विधिपूर्वक सिद्धकरे इसका अनुवासन कफकृत समस्त रोगोंको निवारणकरे । इसे पाठादि तैल कहतेहैं ॥

विडंगाद्यंतैलम् ।

विडंगोदीच्यसिंधूत्थशटीपुष्करचित्रकैः । कट्फलातिविषाभांर्गी वचाकुष्टसुराह्वयैः ॥ मेदोमदनयष्ट्याह्वश्यामानिचुलनागरैः । शताह्वानीलिनीराष्णा कदलीवृषरेणुभिः ॥ बिल्वाजमोदकृष्णाह्वादंतीचव्यनराधिपैः। तैलमेरंडतैलं वा मुष्ककादिरसाप्लुतम् ॥ प्लीहोदावर्त्तवातासृग्गुल्मानाहकफापयान् । प्रमेहशर्करार्शांसि हन्यादाश्वनुवासनात् ॥

अर्थ—तिलतेल अथवा अंडीकातिल ४ सेर, मुष्ककादिगणका रस १६ सेर, कल्कके वास्ते वायविडग, नेत्रवाला, सैंधानिमक, कचूर, पुहकरमूल, चीतेकी छाल, कायफर, अतीस, भारंगी, वच, कूट, देवदारु, मेदा, मैनफल, मुलहटी, अनंतमूल, हिज्जलके बीज, सोंठ, सौंफ, नीलकी जड, रास्ना, केलाकी जड, अडूसा, रेणुक, बेलगिरी, अजमोद, पीपल, दंती, चव्य और अमलतासके पत्ते सब १ सेरलेवे । विधिपूर्वक तैलसिद्धकरे इसतेलके अनुवासनबस्ती करनेसे प्लीह, उदावर्त्त, वातरक्त, गोला, अफरा, कफकी अनेक व्याधि, प्रमेह, शर्करा और बवासीर, रोगको दूरकरे। यह विडंगादितैलहै ये पूर्वोक्त संपूर्णतेल सुश्रुतके बस्तीअधिकारमें लिखेहैं ॥

अनुवासनबस्तिमें विपरीत होनेसे रोगहोतेहैं उनको कहतेहैं ।

षट्सप्ततिव्यापदस्तु जायंते बस्तिकर्मणः ।

---

१ संपूर्ण औषधोंके गण (जैसे मुष्ककादिगण–सुरणादिगण) ये आगे कहेंगे ।

दूषितात्समुपायेन ताश्चिकित्स्यास्तु सुश्रुतात् ॥

अर्थ–बस्तीकर्ममें दोषरूप कुछभी विपरीतता होनेसे ७६प्रकारकी व्यापत्ती (रोग) उत्पन्न होतेहैं। उसकी चिकित्सा सुश्रुतग्रंथमें लिखी है वो करनी चाहिये ॥

बस्तिकर्ममेंपथ्य।

पानाहारविहाराश्च परिहारश्च कृत्स्नशः।
स्नेहंपानसमाः कार्या नात्र कार्या विचारणा ॥

अर्थ–अन्न, पान और विहार आहारादिक इनके आचरण जैसा स्नेह पानमें कहाहै उसीप्रकार इसजगे बस्तीकर्ममें करे इस विषयमें विचार नकरे

निरूहबस्तीकीविधि।

निरूहबस्तिर्बहुधा भिद्यते कारणांतरैः।
तैरेव तस्य नामानि कृतानि मुनिपुंगवैः ॥

अर्थ–निरूहबस्ती कारणभेदकरके अनेकप्रकारकी होतीहै और जैसे २ कारण होतेहैं उसी २ प्रकारका उसका नाम होताहै। उदाहरण उत्क्लेशन बस्ति, दोषहरबस्ति, दोषशमनबस्ति इत्यादिक नाम जानने ॥

निरूहबस्तीकेदूसरेनाम।

निरूहस्यापरं नाम प्रोक्तमास्थापनं बुधैः।
स्वस्थानस्थापनाद्दोषधातूनां स्थापनं मतम् ॥

अर्थ–निरूहबस्तीका दूसरा नाम आस्थापनहै उसकी व्युत्पत्ती, दोष और रसादिक धातु इनको अपने २ स्थानपर बैठालेहै, इसीसे इसको आस्थापन बस्ति कहतेहैं। तथा वातादिक दोष अथवा रोग इनको दूर करेहै इसीसे उसको निरूह ऐसा कहतेहैं ॥

निरूहबस्तीमें काढेआदिका प्रमाण।

निरूहस्य प्रमाणं तु प्रस्थपादोत्तरंमतम्।
मध्यमं प्रस्थमुद्दिष्टं हीनस्य कुडवास्त्रयः ॥

अर्थ--निरूहबस्ती देनेमें काढे आदिका प्रमाण सवा प्रस्थ उत्तम है और एक प्रस्थ मध्यम तथा तीनकुडव कनिष्ठ जानना ॥

निरुहबस्तीअयोग्य ।

अतिस्निग्धो क्लिष्टदोषो क्षतोरस्कः कृशस्तथा । आध्मानछर्दिहिक्कार्शःकासश्वासप्रपीडितः ॥ गुदशोफातिसारार्त्तो विषूचीकुष्ठसंयुतः । गर्भिणीमधुमेहीच नास्थाप्यश्च जलोदरी ॥

अर्थ–अत्यंतस्निग्ध मनुष्य तथा जिसके ऊर्ध्वगामीदोष हुएहो वो, तथा उरःक्षत करके पीडित, कृश, अफराका रोगवाला, छर्दिरोगी, हिचकी, बवासीर, खांसी, श्वास इन करके पीडित जो मनुष्य होवे वह, गुदामें पीडा, सूजन, अतिसार, विषूचि, कोढ, गर्भवतीस्त्री, मधुमेह-रोगी और जलंधरका रोगवाला इतने रोगी निरूहबस्तीमें अयोग्य अर्थात् इन रोगियोंके निरूहबस्ती न करे ॥

निरूहबस्तीयोग्यमनुष्य।

वातव्याधावुदावर्ते वातासृक्विषमज्वरे । मूर्च्छातृष्णोदरानाह मूत्रकृच्छ्राश्मरीषुच ॥ वृद्धयसृग्दरमंदाग्निप्रमेहेषु निरूहणम् । शूलेऽम्लपित्तेहृद्रोगे योजयेद्विधिवद्बुधः ॥

अर्थ–वातव्याधिरोगी, उदावर्त्त, वातरक्त, विषमज्वर, मूर्च्छा, प्यास, उदर, अफरारोग, मूत्रकृच्छ्र, पथरीरोग, बहुतदिनोंका असृग्दर (प्रदरा) मंदाग्नि, प्रमेह[१], शूलरोग, अम्लपित्त, हृदयरोग,इतने रोगी निरूहबस्तीके विषयमें योग्यहैं अर्थात् इनरोगियोंके निरूहबस्ती करे ॥

निरूहबस्तीदेनेकाप्रकार ।

उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं स्निग्धं स्विन्नमभोजितम् । मध्याह्ने गृहमध्ये च यथायोग्यं निरूहयेत् ॥ स्नेहबस्तिविधानेन बुधः कुर्यान्निरूहणम् । जाते निरूहे च ततो भवेदुत्कटकासनः ॥ तिष्टेन्मुहूर्तमात्रं च निरूहागमनेच्छया । अनायातं मुहूर्तेतु निरूहं शोधनैर्हरेत् ॥

अर्थ–निरूहबस्ती जिसमनुष्यको देनीहोवे वह मलमूत्र त्याग चुकाहो

---

१ मधुमेहके विना और दूसरे प्रमेह बस्ती विषयमें योग्य जानने ।

अर्थात् उसरोगीसे कह देवे कि, जब तक ये बास्तिकर्म होवेगा तबतक तुमको मल मूत्र त्यागना न होगा, यदि भीतरसे अधोवायु निकले तो उसको निकाल कोठा शुद्धकर उसके देहमें स्नेहपदार्थ लगाय, थोड़े देहसे पसीने निकाल उसको भोजन न देकर मध्याह्नके समय घरमें जिस-प्रकार जिसरोगपर बस्तीदेना लिखाहै उसप्रकार स्नेहबस्तीका विधान कर तैलादिककी पिचकारी गुदामें मारनी । और निरूहबस्तीके कर्म, होनेके अनंतर वह निरूह बाहर आनेके वास्ते दो घडी पर्यंत उँकरू बैठा रहे। यदि दोघडीमें निरूहकी औषधी गुदामेंसे न निकले तो उसको शोधन करके बाहर आनेका यत्नकरे सो आगे लिखते हैं ॥

निरूहकोबाहरलानेवालीऔषध ।

निरूहैरेवमतिमान् क्षारमूत्राम्लसैंधवैः ॥

अर्थ—निरूहबस्ती गुदासे बाहर न आनेपर जवाखार और गोमूत्र नींबूका रस अथवा जंभीरीका रस और सेंधानिमक ये चार औषधी एकत्रकर गुदामें फिर निरूहण करे कि, जिस्से पहला दिया हुआ-निरूह बाहर निकले ॥

निरूहबस्ती उत्तम होनेके लक्षण ।

यस्य क्रमेण गच्छन्ति विट्पित्तकफवायवः ।
लाघवं चोपजायेत सुनिरूहं तमादिशेत् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके निरुह बस्ती देनेसे उसके मल तथा पित्त एवं कफ और अधोवायु ये क्रमकरके गुदाके रास्ते बाहर निकलनेपर शरीरमें हलकापना होवे तो निरूहण बस्तीका कर्म उत्तम हुआ ऐसा जानना॥

जिसकोउत्तमनहुईहोउसकेलक्षण ।

यस्य स्याद्बस्तिरल्पाल्पवेगोहीनमलानिलः ।
मूत्रार्त्तिजाड्यारुचिमान्दुर्निरूहं तमादिशेत् ॥

अर्थ—जिसको निरूहबस्ती देनेसे उसका बाहर आनेका वेग अल्प आनेपर मल और अधोवायु ये जितने बाहर आने चाहिये इतने न आवे, अर्थात् थोडे आवे और मूत्र करनेमें पीडा तथा शरीरमें जडपना, अरुचि ये सब लक्षण करके युक्त मनुष्यको निरूहबस्ती उत्तम नहीं हुई, ऐसा वैद्यको जानना चाहिये ॥

निरूहबास्ति और स्नेहबस्ति उत्तमदेनेकाफल ।

विविक्तता मनस्तुष्टिः स्निग्धता व्याधिनिग्रहः ।
आस्थापनस्नेहबस्त्योः सम्यक्दाने तु लक्षणम् ॥

अनेन विधिना युंज्यान्निरूहं बस्तिदानवित् ॥

अर्थ–रोगीके अंगमें हलकापना, मनका संतोष, अंगमें पसीने आना, तथा रोगोंका नाश ये आस्थापन (निरूहबस्ति) तथा स्नेहबस्ती इनके उत्तम देनेके लक्षण जानने। और पूर्वोक्त (जो बस्तीदेनेका कर्म कहाहै) उस कर्मके जानने वाले वैद्यको निरूहबस्ती देनी चाहिये [और जो बस्तिकर्म न जानताहो उस वैद्यसे कदाचित् बस्तीकर्म न करावे] ॥

निरूहबस्तिदेनेमेंसमयकाप्रमाण ।

द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथोचितम् । सस्नेहएकःपवने पित्ते द्वौ पयसासह ॥ कषायकटुरूक्षाद्याःकफे कोष्णास्त्रयोमताः । पित्तश्लेष्मानिलाविष्टं क्षीरयूषरसैः क्रमात् ॥ निरूहं योजयित्वा च ततस्तदनुवासयेत् ॥

अर्थ–निरूहबस्ती दोवार अथवा तीनवार अथवा चारवार जैसा दोष होवे उसीके अनुसार देनी तथा वातरोग होनेसे स्नेहयुक्त निरूह बस्ती एकवार देवे तथा पित्तरोग होनेसे दूधके साथ दोवार देवे, एवं कफरोग होनेसे कषाय और कटु तथा रूक्ष इत्यादि पदार्थ एकत्रकर तथा कुछ गरम करके तीनवार निरूहबस्ती देवे,अर्थात् इस औषधकी तीनवार पिचकारी मारनी चाहिये।अथवा कफ और पित्तवायु इन करके मनुष्य पीडितहोनेसे दूध और यूष तथा रस (मांसरस) इनके क्रमकरके गुदादिकमें बस्तीदेवे फिर अनुवासनबस्ती देय अर्थात् स्नेहको पिचकारी मारे ॥

सुकुमारादि मनुष्योंके निरूहबस्तिकी योजना ।

सुकुमारस्य वृद्धस्य बालस्य च मृदुर्हितः ।
बस्तिस्तीक्ष्णः प्रयुक्तस्तु तेषां हन्याद्बलायुषी ॥

अर्थ–सुकुमार (नाजुक) और वृद्ध तथा बालक इनके हलकी पिचकारी मारनी क्योंकि, सुकुमारादिकोंके दारुण बस्ती देनेसे इनके बल और आयुका नाश होताहै ॥

आदि, मध्य और अंत्य इनमें बस्तीकी योजना ।

दद्यादुत्क्लेशनं पूर्वं मध्ये दोषहरं ततः ।
पश्चात्संशमनीयं च दद्याद्बस्तिं विचक्षणः ॥

अर्थ-प्रथम दोषोंके उत्क्लेद (उखाडने) को उत्क्लेदकारी औषधोंकी बस्ती देवे। तथा बीचमें दोषनाशक औषधोंकी बस्ती देवे तथा अंतमें अपने २ स्थानपर दोष बैठजावे ऐसी औषधोंकी पिचकारी मारनी चाहिये ॥

उत्क्लेशनबस्ती ।

एरंडबीजं मधुकं पिप्पली सैंधवं वचा ।
हवुषाफलवल्कश्च बस्तिरुत्क्लेशनः स्मृतः॥

अर्थ-अंडीके बीज, महुआकी छाल, पीपल, सेंधानिमक, वच, हौउबेर ये छः औषध समान भाग लेकर पीसके कल्ककरे, इसको दोषोंके उखाडनेके वास्ते देवे इसे उत्क्लेशन बस्ती कहते हैं ॥

दोषहरबस्ती ।

शताह्वा मधुकं बिल्वं कौटजं फलमेव च ।
सकांजिकः सगोमूत्रो बस्तिर्दोषहरः स्मृतः॥

अर्थ-शतावर, मुलहटी, वेलगीरी, इन्द्रजों ये चार औषध समान भाग ले कांजीमें बारीक पीस तथा इसमें गोमूत्र मिलाय गुदामें पिचकारी मारे कि, जिस्से वातादिक दोषोंका शमनहो इसको दोषहर बस्ती कहतेहैं॥

शोधनबस्ती ।

शोधनद्रव्यनिक्वाथस्तत्कल्कैः स्नेहसैंधवैः ।
युक्त्या खजेन मथिता बस्तयः शोधनाः स्मृताः ॥

अर्थ-निशोथ आदि जो शोधनद्रव्यहैं उनका काढाकर उसमें इन्हीं औषधों का कल्क और सेंधानिमक मिलाय कलछीसे मथनकर दोषोंके शोधन विषयमें पिचकारी मारे, इसको शोधन बस्ती कहतेहैं ॥

दोषशमनबस्ती ।

प्रियंगुर्मधुकोमुस्ता तथैव च रसांजनम् ।
सक्षीरः शस्यते बस्तिर्दोषाणांशमने स्मृतः॥

अर्थ-फूलप्रियंगु अथवा राल,महुआकी छाल, नागरमोथा, रसोत ये चार औषध समान भाग लेकर दूधमें बारीक पीस दोषशमन होनेसे इसकी पिचकारी मारे, इसे दोषशमन बस्ती कहते हैं ॥

लेखनबस्ति ।

त्रिफलाक्काथगोमूत्रक्षौद्रक्षारसमायुताः ।
ऊषकादिप्रतीवापैर्बस्तयो लेखनाःस्मृताः ॥

अर्थ--त्रिफलेका काढा करके उसमें गोमूत्र, सहत, जवाखार डालके तथा ऊषकादिगणकी औषधीका चूर्ण उसमें मिलायके मेदरोगादिकमें कृश करनेको बस्ती देवे, इसे लेखन बस्ती कहते हैं ॥

बृंहणबस्ति ।

बृंहणद्रव्यनिक्काथःकल्कैर्मधुरकैर्युतः ।
सर्पिर्मांसरसोपेतबस्तयो बृंहणा मताः ॥

अर्थ-मूसली, गोखरू, कौंचके बीज इत्यादिक जो धातुवर्द्धक द्रव्य उनका काढा कर उसमें महुआकी छाल और दाख तथा अनार इत्यादिक मधुरद्रव्य और कल्क तथा घी और मांसरस ये सब औषध डालके पुष्टहोनेके अर्थ बस्ती देवे, इसको बृंहणबस्ति कहते हैं ॥

पिच्छलबास्ति ।

बदर्यैरावतीसेलुशाल्मलीधन्वनागराः । क्षीरसिद्धाःक्षौद्रयुक्ता नाम्ना पिच्छलसंज्ञिताः॥अजोरणैणरुधिरैर्युक्तादेया विचक्षणैः। मात्रापिच्छलबस्तीनांपलैर्द्वादशभिर्मताः॥

अर्थ-बेरकी छाल,नारंगी, बहुआरकी छाल, सेमरकी छाल,धमासो, सोंठ ये छः औषध समान भाग लेकर दूधमें पीस सहत मिलाय उसमें बकरा और मेंढा तथा हरिण इनका रुधिर मिलायके कुशल वैद्य दोषोंके पतले करनेको बस्तीदेवे इसको पिच्छल बस्ती कहते हैं। इस बस्तीकी मात्राका प्रमाण बारह पल जानना ॥

निरूहणमात्राकीविधि ।

दत्वादौ सैंधवस्याक्षं मधुनःप्रसृतिद्वयम्।विनिर्मथ्यततो दद्यात्स्नेहस्य प्रसृतित्रयम्॥ एकीभूते ततःस्नेहे कल्कस्य प्रसृतिं क्षिपेत्।संमूर्छितकषाये तु चतुःप्रसृतिसंमितम्॥ क्षिप्त्वा विमथ्य दद्याच्च निरूहं कुशलो भिषक्।वाते चतुः

पलं क्षौद्रं दद्यात्स्नेहस्यषट्पलम्॥पित्ते चतुःपलं क्षौद्रं स्नेहस्यच पलत्रयम्।कफे षट्पलकंक्षौद्रं स्नेहस्यैवचतुःपलम्॥

अर्थ–प्रथम सैंधानिमक १ कर्ष, तथा सहत ४ पल इन दोनोंको एकत्र मर्दनकर फिर उसमें घी अथवा तेल छःपल डालके एक जगे मिलाय उसमें कल्ककी जो औषध कही है उनका कल्ककरके उसमें स्नेहमिलायदे अथवा उस कल्कका काढा करके उस स्नेहमें मिलावे। फिर कुशलवैद्य गुदामें पिचकारी मारे, यह निरूहबस्तीकी साधारण विधि जाननी। विशेषाविधि वातरोगमें सहत चारपल और स्नेह तीनपल दोनोंको एकत्रकर बस्तीदेवे तथा पित्तके रोगमें सहत ४ पल और स्नेह ३ पल मिलाय बस्तीदे । एवं कफरोग होयतो सहत छःपल और स्नेह चारपल लेवे दोनोंको एकत्रकर बस्ती देनी चाहिये ॥

मधुतैलबस्ति ।

एरंडक्काथतुल्यांशं मधुतैलं पलाष्टकम् । शतपुष्पापलार्द्धेन सैंधवार्धेन संयुतम्॥मधुतैलकसंज्ञोयं बस्तिःखजविलोडितः । मेदो गुल्मकृमिप्लीहमलोदावर्त्तनाशनः॥ बलवर्णकरश्चैव वृष्यो बृंहणदीपनः ॥

अर्थ–अंडकी जडका काढा ८ पल, सहत और तेल ये चार २ पल, सौंफ और सैंधानिमक आधे२पल लेके सबको एकजगे एकत्रकर गडमड कर लेवे, इसको मधुतैलक बस्ती कहतेहैं, यह गुदामें देनेसे मेदोरोगको, गलेके रोगको, कृमिरोगको, प्लीह और उदावर्त्त इनको नाशकरे । और यह बस्ती बल तथा कांति और स्त्रीसंगमें प्रीति, धातुकी वृद्धि देय है और अग्निको प्रदीप्तकरे हैं ॥

दीपनबस्ति ।

क्षौद्राज्यक्षीरतैलानां प्रसृतिं प्रसृतिं भवेत् ।
हपुषा सैंधवाक्षांशौ बस्तिःस्याद्दीपनःपरः ॥

अर्थ–सहत, घी, दूध, प्रत्येक दो दो पल तथा हाउवेर और सेंधा निमक दोनों कर्षभरलेय, बारीक पीस उस सहत, घी और दूधमें मिलायके जठराग्नि प्रदीप्त होनेके वास्ते बस्ती देवे । इसे दीपनबस्ती कहते हैं॥

युक्तरथबस्ति ।

एरंडमूलनिःक्वाथो मधुतैलं ससैंधवम् ।
एष युक्तरथो बस्तिःसवचापिप्पलीफलः ॥

अर्थ–अंडकीजडका काढा करके उसमें सहत और तेल डालके सैंधानिमक वच, पीपल और मैंनफल ये चार औषध समान भागले चूर्णकर उस काढेमें मिलायके गुदामें बस्ती (पिचकारी) मारे इसको युक्तरथबस्ती कहते हैं यह बस्ती सर्व रोगोंपर है ॥

सिद्धबस्ति ।

पंचमूलस्यनिःक्वाथस्तैलंमागाधिकामधु ।
ससैंधवःसमधुकःसिद्धबस्तिरितिस्मृतः ॥

अर्थ–पंचमूलका काढा करके तेल, पीपलकाचूर्ण, सैंधानिमक और महुआकीछाल अथवा मुलहटी ये सब उस काढेमें डालके बस्ती देनी चाहिये । इसको सिद्धबस्ती कहते हैं । यह बस्ती सर्व रोगोंपर है ॥

बस्तीमें सेव्य पदार्थ और निषिद्ध पदार्थ ।

स्नानमुष्णोदकैःकुर्याद्दिवास्वप्नमजीर्णताम् ।
वर्जयेदपरं सर्वमाचरेत्स्नेहबस्तिवित् ॥

अर्थ–पिचकारी लगनेवाला मनुष्य गरम पानीसे स्नानकरे । दिनमें सोवे नहीं तथा अजीर्ण होने दे नहीं तथा दूसरे सब आचरण स्नेहबस्तीके समान करने चाहिये ॥

उत्तरबस्तिकीविधि ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि बस्तिमुत्तरसंज्ञितम् । निरूहादुत्तरो यस्मात्तस्मादुत्तरसंज्ञितः ॥ द्वादशांगुलकं नेत्रंमध्ये च कृतकर्णिकम् । मालतीपुष्पवृन्ताभं छिद्रं सर्षपनिर्गमम् ॥

अर्थ–अब इसके उपरांत में उत्तर बस्तीका प्रमाण कहताहूं । निरूहबस्तीके उत्तर होनेसे इसको उत्तरबस्ती कहतेहैं।इसकी बारह अंगुलकी लंबी नली होकर उस नलीका मध्यभाग कमलपत्तेके कर्णिकाके समान

करे । और वो नली मालतीफूलके बराबर मोटी होकर उसमें सरसों चली जाय इतना बडा छिद्र करना चाहिये ॥

वयोनुमानकरके मात्राका प्रमाण ।

पंचविंशतिवर्षाणामधोमात्राद्विकार्षिकी ।
तदूर्ध्वं पलमानंच स्नेहस्योक्ता विचक्षणैः ॥

अर्थ–मनुष्यकी पचीस वर्षकी अवस्था होने पर्यंत बस्ती विषयमें स्नेहकी मात्रा दोकर्ष प्रमाण विचक्षण वैद्य देवे । तथा पचीसवर्षके उपरांत १ पलकी मात्रा देनी चाहिये ॥

उत्तरबस्तीकी योजना कैसे करावे उसे कहते हैं ।

अथास्थापनशुद्धस्य तृप्तस्य स्नानभोजनैः । स्थितस्य जानुमात्रेण पीठे त्विष्टशलाकया ॥ स्निग्धया मेढ्रमार्गे च ततो नेत्रं नियोजयेत् । शनैःशनैर्घृताभ्यक्तं मेढ्ररंध्रेऽङ्गुलानि षट् ॥ ततोवपीडयेद्बस्तिं शनैर्नेत्रं च निर्हरेत्। ततःप्रत्यागते स्नेहेस्नेहबस्तिक्रमोहितः ॥

अर्थ–निरूहबस्ती करके शुद्धहुए तथा स्नान और भोजन इन करके तृप्त हुए ऐसे मनुष्यको आसनपर घोटू टेकके बैठावे फिर यथायोग्य सलाई सचिक्कणहो उस सलाईकी नलीमें घी लगायके शिस्नमार्ग (लिंगके छिद्र) में प्रवेश करे, तथा उस नलीको लिंगके भीतर धीरे २ छः अंगुल प्रवेश कर पिचकारीमारे फिर उस नलीको धीरे २ बाहर निकाल लेवे, जब भीतरका स्नेह बाहर आय जाय तो उत्तम बस्तीकर्म होताहै । इसी प्रकार स्नेहबस्ती क्रम जानना ॥

स्त्रियोंके बस्तिदेनेका प्रमाण ।

स्त्रीणांकनिष्ठिकास्थूलं नेत्रं कुर्याद्दशांगुलम् । मुद्गप्रवेशं योज्यं च योन्यंतश्चतुरंगुलम्॥द्व्यंगुलं मूत्रमार्गेच सूक्ष्मं नेत्रं नियोजयेत् ॥

अर्थ–स्त्रियोंके बस्ती देनेमें उस बस्तीकी नली छोटी उंगलीके समान मोटी और दस अंगुल लंबीहो, तथा उसका छिद्र इतना बडा होवे कि,

जिस में मूंग चली जाय । तथा उस नलीके योनिके भीतर चार अंगुल प्रवेश करके फिर पिचकारी मारे । परंतु स्त्रियोंके मूत्रमार्गमें बारीक नली प्रवेशकरे तो उस नली का दो अंगुल प्रवेश होनेपर पिचकारी मारनी चाहिये

बालकोंके बस्तिदेनेके विषयमें प्रमाण ।

मूत्रकृच्छ्रविकारेषु बालानां त्वेकमंगुलम् ।
शनैर्निकंपमाधेयं सूक्ष्मनेत्रविचक्षणैः ॥

अर्थ—बालकोंके मूत्रकृच्छ्र विकारमें वैद्य जैसे हाथ नहिले ऐसे धीरे २ बारीक नलीको उसकी इंद्रीमें १ अंगुल प्रवेश करके पिचकारी मारे ॥

स्त्री और बालकोंके बस्तिदेनेमें स्नेहकी मात्रा ।

योनिमार्गेषु नारीणां स्नेहमात्रा द्विपालकी । मूत्रमार्गे पलोन्माना बालानां च द्विकार्षिकी ॥ उत्तानायै स्त्रियै दद्यादूर्ध्वजान्वै विचक्षणः । अप्रत्यागच्छति भिषक् बस्तावुत्तरसंज्ञिके ॥

अर्थ—स्त्रियोंके योनिमें बस्तीकर्म करनेमें स्नेहकी मात्रा दोपल जाननी तथा स्त्रियोंके मूत्रमार्गमें बस्ती देनी होय तो स्नेहकी मात्रा१पलकी जाननी तथा बालकोंके दो कर्षकी मात्रा जाननी । और उत्तर संज्ञक बस्तीमें कुशलवैद्य उस स्त्रीको सीधी चित्त लिटाय कर उसके घोटू ऊपरको धर फिर वो स्नेह ऐसे बाहर न आवे ऐसी पिचकारी मारे ॥

शोधनद्रव्यकरके बस्तीका विधान ।

भूयोबस्ति निदध्याच्च संयुक्तैः शोधनैर्गणैः । फलवर्तिनि दध्याद्वा योनिमार्गे दृढं भिषक्॥सूत्रैर्विनिर्मितां स्निग्धां शोधनद्रव्यसंयुताम्।दह्यमाने तथा बस्तौ दद्याद्बस्ति विचक्षणः ॥ क्षीरवृक्षकषायेण पयसाशीतलेन च ॥ बस्ति शुक्ररुजः पुंसां स्त्रीणामार्तवजा रुजः ॥ हन्यादुत्तरबस्तिस्तु नोचिता मोहिनां क्वचित् ॥

अर्थ—मूत्रकृच्छ्रादि रोगोंमें शोधनद्रव्य (अंडीका तेल आदि) जो औषधी उनके समुदायोंकरके योनिके मार्गमें पिचकारी मारे अथवा अंडीके बीज आदि औषधोंकी दृढ बत्ती बनाय अथवा सूतकीबत्ती बनाय

उसबत्तीमें एरंड बीजादिक औषधी चुपडके उसको योनिमें प्रवेश करनी चाहिये। यदि उसबत्तीके अधोभागमें बस्तिस्थानहै वो बिगडजावे अर्थात् उसमें दाहादिक होवेतो गूलर, वड इत्यादि क्षीरवृक्षहैं उनका काढा करके बस्ती देवे। अथवा शीतल दूधकी बस्तिदेवे तो बस्तिस्थान शुद्धहो। और यह बस्ती शुक्रधातु संबंधी जिस पुरुषके पीडाहोती हो उसके तथा स्त्रियोंके आर्त्तव संबंधी पीडा होतीहोवे उनको दूर करती है। तथा जिस मनुष्यके प्रमेहहै उसके उत्तरबस्ती कभी उपयोगी नहीं होवे ऐसा जानना॥

उत्तमउत्तरबास्तिहोनेके लक्षण।

सम्यक्दत्तस्य लिंगानि व्यापदः क्रमएव च।
बस्तेरुत्तरसंज्ञस्य शमनं स्नेहबस्तिना॥

अर्थ–उत्तरबस्ती स्नेहबस्ती करके उत्तम प्रकार योजना करीहुई उसके लक्षण क्रमकरके येहैं शुक्रधातु संबंधी जो प्रमेहादिक पीडा वह दूर होती है

गुदामें फलवर्तीकी योजना।

घृताभ्यक्ते गुदे क्षेप्या श्लक्ष्णस्वांगुष्ठसंनिभा।
मलप्रवर्त्तिनीवर्त्तिःफलवर्त्तिश्चसास्मृता॥

अर्थ–गुदामें घी लगायके रोगीके अँगूठेके प्रमाण उत्तम दृढबत्ती बनाय मलहोनेके वास्ते अंडीके बीज आदि जो रेचक औषध उनका उस बत्तीमें लेप कर उसको गुदामें धरे तो मल निकले, इस बत्तीको फलवर्त्ती कहते हैं॥

नस्यविधिः।

नस्यं तत्कथ्यते धीरैर्नासा ग्राह्यं यदौषधम्।
नावनं नस्यकर्मेति तस्य नामद्वयं मतम्॥

अर्थ जो औषध नाकमें डाली जावे उसको नस्य कहते हैं उस नस्यके नाम नावन और नस्यकर्म ऐसे दोजानने॥

नस्यकेभेद।

नस्यभेदो द्विधाप्रोक्तो रेचनं स्नेहनं तथा।
रेचनं कर्षणं प्रोक्तं स्नेहनं बृंहणं मतम्॥

अर्थ-इस नस्यके दो भेदहैं-एक रेचन और एक स्नेहन, इनमें जो नस्य रेचन है उसको कर्षणसंज्ञक जाननी अर्थात् वातादि दोषोंको उच्छेद करताहै एवं जो स्नेहन नस्यहै उसको बृंहण जाननी ये धातुवृद्धिकरनेवालीहै.

नस्यकाकाल।

कफपित्तानिलध्वंसे पूर्वमध्यापराह्णके।
दिनस्य गृह्यते नित्यं रात्रौ वाप्युत्कटे गदे॥

अर्थ-कफके नाशकरनेको नस्य प्रातःकालमें ले, पित्तके नाशको दोप्रहरमें ले, वादीके नाशकरने को औषधी नासिकामें सायंकालमें डालनी, यदि रोगका अत्यंत बल होयतो रात्रिमेंभी डालना कहा है॥

नस्यकानिषेध।

नस्यं त्यजेद्भोजनान्ते दुर्दिने चापतर्पणे॥ तथा नवप्रतिश्यायी गर्भिणी गरदूषितः॥ अजीर्णी दत्तबस्तिश्च पीतस्नेहोदकासवः। क्रुद्धःशोकाभिभूतश्च तृषार्तो वृद्धबालकौ॥वेगावरोधी स्नातश्च स्नातुकामश्च वर्जयेत्॥

अर्थ-नाकमें नस्य डालना होय तो भोजनके अंतमें जिसदिन, बद्दल होय उसदिन और अपतर्पण तथा लंघनकराहो इनमें नस्य न देवे। जिसके नवीन पीनसरोग हुआहो, गर्भिणीस्त्री तथा विषदोषकरके तथा अजीर्णकरके पीडित मनुष्य तथा जिसके बस्तिप्रयोग कराहै तथा घृत, तेल इत्यादिक स्नेह और पानी तथा मद्य इनका सेवन करेहुए मनुष्यके, क्रोधी, शोक करे तथा तृषाकरके पीडित, वृद्ध, बालक, वात मूत्र इनका निरोध करनेवाला मनुष्य तथा स्नानकराहुआ तथा स्नान करनेको जो तयार हो इन सब मनुष्योंको नस्य न देवे॥

नस्यकर्ममेंयोग्यअयोग्यमनुष्य।

अष्टवर्षस्य बालस्य नस्यकर्मसमाचरेत्।
अशीतिवर्षादूर्ध्वंचनावनंनैवदीयते॥

अर्थ-आठवर्षके बालकके नाकमें औषधी डाले और अस्सी वर्षके उपरांत अवस्था वालेके नाकमें औषधी नहीं डालनी चाहिये॥

रेचकनस्यकाविधान ।

अथवैरेचकं नस्यं ग्राह्यं तैलैः सुतीक्ष्णकैः ।
तीक्ष्णभेषजसिद्धैर्वा स्नेहैः क्वाथे रसैस्तथा ॥

अर्थ—जो रेचन नस्य नाकमें डालनी वो अजवायन, सरसों इत्यादिकोंके तीक्ष्णतेल निकालके नाकमें डाले अथवा तीक्ष्ण औषध डालके स्नेह सिद्धकरे अथवा तीक्ष्ण औषधका काढा अथवा रस इनसे स्नेह सिद्ध करके नाकमें डाले ॥

रेचननस्यप्रकार ।

नासिकारंध्रयोरष्टौ षट्चत्वारश्च बिंदवः ।
प्रत्येकं रेचने योज्यामुख्यमध्यांत्यमात्रया ॥

अर्थ—रेचनके वास्ते नाकके दोनों छिद्रोंमें औषधकी आठ बिंदु डालना यह उत्तम मात्राहै, छः बिंदु डालनेसे मध्य मात्रा जाननी और चारबूंद डालनेस कनिष्ठमात्रा जाननी चाहिये ॥

नस्यकर्ममें औषधीका प्रमाण ।

नस्यकर्मणि दातव्यं शाणैकं तीक्ष्णमौषधम् । हिंगुस्याद्यवमात्रं तु माषैकं सैंधवं मतम् ॥ क्षीरं चैवाष्टशाणं स्यात्पानीयं च त्रिकार्षिकम् । कार्षिकं मधुरं द्रव्यं नस्यकर्मणि योजयेत् ॥

अर्थ—नस्यकर्ममें जो तीक्ष्ण औषधी होय वो एक शाण प्रमाण डाले। तथा हींग एक यव प्रमाण, सैंधानिमक १ मासे, दूध आठ शाण, पानी तीनकर्ष और खांड, अनार इत्यादिक मधुरद्रव्य जो हैं वो प्रत्येक कर्षलेवे, इस प्रकार इनकी योजनाकरे ॥

विरेचननस्यकेदूसरेदोभेद ।

अवपीडःप्रधमनं द्वौ भेदावपरौ स्मृतौ ।
शिरोविरेचनस्थाने तौ तु देयौ यथायथम् ॥

अर्थ—उस विरेचन नस्यके दो भेदहैं एक अवपीडन तथा दूसरा प्रधमन, ऐसे जानना इन दोनोंको मस्तकके विरेचनमें देना चाहिये ॥

अवपीडन और प्रधमनकेलक्षण ।

कल्कीकृतादौषधाद्यः पीडितो निःसृतो रसः । सोवपीडः

समुद्दिष्टस्तीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः॥षडंगुलाद्विवक्त्राया नाडी-
चूर्णं तया धमेत्।तीक्ष्णकोलमितं वक्रवातैःप्रधमनं हितत् ॥

अर्थ–अब उन दोनोंके लक्षण कहते हैं-तीक्ष्ण औषधको पीस उसका कल्ककर निचोडनेसे जो रस निकलताहै उसको अवपीड कहतेहैं। तथा छःअंगुल प्रमाण लंबी और सीधी ऐसी नली करके उसमें तीक्ष्ण चूर्ण१ कोलप्रमाण डालके मुखकी हवासे नाकमें फूकदेना उसको प्रधमन कहतेहैं॥

रेचन और स्नेहननस्यकेयोग्य।

ऊर्ध्वजत्रुगते रोगे कफजे स्वरसंक्षये।अरोचके प्रतिश्या-
ये शिरःशूले च पीनसे ॥ शोफापस्मारकुष्ठेषु नस्यं वै
रेचनं हितम्। भीरुस्त्रीकृशबालानां नस्यं स्नेहेन दीयते ॥

अर्थ–ऊर्ध्वजत्रुगतरोग,कफ संबंधी स्वरभंग,अरुचि सरेकमां, मस्तकशूल, पीनस, सूजन, अपस्मार, कुष्ठ इनरोगोंमें रेचक नस्य हितकारी जाननी–डरपा हुआ मनुष्य, कृश मनुष्य तथा बालक और स्त्री इनको स्नेहयुक्त नस्य देवे ॥

अवपीडननस्ययोग्य।

गलरोगे सन्निपाते निद्रायां विषमज्वरे।
मनोविकारे कृमिषु युज्यते चावपीडनम् ॥

अर्थ–गलरोग, संनिपात, अत्यंत निद्रा, विषमज्वर, मनके विकार और कृमिरोग इनमें अवपीडन नस्य देय ॥

प्रधमननस्यकेयोग्य।

अत्यंतोत्कटदोषेषु विसंज्ञेषु च दीयते।
चूर्णं प्रधमनं धीरैस्तद्धि तीक्ष्णतरं यतः ॥

अर्थ–मूर्च्छा, अपस्मारादिक, संज्ञा नष्टहोय जिससे ऐसे संन्यासादिकरोग–इनमें अत्यंत तीक्ष्ण ऐसे प्रधमनसंज्ञक चूर्णकी नस्य देवे ॥

रेचनसंज्ञकनस्य।

नस्यं स्याद्गुडशुंठीभ्यां पिप्पलीसैंधवेन च।
जलपिष्टेन तेनाक्षिकर्णनासाशिरोगदाः ॥
हनुमन्यागलोद्भूता नश्यंति भुजपृष्ठजाः ॥

अर्थ–सोंठको गरमपानीमें औटाय उसमें गुडडालके नस्य देवे । पीपल और सैंधानिमक इनको गरमपानीमें औटाय नाकमें डाले तो इस्से नेत्र, कान, मस्तक, ठोडी, मन्यानाडी, भुजा और पीठ इनमें जो पीडाहोती है सो दूरहोय ॥

रेचननस्यकी दूसरीविधि ।

मधूकसारकृष्णाभ्यां वचा मरिचसैंधवैः ।
नस्यं कोष्णजले पिष्टं दद्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥
अपस्मारेतथोन्मादेसंनिपातेपतंत्रके ॥

अर्थ–महुआकी लकडीकी भीतरका गूदा, पीपल, वच, कालीमिरच और सैंधानिमक ये औषध गरम जलमें पीसके नस्य देवे तो मृगी, उन्माद, संनिपात और अपतंत्रक वायु इत्यादि जिनसे चेष्टा ज्ञान ये नष्ट होते हैं वो दूरहोकर मनुष्य शीघ्र सावधान होवे इसप्रकार जानना॥

रेचननस्यकातीसराप्रकार ।

सैंधवं श्वेतमरिचं सर्षपा कुष्ठमेव च ।
बस्तमूत्रेण पिष्टानि नस्यं तन्द्रानिवारणम् ॥

अर्थ–सैंधानिमक, सपेदमिरच, पीलीसरसों और कूट इन औषधोंको बकरेके मूत्रमें पीस नस्य देवे तो नेत्रोंमें तंद्रा आती है वो दूरहो । तथा पूर्वोक्त अपस्मारादिक रोग दूरहों ॥

प्रधमनसंज्ञकनस्य ।

रोहितमत्स्यपित्तेन भावितं सैंधवं वचा । मरिचं पिप्पली शुंठी कंकोलं लशुनं पुरम् ॥ कट्फलं चेति तच्चूर्णं देयं प्रधमनं बुधैः ॥

अर्थ–सैंधानिमक, वच, कालीमिरच, पीपल, सोंठ, कंकोल, लहसन, गूगल और कायफल इनका चूर्ण कर रोहित (रोहू) संज्ञक मछलीके पित्तके चूर्णमें पुटदेवे, फिर पूर्वप्रधमनके लक्षणमें नलीका मान कहआएहैं उसरीतिसे नलीले उसमें यह चूर्णभरके नाकमें फूंकदेवे । इस करके पूर्वोक्त अपतंत्रादिक रोग दूर होते हैं । इस चूर्णको प्रधमन ऐसा कहतेहैं॥

बृंहणनस्यकी कल्पना ।

अथ बृंहणनस्यस्य कल्पनाकथ्यतेऽधुना। मर्शश्च प्राति-

मर्शश्च द्वौ भेदौ स्नेहने मतौ॥मर्शस्य तर्पणीमात्रा मुख्या शाणैः स्मृताष्टभिः।मध्यमा च चतुःशाणैर्हीनाशाणमिता स्मृता॥एकैकस्मिंस्तु मात्रेयं देया नासापुटे बुधैः।मर्शस्य द्वित्रिवेलं वा वीक्ष्य दोषबलाबलम्॥एकांतरं द्व्यंतरं वा नस्यंदद्याद्विचक्षणः।अहःपंचाहमथवा सप्ताहं वा सुयंत्रितः॥

अर्थ–अब बृंहण नस्य (धातुवृद्धि करनेवाली तथा नाकमें औषध डालनेवाली ऐसी नस्य) कल्पना कहताहूं, उस बृंहण नस्यके दो भेद हैं १ मर्श और २ प्रतिमर्श ये दोनों स्नेहन विषयमें योग्यहैं । इनमें मर्शनस्यकी तर्पणी मात्रा जाननी, वो आठ शाणकी मुख्य मात्रा है । तथा चार शाणकी मध्यम मात्राहै । और एकशाणकी हीनमात्रा जाननी ये मात्रादोषोंका बलाबल देखके मनुष्यको वस्त्रादिकसे ढककर एक एक नाकके पुटमें दो दो वार अथवा तीन तीन वार अथवा एकदिन बीचमें देकर तथा दोदिन बीचमें देकर आथवा तीन दिन बीचमें अथवा पांचवे या सातवे दिन नस्य देनी चाहिये ॥

मर्शसंज्ञक नस्य तथा विरेचनसंज्ञक नस्य इनके आधिक्य होनेसे जो रोग होते हैं उनका उपाय ।

मर्शोशिरोविकारे च व्यापदो विविधाःस्मृताः । दोषोत्क्लेशात्क्षयाच्चैव विज्ञेयास्ता यथाक्रमम् ॥ दोषोत्क्लेशनिमित्तासुयुंज्याद्वमनशोधनम् । अथ क्षयनिमित्तासु यथास्वंबृंहणं मतम् ॥

अर्थ–मर्शनस्यकी मात्रा धात्वादिकोंकी तृप्तिकरनेवाली है । उसके आधिक्य होनेसे तथा दोषोंकी वृद्धि होनेसे तथा मस्तकके विरेचन विषयमें विरेचनसंज्ञक नस्यकी मात्रा अधिक होकर मस्तकके भीतरके मेदादिकोंका क्षय होनेसे अनेक प्रकारकी पीडा होती है जिस दोषके उत्कर्ष निमित्त जो पीडा होय उसके दूर होनेको वमन तथा विरेचन औषध देवे । तथा क्षय निमित्तसे जो पीडा होती है उसके दूर करनेको धातुवृद्धि करनेवाली औषध नाकमें अथवा पेटमें खानेके वास्ते देवे ॥

जोबृंहणनस्यमेंयोग्यहै ।

शिरोनासाक्षिरोगेषु सूर्यावर्त्तार्धभेदके । दंतरोगे बले

हीने मन्याबाहुंसजे गदे ॥ मुखशोषे कर्णनादे वात-
पित्तगदे तथा । अकालपलिते चैव केशश्मश्रुप्रपातने ।
युज्यते बृंहणं नस्यं स्नेहैर्वामधुरद्रवैः ॥

अर्थ–मस्तकरोग,नासारोग,नेत्ररोग,सूर्यावर्त्तरोग,आधासीसी,दंतरोग, दुर्बलमनुष्य,मन्यानाडी,भुजा,कंधा इनमें जिसके पीडा होतीहो तथा मुख-शोष,कर्णनादरोग,वातपित्तसंबंधी विकार,विनासमयके बालोंका सपेदहोना सो पलित कहाताहै, मस्तकके बाल, डाढीके बाल उखड २ के गिरेवोतथा इन्द्रलुप्तरोग इन सब रोगोंमें घृतआदि स्निग्ध पदार्थ करके तथा मिश्री आदि जो मधुरपदार्थ हैं इन करके नस्य देना चाहिये ॥

पक्षवातादिरोगोंपरनस्य ।

माषात्सुगुप्तारास्नाभिर्बलाऋभुकरोहिषैः । कृतोश्वगंधया
क्वाथो हिंगुसैंधवसंयुतः॥कोष्णो नस्यप्रयोगेण पक्षाघातं
सकंपनम् । जयेदर्दितवातं च मन्यास्तंभापबाहुकम् ॥

अर्थ–उडद, कौंचके बीज, रास्ना, बलाकी जड, अंडकीजड, सुगंधतृण, असगंध इन सात औषधोंका काढा करके उसमें भुंजीहींग और सैंधानिमक डालके गरम गरम उस काढेकी नस्य देवे,जिससे कंप सहित पक्षाघात वायु, अर्दितवायु, मन्यास्तंभवायु तथा अपबाहुकवायु ये दूरहोय ॥

प्रतिमर्शनस्यकीदोबिंदुरूपमात्रा ।

प्रतिमर्शस्य मात्रा तु द्विद्विबिंदुमिता मता ।
प्रत्येकशोनस्तकयोः स्नेहेनेति विनिश्चितम् ॥

अर्थ–घृतआदि करके जो स्निग्धपदार्थ उनके दो २बूंद एक २ नासिकाके पुटमें डालनेसे वह प्रतीमर्शनस्यकी दोबिंदु मात्रा जाननी ॥

बिंदुसंज्ञकमात्रा ।

स्नेहे ग्रंथिद्वयं यावन्निमग्ना चोद्धृता ततः।तर्जनीयं स्रवेत्
बिन्दुः सा मात्रा बिन्दुसंज्ञिता॥ एवंविधैर्बिन्दुसंज्ञैरष्टभिः
शाण उच्यते। सदेयो मर्शनस्येतु प्रतिमर्शो द्विबिन्दुकः॥

अर्थ–घी तेल आदिसे जो स्नेहपदार्थ तिनमें तर्जनी उंगलीके दो

पोरुआ बूडजावे ऐसी तर्जनीको निकालके उस पोरुआसे जो बूंद टपकाई जावे उसको बिंदुमात्रा कहतेहैं। इसप्रकार बिंदुसंज्ञक आठ मात्राओंकी एक शाण संज्ञक तोल होतीहै । वो शाणमात्रा मर्शनस्यमें देवे । और प्रतिमर्शनस्यमें दो बूंदकीदेय, इतनाही मर्शनस्य और प्रतिमर्श इनमें विशेषताहै ॥

प्रतिमर्शनस्यकासमय ।

समयाःप्रतिमर्शस्य बुधैःप्रोक्ताश्चतुर्दश । प्रभाते दंतकाष्ठान्ते गृहान्निर्गमने तथा ॥ व्यायामाध्वव्यवायांते विण्मूत्रान्तेंजने कृते । कवलान्ते भोजनान्ते दिवास्वप्नोत्थिते तथा ॥ वमनांते तथासायं प्रतिमर्शःप्रयुज्यते ॥

अर्थ–प्रतिमर्शनस्यके १४ समयहैं, जैसे१ प्रातःकाल २ मुख धोनेके समय ३ घरसे बाहर निकलनेके समय ४ परिश्रमके अंतमें ५ रस्ताचलकर आनेपर ६ मैथुनके अंतमें ७ मल और ८ मूत्रकरनेके अंतमें ९ नेत्रोंमें अंजन करनेके उपरांत १० ग्रासके तथा ११ भोजन तथा १२ दिवसमें सोयकर, उठनेके समय १३ वमनके अंतमें १४ सायंकाल इतने समय प्रतिमर्शसंज्ञक नस्यदेवे ॥

प्रतिमर्शद्वारातृप्तहुएकेलक्षण ।

ईषदुच्छिंकनात्स्नेहो यदा वक्रं प्रपद्यते ।
नस्ये निषिक्तं तं दद्यात्प्रतिमर्शप्रमाणतः ॥
उच्छिदं न पिबेच्चैतान्निष्ठीवेन्मुखमागतम् ॥

अर्थ–नस्यदेनेपर थोडी छींक आनकर वो स्नेह मुखमें उतरआवे तो उसमनुष्यको प्रतिमर्श नस्यकरके तृप्तहुआ जानना तथा मुखमें जो उतरआया स्नेह उसको निगले नहीं किंतु थूकके बाहर पटक देवे ॥

प्रतिमर्शकेयोग्य ।

क्षीणे तृष्णास्यशोषार्तें बाले वृद्धे च युज्यते ।
प्रतिमर्शेन शाम्यंति रोगाश्चैवोर्ध्वचत्रुजाः ॥
वलीपलितनाशश्च बलमिंद्रियजं भवेत् ॥

अर्थ–धातुक्षीणमनुष्य, बालक, वृद्ध तृषा और मुखशोष इन करके पीडित मनुष्योंके प्रतिमर्शसंज्ञक नस्य देना चाहिये, तो उक्तरोग दूरहो

तथा नाडके ऊपरके जो रोगहैं वो तथा त्वचाका सिथिलपना, कुसमय सपेद बालोंका होना उसको वलीपलित कहते हैं.ये संपूर्ण रोग प्रतिमर्श-संज्ञक नस्यसे दूरहो तथा नेत्रादिक इन्द्रियोंमें बलबढे ॥

कुसमयसपेदबालहोनेपरनस्य ।

बिभीतनिंबकंभारी शिवा शेलुश्च काकिनी ।
एकैकं तैलनस्येन पलितं नश्यति ध्रुवम् ॥

अर्थ–बहेडा, नीमकी छाल, कंभारी, हरड, बहुवार, काकडोडी इनके बीजके भीतरकी मिंगीका तेल पृथक् २ निकाल कर एक एक न्यारी २ नस्य देवे तो मनुष्यके बिना समय जो बाल सपेद हुएहैं वो तरुणावस्थाके समान काले होय निश्चय ॥

नस्यकीविधि ।

अथ नस्यविधिं वक्ष्ये नस्यग्रहणहेतवे । देशे वातरजो मुक्ते कृतदन्तनिधर्षणम्॥विशुद्धं धूमपानेन स्विन्नमाल-गलं तथा । उत्तानशायिनं किंचित्प्रलंबशिरसंनरम् ॥ आस्तीर्णहस्तपादं च वस्त्राच्छादितलोचनम् । समुन्न-मितनासाग्रं वैद्यो नस्येन योजयेत् ॥ कोष्णमच्छिन्नधा-रं च हेमतारादिशुक्तिभिः । शुक्त्या वा यंत्रयुक्त्यावा प्लोतैर्वानस्यमाचरेत् ॥

अर्थ–नस्य देनेके वास्ते नस्यकी विधि कहते हैं-जिस स्थानमें वायु अथवा धूल न होवे वहां मनुष्य दांतुन और धूमपान करके कपाल और गलेको शुद्धकर पसीने युक्त करावे,फिर सीधा (चित्त) सुलाय मस्तकको लंबा और कुछ नीचेकी तरफ झुकता कर हाथपैरोंको लंबे पसारदे फिर कपडेसें नेत्रोंको ढांकके वैद्य अपने हाथसे मनुष्यकी नाकको ऊँचीकर जो नस्य डालनेकी वस्तु है उस कुछ २ गरमको एकसी धारसे तथा उस नस्यको सुवर्ण, चांदी इनके पात्र करके अथवा सीप करके तथा कौंडी वा फोहेसे नाकमें निचोडदेवे, दोनों नथनोंमें समान निचोडे ॥

नस्यग्रहणमेंआज्ञा ।

नस्येष्वासिच्यमानेषु शिरो नैव प्रकंपयेत्।नकुप्येन्नप्रभा-

षेत नोच्छिदेन्न हसेत्तथा ॥एतैर्हि विहितः स्नेहो नैवान्तः संप्रपद्यते । ततःकासप्रतिश्याय शिरोक्षिगदसंभवः ॥

अर्थ–मनुष्य नस्यलेते वख्त मस्तकको कंपावे नहीं तथा क्रोध न करे, किसीसे बोले नहीं, किसी तिनका आदिको तोडे नहीं, न हसे यदि इसप्रकार न करेगा तो वो नस्य पदार्थ मस्तकके भीतर अच्छे प्रकार प्रवेशनहीं करनेका और खांसी, सरेकमा और मस्तक,नेत्र इनमें पीडा आदि उपद्रव होने लगते हैं ॥ अतएव बडी सावधानीके साथ नस्य ग्रहण करना चाहिये ॥

नस्यसंधारणकाप्रकार।

शृंगाटकमभिप्लाव्य स्थापयेन्नगलद्रवम् । पंचसप्तदशैव-स्युर्मात्रा नस्यस्य धारणे ॥ उपविश्याथ निष्ठीवेन्नासाव-वक्रगतं द्रवम् । वामदक्षिणपार्श्वाभ्यांनिष्ठीवेत्सन्मुखे नहि॥

अर्थ–मनुष्यको नस्य देकर नासावंशके आगे भ्रूमध्य देशमें चतुष्पथ (चौराहेके समान) है उसको उस नस्यके स्नेहसे भिगोय उस नस्यको धरदेवे। उसका धारण ५।७ मात्रा अथवा दशमात्रा कालपर्यंत करे, फिर बैठारहे और नाकमें तथा मुखमें उतरा जो पानी वा कफ उसको दहनी तरफ अथवा बाँई तरफ थूकता जावे साह्मने न थूके ॥

नस्यकर्मकरनेमेंवर्जितवस्तु ।

नस्ये नीते मनस्तापं रजः क्रोधं च संत्यजेत् । शयीत निद्रां त्यक्त्वा च उत्तानो वाक्शतं नरः॥तथैवरेचनस्यां-ते धूमो वा कवलो हितः ॥

अर्थ–नस्यकर्म होनेके उपरांत मनमें संताप न आने दे, जहां धूर उडतीहो तहां बैठे नहीं तथा क्रोध न करे, जैसे नींद न आवे इसप्रकार सौंवाक् (सोवार पलक खुले मुंदे इतने समय) पर्यंत सीधा सुलावे । इसीप्रकार विरेचन नस्यके अंतमें धूम और ग्रास ये न देवे ॥

नस्यमेंशुद्ध्यादिभेद ।

नस्ये त्रीण्युपदिष्टानि लक्षणानि समासतः । शुद्धिहीनातियोगानि विशेषाच्छास्त्रचिंतकैः ॥

अर्थ–नस्यमें शुद्धिलक्षण तथा हीनयोगलक्षण तथा अतियोगलक्षण ये तीन ही लक्षण विशेष करके शास्त्रज्ञ वैद्योंने कहे हैं उन लक्षणोंको आगे संक्षेपसे कहते हैं ॥

उत्तमशुद्धीकेलक्षण ।

लाघवं मनसः शुद्धिः स्रोतसां व्याधिसंक्षयः।
चित्तेन्द्रियप्रसादश्च शिरसः शुद्धिलक्षणम् ॥

अर्थ–नस्य करके मस्तकभी उत्तमबुद्धि होनेसे शरीर हलकाहो, मन शुद्धहो तथा मुख, नाक, कान गुदा इत्यादि बाहिर्द्वारवाले मार्ग उनका शोधन होनाहै । तथा शिरोरोगादिक दूरहो, अंतःकरण और नेत्रादिक इन्द्री ये प्रसन्न रहतीहैं ॥

हीनशुद्धिकेलक्षण।

कंडूपदेहो गुरुता स्रोतसां कफसंस्रवः।
मूर्ध्निहीनविशुद्धे तु लक्षणं परिकीर्तितम् ॥

अर्थ–नस्य करके मस्तककी अल्पशुद्धि होनेसे देहमें खुजली तथा भारीपणा ये लक्षण होतेहैं तथा मुख नासिकादिक बहिर्द्वार हैं उनसे कफका स्राव होता है ॥

अतिशुद्धिके लक्षण।

मस्तुलुंगागमो वातवृद्धिरिन्द्रियविभ्रमः।
शून्यता शिरसश्चापि मूर्ध्निगाढं विरेचिते ॥

अर्थ–नस्य करके मस्तककी अत्यंत शुद्धिहोनेसे मस्तकके भीतरजो तरल पदार्थ रहताहै उसका नाकसे स्राव होने लगे तथा वायुकी वृद्धि होय,इन्द्रियोंका विभ्रम होय तथा मस्तकमें शून्यता आती है ॥

हीनशुद्ध्यादिमेंचिकित्सा।

हीनातिशुद्धे शिरसि कफवातघ्नमाचरेत्।
सम्यक्विशुद्धे सिरसि सार्पिर्नस्ये निषेचयेत् ॥

अर्थ–नस्य करके मस्तककी अल्पबुद्धि अथवा अत्यंत शुद्धिहोनेसे कफ वायु हारक ऐसी नस्य देवे तथा उत्तमशुद्धि होनेसे नाकमें घीका नासदेवे ॥

अतिस्निग्धकेलक्षण।

कफप्रसेकः शिरसो गुरुतेन्द्रियविभ्रमः।

लक्षणं तदतिस्निग्धरूक्षं तत्र प्रदापयेत् ॥

अर्थ–नस्य करके मनुष्यका मस्तक अति स्निग्धहोनेसे कफका स्राव, मस्तकका भारीपना, इन्द्रियोंकी भ्रांति ये लक्षण होते हैं । इस कारण इस अत्यंत सिग्धताके दूर करनेको रूक्षपदार्थकी नस्य देवे ॥

नस्यमेंपथ्य ।

भोजयेच्चानभिष्यंदि नस्याचरितमादिशेत् ॥

अर्थ–नस्यलेनेवाला मनुष्य अभिष्यंदी पदार्थ अर्थात् भैंसका दही आदि कफकारी पदार्थ भक्षण न करे और नस्यमें जैसे शिष्टजन आचरण करते हैं उसप्रकार आचरण करे । ये नस्यकर्ममें पथ्य हैं ।

पंचकर्मोंकीसंख्या ।

वमनं रेचनं नस्यं निरूहमनुवासनम् ।
एतानि पंचकर्माणि कथितानिमुनीश्वरैः ॥

अर्थ–वमन, रेचन, नस्य, निरूहबस्ती और अनुवासनबस्ती इन पांचोंको पंचकर्म कहते हैं ॥

धूमपानविधिः ॥

धूमस्तु षड्विधः प्रोक्तः शमनो बृंहणस्तथा ।
रेचनः कासहा चैव वामनो व्रणधूपनः ॥

अर्थ–धूमपान छःप्रकारका है उनके नाम-शमन, १ बृंहण, २ रेचन, ३ कासघ्न, ४ वामन ५ और व्रणधूपन ६ इसप्रकार छःप्रकार जानने ॥

शमनादिकधूमोंकेपर्यायशब्द ।

शमनस्यतुपर्यायौ मध्यः प्रायोगिकस्तथा ।
बृंहणस्यापि पर्यायौ स्नेहनो मृदुरेवच ॥
रेचनस्यापि पर्यायौ शोधनस्तीक्ष्ण एव च ॥

अर्थ–तहां शमनधूमके पर्यायवाचक शब्द मध्य और प्रायोगिक ऐसे दो हैं तथा बृंहणधूमके पर्यायशब्द स्नेह और मृदु जानने । तथा रेचन धूमके पर्यायशब्द शोधन और तीक्ष्ण जानने ॥

धूमसेवनके अयोग्य ।

अधूमार्हाश्च खल्वेते शांतो भीरुश्च दुःखितः । दत्तब-

स्तिर्विरक्तश्च रात्रौ जागरितस्तथा ॥ पिपासितश्च दाहार्त्तस्तालुशोषी तथोदरी । शिरोभितापी तिमिरी छर्द्याध्मानप्रपीडितः ॥ क्षतोरस्कः प्रमेहार्तः पांडुरोगी च गर्भिणी । रूक्षःक्षीणोभ्यवहृतः क्षीरक्षौद्रघृतासवैः ॥ भुक्तान्नदधिमत्स्यश्च बालो वृद्धः कृशस्तथा । अकाले चातिपीतश्च धूमः कुर्यादुपद्रवान् ॥

अर्थ–श्रमितमनुष्य, डरपाहुआ, दुःखसे पीडितमनुष्य, जिसके बस्तीप्रयोग करा, जिसका कोठा दस्तकरके रीताहो वह, रात्रिमें जागने वाला, तृषा करके पीडित तथा दाह करके पीडित, तालुशोषी, उदररोगी, शिरोभितापकरके पीडित, तिमिररोगी, वमन, वादीसे पेटफूलाहुआ, उरक्षतरोग, प्रमेह, पांडुरोग इनकरके पीडित मनुष्य, गर्भिणीस्त्री, रूक्ष तथा क्षीणमनुष्य, दूध, घी और आसव (मद्य) अन्न, दही और मछली इनका भक्षणकरनेवाला मनुष्य तथा बालक और दुर्बलमनुष्य ये धूमपानमें अयोग्यहैं । यदि कुसमयमें अत्यंत धूमपानकरे तो वह घोर उपद्रवोंको करे हैं । अतएव उक्त मनुष्यों को तथा कुसमय धूमपान करना त्यागदेवे ॥

धूमपानकेउपद्रवोंकायत्न ।

तत्रेष्टं सर्पिषः पानं नावनांजनतर्पणम् । सर्पिरिक्षुरसं द्राक्षा पयो वा शर्करांबु वा ॥ मधुराम्लौ रसौ वापि शमनाय प्रदापयेत् ॥

अर्थ–धूमपानसे यदि उपद्रव होवे तो उस मनुष्यको घी पिवावे । नासिकामें नस्य देवे तथा नेत्रोंमें अंजन तथा तर्पण अर्थात् देहमें तृप्ति करनेवाला ऐसा द्राक्षादि मंड देवे । तथा घी, ईखका रस और दाख, दूध, सरवत अथवा मिश्री, पानी अथवा मधुरपदार्थ और खट्टेपदार्थ भोजनको देवे, तो धूमपानसंबंधी उपद्रव दूरहो ॥

धूमपानका काल और उसके गुण ।

धूमश्च द्वादशाद्वर्षाद्भूह्यतेशीतिकान्न च ।
कालश्वासप्रतिश्यायान्मन्याहनुशिरोरुजः ।
वातश्लेष्मविकारांश्च हन्याद्धूमःसुयोजितः ॥

अर्थ–धूमपान बारहवर्षकी अवस्थासे लेकर अस्सी वर्षपर्यंत करे फिर न करे और उस धूमपानको उत्तम योजना होने से श्वास, खांसी, श्लेष्मा, मन्यानाडी, ठोडी और मस्तकमें जो पीडा होतीहै उसको तथा वातकफ संबंधी विकार ये संपूर्ण रोग दूरहोवे ॥

धूमोपयोगहोनेपरगुण।

धूमोपयोगात्पुरुषः प्रसन्नेन्द्रियवाङ्मनः।
दृढकेशद्विजश्मश्रुः सुगंधिवदनो भवेत् ॥

अर्थ–धूमका उपयोग होनेसे मनुष्य चक्षुरादिक इन्द्री तथा वाणी, अंतःकरण इन करके प्रसन्न रहताहै और केश तथा दांत और डड्ढी इनमें बल आताहै तथा मुख सुगंधित रहता है ॥

धूममेंनलीकाविधान।

धूमनाडी भवेत्तत्र त्रिखंडा च त्रिपर्विका। कनिष्टिकापरीणाहा राजमाषागमान्तरा ॥ धूमनाडी भवेद्दीर्घाशमने रोगिणोंगुलैः। चत्वारिंशन्मितैस्तद्वद्द्वात्रिंशद्भिर्मृदौ स्मृता ॥ तीक्ष्णे चतुर्विंशतिभिः कासघ्नेषोडशोन्मितैः। दशांगुलैर्वामनीये तथा स्याद्व्रणनाडिका ॥ कलायमंडलस्थूला कुलित्थागमरंध्रिका ॥

अर्थ–धूमपानके विषयमें नली तीन टुकडेकी और तीन गांठकी करे तथा कनिष्ठिका (छोटी उंगली) के समान मोटीकरे तथा उसमें चौराका दाना भीतर चला जाय ऐसा चौडा छिद्र करे। इस प्रकारकी नली सामान्य धूमपानमें होनी चाहिये। वह नली रोगीके चालीस उंगल लंबीहो। तथा मृदुसंज्ञक जो धूमहै उसके सेवनमें बत्तीस अंगुलकी लंबी लेय। तथा काससंज्ञक धूम उसके सेवनमें सोलह अंगुलकी ले। तथा वामनीय संज्ञक धूमके सेवनमें दश अंगुललंबी लेनी। उसीप्रकार व्रणके धूनी देनेको जो नली ले वो दश अंगुलकी ले तथा वो व्रणके धूनीवाली नली मटरके दानेके प्रमाण मोटी और उसमें छिद्र कुलथीका दाना भीतर चला जावे इतना बारीक करे। इस प्रकारकी वैद्यको बनानी चाहिये ॥

धूमपानार्थईषिकाका विधान ।

अथेषिकां प्रलिंपेच्च तु श्लक्ष्णां द्वादशाङ्गुलाम् । धूमद्रव्यस्य कल्केन लेपश्चाष्टांगुलःस्मृतः ॥ कल्कंकर्षमितं लिप्त्वा छायाशुष्कं च कारयेत् । ईषिकामपनीयाथ स्नेहाक्तां वर्त्तिमादरात्॥अंगारैर्दीपितांकृत्वा धृत्वा नेत्रस्य रंध्रके । वदनेन पिबेद्धूमं वदनेनैव संत्यजेत् ॥ नासिकाभ्यां ततः पीत्वा मुखेनैववमेत्सुधीः । शरावसंपुटेक्षिप्त्वा कल्कमंगारदीपितम् ॥ छिद्रे नेत्रं सुवेश्याथ व्रणं तेनैव धूपयेत् ॥

अर्थ–ईषिका (सरकंडेका टुकडा) बारह अंगुलका चिकना लेवे, उसपर धूँआँ लेनेकी वस्तुओंके कल्कका लेप ८ अंगुलपर्यंत करे कल्क द्रव्यका परिमाण २ तोले होना चाहिये । फिर उसकल्कके लेपको छायामें सुखाय लेवे, जब वो कल्क सूखजाय तब युक्तिके साथ उसमेंसे सरकंडेके टुकडेको निकास लेवे, कि, वो कल्ककी लंबी नलीसी रहजावे, उसके छिद्रमें दूसरी स्नेहकी बत्ती धरके उसको अंगारोंसे जलायके पूर्वोक्तनलीके छिद्रमें धरे फिर उसनलीको मुखमें रखके धूँआ ईंचे और मुखके द्वाराही उस धूएको छोडदेवे । तथा नाकके छिद्रसे धूंआंको खींचकर मुखसे छोडदे । एवं सरावसंपुटके ऊपरले सरावमें छिद्रकर उसमें अँगारे भरके उनमें व्रणकी धूनीको जो कि, कल्क कराहुआ तयारहै उसे डालदे जब धूंआं उठने लगे तब उसके उस छिद्रके द्वारपर नलीका छिद्र लगाय व्रणको धूनीदेवे ॥

कौनसीऔषधकाकल्ककौनसेधूममेंदेवे ।

एलादिकल्कं शमने स्निग्धं सर्जरसंमृदौ । रेचने तीक्ष्ण कल्कं च कासघ्ने क्षुद्रिकोषणम्॥वामने स्नायुचर्माद्यं दद्याद्धूमस्य पानकम् । व्रणे निंबवचाद्यं च धूपनं संप्रचक्षते ॥

अर्थ–शमन संज्ञक धूनी उसमें एलादिक औषधोंका गणहै उनका कल्ककरके देय तथा मृदुसंज्ञक धूममें घृतादिक,स्नेह पदार्थोंमें राल डालके कल्क करके देय । तथा रेचनसंज्ञक धूममें सरसों राई इत्यादि औषधोंका

कल्क करदेवे तथा कासघ्न धूमसे कटेरी और कालीमिरच इत्यादिक औषधोंका कल्क करके देय। तथा वामनधूम (वमन करानेवाली धूम) में स्नायु और चर्मादिकोंका कल्ककरके पान करनेको देवे तथा व्रणमें नीम और वच इत्यादिकोंका कल्क करके धूम देवे॥

बालग्रहादिदूरकरनेकोधूनी।

अन्याहि धूमा गेहेषु कर्तव्या रोगशांतये॥ तद्यथा-मयूरपिच्छं निंबस्य पत्राणि बृहतीफलम्। मरिचं हिंगुमांसी च बीजं कार्पाससंभवम्॥ छागरोमाहिनिर्मोकं विष्टाबैडालिकी तथा। गजदंतश्च तच्चूर्णं किंचिद्घृतविमिश्रितम्॥ गेहेषु धूपनं दत्तं सर्वान् बालग्रहाञ्जयेत्। पिशाचान् राक्षसान् जित्वा सर्वज्वरहरं भवेत्।एष माहेश्वरो नाम्ना धूपः शिवमुखोद्भुतः॥

अर्थ–बालग्रहमें रोगशांतिके अर्थ घरमें धूनीदेनी तहां मयूरपिच्छादि धूनी कहते हैं–मोरके पंख १ नीमकेपत्ते २ कटेरीके फल ३ कालीमिरच ४ हिंग ५ जटामांसी ६ कपासके बीज ७ बकरेके बाल ८ सापकी काँचली ९ बिल्लीकी विष्ठा १० हाथीका दांत ११ इन ग्यारह औषधोंका चूर्णकर और थोडासा इसमें घी मिलाय घरमें इस चूर्णकी धूनी देवे तो संपूर्ण बालग्रह (शकुनी, पूतना, नैगमेयादि) तथा पिशाच, राक्षस इनके उपद्रव दूरहोय तथा सर्वप्रकारके ज्वर दूरहोवे। यह मयूरपिच्छादि धूनीहै इसी प्रकार माहेश्वरादि धूनी जानो॥

धूममेंपरिहार।

परिहारस्तु खंडेषु कार्यो रेचननस्यवत्।
नेत्राणि धातुजान्याहुर्नलवंशादिजान्यपि॥

अर्थ–रेचन संज्ञक नस्यमें रोगोंके परिहारके विषयमें जो उपाय कहाहै वोही उपाय इस धूमसे करावे। तथा नलीका मुख सुवर्णादी धातुका अथवा नरसल तथा वांस इत्यादिकोंका करावे॥

धूमपीनेकायंत्र।

चतुर्विंशत्यंगुलानि त्रीणि युक्तानि युक्तितः।
योजिता या त्रिखंडेयं नलिका नेत्रसंज्ञिता॥

अर्थ–चौवीस अंगुल लंबी तीन नली लेके युक्तीसे जोडे ये त्रिखंड नलिका इसीकी नेत्रसंज्ञाहै ॥

धूमपानकेगुण ।

मनस्तापं रजः क्रोधं धूमपाने निवारयेत् ॥

अर्थ–धूमपान करनेसे मनका संताप, रजोगुण क्रोध ये दूरहोते हैं ॥

गंडूष और कवल तथा प्रतिसारणकी विधि ।

चतुर्विधः स्याद्गंडूषः स्नैहिकः शमनस्तथा ।
शोधनो रोपणश्चैव कवलश्चापि तद्विधः ॥

अर्थ–गंडूष (कुरलाकरना) चार प्रकारकाहै १ स्नेहिक, २ शमन, ३ शोधन और चौथा४रोपण । तथा कवल (गरसा–कौर) भी चार प्रकारकाहै॥

स्नैहिकादिगंडूषोंकीदोषभेदकरकेयोजना ।

स्निग्धोष्णैः स्नैहिको वाते स्वादुशीतैः प्रसादनः ।
पित्ते कट्वम्ललवणरुष्णैः संशोधनः कफे ॥
कषायतिक्तमधुरैः कदुष्णे रोपणे व्रणे ।
चतुःप्रकारो गंडूषः कवलश्चापि कीर्त्तितः ॥

अर्थ–स्निग्ध और गरम पदार्थोंकरके जो कुरले करने उसको स्नेहिक गंडूष जानना । इसको वादीके रोगोंमें योजना करे । तथा मधुर और शीतल पदार्थके कुल्ले प्रसादन (शमनगंडूष) जानने उनको पित्तमें योजना करे । तथा तीक्ष्ण, खट्टे, खारी और गरम पदार्थके कुल्ले शोधन गंडूष कहाते हैं उनको कफके विषयमें योजना करना । तथा कषेले, कडुए और मधुर पदार्थ करके रोपण गंडूष जानना, इसको कुछ गरम करके व्रणमें योजना करे । इसीप्रकार कवलभी चार प्रकारका कहाहै ॥

गंडूषऔरकवलइनमेंभेद ।

असंचारी मुखे पूर्णे गंडूषः कवलश्चरः ।
तत्र द्रवेण गंडूषःकल्केन कवलः स्मृतः ॥

अर्थ–काढे आदिशब्दसे जो द्रवपदार्थ उनसे मुखको भरके उसको इधर उधर मुखमें चलायमान न करे थोडी देर रखके कुरलाकरदेवे उसको

तथा कल्कादिक पदार्थोंको मुखमें भरके इधर उधर फिरावे इसप्रकार रखनेको कवल कहते हैं ॥

गंडूषऔरकवलकी औषधका प्रमाण।

दद्याद्द्रव्येषु चूर्णं च गंडूषे कोलमात्रिकम्।
कर्षप्रमाणःकल्कश्च दीयते कवले बुधैः ॥

अर्थ-गंडूषमें काढे आदि द्रव (पतली) द्रव्य उनमें चूर्ण एक कोलके प्रमाण मिलाना चाहिये। तथा कवलमें कल्क कर्ष प्रमाण जानना ॥

किस अवस्थामें गंडूषकरे और कैसेकरे।

धार्यंते पंचमाद्वर्षाद्गंडूषकवलादयः। गंडूषान्सुस्थितः कुर्यात्स्विन्नभालगलादिकः ॥ मनुष्यस्त्रींस्तथापंच सप्त वा दोषनाशनात् ॥

अर्थ-गंडूष अथवा कवलादिक पांचवर्षकी अवस्थाके पश्चात् कराने चाहिये। तथा मनुष्यको स्वस्थचित्त कर बैठावे, फिर रोग दूर होनेके अर्थ कपाल और गला तथा आदि शब्दकरके मुख इनमें थोडा २ पसीना आवे तबतक तीन अथवा पांच अथवा सात कुरले करावे अथवा दोष दूरहोने पर्यंत कराने चाहिये ॥

प्रमाणान्तर।

कफपूर्णास्यतां यावच्छेदो दोषस्य वा भवेत्।
नेत्रघ्राणस्रुतिर्यावत्तावद्गंडूषधारणम् ॥

अर्थ-कफकरके मुख भराआवे तबतक अथवा दोषोच्छेदन होय तहांतक तथा नेत्र और नाक इनमें स्राव छूटे तबतक गंडूष धारण करे ॥

वातरोगमेंचिकनाईकेकुरले।

तिलकल्कोदकं क्षीरं स्नेहो वा स्नैहिके हितः ॥

अर्थ-तिलोंका कल्क, पानी, दूध, तेल आदिशब्दकरके स्नेहपदार्थ ये स्नेहिक गंडूषमें देवे ॥

पित्तरोगमेंशमनसंज्ञकगंडूष।

तिलानीलोत्पलं सर्पिः शर्कराक्षीरमेवच।
सक्षौद्रो हनुवक्रस्थो गंडूषो दाहनाशनः ॥

अर्थ-तिल, नीलकमल, घी, मिश्री और दूध ये पदार्थ एकत्र कर इसमें सहत डालके कुरले करे-तो पित्तसंबंधी, ठोडी और मुख इनमें जो दाह होता है वह दूर होवे ॥

व्रणादिरोगोंपरमधुगंडूष ।

वैशद्यं जनयत्यास्ये संदधाति मुखव्रणात् ।
दाहतृष्णाप्रशमनं मधुगंडूषधारणम् ॥

अर्थ-सहतके कुरले करनेसे मुखके छाले घाव, तथा दाह, तृषा ये रोग दूरहोकर मुखमें स्वच्छता आती है ॥

गंडूषधारणकेगुण ।

व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यं वक्रलाघवम् ।
इन्द्रियाणां प्रसादश्च गंडूषे विधृते भवेत् ॥
हरेदास्यस्य वैरस्यं शोषं पाकं व्रणं तृषाम् ।
दंतचालं च गंडूषो वैशद्यं तु करोति हि ॥

अर्थ-कुरले करनेसे व्याधिका नाश, तुष्टी, स्वच्छता, मुखमें हलकापना, सर्वइन्द्री प्रसन्न हो तथा मुखकी अरुचि, शोष, मुखके छाले, व्रण, प्यास, दातोंका हिलना इतने रोगोंका नाशकर सब शरीरको निर्मलकरेहै॥

कवलधारणकेगुण ।

वातपित्तकफघ्नस्य द्रव्यस्य कवलं मुखे । अर्द्धं निक्षिप्य संचर्व्य निष्ठीवेत्कवले विधिः ॥ कवलः कुरुते कांक्षां भक्षेषु हरते कफम् । तृषां शोषं च वैरस्यं दंतचालं च नाशयेत् ॥

अर्थ-वात, पित्त, कफ इनके नाशकर्ता औषधोंका कवल (ग्रास) मुखमें लेकर आधा चबायके थूक देवे । तो अन्नभक्षण करनेकी इच्छा हों तथा कफका नाशकरे । एवं शोष, प्यास और अरुचि इनका नाश करके हलतेहुए दातोंके उसी समय जमाय देवे ॥

प्रतिसारणम् (मंजन)

दंतजिह्वामुखानां च चूर्णकल्कावलेहकैः । शनैर्घर्षणमंगुल्या तदुक्तं प्रतिसारणम् ॥ वैरस्यं मुखदुर्गंधमुखशोषं तथा ।

तृषाम्। अरुचिं दंतपीडां च निहन्यात्प्रतिसारणम् ॥

अर्थ-दांत,जीभ,मुख इनको चूर्ण,कल्क और अवलेह ऐसे तीन प्रकारकी औषधीसे धीरे धीरे उँगलीसे रगडे उसको प्रतिसारण (मंजन) कहते हैं ये प्रतिसारण करनेसे मुखका कडुआपना,दुर्गंध,मुखका सूखना,प्यास,अरुचि और दांतोंकी पीडा इन सबको नाश करे है ॥

गंडूष कवलऔरप्रतिसारणकीविधि ॥

क्षीरस्नेहकषायादिद्रव्यैः संपूर्णमाननम्। आपूर्य स्थीयते तावद्विधिर्गंडूषधारणे ॥

अर्थ-दूध तथा घृतादि स्निग्धपदार्थ तथा काढा आदिशब्दसे पतली औषधको मुखमें भरके थोडी देर रहनेदे फिर उसको कुरला (कुल्ला) करदेवे, यह गंडूष लेनेकी विधी जाननी ॥

विषादिमेंगंडूष।

विषक्षाराग्निदग्धे च सर्पिर्धार्यं पयोथवा ॥

अर्थ-विषदोष-(संखियाआदि) और क्षारादिजन्य विकार तथा अग्निदग्धजन्यविकार इनसे घी अथवा दूध इनके कुल्ले करे ॥

दंतचालनमेगंडूष।

तैलसैंधवगंडूषो दंतचाले प्रशस्यते ॥

अर्थ-तिलका तेल और सैंधानिमक, दोनोंको मिलाय कुल्ले करे तो दांत हिलते हुए जमजावे ॥

मुखशोषपरगंडूष।

वैरस्यं मुखशोषंच गंडूषःकांजिको जयेत् ॥

अर्थ-मुखशोप तथा मुखकी विरसताको कांजीके कुल्ले नाश करते हैं ॥

कफपरगंडूष।

सिंधुत्रिकटुराजीभिरार्द्रकेणकफेहितः ॥

अर्थ-सैंधानिमक, सोंठ, मिरच, पीपल और राई इनका चूर्णकर अदरखक मिलायके कुल्ले करे तो कफदोष दूरहोय ॥

कफतथारक्तपित्तपरगंडूष।

त्रिफलामधुगंडूषः कफासृक्पित्तनाशनः ॥

अर्थ–त्रिफलेका चूर्ण सहतमें सानके उसके कुल्ले करे तो कफ और रक्त पित्त नष्टहो ॥

मुखपाकपरगंडूष ॥

दार्वी गुडूची त्रिफला द्राक्षा जात्याश्च पल्लवाः ।
यवासश्चेति तत्क्वाथःषष्ठांशःक्षौद्रसंयुतः ॥
शीतो मुखे धृतो हन्यान्मुखपाकं त्रिदोषजम् ॥

अर्थ–दारुहलदी, गिलोय, त्रिफला, दाख, चमेलीके पत्ते, जवासा इन औषधोंको समान भाग ले काढा करे तथा काढेका छटांभाग सहत मिलाय काढेको शीतल करके कुल्ले करेतो त्रिदोषजन्य मुखके छाले दूरहोवे ॥

यस्यौषधस्य गंडूषस्तथैव प्रतिसारणम् ।
कवलश्चापि तस्यैव ज्ञेयोऽत्रकुशलैर्नरैः ॥

अर्थ–जिन औषधोंका गंडूष उसीका प्रतिसारण करना तथा कवलभी उन्हीं औषधोंका होता है ऐसा कुशलवैद्योंको जानना चाहिये ॥

कवलकाप्रकार ।

केशरं मातुलिङ्गस्य सैंधवं व्योषसंयुतम् ।
हन्यात्कवलतो जाड्यमरुचिं कफवातजाम् ॥

अर्थ–बिजौरेकी केशर, सैंधानिमक तथा सोंठ, मिरच, पीपल इन औषधोंको एकत्र कर इनका कल्ककर कवल करेतो मुखकी जडता तथा कफवातकी अरुचिरोग दूरहोवे ॥

प्रतिसारणकाभेद ।

कल्कोऽवलेहश्चूर्णं च त्रिविधंप्रतिसारणम् ।
अंगुल्यग्रगृहीतं च यथास्वं मुखरोगिणाम् ॥

अर्थ–कल्क, अवलेह और चूर्ण इन भेदोंसे प्रतिसारण तीन प्रकारकाहै। इनमें मनुष्यको जैसी दोषकी तारतम्यताहो उसके सदृश उंगलीके अग्रभागसे लेकर जीभमें लगा और संपूर्ण मुखको रगडे ॥

प्रतिसारणचूर्ण ।

कुष्टं दार्विसमंगा च पाठा तिक्ता च पीतिका ।
तेजनी मुस्तलोध्रं च चूर्णं स्यात्प्रतिसारणम् ॥

रक्तस्रुतिं दंतपीडां शोथं दाहं च नाशयेत् ॥

अर्थ-कूट, दारुहलदी, धायके फूल, पाढ, कुटकी, हलदी, तेजबल, नगरमोथा और लोध ये नो औषधोंका चूर्ण करके जीभ तथा सब मुखमें उंगलीके अग्रभागसे लेकर रगडे, तो दांतोंके मसूढोंसे जो रुधिर गिरे वह, दांतोंकी पीडा, सूजन, दाह ये संपूर्णरोग दूर होवे। इस चूर्णको प्रतिसारण (मंजन) कहते हैं ॥

गंडूषादिकोंकेहीनयोगहोनेकेलक्षण।

हीनयोगात्कफोत्क्लेशो रसाज्ञानाऽरुची तथा।
अतियोगान्मुखे पाकः शोषस्तृष्णा क्लमो भवेत् ॥

अर्थ-गंडूषादिका हीनयोग होनेसे कफकी आधिक्यता होतीहै। तथा मधुरादिक रसोंका यथार्थ स्वाद मालूम नहींहो। तथा अन्नादिकमें अरुचि होय। तथा गंडूषादिका अतियोग होनेसे। मुखपाकके समान मुख उपड आवे तथा शोष और प्यास ये लक्षण होतेहैं ॥

शुद्धगंडूषकेलक्षण।

व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यं वक्रलाघवम्।
इंद्रियाणां प्रसादश्च गंडूषे शुद्धिलक्षणम् ॥

अर्थ-गंडूषादिकका उत्तमयोग होनेसे मुखसंबधी व्याधिका नाश अंतःकरणमें संतोष, मुखमें निर्मलता और हलकापना तथा रसनादि इन्द्रियोंमें प्रसन्नता ये लक्षण होतेहैं। ये शुद्धगंडूष होनेके लक्षण जानने ॥

इतिगंडूषादिविधिः समाप्तः।

अथनेत्ररोगचिकित्साविधिः।

नेत्रअच्छेहोनेकेउपचार।

सेक आश्चोतनं पिंडी विडालस्तर्पणं तथा।
पुटपाकोंजनं चैभिः कल्कैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥

अर्थ-सेक, आश्चोतन, पिंडी, विडाल, तर्पण, पुटपाक और अंजन ये सातप्रकार नेत्ररोगमें कहेहैं इनका कल्क करके जिस प्रकार नेत्ररोगमें उपचार करनेका कहाहै उसप्रकार करना चाहिये ॥

सेकके लक्षण।

सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हितः।
मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेहश्चतुरंगुलात् ॥

अर्थ—मनुष्यके नेत्रबंदकर दूध, घी, रस इत्यादिकोंका सार, नेत्रपर चार अंगुलके अंतरसे बारीक धार देवे इसे सेक कहतेहैं ॥

सेकके भेद।

सचापि स्नेहने वाते रक्ते पित्ते च रोपणः।
लेखनश्च कफे कार्यस्तस्य मात्राऽधुनोच्यते ॥

अर्थ—वातरोगमें स्नेहन सेक करे, रक्तपित्तके कोपमें रोपण सेक करे तथा कफरोगमें लेखन सेक करना चाहिये ॥

सेककी मात्रा।

षड्वाक्शतैःस्नेहनेषु चतुर्भिश्चैव रोपणे।
वाक्शतैश्च त्रिभिः कार्यः सेके लेखनकर्मणि ॥

अर्थ—स्नेहनकर्ममें छःसोवाक् होनेपर्यंत नेत्रोंपर तरडा जिस औषधका देना कहा वो देवे। रोपणकर्ममें चारसौ वाक्पर्यंत धार देनी। तथा लेखनकर्ममें तीनसौ वाक्पर्यंत धार देनी चाहिये ॥

सेककर्मकाकाल।

कार्यस्तु दिवसे सेको रात्रौ चात्ययिके गदे ॥

अर्थ—यदि नेत्रमें सेक करना होयतो दिनहीमें करे, कदाचित् रोगकी आधिक्यता होयतो रात्रीमें भी करे, ऐसी शास्त्रकी आज्ञाहै ॥

वाताभिष्यंदादिरोगपरसेक।

एरंडत्वक्पत्रमूलैः शृतमाजं पयो हितम्।
सुखोष्णं सेचनं नेत्रे वाताभिष्यंदनाशनम् ॥

अर्थ—सुरतीअंडकी छाल,पत्ते,जड इनसबको बकरीके दूधमें औटायके फिर सुहाते२गरमदूधकी धार वाताभिष्यंदरोग दूरकरनेके वास्ते नेत्रोंमें देय

तथा दूसरा क्रम।

परिषेके हितं नेत्रे पयः कोष्णं ससैंधवम्।

रजनीदारुसिद्धं वा सैंधवेन समन्वितम् ॥
वाताभिष्यंदशमनंहितं मारुतपर्यये।
शुष्काक्षिपाके च हितमिदं सेचनकं तथा ॥

अर्थ-बकरीकेदूधमें सैंधानिमक डाल गरमकर सहन होय ऐसा गरम२ धार नेत्रोंपर गेरे अथवा हलदी, देवदार, सैंधानिमक इनका चूर्णकर उसको दूधमें डाल गरमकर सुहाता२ गरम नेत्रोंपर धार देय तो वाताभिष्यंदरोग और वातविपर्यय तथा शुष्काक्षिपाक ये रोग दूरहोय ॥

पित्त, रक्त और अभिघातपरसेक।

सावरं मधुकं तुल्यं घृतभृष्टं सुचूर्णितम्।
छागक्षीरे घृतं सेकात् पित्तरक्ताभिघातजित् ॥

अर्थ-पठानीलोध और मुलहटी इन दोनों औषधोंको समान भागले घीमें भून चूर्णकर बकरीके दूधमें डालके उस दूधकी सुहाती गरम २ धार नेत्रोंपर डाले तो पित्तविकार, रक्तविकार और अभिघातजन्य विकार ये सब दूरहोवे ॥

रक्ताभिष्यंद ।

त्रिफलालोध्रयष्टीभिः शर्कराभद्रमुस्तकैः।
पिष्टैःशीतांबुनासेको रक्ताभिष्यंदनाशनः ॥

अर्थ-हरड, बहेडा, आमला, लोध, मुलहटी, खांड, नागरमोथाका भेद, भद्रमोथा ये सब औषध समान भागले शीतल जलमें पीस उसपानीकी नेत्रोंपर धारदेवे तो रक्ताभिष्यंद दूरहोय ॥

तथादूसरा।

लाक्षामधुकमंजिष्टा लोध्रकालानुसारिवा।
पुंडरीकयुतः सेको रक्ताभिष्यंदनाशनः ॥

अर्थ-लाख, मुलहटी, मजीठ, लोध, सारिवा और सपेदकमल इन औषधोंको पानीमें पीसउस पानीकी नेत्रोंमें धारदेवे तो रक्ताभिष्यंद (रुधिरके कोपसे आंख दूखने आईहो) सो दूरहो ॥

नेत्रशूलमेंसेक।

श्वेतलोध्रं घृतेभृष्टं चूर्णितं पटविस्रुतम्।

उष्णांबुना विमृदितं सेकाच्छूलघ्नमंबके ॥

अर्थ-पठानी लोधको घीमें भून कूटकर कपडछान चूर्णकर गरम जलमें पीस उस पानीकी नेत्रोंपर धार डाले तो नेत्रका दरद दूरहो कोई इसकी पोटली बनाय गरमपानीमें भिगोयके नेत्रको सेकतेहैं जिस्से नेत्रपीडा जाती रहती है ॥

आश्चोतनकेलक्षण ।

अथ आश्चोतनं कार्यं निशायां न कथंचन ।
उन्मीलितेक्षिण दृङ्मध्ये बिंदुभिर्द्व्यंगुलाद्धितम् ॥

अर्थ-मनुष्यके नेत्रोंको उघाड नेत्रमें दोअंगुलपर्यंत दूध काढा इत्यादिकी बूंद डाले इसको आश्चोतन कहते हैं यह आश्चोतनकर्म रात्रिमें न करे ॥

अथआश्चोतनविधिः ।

क्वाथक्षौद्रासवस्नेहबिंदूनां यत्तु पातनम् ।
यद्द्व्यंगुलोन्मिते नेत्रे प्रोक्तमाश्चोतनं हि तत् ॥

अर्थ-दूखते नेत्रको दोअंगुल प्रमाण खोलके उसमें काढा, सहत, आसव तथा स्नेह पदार्थ की बुँद डाले उसको आश्चोतन क्रिया कहते हैं ॥

लेखनादिकआश्चोतनमें कितनी बूंदडाले ।

बिन्दवोष्टौ लेखनेषु स्नेहने दशबिन्दवः । रोपणे द्वादशप्रोक्तास्तेशीते कोष्णरूपिणः ॥ उष्णे च शीतरूपाः स्युः सर्वत्रैष विनिश्चयः ॥

अर्थ-लेखनकर्ममें नेत्रमें आठबूंद डाले स्नेहनकर्म होयतो दशबिंदु डाले रोपणकर्म होनेसे बारह बिंदु डाले बोबूंदशीतल और नेत्रोंको सुहातीरगरम २ डालनी चाहिये और यदि गरमीके दिन होयतो शीतल २ बूंद डाले ॥

वातादिकमेंआश्चोतन ।

वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलम् ।
तिक्तोष्णरूक्षं च कफे क्रमादाश्चोतनं हितम् ॥

अर्थ-वादीके रोगमें कटू और चिकना ऐसा आश्चोतन करे। पित्तरोग होय तो मधुर और शीतल ऐसाकरे । कफरोग होयतो कटु गरम, रूक्ष ऐसा आश्चोतन करना चाहिये इसप्रकार आश्चोतनकर्म करना हितकारी है ॥

आश्चोतनकी मात्राकाक्रम ।

आश्चोतनानां सर्वेषां मात्रास्याद्वाक्शतं हितम् ।
निमेषोन्मेषणं पुंसामंगुल्योश्छोटिकाथवा ॥
गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृताबुधैः ॥

अर्थ–मनुष्यके आंखोंके पलक मूँदना और खुलना अथवा चुटकी बजाना अथवा गुरु (दीर्घ) अक्षरका उच्चारण करना इनमें जितनी देरी लगती है उसकाल (देरी) को एक वाङ्मात्रा कहते हैं, ऐसी सौ वाङ्मात्रा संपूर्ण आश्चोतनोंमें हितकारक जाननी । अर्थात् सौवाक् पर्यंत उक्त औषधोंकी बूंद नेत्रोंमें धारण करनी ॥

वाताभिष्यंदपरआश्चोतन ।

बिल्वादिपंचमूलेन बृहत्येरंडशिग्रुभिः ।
क्वाथआश्चोतने कोष्णो वाताभिष्यंदनाशनः ॥

अर्थ–बेलहै आदिमें जिनके ऐसी पांच औषधोंके मूल, कटेरी, अंडकीजड, सहेंजनेके जडकी छाल इन सब औषधोंका काढाकरके जैसा २ सहन होय ऐसी गरम बूंद नेत्रमें डाले,तो वाताभिष्यंद रोग दूरहो॥

वायुजन्यवातरक्तापित्तजन्यअभिष्यंदपरआश्चोतन ।

अंबुपिष्टैर्निंबुपत्रैस्त्वचं लोध्रस्य लेपयेत् ।
प्रतापवह्निनापिष्ट्वा तद्रसो नेत्रपूरणात् ॥
वातोत्थं रक्तपित्तोत्थमभिष्यंदं विनाशयेत् ॥

अर्थ–कडुए नीमके पत्तोंको जलमें पीसके लोधकी छाल पर लेपकरे, फिर उस छालको अग्निमें तपावे पीछे पीसके उसका रस निकाल नेत्रोंमें कुछ गरम २ बूंद डाले तो वातजन्य, रक्तपित्तजन्यअभिष्यंद दूर हो ॥

सर्वअभिष्यंदोंपरआश्चोतन।

त्रिफलाश्चोतनं नेत्रे सर्वाभिष्यंदनाशनम् ॥

अर्थ–त्रिफलेके काढेकी गरम २ सुहाती बूंद नेत्रोंमें डाले तो सर्वप्रकारके अभिष्यंद दूरहों ॥

---

१ बेल, अरनी, टेंटू, पाढल, कंभारी ये बिल्वादि पंचमूल जानना इसीको बृहत्पंचमूल कहते हैं ।

रक्तपित्तजन्यअभिष्यंदपरआश्चोतन ।

स्त्रीस्तन्याश्चोतनं नेत्रे रक्तपित्तानिलार्त्तिजित् ।
क्षीरसर्पिर्घृतं वापि वातरक्तरुजं जयेत् ॥

अर्थ-स्त्रीके दुधके बूंदको नेत्रोंमें डाले तो रक्तपित्त और वायु इनकी पीडाको दूरकरे । उसी प्रकार दूधके ऊपरकी मलाई और घी इनकी बूंद अथवा फाये नेत्रोंमें बांधे तो वातरक्त संबंधी पीडादूरहो ॥

पिंडिकाकेलक्षण ।

पिंडी कवलिका प्रोक्ता बध्यते पट्टवस्त्रकैः ।
नेत्राभिष्यंदयोग्या सा व्रणेष्वपि निबध्यते ॥

अर्थ-नेत्ररोगनाशक औषधको पीस टिकिया करके नेत्रोंपर धरके कपडेकी पट्टीसे उसको बांधदेवे, इसको पिंडी अथवा कवलिका कहते हैं यह पिंडी नेत्राभिष्यंदरोगके योग्यहै।तथा व्रणकेऊपरभी बांधनाकहाहै ॥

स्निग्धोष्णा पिंडिका वाते पित्ते सा शीतला मता ।
रूक्षोष्णा श्लेष्मणि प्रोक्ता विधिरुक्तो बुधैरयम् ॥

अर्थ-वातव्याधिपर चिकनी और गरम,पित्तपर शीतल तथा कफपर रूखी और गरम ऐसी पिंडी बाँधनेकी विधि कही है ॥

नेत्राभिष्यंदमेंशिरोविरेचन ।

अभिष्यंदेऽधिमंथे च संजाते श्लेष्मसंभवे ।
स्निग्धस्विन्नोत्तमांगस्य शिरस्तीक्ष्णैर्विरेचयेत् ॥

अर्थ-कफसंबंधी अभिष्यंद तथा अधिमंथ रोगीके मस्तकमें तेल चुपड पसीने निकाले फिर मस्तक शोधन करनेको तीक्ष्ण औषध करके नाकमें नस्य देवे ॥

उपायांतर ।

अधिमंथेषु सर्वेषु ललाटे वेधयेच्छिराम् ।
अशांते सर्वथा मंथे भ्रुवोस्तु परिदाहयेत् ॥

अर्थ-संपूर्ण अधिमंथमें (नेत्रदूखनेमें) मस्तककी शिरा वेधे (फस्त खोले) तो नेत्रदूखना शांतिहो । यदि सब उपाय करनेपरभी आंख दूखनेसे न रहे तो भ्रुकुटी (भौंह) में दाग देवे ॥

वाताभिष्यंदकायत्न।

वाताभिष्यंदशान्त्यर्थं स्निग्धोष्णा पिंडिका भवेत् ॥

अर्थ–संपूर्ण अभिष्यंदरोगमें नेत्रोंकी पीडा दूर करनेको औषध कहीं है उनकी टिकिया करके बांधे।तथा वाताभिष्यंदमें चिकनी और गरम टिकिया बांधनी ॥

वाततथापित्ताभिष्यंदकायत्न।

एरंडपत्रमूलत्वङ्निर्मिता वातनाशिनी।
पित्ताभिष्यंदनाशाय धात्रीपिंडी सुखावहा ॥

अर्थ–अंडके पत्ते, छाल, जड इन सबको एकत्र पीस टिकिया बनाय वाताभिष्यंद दूर करनेको नेत्रोंपर बांधनी। पित्ताभिष्यंद दूर करनेका आमलोंको पीस टिकिया करके नेत्रोंपर बांधे तो नेत्रपीडा दूरहोवे ॥

पित्ताभिष्यंदपरदूसरीपिंडी।

महानिंबफलोद्भूता पिंडी पित्तविनाशिनी ॥

अर्थ–वकायनके फलको पीस टिकिया बनाय पित्ताभिष्यंद रोगवाले-के नेत्रोंपर बांधे तो पीडा दूरहो ॥

श्लेष्माभिष्यंदपरपिंडी।

शिग्रुपत्रकृतापिंडी श्लेष्माभिष्यंदनाशिनी।

अर्थ–सहेंजनेके पत्तोंकी टिकिया बनायके बांधे तो कफसे नेत्रदूखना दूर होय।

कफपित्ताभिष्यंदपरपिंडी।

निंबपत्रकृता पिंडी श्लेष्मपित्तहरा भवेत्।
त्रिफला पिंडिका प्रोक्ता नाशने श्लेष्मपित्तयोः॥

अर्थ–नीमके पत्तोंकी टिकिया बनायके रोगीके नेत्रोंपर बांधेतो कफपित्ताभिष्यंदकी पीडा दूरहो। तथा त्रिफलेकी टिकिया बांधेतो कफ-पित्ताभिष्यंद नाशहो ॥

रक्ताभिष्यंदपरपिंडी।

पिष्ट्वा कांजिकतोयेन घृतभृष्टं च पिंडिका।
लोध्रःप्रहरति क्षिप्रमभिष्यंदमसृग्भवम् ॥

अर्थ–लोधको कांजीसे पीसके टिकिया बनाय घीमें सेकके नेत्रोंपर बांधे तो रक्ताभिष्यंद (रुधिरकी दुष्टतासे जो नेत्र दूखनेको आते हैं वो) दूरहो ॥

सूजनऔरखुजलीआदिपरपिंडी ।

शुंठोनिंबदलैःपिंडी सुखोष्णा स्वल्पसैंधवा ।
धार्या चक्षुषि संयोगाच्छोथकंडूव्यथापहा ॥

अर्थ–सोंठ और नीमके पत्तोंको पीस उसमें थोडा सैंधानिमक डाल टिकिया बनाय गरमकरके नेत्रोंपर बांधे तो नेत्रोंका सूजना नेत्रोंकी खुजलीकी पीडाको दूरकरे ॥

विडालककेलक्षण ।

विडालको बहिर्लेपो नेत्रपक्ष्मविवर्जितः ।
तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखलेपविधानवत् ॥

अर्थ–नेत्रके पलकोंको मूंदके ऊपर सर्वत्र लेप करनेको विडालक कहते हैं । इस लेपकी मात्रा मुखलेपकी विधिके माफिक जाननी, अर्थात् जैसे मुखलेप करनेमें जो मात्रा लेनी लिखी है वही मात्रा इस विडालककी लेवे॥

सर्वनेत्ररोगोंमेंलेप ।

यष्टीगैरिकसिंधूत्थदार्वीतार्क्ष्यैःसमांशिकैः ।
जलपिष्टैर्बहिर्लेपःसर्वनेत्रामयापहः ॥

अर्थ–मुलहटी, गेरू,सैंधानिमक, दारुहलदी और खपरिया ये पांच औषध बराबरले पानीसे पीस नेत्रोंके बाहर २ लेपकरे तो सर्व अभिष्यंद (नेत्रोंका दूखना) दूरहो ॥

तथादूसरालेप ।

रसांजनेन वा लेपःपथ्याविश्वदलैरपि । कुमारिका ग्निपत्रैर्वा दाडिमीपल्लवैरपि ॥ वचा हरिद्रा विश्वैर्वा तथा नागरगैरिकैः ॥

अर्थ–रसोतको जलसे पीस लेप करे।उसीप्रकार हरड, सोंठ, तमालपत्र इन तीनों औषधोंको जलसे पीस लेपकरे।अथवा घीगुवार और चीतेके पत्तों को एकत्र जलसे पीस लेपकरे।अथवा अनारके पत्तोंको पीस लेपकरे अथवा वच, हलदी और सोंठ इन तीन औषधोंको जलसे पीस लेपकरे उसीप्रकार सोंठ और गेरू इनको जलमें पीसके नेत्रके बाहरले भागमें चारों तरफ लेप करे तो सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूरहो । ये छःलेप पृथक् २ कहे हैं ॥

तथातीसरालेप।

दग्ध्वाग्नौ सैंधवं लोध्रं मधूच्छिष्टयुते घृते।
पिष्टमंजनलेपाभ्यां सद्यो नेत्ररुजापहम्॥

अर्थ–सैंधानिमक और लोध इन दोनों औषधोंको अग्निमें भून मोम और घी एकत्र कर उसमें वो औषध पीसके नेत्रोंमें अंजन करे और पूर्वोक्त औषधोंका नेत्रके बाहर लेपकरे तो नेत्रसंबंधी पीडा तत्काल दूरहोय

चतुर्थलेप।

लोहस्य पात्रे संघृष्टो रसो निंबुफलोद्भवः।
किंचिद्घनो बहिर्लेपान्नेत्रबाधां व्यपोहति॥

अर्थ–लोहेके पात्रमें नींबूके रसको घोटे जब गाढा होजावे तब नेत्रके बहिर्भागमें लेप करे तो नेत्रसंबंधी सर्वपीडा दूरहो॥

अर्मरोगपरलेप।

संचूर्ण्य मरिचं केशराजं स्वरसमर्दनात्।
लेपनादर्मणांनाशंकरोत्येषप्रयोगराट्॥

अर्थ–काली मिरचोंको भांगरेके रसमें पीसके नेत्रोंपर लेप करे, तो शुक्लार्म और अधिमांसार्म इत्यादिक नेत्ररोगोंमें जो अर्मरोग है वो दूरहो

अंजननामिकापरप्रतिसारण।

स्विन्नां भित्वा विनिष्पीड्य भिन्नामंजननामिकाम्॥
शिलैकानतसिंधूत्थैःसक्षौद्रैःप्रतिसारणम्॥

अर्थ–नेत्रोंकी-पलकोंमें अंजननामिका नामकी फुंसी होतीहै उसको आंजनी कहतेहैं, उस फुंसीका वफारेसे पसीने निकालके चीरडाले फिर उसका मवाद निकाल पश्चात् मनसिल, इलायची, तगर, सैंधानिमक इन चार दवाइयोंका चूर्णकर सहतमें मिलाय उस फुंसीमें प्रतिसारण करे अर्थात् ये औषध उस फुंसीपर चुपडदेवे तो आंजनी फुंसी दूरहो॥

नेत्ररोगमेंतर्पण।

अथ तर्पणकं वच्मि नेत्रतृप्तिकरं परम्। यद्रूक्षं परिशुष्कं च नेत्रं कुटिलमाविलम्॥ शीर्णपक्ष्मशिरोत्पातकृच्छ्रोन्मीलनसंयुतम्। तिमिरार्जुनशुक्राद्यैरभिष्यंदाधिमंथ-

कैः ॥ शुक्राक्षिपाकशोथाभ्यां युक्तं वातविपर्ययैः । तन्ने- त्रतर्पणे योज्यं नेत्रकर्मविशारदैः ॥

अर्थ–नेत्रमें तृप्तिकरता ऐसा तर्पण कहते हैं; जिन नेत्रोंमें रूखापना, शुष्कता, टेढापना और गदलाहटपना है ऐसे नेत्र तथा जिसके पल- कोंके बाल गिर गएहो, शिरोघात, कृच्छ्रोन्मीलन, (कठिनसेनेत्रमुंदे) तिमिर, अर्जुन, शुक्र, (मोतियाबिंद) अभिष्यंद, अधिमंथ, शुक्राक्षि- पाक, सूजन और वातविपर्यय इन रोगसे व्याप्त नेत्ररोगीके तर्पण करे अर्थात् तृप्ति करता औषधीकी योजना करे ॥

हीनाधिकतर्पणमेंउपचार ।

पूर्णे चापांगतःस्नेहं स्रावयित्वाक्षिशोधयेत् ।
स्विन्नेन यवपिष्टेन स्नेहवीर्येरितं ततः ॥
यथास्वं धूमपानेन कफमस्य विरेचयेत् ।
एकाहं वा त्र्यहं वापि पंचाहं तर्पणं चरेत् ॥

अर्थ–नेत्र पूर्णहोनेके पश्चात् अपांग (नेत्रकोण) के द्वारा स्नेह बाहर निकालके नेत्रका शोधन करे । फिर स्नेहवीर्यसे दुष्टनेत्रोंका जौंके चूनको भिगो वाफदेकर अर्थात् कुछ गरम करके नेत्रोंके ऊपर बांधे अथवा धूमपान करके उसके कफको निकाले, इस प्रकार एक अथवा तीन अथवा पांचदिन तर्पण करे ।

तर्पणकानिषेध ।

दुर्दिनात्युष्णशीतेषु चिंतायासभ्रमेषुच ।
अशांतोपद्रवे चाक्ष्णि तर्पणं न प्रशस्यते ॥

अर्थ–जिसदिन आकाश बद्दलोंसे घिरा हुआहो, अत्यंत शरदी या गरमीहो, शरीरमें चिंताहो, परिश्रम और भ्रम ये उपद्रव होनेसे तथा नेत्रसंबंधी शूलादिक उपद्रव शांत न हुए होवे तो तर्पण न करे ॥

तर्पणका विधान ।

वातातपरजोहीने देशे चोत्तानशायिनः । आधारौमाष- चूर्णेन क्लिन्नेन परिमंडलौ ॥ समौ दृढावसंबाधौ कर्त्तव्यौ नेत्रकोशयोः । पूरयेद्घृतमंडेन विलीनेन सुखोदकैः ॥ अथवा शतधौतेन सर्पिषा क्षीरजेन वा । निमग्ना-

न्यक्षिपक्ष्माणि यावत्स्युस्तावदेव हि ॥ पूरयेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः ॥

अर्थ-पवन, धूप, धूल ये जिसजगे न हो उस स्थानमें मनुष्यको चित्त सुलायके नेत्र कोशोंमें भीगे उडदोंके चूनका गोल थामलासा बनावे फिर नेत्रोंको बंदकर उनके ऊपर पतला घी अथवा मंड (पेया) अथवा गरम जल अथवा सौवारका धुला हुआ घी अथवा दूध येपदार्थ जबतकनेत्रोंके पलककी वरुनी न डूबे तबतक नेत्रोंमें डाले, फिर धीरे२नेत्रोंको उघाडे, इसप्रकार करने को तर्पण कहते हैं इस्से नेत्र तृप्तहोते हैं ॥

तर्पणकीमात्राकाप्रमाण ।

धारयेद्वर्त्मरोगेषु वाङ्मात्राणां शतं बुधाः । स्वच्छे कफे संधिरोगे मात्रा पंचशतं हितम्॥ शुक्ले च षट्शतं कृष्णरोगे सप्तशतं मतम् । दृष्टरोगेष्वष्टशतमधिमंथे सहस्रकम् । सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेवंहि तर्पणम् ॥

अर्थ-नेत्रसंबंधी पलकोंके रोगमें १०० सौ वाङ्मात्र तर्पणरूप औषधको नेत्रोंमें धारण करे, केवल कफका रोग होय अथवा नेत्रकी संधिगत रोग होनेसे ५०० पांचसौ वाक्पर्यंत, नेत्रके सपेद भागमें रोग होनेसे ६०० छः सौ तथा काले भागमें रोग होनेसे ७०० सातसौ दृष्टिरोग होयतो ८०० आठसौ।अधिमंथ रोग होयतो १०००एकहजार।वातका रोग होयतो १००० एक रजार वाङ्मात्र होने पर्यंत औषधको नेत्रोंपर धारण करे । इसप्रकार तर्पणके धारण का प्रमाण कहा ॥

तर्पणसेस्नेहकेअधिकयोगद्वाराकफाधिक्यहोनेकाउपाय ।

स्विन्नेन यवपिष्टेन स्नेहवीर्येरितं ततः ।
यथास्वं धूमपानेन कफमस्य विशोधयेत् ॥

अर्थ-तर्पणके स्नेहवीर्य करके उत्पन्न हुआ जो कफ(नेत्रोंमें कीचड)उसको भीगे जौओंको पीस उससे तथा धूमपान करके शोधन करना चाहिये॥

तर्पणकी मर्यादा ।

एकाहं वा त्र्यहं वापि पंचाहं चेष्यते परम् ॥

अर्थ-नेत्रमें तर्पण प्रयोग करना होयतो एकदिन अथवा तीनदिन अथवा पांचदिन पर्यंत करे, यह उत्कृष्ट प्रमाण जानना ॥

तर्पणकरकेतृप्तकेलक्षण ।

तर्पणे तृप्तिलिंगानि नेत्रस्येमानि भावयेत् । सुखस्वप्नाववोधत्ववैशद्यं वर्णपाटवम्। निवृत्तिर्व्याधिशांतिश्च क्रियालाघवमेव च ॥

अर्थ-सुखपूर्वक निद्रा आवे,सुखपूर्वक जागे,नेत्रोंमें निर्मलता होय,नेत्रोंकी कांति उत्तमहोय,नजर साफ होवे,रोगका नाशहोय और नेत्रोंके खोलने मूंदनेमें हलकापना आवे ये लक्षण तर्पण करके नेत्रतृप्त हुए प्राणीके होते हैं ॥

तर्पणअत्यंतहोनेकेलक्षण ।

गुर्वाविलमतिस्निग्धमश्रुकंडूपदेहवत् ।
घर्षतोदयुतं नेत्रमतितर्पितमादिशेत् ॥

अर्थ-भारी, गदले, अतिचिकने, आंसू, खुजली,कीचडसे चिकटे हुए, घर्षण, पीडा ये लक्षण अतितर्पित नेत्रवाले प्राणीके जानने ॥

हीनतर्पणकेलक्षण ।

आस्रावशोफरागाढ्यमुपदेहसमाकुलम् ।
रूक्षमस्राविलं रुग्णं नेत्रं स्याद्धीनतर्पितम् ॥

अर्थ-पानी गिरना, सूजन, लाली, चिकटेहुए, रूखे, रक्त, गदले और पीडायुक्त ये लक्षण जिसके नेत्रोंमें होय उसको हीनतर्पित जानना । अर्थात् ठीक तर्पण नहीं हुआ ॥

तर्पणसेहीनाधिक्यस्निग्धकायत्न ।

अनयोर्दोषबाहुल्यात्प्रयतेत चिकित्सिते ।
रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामेतयोः स्यात्प्रतिक्रिया ॥

अर्थ-अधिकतृप्त और हीनतृप्त हुए रोगी वैद्य रुक्ष स्निग्ध उपचार करके चिकित्साकरे अर्थात् अधिकतृप्तकी रूक्ष और हीन तृप्तकी स्निग्ध चिकित्सा करनी चाहिये ॥

पुटपाक ।

अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामि पुटपाकस्य साधनम्। द्वौ बिल्वमात्रौ

मांसस्य पिंडौ स्निग्धौ सुपेषितौ ॥ द्रव्याणां बिल्वमात्रं तु द्रवाणां कुडवो मतः । तदेकस्थं समालोडच पत्रैः सुपरिवेष्टितम् ॥ पुटपाकेन तत्पक्त्वागृह्णीयात्तद्रसंबुधः। तर्पणोक्तविधानेन यथावदुपचारयेत् ॥

अर्थ–अब इसके उपरांत हम पुटपाक साधन (बनाना) कहेंगे, हरिणादिकोंका मांस दो बिल्व लेके उसको घृतादि स्नेह पदार्थमें मिलाय बारीक पीसे,तथा सूखी औषध जो कहीहै वो एक बिल्व प्रमाण ले तथा सहत, पानी इत्यादिक द्रवपदार्थ एक कुडव प्रमाण ले, इस सबको उस पूर्वोक्त मांसमें मिलायके गोला बनावे, फिर जामुन अथवा आम इत्यादिके पत्ते उस गोलेके चारों तरफ लपेट देवे फिर उसपर मिट्टीका लेप करे,पश्चात् पुटपाककी रीतिसे गोला को अग्निमें भूनके बाहर निकाले मिट्टी पत्ते दूरकर उस गोलेको निचोड़ कर रस निकाल लेवे, इस रसको तर्पणकी विधिसे ऊपर कहे प्रमाण नेत्रोंमें डाले तो यह सर्वनेत्र विकारोंको दूरकरे ॥

पुटपाकसंबंधीरसनेत्रमेंडालनेकीविधि।

दृष्टिमध्ये निषेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः।
स्नेहनो लेखनश्चैव रोपणश्चेति सत्रिधा ॥

अर्थ–वह पुटपाक संबंधी रस स्नेहन, लेखन और रोपण इन भेदोंकरके तीन प्रकारकाहै। इस मनुष्यको सीधा चित्त लिटायकर नेत्रोंमें दृष्टिके मध्यभागमें नित्य डालना चाहिये ॥

स्नेहनादिभेदसेपुटपाककीयोजना।

हितः स्निग्धोतिरूक्षस्य स्निग्धस्यापिहि लेखनः।
दृष्टेर्बलार्थमितरः पित्तासृक्व्रणवातनुत् ॥

अर्थ–रूखे नेत्रवालेको स्निग्धपुटपाक, स्निग्ध नेत्रवालेको लेखनपुटपाक तथा दृष्टिमें बल आनेके वास्ते रोपणपुटपाक की योजना करे वो पुटपाक नेत्रसंबंधी दुष्टहुए जे पित्त रक्त व्रण और वायु इनको दूरकरे इस पुटपाककी विधि आगेके श्लोकमें कहते हैं ॥

स्नेहपुटपाक।

सर्पिर्मांसवसामज्जामेदस्वाद्वौषधैः कृतः।

स्नेहनः पुटपाकस्तु धार्यो द्वेवाक्शते दृशोः ॥

अर्थ-घी, हरिणादिकोंके मांस, मज्जा और मेद ये सब घीमें मिलाय के पीसे और काकोल्यादि गणकी औषधोंका चूर्ण कर उस मांसादिकमें मिलाय देवे फिर एक गोला बनाय जामुन, आम इत्यादिकोंके पत्तोंमें लपेट मिट्टी चढाय पुटपाककी विधिसे अग्नि देवे फिर उस गोलेको अग्निसे निकाल मिट्टी और पत्ते दूरकरके निचोड रस निकाल लेवे, इस रसको नेत्रोंमें डाले और २०० वाङ्मात्र पर्यंत धारणकरे । इसको स्नेहन-पुटपाक कहते हैं आगे लेखनपुटपाक कहते हैं ॥

लेखनपुटपाक ।

जांगलानां यकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसंयुतैः ।
कृष्णलोहरजस्ताम्रशंखविद्रुमसिंधुजैः ॥
समुद्रफेनकासीसस्रोतोजलधिमस्तुभिः ।
लेखने वाक्शतं धार्यस्तस्य तावद्विधारणम् ॥

अर्थ-हरिणादिक जंगली जीवोंका मांस,लोहचूर्ण (ताम्रचूर्ण) शंख, मूंगा, सैंधानिमक, समुद्रफेन, कसीस, सुरमा और बकरीके दहीकी छाँछ डालके पीस गोला करे, उसको पूर्वोक्त पुटपाककी विधिसे पचाय रस निकाल नेत्रोंमें डाले और सौ १०० मात्रा होनेपर्यंत धारणकरे इसको लेखनपुटपाक कहते हैं ॥

रोपणपुटपाक ।

स्तन्यजांगलमध्वाज्यतिक्तकद्रव्यपाचितः । लेखनात्त्रि
गुणो धार्यः पुटपाकस्तु रोपणः ॥ वितरेत्तर्पणोक्तांतु
क्रियां व्यापत्तिदर्शने ॥

अर्थ-स्त्रीका दूध, हरिणादिक जंगली जीवोंका मांस, सहत और घी, कुटकी ये सब उसमांसमें मिलाय पीसके गोला करे, उसको पूर्वोक्त पुटपाककी विधिसे परिपक्व कर बाहरनिकाले तथा मिट्टी और पत्ते दूर-करे निचोड रस निकालले इसको नेत्रोंमें डाल तीनसौ ३०० वाक्पर्यंत धारणकरे, इसको रोपण पुटपाक कहतेहैं। यदि पुटपाकके आधिक्य अथवा न्यूनताके कारण भारीपना तथा निस्तेजता आदि उपद्रव होवे तो तर्पणमें जैसी क्रिया कहआयेहैं उसके माफिक यत्न करना चाहिये ॥

दोषपक्कहोनेसेअंजनऔरअंजनकासाधारणविधान।

अथ संपक्कदोषस्य प्राप्तमंजनमाचरेत् । हेमंते शिशिरे चैव मध्याह्नेंजनमिष्यते ॥ पूर्वाह्णे चापराह्णेच ग्रीष्मे शरदिचेष्यते। वर्षासु नाभ्रे नात्युष्णे वसंतेचसदैवाहि ।

अर्थ--जिसके दोष परिपक्क हो उसप्राणीके अंजन लगाना होय तो पांचदिनके पश्चात् लगावे, अंजनकी साधारणविधि--हेमंतऋतु और शिशिरऋतु इनमें दोप्रहर दिनचढे अंजन लगावे, ग्रीष्मऋतु और शरद्ऋतु इनमें प्रातःकाल अथवा सायंकालमें अंजन लगावे, वर्षामें और अत्यंत गरमीमें अंजन न लगावे। एवं वसंत ऋतुमें सबकालमें आंजन (आँजना) उत्तम है ॥

अंजनकेभेद।

लेखनं रोपणं चैव तथा तत्स्नेहनांजनम् । लेखनं क्षार तीक्ष्णाम्लरसैरंजनमिष्यते ॥ कषायतिक्तरसयुक् सस्नेहं रोपणं मतम् । मधुरस्नेहसंपन्नमंजनं च प्रसादनम् ॥

अर्थ–लेखन, रोपण और स्नेहन इनभेदोंसे अंजन तीन प्रकारकाहै। तिनमें खार, तीक्ष्ण और खट्टा ये रस जिस अंजनमें हैं उसको लेखनांजन कहतेहैं तथा कषेला, कडुआ ये दो रस करके युक्त जो अंजन है तथा स्नेहयुक्तहो उसको रोपणांजन कहते हैं और जो मधुररससंपन्न तथा स्नेहयुक्त हो उसको स्नेहनांजन जानना ॥

अंजनकेगुटिकादितीनभेद।

गुटिका रसचूर्णानि त्रिविधान्यंजनानि च ।
कुर्याच्छलाकयांगुल्या हीनानि च यथोत्तरम् ॥

अर्थ–गोली, रस और चूर्ण इन भेदोंसे अंजन तीन प्रकारका है। इन अंजनोंमें गुटिकांजनकी अपेक्षा रसगुणवाला न्यून है और रसरूप अंजनकी अपेक्षा चूर्णरूप जो अंजनहै, सो गुणोंमें न्यून हैं ऐसे उत्तरोत्तर गुणोंमें हलके जानने। इन अंजनोंको सलाईसे अथवा उंगली करके नेत्रोंमें लगावे तहां बत्ती चंद्रोदयादिक जाननी, रगडा आदि रसांजनहै और सुरमा आदि चूर्णांजन जानने चाहिये ॥

अंजनकेअयोग्य।

श्रांते प्ररुदिते भीते पीतमद्ये नवज्वरे।
अजीर्णे वेगघाते च नांजनं संप्रचक्षते॥

अर्थ–परिश्रमसे थका, रुदित, डरपाहुआ, मद्य (दारू) पानकर चुकाहो, नवीन ज्वरवाला, अजीर्णमें, मलमूत्रकी बाधा रोकनेवाला इतने मनुष्योंके अंजन नहीं लगाना॥

अंजनमेंबत्तीकाप्रमाण।

हरेणुमात्रां कुर्वीत वर्तिंतीक्ष्णांजने भिषक्।
प्रमाणं मध्यमेऽध्यर्धं द्विगुणं तु मृदौ भवेत्॥

अर्थ–तीक्ष्ण अंजनमें हरेणुबीज (मटर)के समान गोली लंबी बत्तीके समान बनावे, अर्थात् मटरके समान उसका मुटापा होय। उसीप्रकार मध्यम अंजनमें मटरसे ड्योढी बत्ती बनावे तथा मृदु अंजनमें हरेणुबीज (मटर) दोकी बराबर अर्थात् दुनी गोल बत्ती बनावे॥

अंजनमेंरसकाप्रमाण।

रसक्रिया तूत्तमा स्यात्त्रिविडंगमिताहिता।
मध्यमा द्विविडंगं स्याद्धीनात्वेकविडंगकम्॥

अर्थ–द्रवरूप अंजनकी मात्रा तीन वायविडंगके समान नेत्रोंमें सलाईसे लगावे यह उत्तम रसक्रिया है। दो वायविडंगके प्रमाण लगाना मध्यम रसक्रिया जाननी और एक वायविडंगके बराबर मात्रा कनिष्ठ अर्थात् छोटी है॥

विरेचनअंजनमेंचूर्णकाप्रमाण।

विरेचनिकचूर्णं तद्द्विशलाके विधीयते।
मृदौ तु त्रिशलाकं स्याच्चतस्रः स्नैहिकेंजने॥

अर्थ–विरेचनिक[1] चूर्णको सलाईमें दोवार लगाय दोवार नेत्रोंमें फेरके निकाल लेय। मृदु अंजनमें औषधका चूर्ण तीनवार सलाईमें लगावे और तीनवार नेत्रोंमें फेरके निकाल लेय। तथा घृतआदि जो स्नेहपदार्थ तिनकरके युक्त जो अंजनहै उनको सलाईमें चारवार लगावे और चारवारही नेत्रोंमें फेरके निकाल लेय यह अंजन लगानेका प्रमाण कहाहै॥

१ जिस अंजनके लगानेसे नेत्रोंसे अधिक पानी गिरे उसको वैरेचनिक चूर्ण कहते हैं।

सलाईबनानेकीयुक्ति।

मुखयोःकुंठिता श्लक्ष्णा शलाकाष्टांगुलोन्मिता।
अश्मजाधातुजा वा स्यात्कलायपरिमंडला॥

अर्थ–अब सलाईके लक्षण कहते हैं कि, जो पाषाणकी अथवा सुवर्णादि धातुओंकी सलाई आठ अंगुलकी बनावै उसके दोनों आगेके भाग गोलकरें तथा उसको बहुत पतली न करे तथा मटरके दानेके समान सुंदर गोल बनावे॥

लेखनादिमेंशलाईकाप्रमाण।

ताम्रलोहाश्मसंजाता शलाका लेखने मता।
सुवर्णरजतोद्भूता शलाका स्नेहनेमता॥
अंगुली च मृदुत्वेन कथिता रोपणे बुधैः॥

अर्थ--लेखन अंजनमें तांबेकी अथवा लोहकी वा पत्थरकी सलाई लेनी, स्नेहांजनमें सोनेकी अथवा चांदीकी शलाईले,उंगलीमें मृदु (नरम) ताहैं अतएव रोपणअंजनमें उंगलियोंसे नेत्रोंमें अंजन आंजना चाहिये, सलाईसे नहीं॥

अंजनमेंसमयकानिश्चय।

सायंप्रातर्वाजनं स्यात्तत्सदा नैव कारयेत्।
नातिशीतोष्णवाताभ्रवेलायां संप्रशस्यते॥
कृष्णभागादधःकुर्यादपांगं यावदंजनम्॥

अर्थ–सायंकाल और प्रातःकालमें अंजन लगावे,सर्वकालमें अंजन नहीं लगाना। अत्यंत शरदी,अत्यंतगरमी, अत्यंत हवा तथा जिसदिन आकाश बादलोंसे घिराहो इनमें अंजन नहीं करना। नेत्रोंके कालेभागके नीचे अर्थात् सपेद भागमें अंजन करना चाहिये॥

चंद्रोदयवर्त्ती।

शंखनाभिर्विभीतस्य मज्जापथ्यामनःशिला। पिप्पली मरिचं कुष्ठं वचाचेति समांशकम्॥ छागीक्षीरेपण संपिष्य वर्त्ति कुर्याद्यवोन्मिताम्। हरेणुमात्रां संघृष्यजलैः कुर्यादथांजनम्॥ तिमिरं मांसवृद्धिं च कालं पटलमर्बुदम्। रात्र्यंधं वार्षिकं पुष्पं वर्त्तिश्चन्द्रोदया जयेत्॥

अर्थ-शंखकीनाभि, बहेडेके फलके भीतरकी मिंगी, हरड, मनसिल, पीपर,कालीमिरच,कूट,वच ये औषध समान भागले बकरीके दूधमें बारीक पीस जौंके बराबर गोल बत्तीके सदृश बनावे । इसको चंद्रोदयावर्त्ती कहते हैं । फिर इस गोलीमेंसे छोटी मटरके प्रमाण जलमें घिसके अंजन करे तो तिमिर, मांसवृद्धि, कांचबिंदु, पटलगतरोग, अर्बुद, रतोंध तथा एकवर्षका फूला ये संपूर्णरोग दूरहो ॥

फूलाछरइत्यादिकरोगोंपरलेखनीवर्ती ।

पलाशपुष्पस्वरसैर्बहुशःपरिभाविता ।
करंजबीजवर्तिस्तु शुक्रादींश्छस्त्रवल्लिखेत् ॥

अर्थ-कंजेके बीजोंका चूर्ण कर,केसूलाके फूलोंके स्वरसकी अनेक भावना देकर बारीककर बत्तीके समान लंबी गोली बनावे फिर इस गोलीको पानीमें पीस नेत्रोंमें लगावे तो शुक्र कहिये फूलेको, मांसवृद्धि, छर इत्यादि सकलरोगोंको शस्त्रसे काटनेके समान दूरकरे ॥

दूसरीविधि ।

समुद्रफेनसिंधूत्थशंखदक्षांडवल्कलैः ।
शिग्रुबीजयुतैर्वर्तिःशुक्रादींश्छस्त्रवल्लिखेत् ॥

अर्थ-समुद्रफेन,सैंधानिमक,शंख,मुरगीके अंडेके ऊपरकी सपेदी, सहंजनेके बीज इन पांच औषधोंको बराबरले पानीमें पीस बत्तीके समान लंबी गोली बनावे । इसको जलमें घिसके नेत्रोंमें अंजन करे तो फूला, छड इत्यादिक रोगोंको शस्त्रसे काटनेके समान दूरकरेहै ॥

लेखनीदंतवर्त्ती ।

दंतैर्दंतिवराहोष्ट्रगोहयाजखरोद्भवैः ॥
शंखमुक्तांभोधिफेनयुतैःसर्वैर्विचूर्णितैः ।
दंतवर्तिःकृताश्लक्ष्णा शुक्राणां नाशिनीपरा ॥

अर्थ-हाथी,सूअर,बैल, घोडा,बकरा और गधा इनके दांत, शंख,मोती और समुद्रफेन इन सबका चूर्णकर पानीमें बारीक पीस बत्तीके समान लंबी गोली बनावे । इस गोलीको दंतवर्त्ती कहते हैं । इसको जलसे घिसके अंजन करे तो फूला दूरहोय और अनेकनेत्रके विकारोंको दूरकरेहै ॥

तंद्रानाशकलेखनवर्त्ती ।

नीलोत्पलं शिग्रुबीजंनागकेशरकं तथा ।
एतत्कल्कैःकृतावर्तिरातितन्द्रां विनाशयेत् ॥

अर्थ–नीलाकमल, सहेंजनेके बीज, नागकेशर इन तीनोंको समान ले पानीसे पीसके लंबी२ बत्तीके आकार गोली बनावे इसको जलमें घिसके लगाये तो तंद्राको दूर करे है ॥

रोपणीकुसुमितावर्त्ती ।

तिलपुष्पाण्यशीतिः स्युः षष्टिसंख्याकणाकणाः । जाती कुसुमपंचाशन्मरिचानि च षोडश ॥ सूक्ष्मं पिष्ट्वा जले वर्त्तिः कृताकुसुमिकाभिधा । तिमिरार्जुनशुक्राणां नाशनी मांसवृद्धिहृत् ॥एतस्याश्चांजनेमात्रा प्रोक्तासार्ध हरेणुका ॥

अर्थ–तिलके फूल ८०, पीपलके भीतरके दाने ६०, चमेलीके फूल ५०, कालीमिरच १६ इन सबका चूर्णकर पानीसे पीस बत्तीके समान गोली बनावे इसको कुसुमिकाबत्ती कहते हैं यह गोली डेढ मटरके समान जलमें पीसके नेत्रोंमें अंजनकरे तो तिमिर, अर्जुन, फूला और मांसवृद्धि ये रोग दूरहोंय ॥

नक्तांध्यनाशिनीवर्त्ती ।

रसांजनं हरिद्रेद्वे मालतीनिंबपल्लवाः ।
गोशकृद्रससंयुक्ता वर्तिर्नक्तांध्यनाशिनी ॥

अर्थ–रसोत, हलदी, दारुहलदी, चमेलीकेपत्ते, नींबके पत्ते ये पांच वस्तु समान लेके गौके गोबरके रसमें बारीक पीस गोली बनावे, जलमें घिसके नेत्रोंमें अंजन करेतो रतोंध (जिसको रातमें न दीखे वह रोग) दूरहोवे ॥

नेत्रस्रावनाशकवर्त्ती ।

धात्र्यक्षपथ्याबीजानि एकद्वित्रिगुणानि च ।
पिष्ट्वावर्त्तिं जलैः कुर्यादंजनं द्विहरेणुकम् ॥
नेत्रस्रावं हरत्याशु वातरक्तरुजंतथा ॥

अर्थ–आंवलेके भीतरका बीज १ भाग, बहेडेके भीतरकी मिंगी २ भाग,

हरडके भीतरकी मिंगी २ भाग, सब बीजोंको एकत्र कर पानीसे बारीक पीस बत्तीके समान लंबी गोली बनावे, फिर उस गोलीमेंसे दो रेणुकाबीजकी बराबर पानीमें घिसके अंजन करे तो नेत्रोंसे जलका स्राव होनेको तत्काल दूरकरे तथा वातरक्त संबंधी पीडा दूरहोवे ॥

रसक्रिया ।

तुत्थमाक्षिकसिंधूत्थसिताशंखमनःशिलाः । गैरिको दधिफेनं च मरिचं चेति चूर्णयेत् ॥ संयोज्य मधुना कुर्यादंजनार्थे रसक्रियाम् । वर्त्मरोगार्मतिमिरकाचशुक्रहरांपराम् ॥

अर्थ–नीलाथोथा, सुवर्णमाक्षिक, सैंधानिमक, मिश्री, शंख, मनसिल, गेरू, समुद्रफेन और कालीमिरच इन सबको, समान भागले बारीक चूर्णकर सहतमें मिलाय अंजनकरे तो पलकोंका रोग, अर्मरोग, तिमिर, कांच और शुक्ररोग इनको हरणकरे ॥

फूलादूरहोनेकीरसक्रिया ।

वटक्षीरेण संयुक्तो मुख्यः कर्पूरजः कणः ।
क्षिप्रमंजनतो हंति कुसुमं च द्विमासकम् ॥

अर्थ–बडके दूधमें कपूरको घिसके नेत्रोंमें अंजन करे तो दोमहीनेका फूला शीघ्र दूरहो ॥

अतिनिद्रादूरहोनेकोलेखनीरसक्रिया ।

क्षौद्राश्वलालासंघृष्टैर्मरिचैर्नेत्रमंजयेत् ।
अतिनिद्राशमं याति तमः सूर्योदयादिव ॥

अर्थ–सहत और घोडेकी लार इन दोनोंको एकत्र कर इसमें कालीमिरच को पीस अंजन करे तो अत्यंत निद्राका आना दूरहो। जैसे सूर्योदय होनेसे अंधकार नष्टहोताहै इस प्रकार इस औषधके लगानेसे नींद तत्काल जातीहै

तंद्रानाशिनीरसक्रिया ।

जातीपुष्पं प्रवालं च मरिचं कटुकी वचा ।
सैंधवं बस्तमूत्रेण पिष्टं तन्द्राघ्नमंजनम् ॥

अर्थ–चमेलीके फूल, मूंगा, कालीमिरच,कुटकी, वच और सैंधानिमक ये औषध समान भागले, बकरेके मूत्रमें पीसके अंजन करेतो तंद्रा दूरहो ॥

सन्निपातमेंलेखनीरसक्रिया।

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैंधवैः।
अंजनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः॥

अर्थ–सिरसके बीज, पीपल,कालीमिरच,सैंधानिमक,लहसन, मनसिल और वच ये सब समानले गोमूत्रमें बारीक पीसके अंजन करे तो संनिपातजन्य संज्ञानष्टताको दूरकर मनुष्यको चैतन्यकरे॥

तिमिरादिरोगोंमेंरोपणीरसक्रिया।

गुडूचीस्वरसैःकर्षःक्षौद्रं स्यान्माषकोन्मितम्।सैंधवंक्षौद्रतुल्यं स्यात्सर्वमेकत्र मर्दयेत्॥अंजयेन्नयनं तेन पिल्लार्मतिमिरं जयेत्।काचं कंडूं लिंगनाशं शुक्लकृष्णागतान् गदान्॥

अर्थ–गिलोयका स्वरस–१कर्षले उसमें सहत और सैंधानिमक ये एक २ मासे डालके अच्छी रीतिसे खरलकरे, इसका नेत्रोंमें अंजन करे तो पिल्लार्म, तिमिर, कांच, खुजली,लिंगनाश,नेत्रोंके सपेदभागमें और काले भागमें होने वाले संपूर्ण नेत्ररोग दूरहो॥

पुनर्नवाकेअनुपान।

दुग्धेन कंडूं क्षौद्रेण नेत्रस्रावं च सर्पिषा।
पुष्पं तैलेन तिमिरं कांजिकेन निशांधताम्॥
पुनर्नवाजयेदाशु भास्करस्तिमिरं यथा।

अर्थ–पुनर्नवा (सांठकीजड) को दूधमें पीस नेत्रोंमें अंजन करे तो नेत्रोंकी खुजली दूरहो।सहतमें घिसके लगावे तो नेत्रसे पानीका गिरना दूरहो। घीमें घिसके लगावे तो फूलाको दूरकरे। तेलमें घिसके लगावे तो तिमिर दूरहो।कांजीमें घिसके लगावे तो रतोंध दूरहो।जैसे सूर्य अंधकारको शीघ्र नष्ट करे है इस प्रकार पुनर्नवा अनुपान भेदकरके सर्व रोगोंको दूरकरे किसी ग्रंथमें इसपाठसे कुछ २ फरक लिखा है॥

नेत्रस्रावमेंरोपणीरसक्रिया।

बब्बूलदलनिःक्काथो लेहीभूतस्तदंजनात्।

---

१ घृतेन पुष्पं मधुनाश्रुपातं तैलेन कांडं तिमिरं जलेन।
रात्र्यंधतो वा सहकांजिकेन पुनर्नवा नेत्रपुनर्नवाकरी॥

नेत्रास्रावं जयत्येष मधुयुक्तो न संशयः ॥

अर्थ–बबूरके पत्तोंका क्वाथ गाढा होनेपर्यंत औटावे, फिर उसमें थोडा सहत डाल नेत्रोंमें अंजनकरे तो नेत्रोंके जल गिरनेको अवश्य दूरकरे ॥

दूसराप्रकार ।

हिज्जलस्य फलं घृष्ट्वा पानीये नित्यमंजनात् ।
नेत्रस्रावं जयत्येष मधुयुक्तो न संशयः ॥

अर्थ–हिंजलके फलको पानीसे पीस सहत डाल नित्य अंजन करे तो नेत्रोंसे पानी गिरना दूरहोवे ॥

नेत्रप्रसादन ।

कतकस्यफलं घृष्ट्वा मधुना नेत्रमंजयेत् ।
ईषत्कर्पूरसहितं स्मृतं नेत्रप्रसादनम् ॥

अर्थ–निर्मलीके फलको सहतमें घिस और उसमें थोडासा कपूर मिलाय नेत्रोंमें लगावे तो नेत्र स्वच्छहो ॥

शिरोत्पातरोगमेंअंजन ।

सर्पिःक्षौद्रं चांजनं स्याच्छिरोत्पातस्य शांतये ।

अर्थ–घी और सहत दोनोंको एकत्र कर इसको नेत्रोंमें अंजन करे तो नेत्ररोगमें जो शिरोत्पात रोगहै वो दूर होवे ॥

अंधापनदूरहोनेकीरसक्रिया ।

कृष्णसर्पवसाशंखः कतकाफलमंजनम् ।
रसक्रियेयमचिरादंधानां दर्शनप्रदा ॥

अर्थ–काले सांपकी चर्बी,शंख और निर्मलीके बीज इनको एकत्र बारीक पीस नेत्रोंमें अंजनकरे तो यह रसक्रिया अंधे मनुष्यको शीघ्र दीखनेलगे ऐसा करतीहै ॥

अंजनयोग ।

दक्षांडत्वक्शिलाकाचैः शंखचंदनगैरिकैः ।
द्रवैरंजनयोगोऽयं पुष्पार्मादिविलेखनः ॥

अर्थ–मुरगेके अंडेकी सपेदी,मनसिल,सपेद कांच,शंख,सपेद चंदन,गेरू

इन छः वस्तुओंको समानभागले बारीक चूर्ण कर नेत्रोंमें अंजन करे तो फूला और मांसार्मादिक रोग नष्टहोवे ॥

रतोंधदूरहोनेकोलेखनचूर्णांजन।

कणा छागयकृन्मध्ये पक्त्वा तद्रसपेषिता।
अचिराद्धंति नक्तांध्यं तद्वत्सक्षौद्रमूषणम् ॥

अर्थ-बकरेके कलेजेके मांसमें पीपल भरके अंगारोंपर पाक करे, फिर उस मांसका रस निचोड उस रसमें उस पीपलको पीसके नेत्रोंमें अंजन करे तो रतोंध बहुत जल्दी दूरकरे ॥

कंडूकाचादिपरलेखनचूर्णांजन।

शाणार्द्धं मरिचं द्वौ च पिप्पल्यर्णवफेनयोः।
शाणार्द्धं सैंधवं शाणानवसौवीरकांजनम् ॥
पिष्टं सुसूक्ष्मं चित्रायां चूर्णांजनमिदं शुभम्।
कंडूकाचकफार्त्तानां मलानां च विशोधनम् ॥

अर्थ-कालीमिरच आधे शाण, पीपल और समुद्रफेन ये दोदो शाण लेवे, सैंधानिमक आधे शाण, सुर्मा नौ शाण इन सब औषधोंको जिस-दिन चित्रा नक्षत्रहोय उसदिन उत्तमप्रकार पीसके चूर्णकरे; फिर इस चूर्णका नेत्रोंमें अंजन करे तो खुजली, कांच ये दूरहोवे। तथा कफकरके पीडित नेत्रोंके मलको शोधन करे है ॥

सर्वनेत्रकेरोगमेंअंजन।

शिलायारसकं पिष्ट्वा सम्यगाप्लाव्य वारिणा। गृह्णीयात्तज्जलं सर्वं त्यजेच्चूर्णमधोगतम् ॥ शुष्कं च तज्जलं सर्वं पर्पटीसंनिभं भवेत्। विचूर्ण्य भावयेत्सम्यक्त्रिवेलं त्रिफलारसैः ॥ कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेनानिःक्षिपेत्। अंजयेन्नयने तेन सर्वदोषहरं हि तत् ॥ सर्वरोगहरं चूर्णं चक्षुषोः सुखकारि च ॥

अर्थ-खपरियाको स्यामूसाके खरलमें उत्तम रीतिसे पीस बारीक चूर्ण करे, फिर उस चूर्णको पानीमें डाल देवे और उस पानीको हाथोंसे खूब हिलाय देवे और तत्काल दूसरे पात्रमें कर ले पहले पात्रमें जो

बडे २ टुकडे निकले उनको फेंकदेवे। फिर उसको थोडीदेर धरा रहनेदे इस प्रकार करनेसे वो खपरियाका सब चूर्ण पानीके तले जम जावेगा उसको दूरसे पात्रमें सुखाय लेवे तो उसकी पपडी जम जावेगी उस पपडीका चूर्ण कर उस चूर्णमें त्रिफलेके काढेकी तीन पुट देवे, फिर उस चूर्णका दशवाँ भाग कपूर मिलावे, सबको एक जीव कर इसका नेत्रोंमें अंजन करे तो सर्वदोष और नेत्रके सर्व रोग दूर होकर नेत्रोंको सुख होवे ॥

सर्वनेत्ररोगोंपरसौवीरांजन ।

अग्नितप्तं च सौवीरं निषिंचेत्त्रिफलारसैः । सप्तवेलं तथा स्तन्यैः स्त्रीणां सिक्तं विचूर्णितम् ॥ अंजयेन्नयने तेन प्रत्यहं चक्षुषे हितम् । सर्वानक्षिविकारांस्तुहन्या-देतन्न संशयः ॥

अर्थ–सुरमाको अग्निपर तपाय २ के त्रिफलेके काढेमें बुझायदे जब शीतल होजावे तब फिर गरम करे और बुझावे इसप्रकार सातवार बुझावे, इसी प्रकारस्त्रीके दूधमें सातवार बुझावे फिर उसको शीतलकर बारीक चूर्ण कर नेत्रमें अंजनकरे, यह अंजन नेत्रोंको परमहितकारी है। इससे सर्व नेत्रके विकार दूर होते हैं इसमें संशय नहीं है ॥

शीशेकीसलाईबनानेकाक्रम ।

त्रिफलाभृंगशुंठीनां रसैस्तद्वच्च सर्पिषा । गोमूत्रमध्व-जाक्षीरैः सिक्तो नागः प्रतापितः ॥ तच्छलाका भवत्येव सर्वान्नेत्रभवान् गदान् ॥ नाशयेदितिशेषः ॥

अर्थ–शीशेको गलाय २ के त्रिफलेका काढा, भांगरेका रस, सोंठका काढा, घी, गोमूत्र, सहत और बकरीका दूध इन प्रत्येकमें सात २ वार बुझावे, फिर उसकी सलाई बनावे; इस सलाईको नेत्रोंमें फेराकरे तो नेत्रके सर्वविकार दूरहोवे ॥

प्रत्यंजनकरनेकाविधान ।

गतदोषमपेताश्रु संपश्यन्सम्यगंभसि ।
प्रक्षाल्याक्षि यथादोषं कार्यं प्रत्यंजनं ततः ॥

अर्थ–उस शीशेकी सलाईसे नेत्रोंमें अंजन करे, जब दोष दूरहोकर नेत्रोंसे पानी गिरजावे तब रोगी एकक्षण शीतलपानीको देखे

फिर उस रोगीके नेत्रोंको जलसे धोयके दोषोंके अनुसार फिर नेत्रोंमें प्रत्यंजन करे, उस प्रत्यंजनको आगे कहतेहैं ॥

सदोषनेत्रमेंनिषेध ।

न वा निर्गतदोषेक्ष्णि धावनं संप्रयोजयेत् ।
प्रत्यंजनं तीक्ष्णतप्ते नेत्रे चूर्णः प्रसादनः ॥

अर्थ–नेत्रोंसे दोषोंके न निकलने पर नेत्रोंको जलसे धोवे नहीं और तीक्ष्ण अंजन करके नेत्र संतप्त होनेपर उनमें प्रत्यंजन चूर्णकरे सो आगेके श्लोकोंमें कहा है । अथवा प्रसादनचूर्णकरे ॥

प्रत्यंजनचूर्ण ।

शुद्धे नागे द्रुते तुल्ये शुद्धं सूतं विनिःक्षिपेत् । कृष्णांजनं तयोस्तुल्यं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ दशमांशेन कर्पूरं तस्मिञ्चूर्णे प्रदापयेत् । एतत्प्रत्यंजनं नेत्रगदजिन्नयनामृतम् ॥

अर्थ–शुद्धशीशेको तपावे जब गलजावे तब उसमें बराबरका शुद्ध पारा मिलायदे फिर इन दोनोंके समान सुरमा मिलायके एककर सबका बारीक चूर्णकरे तथा सब चूर्णका दशवां भाग भीमसेनी कपूर मिलावे, इसको प्रत्यंजन चूर्ण कहते हैं । इसके लगानेसे संपूर्ण नेत्ररोग दूरहो तथा यह चूर्ण नेत्रोंको अमृतके समान सुखकारी है ॥

सर्पविषनाशकअंजन ।

जयपालस्य मज्जां च भावयेन्निंबुकद्रवैः । एकविंशतिवेलं तत्ततो वर्त्तिं प्रकल्पयेत् ॥ मनुष्यलालया घृष्ट्वा ततो नेत्रे तयांजयेत् । सर्पदष्टविषं जित्वा संजीवयति मानवम् ॥

अर्थ--जमालगोटेके भीतरकी मिंगी लेकर चूर्णकरे फिर इसमें नींबूके रसकी २१ इसकी पुट देवे, पीछे इसकी लंबी बत्ती बनावे, इस गोलीको मनुष्यकी लारमें घिसके नेत्रोंमें आंजे यह सांप कांटे हुए प्राणीके विषको दूरकर जिवाता है अर्थात् सावधान करताहै ॥

नेत्ररोगनाशनसुगमोपाय ।

भुक्त्वापाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते ।
जातरोगा विनश्यंति तिमिराणि तथैव च ॥

अर्थ–भोजन करनेके पश्चात् हाथोंको धोवे फिर वोही गीले हाथोंकी हथेलीको आपसमें घिसकर नेत्रोंमें लगावे तो उत्पन्नहुए नेत्ररोग तथा तिमिररोग आदि संपूर्ण नेत्ररोग दूरहोवे ॥

तथाउपायांतर ।

शीताम्बुपूरितमुखः प्रतिवासरं यः कालत्रयेण नयनद्वि-
तयं जलेन । आसिंचति ध्रुवमसौ न कदाचिदक्षिरोगव्य
थाविधुरतां भजते मनुष्यः ॥

अर्थ–नित्य दिन दिनमें तीनवार शीतलजलसे मुखको भरके और दूसरे शीतलजलसे नेत्रोंके तीनवार छींटा मारे तो अति दुखदायक नेत्ररोगसंबंधी पीडा कदाचित् नहीं होय। यह उपाय बहुतही सहजका और अत्यंत गुणदायकहै सब मनुष्योंको उचित है कि, इसको अवश्य किया करे इतनी दत्तरामचौबे की प्रार्थना है ॥

अथ संधानविधिः।

द्रवेषुचिरकालस्थं द्रव्यं यत्संधितं भवेत् ।
आसवारिष्टभेदैस्तु प्रोच्यते भेषजोचितम् ॥ १ ॥

अर्थ–उपयुक्त जलादि द्रव पदार्थोंमें औषध डालके फिर पात्रके मुखको बांध मुद्रादेकर बहुत काल (मास, पक्ष) पर्यंत धरा रहनेदे, फिर उससे उत्सेक (दारू निकालनेकी क्रिया) द्वारा एक नवीन पदार्थ उत्पन्न होवे उस क्रियाको संधान क्रिया कहते हैं तथा उस औषधोचित संधान को आसव और अरिष्ट ऐसे दो भेदों करके कहते हैं ॥

आसवारिष्टयोर्लक्षणम् ।

यदपक्कौषधांबुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः ।
अरिष्टः क्काथसाध्यः स्यात्तयोर्मानं पलोन्मितम्॥२॥

अर्थ–अपक्क औषध और जलद्वारा संपादित (बनाएहुए) मद्य (दारू) को आसव कहते हैं और क्काथसे बनेहुए मद्यको अरिष्ट कहते हैं, इन दोनोंकी मात्रा ४ तोले है ॥

आप्लाव्य सुरया सम्यग्द्रव्याणि विविधानि च ।

सप्ताहान्ते परिस्राव्य रसं वस्त्रेण गालयेत् ॥ ३ ॥
एषोऽरिष्टाभिधानेन भिषग्भिःपरिकीर्त्तितः ।
अरिष्टस्य गुणा ज्ञेया बीजद्रव्यगुणैःसमाः ॥ ४ ॥

अर्थ–दारूमें संपूर्ण द्रव्य भिगोयके सात दिन पर्यंत धरी रहनेदे पश्चात् इसका भवकेके द्वारा रस चुवावे उसको कपडेमें छानके बोतल आदिमें भरके धरदेवे, इसको अरिष्ट कहते हैं। जिस२द्रव्यको भिगोयके अरिष्ट बनाया जाता है उसी २ द्रव्यके गुण वो अरिष्ट करता है ॥

सामान्यतोऽरिष्टविधिः।

अनुक्तमासारिष्टेषु द्रवद्रोणे गुडातुलाम् ।
क्षौद्रं क्षिपेद्गुडादर्द्धं प्रक्षेपं दशमांशिकम् ॥ ५ ॥

अर्थ–अरिष्ट साधनमें जहां किसी वस्तुका मान न कहाहो वहां नीचे लिखी विधिके अनुसार वर्त्तना चाहिये। जैसे ६४ सेर प्रमाण जल आदि द्रव द्रव्यमें गुड १०० पलले और सहत गुडसे आधा लेवे, अर्थात् ५० पचास पलले तथा प्रक्षेप वस्तु गुडके दशमांश (दशमांहिस्सा) अर्थात् १० पल डाले, सबको एकत्र कर यथाविधि अरिष्टको बनाना चाहिये ॥

द्विविधसीधुमाह ।

ज्ञेयःशीतरसःसीधुरपक्वमधुरद्रवैः ।
सिद्धःपक्वरसःसीधुःसंपक्वमधुरद्रवैः ॥ ६ ॥

अर्थ–अब सीधूकी विधि कहते हैं, तहां सीधु दो प्रकारकाहै जैसे-शीतरस सीधू बनताहै। अर्थात् ईख आदि अपक्व रसको वासित करनेसे (धरारखनेसे) शीतरस सीधू बनता है। अर्थात् ईखकारस अथवा और कोई मधुर रसको पात्रमें भर धरदेवे फिर सातदिनके बाद रस नितारलेवे। इसीप्रकार पके हुए ईखके रसके द्वारा उत्पन्न सीधुको पक्वरससीधु कहते हैं सीधुको भाषामें सिर्का कहते हैं। इसका प्रचार प्रायः पूर्वके देश (काशी, पटना, आदि प्रांतोंमें) अधिकहै ॥

सुरादिलक्षणम्।

दिनानि कतिचित्क्लिन्नं गुडादौ स्थापयेद्भिषक् ।
ततो विक्लित्तिमापन्नं यंत्रैश्च नाडिकादिभिः ॥ ७ ॥

विधिवत्स्रावयेच्चास्मादन्यपात्रे सृतं रसम् ।
गृह्णीयात्सासुरा ख्याता तीक्ष्णोष्णवीर्यशालिनी ॥ ८ ॥

अर्थ-सुरोपादानद्रव्य (दारू बनानेकी दवाई) उन सब गुडादिकको पात्रमें डालके कुछदिन उसी प्रकार धराराखे, जब सब द्रव्य गलजावे और वो जल उठ आवे अर्थात् गंधदेने लगे तब उसको नाडिकादि यंत्रद्वारा चुवायके रस निकाल लेवे । इस निकाले हुए द्रवपदार्थको सुरा कहते हैं यह तीक्ष्णवीर्य तथा उष्णवीर्य वाली है ॥

सुरा प्रसन्नादि मद्योंके भेद ।

परिपक्वान्नसंधानात्समुत्पन्नासुराजगुः ।
सुरामंडःप्रसन्ना स्यात्ततःकादंबरी घना ॥ ९ ॥
तदधो जगलोज्ञेयो मेदको जगलाद्घनः ।
वक्कसो हृतसारःस्यात्सुराबीजं च किण्वकम् ॥१०॥

अर्थ-तंडुलादिक धान्यको सिजाय अग्निके संयोग करके यंत्रद्वारा जो मद्य उत्पन्न करते हैं उसको सुरा कहते हैं उस सुराके फेन (झाग) को प्रसन्ना कहते हैं । उस प्रसन्नाके मध्यमें जो घन (गाढा) भाग है उसको कादंबरी कहते हैं । उस सुराके अधोभागमें जो द्रव्य भाग है उसको जगल कहते हैं और उस जगलसे भी गाढे भागको मेदक उस मेददको पक्व करके उसमेंसे सार काढके शेष रहे हुए पदार्थको सुराबीज अथवा किण्व कहते हैं ॥

वारुणी ।

यत्तालखर्जूररसैः संधिता साहि वारुणी ।

अर्थ-ताडकारस अथवा खर्जूरके रससे संधानक्रिया द्वारा वारुणी उत्पन्न हो, अर्थात् ताड अथवा खर्जूरके रससे अग्निके संयोगकरके यंत्रद्वारा जो पदार्थ उत्पन्न करतेहैं उसको वारुणी कहतेहैं,इस वारुणी मद्यको भाषामें ताडी कहते हैं ॥

शूक्त ।

कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च ॥ ११ ॥
यत्रद्रवेऽभिषूयंते तच्छूक्तमभिधीयते ॥

अर्थ-अनेक प्रकारके कंद, मूल, फलादि, स्नेह और सैंधानिमक

इनको पानी आदि द्रवपदार्थमें डालके कुछदिन धरारहनेदे जब उठआवे तब काममें लावे उसको शूक्त कहते हैं। भाषामें शूक्तको अचार, वा अधाना वा संधाना, कहते हैं जेसे आमका नींबूका अचार ॥

विनष्टमम्लतां यातं मद्यं वा मधुरद्रवैः ॥ १२ ॥
विनष्टः संधितो यस्तु तच्छूक्तमभिधीयते ॥

अर्थ–मद्य विनष्टहोकर खटाई आयजावे अथवा कोई मीठी द्रव्यको पात्रमें बंदकर मुद्रा देकर महिना या पक्षपर्यंत धरा रहनेदे जब सिद्धहोय उस मद्यको शूक्त (चुक्र) कहते हैं ॥

गुडशूक्त।

गुडाम्बुना सतैलेन कन्दशाकफलैस्तथा ॥ १३ ॥
संधितश्चाम्लतां यातं गुडशूक्तं तदुच्यते ॥

अर्थ–गुड, पानी, तैल, कंद, मूल, फल, साक इन सबको किसी पात्रमें भरके मुखबंद कर १ महिने या पंद्रह दिन धरा रहनेदे जब खटाई आयजावे तब कार्यमें लावे इसे गुडशूक्त कहते हैं ॥

एवमेवहि शूक्तं स्यान्मृद्वीका संभवस्तथा ॥ १४ ॥

अर्थ–इसीप्रकार ईखका तथा दाखका शूक्तभी बनताहै ॥

तुषांबुऔरसौवीर।

तुषाम्बुसंधितं ज्ञेयमामैर्विदालितैर्यवैः।
यवैस्तुनिस्तुषैःपक्कैःसौवीरं साधितं भवेत् ॥ १५ ॥

अर्थ--निस्तुष कच्चे जौं कूट उसमें पानी डाल किसीपात्रमें भरके थोडेदिन धरा रहनेसे जब खटाई आयजावे उसको तुषांबु कहते हैं। और भुनेहुए अथवा सीजे हुए जौं कूट पानीडाल खटाई आने पर्यंत धरारहनेदे उसको सौवीर कहते हैं ॥

ग्रंथांतरे।

सौवीरस्तु यवैरामैःपक्वैर्वा निस्तुषीकृतैः।
गोधूमैरपि सौवीरमाचार्याःकेचिदूचिरे ॥ १६ ॥

अर्थ–अपक्व अथवा पक्व निस्तुष जौंको संधित (पूर्वोक्तक्रिया)करनेसे सौवीर बनताहै। किसी २ वैद्यके मतसे गेहूँ द्वाराभी सौवीर (पूर्वोक्त क्रियासे बनताहै) ॥

आरनाल ।

आरनालस्तुगोधूमैरामैः स्यान्निस्तुषीकृतैः ।
पक्वैर्वा संहितं तत्तु सौवीरसदृशं गुणैः ॥ १७ ॥

अर्थ–कच्चे अथवा पक्के निस्तुष गेहूं लेकर संहित (साधित) करनेसे आरनाल उत्पन्न होताहै, इसके गुण सौवीरके समान जानने ॥

कांजिक ।

संधितंधान्यमण्डादि कांजिकं कथ्यते जनैः ।

अर्थ–धान्य के मंडादिसे साधितको कांजी कहते हैं ॥

सांडाकी ।

सांडाकी संधिता ज्ञेया मूलकैः सर्षपादिभिः ॥ १८ ॥

अर्थ–और मूली तथा सरसों आदिका बना रस उसमें पानी डाल हलदी, हींग, राई, सैंधानिमक, जीरा, सोंठ इत्यादिका चूर्ण डालके पात्रका मुख बंदकर तीन चार दिन धरा रहनेदे इसको मांडाकी कहते हैं ॥

धान्याम्लम् ।

प्रस्थं षष्टिकधान्यस्य नीरप्रस्थद्वयं क्षिपेत् । आधारभांडं संरुद्ध्य भूमेर्गर्भे निधापयेत् ॥ १९ ॥ पक्षादथसमुद्धृत्य वस्त्रपूतं च कारयेत् ॥ ततो जातरसं योज्यं धान्याम्लं सर्वकर्मसु ॥ २० ॥ धान्याम्लं शालिचूर्णाच्चकोद्रवादि कृतं भवेत् ।

अर्थ–तुषयुक्त सांठी धान्य १सेरको कूटके उसमें२सेर डालके भिगोयदे अथवा चारसेर जलमें भिगोयदे फिर उस पात्रके मुखमें डाट लगाय धरतीमें गाडदेवे २५ दिनके बाद निकालके कपडेसे छानलेवे इस रसको धान्याम्लक कहतेहैं इसको सब कर्मोंमें देवे । इसी प्रकार शाली चावलके चुर्णसे और कोदों आदिके चूर्णसेभी धान्याम्ल बनताहै॥

कांजिकसाधन ।

तुलामितं षष्टिकतंदुलं च प्रगृह्य चान्नं विधिवद्विधाय । द्रोणेऽम्भसि क्षिप्तमथ त्रियामास्ततत्सप्तरक्षे-

तिपहितं प्रयत्नात् ॥ ततस्तु कल्कं सकलं निरस्येत्त त्कांजिकं कथ्यत आरनालम् । तद्भेदितीक्ष्णं लघुपाचनं च दाहज्वरघ्नं कफवातनाशि ॥

अर्थ-१२॥साडे बारह सेर स्वच्छ सांठी चांवल लेवे,उनको ६४सेर जलमें भिगोय देवे,इस प्रकार उनको रक्षापूर्वक सात दिन भीगनेदे,बाद सातदिनके उसको छानके पानी नितारले,इस कल्कको आरनाल अथवा कांजी कहते हैं, यह दस्तकरानेवाली, तीक्ष्णगुणयुक्त,हलकी और पाचनहै तथा दाह,ज्वर और कफवातको नाशकरती है।परंतु हमारे देशमें इसको कांजी नहीं कहते, हमारे राईके पानीमें उडदके बडा भीगोनेसे जो बनती है उसको कांजी कहते हैं ॥

यद्यपि भूमिपरीक्षा देशपरीक्षामें लिखआये हैं परंतु यहांपर यह पूर्वपरीक्षासे भिन्नहै सो नीचेके अर्थमें दिखाये हैं यह सुश्रुतसे लिखते हैं ॥

अथातोभूमिप्रविभागविज्ञानीयाध्यायं व्याख्यास्यामः।

अर्थ--अब हम भूमिप्रविभाग विज्ञानीयाध्यायका वर्णन करेंगे अर्थात् भूमिका जो उत्तम भाग उसके अर्थका विज्ञान जिस अध्यायमें उसकी व्याख्या करेंगे। यद्यपि आतुरोपक्रमणीयाध्यायके देशवर्णनमें भूमिपरीक्षा कही है, परंतु वह परीक्षा भूतोंके[१] कार्य (शीतोष्णवर्षादिको) करके तथा पर्वतवृक्षादिकोंकरके करी है। और इस भूमिप्रविभागविज्ञानीयाध्यायमें खास भूतगणोंकरके[२] परीक्षा करीहै यहभेदहै।वो पृथ्वीका विभाग दोप्रकारका है, एकसामान्य और दूसरा विशिष्ट तहां प्रथम सामान्य भूमिविभागको कहतेहैं ॥

सामान्यभूमिभागकावर्णन ।

श्वभ्रशर्कराश्मविषमवल्मीकश्मशानाऽऽघातनदेवतायतन सिकताभिरनुपहतामनूषरामभंगुरामदूरोदकांस्निग्धां

---

१ भूतशब्दसे पृथ्वी जल आदि पंचभूत जानने इनके शीतल उष्णता आदि कार्य जानने। २ भूतगुण अर्थात् पृथ्वी जल आदिके गुण काले पीले कठोर मृदु आदि जानने।

प्ररोहवतीं मृद्वीं स्थिरां समां कृष्णां गौरीं लोहितां वा भूमिमौषधार्थं परीक्षेत तस्यां जातमपिकृमिविषशस्त्रा-तपपवनदहनतोयसम्बाधमार्गैरनुपहतमेकरसं पुष्टं पृथ्व-वगाढमूलमुदीच्यां चौषधमाददीतेत्यौषधमूमिपरीक्षा विशेषःसामान्यः ॥

अर्थ–जो पृथ्वी सर्प मूसे आदिके बिले,शर्करा,पत्थर,आदिसे विषम अ-र्थात् ऊंची नीची न हो तथा बाँवी, [२]श्मशान, वधस्थान, देवस्थान और वालू रेत आदिसे दूषितनहो, ऊषर नहो, रेखावाली नहो, जिसमें बहुत नीचापानी नहो, चिकनी, बीजमें अंकुरोत्पादक, कोमल, स्थिर (पानी और हवासे जिसको मिट्टी न जाय) समान अर्थात् एकसी, काली, गौरी (सुवर्णके समान वर्णवाली) लोहित (लाल रंगकी) इत्यादि गुणवाली पृथ्वी की परीक्षा औषधग्रहण (औषधलानेके) अर्थकरे ॥

अब कहते हैं कि, केवल पृथ्वीके गुणोंकरकेही औषधोंको ग्रहण न करे किंतु औषधोंके दोष गुणकोभी विचार करके औषधलेनी यह दिखाते हैं॥

तहां उक्तपृथ्वीमें भी उत्पन्नहुई, जो कृमि (कीडा) विष, शस्त्र धूप, हवा, अग्नि, संकट और मार्ग (रस्ता) इत्यादि करके दूषित (बिगडी हुई) नहो, जिसमें एकरस (उत्कृष्टरस) हो, देखनेमें पुष्टहो तथा जिस-की पृथ्वीके भीतर दूरतक जड चलीगई हो (चकारसे वो जडभी उत्तमहो दूषित नहो)इत्यादि गुणविशिष्ट औषधको वैद्य उत्तरामुख करके उखाडे यह औषध भूमिकी परीक्षा सामान्यता करकेकही है ॥

इस प्रकार सामान्य पृथ्वीके गुणोंको कहकर अब विशेष गुण प्रत्येक भूतोंको दिखाते हैं ॥

स्वगुणभूयिष्ठपृथ्वीके गुण।

विशेषतस्तु। तत्राश्मवती स्थिरा गुर्वी श्यामा कृष्णा वा स्थूलवृक्षशस्यप्राया स्वगुणभूयिष्ठा ॥

---

१ आगे रसायनके प्रकरणमें कपोती नामकी रूखडीको बांवीपरसे लाना लिखाहै फिर निषध क्यों करा? तहां कहते हैं कि, दिव्यौषधियोंका वीर्य सर्पादि विषसे नष्ट नहीं होता अथवा वो उसी जगे ऊगनेसे अधिक वीर्यवाली होती है। २ जहां मुर्दे जलाए जातेहैं।

अर्थ–अब विशेषता दिखाते हैं कि, जो पृथ्वी पत्थरवाली,(पथरीली-ककरीली,) कठोर, भारी, कालेरंगकी,अथवा स्याम रंगकीहो तथा जिसमें बडे २ पुष्टवृक्ष-(दरख्त)और लंबी २ घास आदि तृणहो, वो, पृथ्वी (जमीन) स्वगुणभूयिष्ठ[1] अर्थात् पृथ्वीगुणभूयिष्ठ जाननी ॥

जलगुणभूयिष्ठपृथ्वी ।

स्निग्धा शीतलासन्नोदका स्निग्धशस्यतृणकोमलवृक्ष-प्राया शुष्काम्बुगुणभूयिष्ठा ।

अर्थ–जोपृथ्वी चिकनी, शीतल, जलप्राय, अर्थात् जिसमें समीपही जलहो तथा जिसमें सचिक्कण, छोटी २ और बडी घांस (दूब आदितृण) हो, कोमलवृक्ष और प्रायः सर्वत्र गीलीहो वो जमीन जलगुणभूयिष्ठ जाननी अथार्त् इसमें जलका भाग अधिक रहताहै ॥

अग्निगुणभुयिष्ठपृथ्वी ।

नानावर्णा लघ्वश्मवती प्रविलाल्पपाण्डुवृक्षप्ररोहाऽग्निगुणभूयिष्ठा ॥

अर्थ–जो पृथ्वी अनेकवर्णकी, हलकी पथरीली, कहींकहीं थोडे और पीले वृक्षादिकहों वो जमीन अग्निगुणभूयिष्ठ जाननी, अर्थात् इसमें अग्निका गुण अधिक जानना ॥

पवनगुणभूयिष्ठपृथ्वी ।

रुक्षाभस्मरासभवर्णा तनुरूक्षकोठराल्परसवृक्ष-प्रायाऽनिलगुणभूयिष्ठा ॥

अर्थ–जो पृथ्वी रूखी, भस्म (खाक) और गद्धेके वर्णसमान खाकी रंगकी हो तथा जिस्से छोटे २ रूखे, पोले, थोडे रसवाले ऐसे वृक्षहों वो जमीन पवनगुणभूयिष्ठ जाननी। अर्थात् इसमें पवनका गुण अधिक है ॥

आकाशगुणभूयिष्ठपृथ्वी ।

मृद्वी समा श्वभ्रवत्यव्यक्तरसजला सर्वतोऽसारवृक्षा महापर्वतवृक्षप्राया श्यामाचाकाशगुणभूयिष्ठा ॥

अर्थ–जो पृथ्वी नरम, समान, गड्ढेवालीहो तथा जिसमें रसहीन

१ इसमें पृथ्वीका अंश अधिक रहता है।

(मलमलेस्वादको) जलहो, सारहीनवृक्ष, बडे २ पर्वत और बडे २ वृक्ष जिसमें सर्वत्रहों तथा रंगमें श्यामहो वो जमीन आकाशगुणभूयिष्ठ जाननी अर्थात् इसमें आकाशका गुण अधिक है ॥

पंचभूतोंके गुणकहनेसे यह प्रयोजन है कि, प्रत्येक वमन विरेचनादिमें अपने २ गुणभूयिष्ठ दवाई लेनी, जैसे वमनकी औषध आकाशगुणभूयिष्ठ होती है तो उनको आकाशगुणभूयिष्ठ जमीनसे लेनी इसी प्रकार जुलाबमें जलगुणभूयिष्ठ होनेवाली औषधी जलगुणभूयिष्ठ पृथ्वीसे वैद्य लेवे, कारण यह कि, स्वगुणभूयिष्ठ औषधी बलवान् होती है ॥

औषधग्रहणमेंमतभेद ।

तत्र केचिदाहुराचार्य्याः । प्रावृड्वर्षाशरद्धेमन्तवसन्तग्रीष्मेषु यथासंख्यं मूलपत्रत्वक्क्षीरसारफलान्याददीतेति, तच्चु न सम्यक् कस्मात् सौम्याग्नेयत्वाज्जगतः । सौम्यान्यौषधानि सौम्येष्वृतुष्वाददीताग्नेयान्याग्नेयेष्वेवमव्यापन्नगुणानि भवन्ति । सैम्यान्यौषधानि सौम्येषु ऋतुषु गृहीतानि सोमगुणभूयिष्ठायां भूमौ जातान्यतिमधुरस्निग्धशीतानि जायन्ते । एतेन शेषं व्याख्यातम् ।

अर्थ-तहां कोई २ आचार्य कहते हैं कि, प्रावृट्, वर्षा, शरद, हेमंत वसंत और ग्रीष्म इन ऋतुओंमें यथाक्रम जड, पत्ते, त्वचा, दूध और औषधोंके फल लेने चाहिये ॥ परंतु यहमत उत्तम नहीं है, क्योंकि यह जगत सौम्य और आग्नेयके भेदसे दोही प्रकारका है, जब दोप्रकार जगहै तब सौम्य (शीतल) औषधोंको सौम्यऋतु (शरद, हेमंतादि) में लेवे और आग्नेय (गरम) औषध गरमऋतु (ग्रीष्मआहि) में लेवे, तो ये निर्दोष गुणवाली होती है। सौम्य औषध सौम्यऋतुओंमें ग्रहण करीगई तथा सौम्य गुणभूयिष्ठ पृथ्वीमें उत्पन्न हुई वो अत्यंत मधुर स्निग्ध और शीतल होती है। इसीप्रकार आग्नेय औषधी आग्नेय ऋतुओंमें ग्रहण करीगई तथा आग्नेयगुणभूयिष्ठ पृथ्वीमें उत्पन्नहुई वो अत्यंत तीक्ष्ण और रूक्ष और गरमहोतीहै ॥

विरेचनादिद्रव्यकिसपृथ्वीकीलेनी ।

तत्र पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठायां भूमौ जातानि विरे-

चनद्रव्याण्याददीतान्याकाशमारुतगुणभूयिष्ठायांवमनद्रव्याणि । उभयगुणभूयिष्ठायामुभयतोभागानि । आकाशगुणभूयिष्ठायां संशमनान्येवं बलवत्तराणि भवन्ति॥

अर्थ–तहां पृथ्वी और अंबु (जल) गुणभूयिष्ठ पृथ्वीमें उत्पन्न होने वाली ऐसी विरेचन अर्थात् दस्तकारी औषधोंको वैद्य लेवे और आकाश पवन गुणभूयिष्ठ पृथ्वीमें उत्पन्नहो ऐसी वमन करानेवाली औषधोंको वैद्य लेवे । एवं दोनोंगुण अर्थात् आकाश और पृथ्वीमें तथा जल और पवनगुणभूयिष्ठ पृथ्वीमेंसे वमन विरेचन दोनों कराने वाली औषधोंको वैद्य लेवे। एवं आकाशगुणभूयिष्ठ पृथ्वीमें उत्पन्न होनेवाली औषधी संशमने संज्ञक औषध होती है उनको उसी स्थानसे लेवे ॥

सर्वाण्येवचाभिनवान्यन्यत्र मधुघृतगुडपिप्पलीविडङ्गेभ्यः। सर्वाण्येवंसक्षीराणि वीर्यवन्ति तेषामसम्पत्तावनतिक्रान्तसंवत्सरान्याददीतेति ॥

अर्थ–वैद्यको उचितहै कि, जितनी औषधले सब नवीन ले, परंतु सहत घी, गुड, पीपल और वायविडंग ये पुरानेही लेना [तथा दोषवर्जित अर्थात् कृमिविषादि दोषरहित औषधी लेना] एवं सब क्षीर[दूधवाली वा रसेवान्]ले कारण कि,रस औषध वीर्यवान् होती है कदाचित् कहे हुए लक्षण वाली औषध न मिले तो फिर कैसाकरे तहां कहते हैं कि, यदि पूर्वोक्त गुणवान् औषध न मिले अर्थात् सहत घृत आदि पुराने तथा औषधी आदि नवीन न मिले तो जिनको लाए वर्षदिन न हुआहो ऐसी औषध लेवे ॥

औषधजाननेकाउपाय ।

भवन्ति चात्र ।

गोपालास्तापसा व्याधा ये चान्ये वनचारिणः ।
मूलाहाराश्च ये तेभ्यो भेषजव्यक्तिरिष्यते ॥

अर्थ–गोपाल, (गौ, भैंस, बकरी, आदिके पालन करनेवाले चरवाहे) तपस्वि, (जटाधारी, स्थंडिलशायी आदि) व्याध, (सिकारी, अहेरिया आदि) वनचारी, (भील, चुआड, गौण, माली, काछी, वंजारे, नाथ

१ जो द्रव्य न वमन करावे न दस्त करावे किंतु रोगके साथमें एकीभूतहो उस व्याधिको शमन करे उसको संशमन संज्ञक औषधी कहते हैं ।

कालवेलिया इत्यादि) तथा मूल,फल,कंद,भक्षणकर्त्ता तपस्वि इनसे औषधका स्वरूप और नाम मालूमहो सक्ताहैं। अर्थात् उक्तप्राणी नित्य वनमें रहा करते हैं अतएव इनको सब वनस्पती, बूंटी, आदिकी पहचान होतीहै वैद्यको उचित है कि, इनके सकाससे औषधोंको जाने ॥

सर्वावयवसाध्येषु पलाशलवणादिषु।
व्यवस्थितो न कालोऽस्ति तत्र सर्वो विधीयते ॥

अर्थ–संपूर्ण मूलादि अवयव ग्राह्य ऐसे पलाश लवण अर्थात् पत्रे[1]लवणादि योगोंमें जहां कालकी मर्यादा नहीं कही वहां पर संपूर्ण (प्रावृडादि) काल जानना

गन्धवर्णरसोपेता षड्विधा भूमिरिष्यते।
तस्माद्भूमिस्वभावेन बीजिनःषड्रसायुताः ॥

अर्थ–वर्ण, गंध, रस, स्पर्श,शब्द और सर्व लक्षणा ऐसे छःप्रकारकी पृथ्वी है अतएव इस पृथ्वी के स्वभावसेही वृक्षादिकभी षड्रस करके युक्त है अथवा ये छःरस भूमि के स्वभावसे मिलकर वृक्षादिरूपसे प्रगट होतेहैं ॥

अब कहते हैं कि,द्रव्योंके परिणाम विशेषकरके मधुरादि रस होते हैं फिर आप'आप्योरसः'अर्थात् रस है सो आप्य है ऐसा क्यों कहते हैं तहांकहते हैं ॥

अव्यक्तःकिल तोयस्य रसो निश्चयनिश्चितः।
रस एव स चाव्यक्तो व्यक्तो भूमिरसाद्भवेत् ॥

अर्थ–जलका रस (मधुरादि भावकरके) अप्रकट है यह प्रमाण निश्चय है अर्थात् जलमें रसतो है, परंतु मीठा वा खारी है यह निश्चय नहीं है, तहां वही अप्रकट रस भूमिके रससे प्रगट होता है ॥

भूमिद्रव्यकाकारणकहतेहैं।

सर्वलक्षणसम्पन्ना भूमिःसाधारणा स्मृता।
द्रव्याणि यत्र तत्रैव तद्गुणानि विशेषतः ॥

अर्थ–सर्वलक्षण (पृथिव्यादि पंच महाभूत लक्षणों करके) युक्त पृथ्वी साधारण कही है ऐसी साधारण पृथ्वीकी द्रव्य (औषधी) विशेषकरके साधारण गुणवाली जाननी ॥

---

१ पत्रलवणका योग वातव्याधिमें कहाहै सो वैद्योंको देखलेना।

नवीनवापुरानीकैसीद्रव्यलेनी ।

विदग्धे नापरामृष्टमविपन्नं रसादिभिः ।
नवं द्रव्यं पुराणं वा ग्राह्यमेव विनिर्दिशेत् ॥

अर्थ-जो औषधी विरोधी गंध करके स्पर्श न करी गई हो (अर्थात् जिसमें जोसुगंध आया करे उससे विपरीत गंध न आवे जैसे गुलाबमें प्याजकीगंध) और रसादि करके क्षीण न हो अर्थात् रसादि संपन्नहो, ऐसी नवीन अथवा प्राचीन लेनी चाहिये ॥

विडङ्गं पिप्पली क्षौद्रं सर्पिश्चाप्यनवं हितम् ।
शेषमन्यत्त्वभिनवं गृह्णीयाद्दोषवर्जितम् ॥ ४ ॥

अर्थ-तहां वायविडंग, पीपल, सहत, और घी ये पुराने लेवे इससे अन्य औषधी सब नवीन और पूर्वोक्त विषादि दोष रहित लेनी चाहिये॥ इसप्रकार स्थावरोंको कहकर अब जंगमों को कहते हैं ॥

जंगमानां वयःस्थानां रक्तरोमनखादिकम् ।
क्षीरमूत्रपुरीषाणि जीर्णाहारेषु संहरेत् ॥

अर्थ-तहां वयस्थ जंगम (अर्थात्) तरुण प्राणियोंके रुधिर, रोम और नखादिक लेवे और यदि इनके क्षीर, मूत्र, गोवर, लीद आदि लेने होयतो जब इनका आहार पचजावे तब लेवे, अजीर्णावस्थाका नलेय ॥

औषधरखनेकाउपाय ।

प्लोतमृद्भाण्डफलकशंकुविन्यस्तभेषजम् ।
प्रशस्तायांदिशि शुचौ भेषजागारमिष्यते ॥ ५ ॥

अर्थ-इन औषधोंको कपडेके टुकडोंमें, मिट्टीके बासन (इमरतवान्

१ जंगम शब्दसे सजीव चलने फिरनेवाले मनुष्य, घोडा, हाथी, शेर, बकरी, मेढा, हरिण, मुरगा आदि जानने । जंगम प्राणी जो जवान होते हैं उनके मांस, रुधिरादिभी अधिक बीर्यवाले होते हैं । और बच्चे, तथा बुड्ढे निर्बली और हीनवीर्य होते हैं । इस वास्ते इस जगे (वयस्थ) ऐसा पद धरा है ।

२ जो दानेदार औषधहैं उनको कपडेमें बांधके धरे, जो चूर्ण आदि हैं उनको मिट्टी-के पात्र तथा शीशी आदिमें धरे परंतु उनके ऊपर नाम लिखदेवे कि, जिस्से भूल न हो । जो लंबी और भारी वस्तुहैं उनको तक्ते आदिपर धरे और जो रूखडी जडी

हांडी, चीनीके प्याले, सकोरा, गागर, मांट, तथा शीशीआदि) फलक, (तक्ता, पट्टी) और शंकु (कील, मेख,) इनमें धरी है औषधी जिसमें ऐसा औषधालय पूरव अथवा उत्तरदिशा और पवित्र स्थानमें होना चाहिये

पिछाडी बस्ती प्रकरणमें लिख आए हैं कि, औषधोंके गण आगे कहैंगे, इसवास्ते अब द्रव्यसंग्रहणीयाध्यायकरके औषधोंके ३७गण कहते हैं॥

अथातो द्रव्यसंग्रहणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ-अब हम द्रव्यसंग्रहणीय अध्यायका वर्णन करेंगे, तहां संग्रह शब्दसे संक्षेपार्थ लेना अर्थात् द्रव्योंका संक्षेप मुख्यकरके करी अध्याय उसका हम व्याख्या करेंगे, द्रव्योंका विस्तारसे वर्णन आगे चिकित्सा खंडमें कराजायगा जैसे इसी अध्यायके अंतमें लिखेंगे 'समासेन गणा ह्येते प्रोक्तास्तेषां तु विस्तरम् । चिकित्सितेषु वक्ष्यामि ज्ञात्वा दोषबलाबलम्" जैसे इस सुश्रुतमें ३७ गणकहे हैं उसीप्रकार वाग्भटके शोधनादिगणसंग्रहाध्यायमें ३३ ही औषधोंके गण कहेहैं ।

तहांअध्यायकापिंडार्थ ।

समासेन सप्तत्रिंशद्द्रव्यगणा भवन्ति तद्यथा ।

आदि हैं उनको डोरसे बांधके कील, खूटी, मेख आदिमें लटकाय देवे । तेल घृत आदि को कुप्पी, चिकने बासन आदिमें वैद्य एक सुडोल रीतिसे अपने औषधालयमें धरे कि, जिससे मकानभी सजजाय और औषधभी न बिगडे तथा वख्तपर शीघ्र मिलजावे ।

१ पवित्रस्थान कहनेका यह प्रयोजन है कि, जो सपेदी आदिसे स्वच्छ तथा नीचे कूडे आदिसे रहित, जिसमें उत्तम ऊंचे २ द्वारा हों जिससे पवनका संचार अच्छे प्रकारहो और उज्वल चांदनी आदि कपडे बिछेहों तथा ऊपरभी ऐसेही तने हों, तथा उस मकानके और पास दुर्गंध न हो, इत्यादिक सामिग्रीसे पवित्रहो, ऐसा न होवे कि, कहीं कुछ रूखडी पडी है, कहीं कूडेका ढेर लगाहै, पासही टूटे फटे जूतेके जोडे पडे हैं, पुराना धुराना कुछ बिछैया बिछाहै, मकानकी छत्त और भीतोंसे मिट्टीकी वर्षा होरही है मक्खवी भिन भिनाती है, दुर्गंधआती है टूटे फूटे बांसनोंसे कुछ दवाई धरतीमें फैल रही है, कुछ उस पात्रमें है । पोथी पत्तरे अस्तव्यस्त पडे हैं कुरूप और मलीन ऐसे औषध बनानेके पात्र कहीं पडे हैं इत्यादि अनेक कारणोंसे अपवित्रता होती है । उससे वैद्यको सदैव सावधान रहना चाहिये ॥

यह वैद्य अन्यरोगी आदिको स्वच्छ रहनेकी आज्ञा देताहै फिर दीपकके नीचे अंधकारहो तो रोगिजन क्या कहैंगे । देखो डाक्टर लोग कैसी अस्पताल और अपने मकानकी स्वच्छता रखते हैं खैर उनहींका अनुकरण सीखो ॥

अर्थ-संक्षेपसे द्रव्योंके सेंतीस गण होते हैं, जैसे-आगे लिखते हैं ॥

विदारीगंधादिगण।

विदारिगन्धा विदारी सहदेवा विश्वदेवा श्वदंष्ट्रा पृथक्पर्णी शतावरी सारिवा कृष्णसारिवा जीवकर्षभकौ महासहा क्षुद्रसहाबृहत्यौ पुनर्नवैरण्डौ हंसपादीवृश्चिकाल्यृषभीचेति।

विदारिगन्धादिरयं गणःपित्तानिलापहः।
शोषगुल्माङ्गमर्दोर्द्ध्वश्वासकासविनाशनः॥ १॥

अर्थ-विदारीगंधा, (शालपर्णी) विदारीकंद, सहदेवा, (सहदेई) विश्वेदेवा, (गगेरन गुडसकरीनामसे प्रसिद्ध) स्वदंष्ट्रा, (गोखरू) पृथक्पर्णी, (पिठवन) शतावर, सारिवा, कृष्णसारिवा, जीवक, ऋषभक, महासहा, (मासपर्णी) क्षुद्रसहा, (मुद्गपर्णी) बृहती, (छोटेफलकी और बडे फलकी दोनों कटेरी) पुनर्नवा, (सांठ) अंड, हंसपदी, वृश्चिकाली (मेढासिंगीकाभेद) और ऋषभी (कौंच, किवाच)

ये ऊपर लिखीहुई संपूर्ण औषध विदारीगंधादिगण जानना। यह पित्त, बादी, शोष, (राजयक्ष्मा) अंगमर्द, (अंगोंका टूटना) उर्द्ध्वश्वास और खांसीको दूरकरे है ॥

वातपित्त हरण करनेसे इस गणको दोषनाशक और शोषादि हरण करने

---

१ विदारीकंद कोहला (पेठे) के समान लाल फलका होताहै। इसके दो भेद हैं-पहला लंबाकंद और बहुत दूधवाला, दूसरा हाथीके पैरके समान बहुतथोडा दूधवाला होता है। ये पूरवके देशोंमें बहुत मिलते हैं। सारिवा जामुनके पत्तेसमान पत्तेवाली दूधवालीबेल इसी नामसे प्रसिद्धहै. । कृष्णसारिवा छरेहटाके समान पत्तेवाली और उसमें चंदनकी सुगंध आती है, भाषामें कालीवेल कहते हैं। ४ हंसपदीइसके पत्ते हंसके पैरके सदृश होते हैं, और पीलाफूल-तथा जल सूख गयाहो उस पृथ्वीमें होताहै लोकमें हंसराज कहते हैं परंतु हंसराज यह नहीं है। इसकी परीक्षा और रूप हम इसी बृहन्निघंटुरत्नाकरके निघंटभागमें लिखेंगे। ५ वृश्चिकाली रूखडी कांटेवाली मेढाके सींगके समान ऊंचे फलवाली होती है। कोई कहता है कि, पाठकेसे पत्ते-कुछ २ रूआं वाली सपेद फूलकी दक्षिणावर्त्त वेल मेढासिंगीका भेद होताहै ॥

वाग्भटमें देवदारू तथा जीवनीयगणको इसीगणमें लिखाहै ॥

से इस गणको व्याधिनाशक अर्थात् व्याधियोंका शत्रु जानना। दोषोंपर कहकर व्याधियोंके ऊपर कहनेसे इस गणको अवस्था, काल और देशादि भेदकरके संपूर्ण अथवा आधाजो मिले उतना लेकर काढा, फांट, स्वरस, कल्क, चूर्ण और गुटिकाआदि बनायकर रसक्रिया, लेप, नस्य, परिषेक और स्नान तथा घृत तैलादिक यथायोग्य योजित करने चाहिये। इसीप्रकार अन्य गणोंमें भी जानना।

तथा जीवकऋषभकआदि द्रव्योंका अन्नपानादिकमें गुण नहीं कहे उनको संपूर्ण गणके गुणाभिधान करके पृथक् द्रव्यगुण जानने चाहिये॥

आरग्वधादिगण।

आरग्वधमदनगोपघोण्टाकुटजपाठाकण्टकीपाटलामूर्वे-
न्द्रयवसप्तपर्णनिम्बकुरुण्टकदासीकुरुण्टकगुडूचीचित्रक-
शार्ङ्गष्टाकरञ्जद्वयपटोलकिराततिक्तकानिसुषवीचेति।
आरग्वधादिरित्येषगणःश्लेष्मविषापहः।
मेहकुष्ठज्वरवमी कण्डूघ्नो व्रणशोधनः॥ २॥

अर्थ–आरग्वध, (अमलतास) मदन, (मैनफल) गोपघोंटा,[1] (ककडीकाभेद) कूडाकावृक्ष, पाढ, विकंकत, (कांटेवालावृक्ष कटेरीनामसे प्रसिद्ध) पाढल, मूर्वा, इन्द्रजों, सतवन,[2] नीम, कुरुंटक (कटसरैया, पीलेफूलका पियावांसा) दासीकुरुंटक, (नीलफूलका पियावांसा) गिलोय, चीता, शार्ङ्गष्टा[3] (काकजंघा, विकसवनी करके प्रसिद्ध) करंज, (कंजा) और पूतीकरंज, पटोलपत्र, किरात तिक्तक, (चिरायता) कारवी (कलौंजी अथवा काकडासिंगी॥

यह आरग्वधादिगण कफ, विष, प्रमेह, कुष्ठ, ज्वर, वमन, खुजली इनको दूर करे तथा (पुष्ट) घावको भरने वाला है॥

वरुणादिगण।

वरुणार्त्तगलशिग्रु मधुशिग्रु तर्कारीमेषशृङ्गीपूतीकनक्त-

---

१ कोई गोपघोंटाको भेद बताते हैं। और कोई सुपारीका भेद कहते हैं। २ सतोना यह वृक्ष शरदि ऋतुमें खिलता है और हार्थीके मदकीसी इसमें गंध आती है। ३ कोई शार्ङ्गष्टाको काकमाची–और कोई काकतिक्ता कहते हैं।

मालमोरटाग्निमन्थसैरीयकद्वयबिम्बीवसुकवसिर चित्र-
कशतावरीबिल्वाजशृङ्गीदर्भा बृहतीद्वयश्चेति ।
वरुणादिर्गणोह्येषकफमेदोनिवारणः ॥ ३ ॥

अर्थ–वरुणा (वरना इसवृक्षके पत्तोंका कडुआ साग होता है) आर्त्तगल (कोह.) शिग्रु (सहेंजना) मधुशिग्रु (लालसहेंजना) तर्कारी (अरनी) मेषशृंगी (मेढासिंगी) पूतिक (कंजा) नक्तमाल (बडाकरंज) मोरट (मूर्वा) अग्निमंथ (अगेथू पूरबदेशप्रसिद्ध अरनीका भेद) सैरीयकद्वय (दो प्रकारकी कटसरैया, लालफूलवाली जिसको कुरबक कहते हैं। और पीलेपुष्प का पियावांसा) बिंबी (कंदूरी) वसुक (वकपुष्प) अथवा वसुक (आक) वसिर (मर्कटपिप्पली, ओंगानामसेप्रसिद्ध) चीता, शतावर, बेल, अजशृंगी (मेढासिंगीकाभेद) कुश, और छोटीबडी कटेरी ॥

यह वरुणादिगण कफ, मेदा, मस्तकशूल, गोला और भीतरकी विद्रधि इनको दूरकरता है ॥

वीरतर्वादिगण ।

वीरतरुसहचरद्वयदर्भवृक्षादनीगुन्द्रानलकुशकाशाश्म-
भेदकाग्निमन्थमोरटावसुकवसिरभल्लूककुरुण्टकेन्दीवर-
कपोतकङ्काश्वदंष्ट्राचोति ॥
वीरतर्वादिरित्येष गणो वातविकारनुत् ।
अश्मरीशर्करामूत्रकृच्छ्रघातरुजापहः ॥ ४ ॥

अर्थ–वीरतरु (वेल्वंतर)दोनोंकटसरैया, दर्भ (डाभ) वृक्षादनी (वंदाक, वांदा प्रसिद्ध) गुन्द्रा (गोदर) नल(नरसल) कुशा, काश, अश्मभेदक (पाषानभेद) अरनी, मोरट (मूर्वा) वसुक (बकपुष्प) बसिर (ओंगा) भल्लूक(स्योनाक) कुरुंट (सिरवालिका) इन्दीवरी (नीलाकमल) कपोत-कंका (डुलडुल) औरगोखरू ॥

यह वीरतर्वादिगण वातके विकारोंको तथा पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र आदिकी पीडा इन सबको दूरकरे ॥

सालसारादिगण ।

सालसाराजकर्णखदिरकदरकालस्कन्धक्रमुकभूर्जमेषशृ-

तिनिशचन्दनकुचन्दनशिंशपाशिरीषासनधवार्जुन-
तालशाकनक्तमालपूतिकाश्वकर्णागुरूणि कालीयकश्चेति ।
सालसारादिरित्येष गणः कुष्ठविनाशनः ।
मेहपाण्ड्वामयहरः कफमेदोविशोषणः ॥ ८ ॥

अर्थ–सालसार (राल) अजकर्ण (सालवृक्षकाभेद.) खैर (कत्था) कदर (सपेद खैर सारके समानपदार्थ)कालस्कंध (तेन्दू)क्रमुक(सुपारी)भोजपत्र, मेढासिंगी,तिनिश (सादन) चंदन,कुचंदन (लालचंदन) शिंशपा (सीसों) सिरष, असन (विजेसार इस नामसे पूरबदेशमें प्रसिद्ध)धव (धों) अर्जुन (कोह.) ताल (ताड) शाक(वरदारू,) (सागवन इति प्रसिद्ध) कंजा और बडा कंजा, अश्वकर्ण (कुशिक) अगर और कालीयक (पीलाचंदन)

यह सालसारादिगण कुष्ठ, प्रमेह, पांडु, इन रोगोंको दूरकरे तथा कफ और मेदको सुखाता है ॥

रोध्रादिगण ।

रोध्रसावररोध्रपलाशकुटन्नटाशोकफञ्जीकट्फलैलावालु-
कसल्लकीजिङ्गिनीकदम्बसालाः कदली चेति ।
एष रोध्रादिरित्युक्तो मेदःकफहरो गणः ।
योनिदोषहरस्तम्भी व्रण्यो विषविनाशनः ॥ ६ ॥

अर्थ–लोध्र, सावररोध्र (पठानीलोध) पलाश(ढाक)कुटंनट (स्योनाक) अशोक, फंजी (भारंगी)कायफल, एलावालुक(सुवासिक द्रव्य, हरिवालुक करके प्रसिद्ध) सल्लकी (सालकाभेद) जिंगनी (मजीठ) कदंब, साल और केला ये लोध्रादिगण हैं ॥

यह मेद,कफ,योनिदोष इनको हरणकरे है.तथा अतिसार आदि रोगोंको स्तंभन करे है, व्रणको हितकारी और विषदोष नाशक है ॥

अर्कादिगण ।

अर्कालर्ककरञ्जद्वयनागदन्तीमयूरकभांर्गीरास्नेन्द्रपुष्पीक्षुद्र-
श्वेतामहाश्वेतावृश्चिकाल्यलवणास्तापसवृक्षश्चेति ।
अर्कादिको गणो ह्येष कफमेदोविषापहः ।

कृमिकुष्ठप्रशमनो विशेषाद्व्रणशोधनः ॥ ७ ॥

अर्थ–अर्क, (लालफूलकाआक) अलर्क, (सपेदफूलकाआक) कंजा, दंती, ओंगा, (चिरचिटा) भारंगी, रास्ना, इन्द्रपुष्पी, (कटेरी) क्षुद्रश्वेता, (फेसंद) महाश्वेता, (नीलपुष्पसकंद) वृश्चिकाली, (मेढासिंगीकाभेद) अलवणा, (मालकांगनी,) काकमर्दनिका और इंगुदीवृक्ष, (गोंदीवा हिंगोट वृक्ष) ये अर्कादि गण हैं ॥

यह कफ, मेद, विष, कृमि, कुष्ठ इनको दूरकरे और व्रणको शोधन करे है ॥

सुरसादिगण ।

सुरसाश्वेतसुरसाफणिज्झकार्जकभूस्तृणसुगन्धकसुमुख कालमालकासमर्दक्षवकखरपुष्पाविडङ्गकट्फलसुरसी- निर्गुण्डीकुलाहलोन्दुरुकर्णिकाफञ्जीप्राचीवलकाकमा- च्यो विषमुष्टिकश्चेति ।

सुरसादिर्गणो ह्येष कफहृत् कृमिसूदनः ।
प्रतिश्यायारुचिश्वासकासघ्नो व्रणशोधनः ॥ ८ ॥

अर्थ–सुरसा, (सपेदतुलसी) और कालीतुलसी, फणिज्झक, (मरुआ) अर्जक, (सपेद आजवला) भूस्तृण, (गुंदाक रोहिसतृण) सुगंधक, (बडा- सुगंधतृण) सुमुख, (राई, वा वर्बरी) कालमाल, (कारीचमेली) कासमर्द, (कसोंदी) क्षवक, (जिव्हारिपाक इसप्रकार पारियात्र पर्वतमें प्रसिद्ध) खरपुष्प, (क्षवकका भेदहै) वायविडंग, कायफल, सुरसी, (बिल्वनासी) निर्गुंडी, कुलाहल, (मुंडिका) उंदुरकर्णी, (मूसाकर्णी) भारंगी, प्राचीवल (मछेछी) काकमाची (मकोय अथवा गुडफला) विषमुष्टिक, (राजनिंब) ये सुरसादि गणहैं ॥

यह कफरोग, कृमिरोग, पीनस, अरुचि, श्वास, खांसी इनको नाश- करे तथा व्रणको शोधन करे है ॥

मुष्ककादिगण ।

मुष्ककपलाशधवाचित्रकमदनवृक्षाशिंशपावज्रवृक्षास्त्रि- फलाचेति ।

मुष्ककादिर्गणो ह्येष मेदोघ्नः शुक्रदोषहृत् ।
मेहार्शःपाण्डुरोगघ्नः शर्कराश्मरिनाशनः ॥ ९ ॥

अर्थ–मुष्कक, (मोख वा मोक्षवृक्ष) पलास, (ढाक) धव, (धौं) चित्रक, (चीता) मैनफलका वृक्ष, सीसो, थूहर और त्रिफला (हरड–बहेडा–आमला) ये मुष्ककादिगणहैं ॥

यह मेद,शुक्र(वीर्य)के दोष,प्रमेह,पांडुरोग,शर्करा,पथरी इनको दूरकरैहै

पिप्पल्यादिगण।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेरमरिचहस्तिपिप्पलीहरेणकैलाजमोदेन्द्रयवपाठाजीरकसर्षपमहानिम्बफलहिङ्गुभार्गीमधुरसातिविषावचाविडङ्गानि कटुरोहिणी चेति ।

पिप्पल्यादिः कफहरः प्रतिश्यायानिलारुचीः ।
निहन्याद्दीपनो गुल्मशूलघ्नश्चामपाचनः ॥ १० ॥

अर्थ–पीपर, पीपरामूल,चव्य, चीता,अदरख,कालीमिरच, गजपीपल, हरेणुक, (रेणुकाद्रव्य) इलायचीछोटी, अजमोद, इन्द्रजों, पाढ, जीरा, सरसों, बकायन, हींग, भारंगी, मूर्वा, अतीस, वच, वायविडंग और कुटकी यह पिप्पल्यादिगणहै ॥

यह कफको तथा पीनस, बादी, अरुचि, गोला, शूल और आमवात रोगको हरणकरे तथा अग्निको दीपनकरे है ॥

एलादिगण।

एलातगरकुष्टमांसीध्यामकत्वक्पत्रनागपुष्पप्रियङ्गुहरेणुकाव्याघ्रनखशुक्तिचण्डास्थौणेयकश्रीवेष्टकचोचचोरकवालकगुग्गुलुसर्जरसतुरुष्ककुन्दुरुकाऽगुरुस्पृक्कोशीरभद्रदारुकुङ्कुमानिपुन्नागकेशरश्चेति ।

एलादिको वातकफौ निहन्याद्विषमेवच ।
वर्णप्रसादनः कण्डूपिडकाकोठनाशनः ॥ ११ ॥

अर्थ–छोटीइलायची, तगर, कूट, जटामांसी, रोहिषतृण, तज,पत्रज, नागकेशर, प्रियंगु, रेणुका द्रव्य, बृहन्नख, शुक्ति (उसीव्याघ्रनखकाभेद) चंडा, स्थौणेयक, (थुनेर) श्रीवेष्ट, (सरलवृक्ष) चोच (तजकाभेद) चोरक (ग्रंथिपर्णीकाभेद) वालक, (नेत्रवाला) गूगल, राल, सिंल्हक, सल्लकी ,

अगर, पृक्का (सुगंधिद्रव्य उत्तरमें प्रसिद्ध) उशीर (खस) भद्रदारु(देवदारु) कुंकुम (केशर) पुन्नाग और कमलका केशर ये एलादिगणहैं ॥

यह वात, कफ, विषविकार, खुजली,पिडका,(फुंसी) रुधिर विकारके काले काले चकत्ते इन सबको नाशकरे । तथा देहके रंगको स्वच्छ (गोरा) करे ॥

वचाहरिद्रादिगण।

वचामुस्तातिविषाभयाभद्रदारूणि नागकेशरश्चेति ।
हरिद्रादारुहरिद्राकलशीकुटजबीजानि मधुकंचेति ॥
एतौ वचाहरिद्रादी गणौ स्तन्यविशोधनौ ।
आमातीसारशमनौ विशेषाद्दोषपाचनौ ॥ १२ ॥

अर्थ–वच, मोथा, अतीस, हरड, देवदारु, नागकेशर, ये वचादि गण हैं। हलदी, दारुहलदी, पृष्टपर्णी, इन्द्रजों और महुआ ये हरिद्रादि गणहैं ॥

यह दोनों गण स्त्रीके स्तनसंबंधी दूधको शोधन करे तथा आमातिसारको शमनकरे तथा विशेषकरके वातादि दोषोंको पाचन करे है ॥

श्यामादिगण।

श्यामामहाश्यामातृवृद्दन्तीशंखिनीतिल्वककम्पिल्लकरन्भकक्रमुकपुत्रश्रेणीगवाक्षीराजवृक्षकरञ्जद्वयगुडूचीसप्तलाच्छगलान्त्रीसुधाःसुवर्णक्षीरी चेति ॥
उक्तः श्यामादिरित्येष गणो गुल्मविषापहः ।
आनाहोदरविट्भेदी तथोदावर्त्तनाशतः ॥ १३ ॥

अर्थ–श्यामा (सपेद निसोथ) महाश्यामा (विधायरो) तृवृत् (लाल जडकी निशोथनामसे प्रसिद्ध) दंतीशंखिनी (यवतिक्ताकाभेद) तिल्वक (लोध) कंपिल्लक (कवीला) रम्यक (बकायन) क्रमुक (सुपारी) पुत्रश्रेणी (संवरी) गवाक्षी (इन्द्रायण) राजवृक्ष (अमलतास) करंज, पूतीकरंज, गिलोय, थूहर, छगलांत्री (बृहदारककाभेद) सुधा (सेहुड) स्वर्णक्षीरी (चोक) ये श्यामादिगणहैं ॥

यह गोला, विषविकार, अफरा, उदररोग इनको दूरकरे मलको भेदक हे अर्थात् दस्तावरहै और उदावर्त्तका नाशक है ॥

बृहत्यादिगण।

बृहतीकण्टकारिकाकुटजफलपाठा मधुकश्चेति।
पाचनीयो बृहत्यादिर्गणः पित्तानिलापहः।
कफारोचकहृल्लासमूत्रकृच्छ्ररुजापहः॥ १४॥

अर्थ–बडीकटेरी, छोटीकटेरी, इन्द्रजों पाढ और महुआ यह बृहत्यादि गण हैं। यह पाचन है तथा पित्त वादीका और कफ, अरुचि, हल्लास, मूत्रकृच्छ्र इत्यादि रोगोंको नष्ट करे है॥

पटोलादिगण।

पटोलचन्दनकुचन्दनमूर्व्वागुडूचीपाठाः कटुरोहिणी-
चेति। पटोलादिर्गणः पित्तकफारोचकनाशनः। ज्वरोप-
शमनो व्रण्यश्छर्दिकण्डूविषापहः॥ १५॥

अर्थ–पटोलपत्र, चंदन, लालचंदन, मूर्वा, गिलोय, पाढ और कुटकी यह पटोलादि गण हैं॥

यह ज्वर, पित्त, कफ,अरुचि, छर्दि, खुजली, विष इनको दूरकरे तथा घावको हितकरी है॥

काकोल्यादिगण।

काकोलीक्षीरकाकोलीजीवकर्षभमुद्गपर्णीमाषपर्णीमे-
दामहामेदाछिन्नरुहाकर्कटशृङ्गीतुगाक्षीरीपद्मकप्रपौ-
ण्डरीकर्द्धिवृद्धिमृद्वीकाजीवन्त्यो मधुकश्चेति॥ का-
कोल्यादिरयं पित्तशोणितानिलनाशनः। जीवनोबृं-
हणो वृष्यः स्तन्यश्लेष्मकरस्तथा॥ १६॥

अर्थ–काकोली,क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभ, मूंगोन, माषपर्णी, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकडासिंगी, वंशलोचन, पद्माख, कमल, ऋद्धि, वृद्धि, दाख, डोडी और मुलहटी यह काकोल्यादि गण॥

यह पित्त, रुधिर, बादी इनको नाशकरे तथा जीवन बृंहण (शरीरको पुष्टकारी) वृष्य, स्तनोंमें दूधका बढानेवाला और कफकारी हैं॥

उषकादिगण।

उषकसैन्धवशिलाजतुकासीसद्वयहिङ्गूनि तुत्थकश्चेति॥

उषकादिः कफं हन्ति गणो मेदोविशोषनः । अश्मरीश-
र्करामूत्रकृच्छ्रगुल्मप्रणाशनः ॥ १८ ॥

अर्थ-उषक (क्षारमृत्तिका यह काशीके पास वडहर देशमें अधिक होती है) सैंधानिमक, शिलाजीत, कसीस, पुष्पकसीस, हींग और नीलाथोथा ये उषकादि गण हैं ॥

यह कफ, पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, गोला इनको नष्टकरे तथा मेद (चर्वी) को शोषण करे ॥

सारिवादिगण ।

सारिवामधुकचन्दनकुचन्दनपद्मककाश्मरीफलमधुक-
पुष्पाण्युशीरश्चेति । सारिवादिः पिपासाघ्नो रक्तपित्त-
हरो गणः । पित्तज्वरप्रशमनो विशेषाद्दाहनाशनः ॥

अर्थ-सारिवा (सरिवनगौरी सर) मुलहटी, चंदन, लालचंदन, पद्माख, कंभारी, महुआके फूल और खस ये सारिवादि गण हैं ॥

यह, प्यास, रक्तपित्त, पित्तज्वर और विशेषकरके दाहको हरण करे है ॥

अंजनादिगण ।

अञ्जनरसाञ्जननागपुष्पप्रियंगु नीलोत्पलनलदनलिनके
शराणिमधुकञ्चेति ।
अञ्जनादिर्गणो ह्येष रक्तपित्तनिबर्हणः ।
विषोपशमनो दाहं निहन्त्याभ्यन्तरं तथा ॥ १६ ॥

अर्थ-सूरमा, रसोत, नागकेशर, प्रियंगु, नीलाकमल, जटामांसी, कमलकेशर और महुआ ये अंजनादि गण हैं ॥

यह रक्तपित्तको दूरकरे, विषदोषको शमनकरे, भीतरकेदाहको नष्टकरेहै॥

परूषकादिगण ।

परूषकद्राक्षाकट्फलदाडिमराजादनकतकफलशाकफ
लानि त्रिफला चेति ।
परूषकादिरित्येष गणोऽनिलविनाशनः ।
मूत्रदोषहरो हृद्यः पिपासाघ्नो रुचिप्रदः ॥

अर्थ–फालसे, दाख, कायफल, अनार, खीरनी, कतकफल (निर्मली) शाकवृक्षका फल और त्रिफला ये परूषकादि गण हैं ॥

यह वादीके दोष, मूत्रकेविकार और प्यास इनको हरण करे तथा हृदयके हितकारी तथा रुचि उत्पन्न कर्ता है ॥

प्रियंगु और अंबष्ठादिगण ।

प्रियङ्गु समङ्गाधातकीपुन्नागरक्तचन्दनकुचन्दनमोचरस-रसाञ्जनकुम्भीकस्रोतोऽञ्जनपद्मकेशरयोजनवल्लयोदीर्घ-मूलाचेति ॥ १७ ॥

अम्बष्ठाधातकीकुसुमसमङ्गाकट्वङ्गमधुकबिल्वपेशिका-रोध्रसावररोध्रपलाशनन्दीवृक्षपद्मकेशराणि चेति ।

गणौ प्रियङ्ग्वम्बष्ठादी पक्कातीसारनाशनौ ।
सन्धानौ यौ हितौ पित्ते व्रणानाञ्चापि रोपणौ ॥

अर्थ–प्रियंगु, लजालु, धायके फूल, पुन्नाग, लालचंदन, चंदन, मोचरस, रसोत, कुंभीनामा वृक्ष (जिसकी छाल वस्त्रके आकार होती है) सूरमा, कमलकेशर, मजीठ और धमासा ये प्रियंग्वादि गण हैं ॥

अंबष्ठा (कुरंड) धायकेफूल, लजालु, रेणुक, मुलहटी, बेलगिरी, लोध, पठानीलोध, पलाश (ढाक) नंदीवृक्ष (काश्मरी) और पद्मकेशर ये अंबष्ठादिगण हैं ॥

ये दोनों (प्रियंग्वादि और अंबष्ठादि गण) पक्कातिसारको नष्ट करते हैं टूटी हड्डीको जोडने वाले, पित्तमें परम हितकारी और व्रणोंको रोपण करे हैं ।

न्यग्रोधादिगण ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षमधुककपीतनककुभाम्रकोशा-म्रचोरकपत्रजम्बुद्वयप्रियालमधुकरोहिणी वञ्जुलकद-म्बबदरीतिन्दुकीसल्लकीरोध्रसावररोध्रभल्लातकपलाशा नन्दीवृक्षश्चेति । न्यग्रोधादिर्गणोव्रण्यः संग्राही भग्नसाध-कः। रक्तपित्तहरो दाहमेदोघ्नो योनिदोषहृत् ॥

अर्थ--बड, गूलर, पीपल, पाखर, महुआ, अंबाड़ा, कोह, आम, कोशाम्र, चोरकपत्र, (लाखकावृक्ष) छोटीजामुन (काकजामुन)

बडीजामुन (राजजामुन) खिरनी, मुलहटी, कायफर, वेत, कदंब, बेर, तेंदु, सालवृक्ष, लोध, पठानीलोध, भिलावाँ, ढाक और नंदीवृक्ष ये न्यग्रोधादि गण हैं ॥

यह व्रणको हितकारी, ग्राही, टूटेहाडआदिको जोडने वाला, रक्तपित्त, दाह, मेद और योनिके दोष इनको नाश करे है ॥

गुडूच्यादिगण ।

गुडूचीनिम्बकुस्तुम्बुरुचन्दनानि पद्मकश्चेति ।
एष सर्वज्वरान् हन्ति गुडूच्यादिस्तु दीपनः ।
हृल्लासारोचकवमीपिपासादाहनाशनः ॥

अर्थ–गिलोय, नीम, धनियां, लालचंदन और सफेद चंदन तथा पद्माख ये गुडूच्यादि गणहैं । यह सर्वज्वरोंका नाशकरे और जठराग्निको दीपन करे है । तथा हल्लास, अरुचि, वमन, प्यास, दाह इनको नष्टकरे ॥

उत्पलादिगण ।

उत्पलरक्तोत्पलकुमुदसौगन्धिककुवलयपुण्डरीकाणि
मधुकश्चेति । उत्पलादिरयं दाहपित्तरक्तविनाशनः ।
पिपासाविषहृद्रोगच्छर्दिमूर्च्छाहरोगणः ॥

अर्थ–नीला कमल, लालकमल, कमोदनी (वघौला, नीलोफर) सौगंधिक (नीलकमलके आकार सुंगधवाला) कुवलय (कुछनील और सपेदीयुक्त कमल) पुंडरीक (सपेद कमल) और मुलहटी ये उत्पलादि गण हैं ॥

यह दाह, रक्तपित्त, प्यास, विषदोष, हृदयकेरोग, वमन और मूर्च्छा इनको हरण करे है ॥

मुस्तादिगण ।

मुस्ताहरिद्रादारुहरिद्राहरीतक्यामलकविभीतककुष्ठहैमवतीवचापाठाकटुरोहिणीशार्ङ्गेष्टातिविषाद्राविडीभल्लातकानि चित्रकश्चेति । एष मस्तादिको नाम्ना गणःश्लेष्मनिषूदनः।योनिदोषहरःस्तन्यशोधनःपाचनस्तथा ॥

अर्थ–मोथा, हलदी, दारुहलदी, हरड, आमला, बहेडा, कुष्ठ (कूट)

सपेदवच, वच, पाढ, कुटकी, यवतिक्ता, अतीस, छोटीइलायची, भिलावाँ और चीता ये मुस्तकादि गण हैं ॥

यह कफको दूरकरे, योनिदोषको हरण करे, स्तनसंबंधी दूधको शुद्धकरे और पाचन है ॥

त्रिफलागण ।

हरितक्यामलकविभीतकानि त्रिफला (?) ।
त्रिफला कफपित्तघ्नी मेहकुष्ठविनाशनी ।
चक्षुष्या दीपनी चैव विषमज्वरनाशिनी ॥

अर्थ–हरड, बहेडा और आमला यह त्रिफला है यह कफ, पित्त, प्रमेह, कुष्ठ और विषमज्वर इनको नाशकरे नेत्रोंको परमहितकारी और अग्निको दीपन करे है ।

त्रिकटुगण ।

पिप्पलीमरिचशृंगवेराणि त्रिकटुकम् ।
त्र्यूषणं कफमेदोघ्नं मेहकुष्ठत्वगामयान् ।
निहन्याद्दीपनं गुल्मपीनसाग्न्यल्पतामपि ॥

अर्थ–सोंठ, मिरच और पीपल ये त्रिकटुकगण हैं इसको त्र्यूषण कहते हैं यह कफ, मेदा, प्रमेह, कोढ, त्वचाके रोगोंको, गोला, पीनस और मंदाग्नि इन सबको दूरकरे और अग्निको दीपन करे हैं ॥

आमलक्यादिगण ।

आमलकीहरीतकीपिप्पल्यश्चित्रकश्चेति ।
आमलक्यादिरित्येष गणःसर्वज्वरापहः ।
चक्षुष्यो दीपनो वृष्यःकफारोचकनाशनः ॥

अर्थ–आमला, हरड, पीपल और चीतेकी छाल ये आमलक्यादि गण हैं यह सर्व ज्वरोंको और कफ तथा अरुचिको नाश करे, नेत्रोंको हितावह, दीपन और वृष्य है ॥

त्रप्वादिगण ।

त्रपुसीसताम्ररजतकृष्णलोहसुवर्णानि लोहमलश्चेति ।
गणस्त्रप्वादिरित्येष गरक्रिमिहरःपरः ।

पिपासाविषहृद्रोगपाण्डुमेहहरस्तथा ॥

अर्थ-रांग, सीसा, ताम्बा, चांदी, खेडीलोह, सुवर्ण (सोना) और लोहमल (लोहकीटी) ये त्रप्वादि गण कृत्रिम विषदोष, कृमिरोग, प्यास, विषदोष, हृदयरोग, पांडुरोग और प्रमेह रोग इनको हरण करे ॥

लाक्षादिगण ।

लाक्षारेवतकुटजाऽश्वमारकट्फलहरिद्राद्वयनिम्बसप्तच्छदमालत्यस्त्रायमाणा चेति ।

कषायस्तिक्तमधुरःकफपित्तार्त्तिनाशनः ।
कुष्ठक्रिमिहरश्चैव दुष्टव्रणविशोधनः ॥

अर्थ-लाख, आरेवत (अमलतास) इन्द्रजों, कनेर, कायफल, हरदी, दारुहरदी, नीम, सतोना, मालती और त्रायमाण, यह लाक्षादिगण कषेला, कडुआ, मिष्ट ऐसाहै । तथा कृमिकुष्ठको नाशकरे तथा दुष्टनासूर आदि फोडोंको शोधन करे है ॥

लघुपंचमूलगण ।

पञ्च पञ्चमूलान्यत ऊर्ध्वं वक्ष्यामः । तत्र त्रिकण्टकबृहतीद्वयपृथक्पर्णी विदारिगन्धा चेति कनीयः ।

कषायतिक्तमधुरं कनीयः पञ्चमूलकम् ।
वातघ्नं पित्तशमनं बृंहणं बलवर्द्धनम् ॥

अर्थ-अब पांच पंचमूलोंको कहते हैं।तहां गोखरू, छोटीकटेरी,बडीकटेरी,पृष्टपर्णी और शालपर्णी यह छोटा पंचमूल है।यह कषेला,कडुआ और मीठाहै तथा वात और पित्तको शमन करे, बृंहण और बलको बढाताहै ॥

बृहत्पंचमूल ।

बिल्वाग्निमन्थटुंटुकपाटलाकाश्मर्य्यश्चेति महत् ।
सतिक्तं कफवातघ्नं पाके लध्वग्निदीपनम् ।
मधुरानुरसश्चैव पञ्चमूलं महत्स्मृतम् ॥

अर्थ-बेलगिरी, अरनी, स्योनाक, पाढल और कंभारी ये बृहत्पंचमूल हैं यह कडुआई लिये मीठाहै, कफ वादी इनको नष्टकरे, पचने पर हलका और अग्निको दीपन करे है ॥

दशमूल ।

अनयोर्दशमूलमुच्यते ।

गणःश्वासहरो ह्येष कफपित्तानिलापहः ।
आमस्य पाचनश्चैव सर्वज्वरविनाशनः ॥

अर्थ–छोटे और बडे दोनों पंचमूलोंके मिलानेसे दशमूल होताहै । यह दशमूलगण श्वासरोग, कफ, पित्त और वादी तथा ज्वरको नाशकरे और आमको पाचन करे है ॥

वल्लीपंचक तथा कंटकपंचक ।

विदारीसारिवारजनीगुडूच्योऽजशृङ्गी चेति वल्लीसंज्ञः । करमर्दत्रिकण्टकसैरीयकशतावरीगृध्रनख्य इति कण्टकसंज्ञः ॥
रक्तपित्तहरौ ह्येतौ शोफत्रयविनाशनौ ।
सर्वमेहहरौ चैव शुक्रदोषविनाशनौ ॥

अर्थ–विदारीकंद, सरिवन, हलदी, गिलोय और मेढासिंगी ये वल्लीपंचकहैं । करोंदा, गोखरू, कटसरैया, सतावर, गृध्रनखी ये कंटकपंचमूलहैं ॥ वल्ली पंचक और कंटक पंचक, दोनोंगण रक्तपित्तको हरणकरे, त्रिविध शोथरोगको नाशकरे तथा सर्वप्रमेह और शुक्रके दोषको हरणकरे है ॥

तृणपंचक ।

कुशकाशनलदर्भकाण्डेक्षुक इति तृणसंज्ञकः ।
मूत्रदोषविकारञ्च रक्तपित्तं तथैव च ।
अन्त्यःप्रयुक्तःक्षीरेण शीघ्रमेव विनाशयेत् ॥

अर्थ–कुश, काश, नरसल, डभा (डाभ) और कांडेक्षुक (सरपता) ये तृणपंचकहैं।यह मूत्रदोष तथा मूत्रके विकारोंको रक्तपित्तको शीघ्र दूरकरे है

पाचोंकेगुणएकश्लोकसेकहतेहैं ।

एषां वातहरावाद्यावन्त्यःपित्तविनाशनः ।
पञ्चकौ श्लेष्मशमनावितरौ परिकीर्त्तितौ ॥

अर्थ–इन पांचों पंचकोंमें आदिके दोपंचक (लघुपंचमूल और

बृहत्पंचमूल) बादीको हरण करते हैं और अंत्यपंचक (तृणपंचमूल) पित्तको शमन करे है। और बीचके (वल्लीसंज्ञक और कंटकसंज्ञक पंचमूल) कफको शमन करे है ॥

त्रिवृतादिकमन्यत्रोपदेक्ष्यामः ।

अर्थ–त्रिवृतादिकगण अन्यत्र कहिये आगे संशोधन संशमनीयाध्यायमें कहेंगे ॥

इनकोसंक्षेपत्वादिखातेहैं।

समासेन गणाह्येते प्रोक्तास्तेषान्तु विस्तरम्।
चिकित्सितेषु वक्ष्यामि ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ॥

अर्थ–ये संक्षेपसे (औषधोंके) गण कहे हैं दोषोंका बलाबल विचारके आगे चिकित्सास्थानमें इनको विस्तारसे वर्णन करेंगे दोषोंका बलाबल कहनेसे संपूर्ण परीक्षाओंका ग्रहण जानना ॥

इन गणोंका क्याकरे इसवास्ते कहतेहैं।

एभिर्लेपान् कषायांश्च तैलं सर्पींषि पानकान्।
प्रविभज्य यथान्यायं कुर्वीत मतिमान् भिषक् ॥

अर्थ–कुशलवैद्य इन औषधोंका यथाक्रम विभाग करके लेप, कषाय (शृतशीत, स्वरस, फांट, कल्क, आदि पांच कषाय) तैल, घृत और मंडादिकोंकी कल्पना करे ॥

औषधरक्षणकीविधि ।

धूमवर्षानिलक्लेदैः सर्वर्त्तुष्वनभिद्रुते ।
ग्राहयित्वा गृहे न्यस्येद्विधिनौषधसंग्रहम् ॥

अर्थ–विविध औषधसंग्रहको लेकर धूंआ, वर्षा, हवा और क्लेदोंसे सर्व ऋतुमें न बिगडने पावे ऐसे उत्तम मकानमें औषधोंको रखनी चाहिये ॥

इस द्रव्यगणकी कैसेयोजनाकरे सो कहतेहैं।

समीक्ष्य दोषभेदांश्च गणान् भिन्नान् प्रयोजयेत्।
पृथङ्मिश्रान् समस्तान् वा गणं वा व्यस्तसंहतम् ॥

अर्थ–वैद्य दोषोंको पृथक् २ देखके अमिश्रित गणोंकी योजना करे

तथा द्विदोष मिले देखके मिश्रित गणोंको देवे और संपूर्ण मिले दोष देखके तीनों गणोंको मिलायके देवे ॥

इति द्रव्यसंग्रहणीयाध्यायः समाप्तः।

पहलीअध्यामें लिखआये हैं कि, "त्रिवृतादिमन्यत्रोपदेक्ष्यामः" अर्थात् त्रिवृतादिगण आगे (संशोधन संशमनीयाध्यायमें)केहेंगे अतएव हमसंशोधनसंशमनीयाध्यायको कहते हैं ॥

अथातः संशोधनसंशमनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब संशोधन और संशमनयिअध्यायकी व्याख्या करते हैं। पूर्व द्रव्य संग्रहणीयाध्यायमें व्याधिके नाशक द्रव्योंके गण कहे और इस संशोधनसंशमनीयाध्यायमें दोषोंके प्रायः नाशकरी पंचकर्मोपयोगी शोधन द्रव्यसंग्रहणोंको तथा वातादि शमनद्रव्य गणोंको केहेंगे। तहां संशोधन दो प्रकारका है, जैसे–वमन और विरेचन, तहां विरेचनके पूर्व वमन कराते हैं इस कारण वमनद्रव्यगणको कहते हैं ॥

वमनद्रव्यगण।

मदनकुटजजीमूतकेक्षाकुधामार्गवकृतवेधनसर्षपविडङ्गपिप्पलीकरञ्जप्रपुन्नाटकोविदारकर्बुदरारिष्टाश्वगन्धाविदुलबन्धुजीवकश्वेतासणपुष्पीबिम्बीवचामृगेर्वारुचित्रा चेत्युर्ध्वभागहराणि। तत्र कोविदारपूर्वाणां फलानि। कोविदारादीनां मूलानि ॥

अर्थ–मैनफल, इन्द्रजों, वंदाल, कडुईतूंबी, धामार्गव (पीले फूलकीतोरई) कृतवेधन (सपेद फूलकीतोरई) सपेदसरसों, वायविडंग, पीपल, कंजा, पवांर, कोविदार (कचनारकाभेद) कर्बुदार (लिसोडे,लेहूसुआ) नीम, असगंध, वेत, मझनियाकापुष्प, सपेदवच, सनहुली, कंदूरी, लालवच, इन्द्रायण, चित्रांडजा (जिसका फल परवलके आकारका होताहै) ये ऊर्ध्वभाग हरण कर्त्ता गण है अर्थात् वमनकारी है। तहां वंदालसे

पूर्व मैनफलादिकके फल लेने और कोविदार आदिकी जडलेनी चाहिये । यह औषध कोईतो अकेलीही उलटी लाती है और कोई वमनकारी द्रव्यके साथ मिलानेसे वमन (उलटी)लाती है ॥

विरेचनद्रव्यगण ।

त्रिवृता श्यामा दन्ती द्रवन्ती सप्तला शङ्खिनी विषाणिका गवाक्षी छगलान्त्री स्नुक्सुवर्णक्षीरी चित्रककिणिही कुशकाशतिल्वककम्पिल्लकरम्भकपाटलापूगहरीतक्यामलकबिभीतकनीलीचतुरङ्गुलैरण्डपूतीकमहावृक्षसप्तच्छदार्कज्योतिष्मतीचेत्यधोभागहराणि ॥ तत्र तिल्वकपूर्वाणां मूलानि । तिल्वकादीनां पाटलान्तानां त्वचः । कम्पिल्लकफलरजः । पूगादीनामेरण्डान्तानां फलानि।पूतीकारग्वधयोःपत्राणि।शेषाणां क्षीराणीति

अर्थ–लालजडकी निसोथ, सपेदनिसोथ, दंती (दांतन) द्रवंती (दंतीकाभेद जिसको बरी कहतेहैं) थूहर, शंखिनी, मेढासिंगी, सपेदफूलकी इन्द्रायण, विधायरा, सेहुड, चोक, चीता, कटभी, कुश, काश, तिल्वक (छोटीलोध) कवीला, पटोलकीजड, पाढल, सुपारी, हरड, आमला, बहेडा, नीली, अमलतास,अंड, कंजा, महावृक्ष (थूहरकाभेद) सतोना और मालकांगनी यह संपूर्ण औषधी अधोभाग हरहैं अर्थात् दस्त लाती हैं । इनमें तिल्वकसे पूर्व अर्थात् निसोथ आदि जितने द्रव्यहैं उनकी जड लेनी,तिल्वकसे लेकर पाढल पर्यंतकी त्वचा (छाल) लेनी । कबीले आदिके फलका चूर्णले और सुपारीसे लेकर अंड पर्यंतके फल लेने, कंजा और अमलतासके पत्ते, बाकी जो रहीं उनका दूध लेना चाहिये ॥

वमनविरेचनकर्त्ताद्रव्यगण ।

कोशातकी सप्तला शंखिनी देवदाली कारवेल्लिकाचेत्युभयतोभागहराणि । एषां स्वरसा इति ॥

अर्थ–तोरई (कडवी तुरैयां) थूहर, शंखिनी, वंदाल और करेला

यह दोनों भागसे हरणकर्त्ता है । अर्थात् वमन और विरेचन दोनों कराते हैं इनका स्वरसलेना ।

शिरोविरेचन ।

पिप्पलीविडङ्गापामार्गशिग्रुसिद्धार्थकशिरीषमरिचकरवीरबिम्बीगिरिकर्णिकाकिणिहीवचाज्योतिष्मतीकरञ्जार्कालर्कलशुनातिविषाशृङ्गवेरतालीशतमालसुरसार्जकेङ्गुदीमेषशृङ्गीमातुलुङ्गीमुरुङ्गीपीलुजातीशालतालमधुकलाक्षाहिङ्गुलवणमद्यगोशकृद्रसमूत्राणीतिशिरोविरेचनानि तत्र करवीरपूर्वाणां फलानि । करवीरादीनामर्कान्तानां मूलानि । तालीशपूर्वाणां कन्दाः । तालीशादीनामर्जकान्तानां पत्राणि । इङ्गुदीमेषशृङ्गीत्वचौ । मातुलुङ्गीमुरुङ्गीपीलुजातीनां पुष्पाणि। शालतालमधुकानां साराः। हिङ्गुलाक्षे निर्य्यासौ । लवणानि पार्थिवविशेषाः । मद्यान्यासवसंयोगाः । गोमूत्रशकृद्रसौ मलाविति ॥

अर्थ–पीपर, वायविडंग, ओंगा, सहेंजना, सरसों, सिरस, कालीमिरच, कनेर, कंदूरी, सेफन्द, कटभी, वच, मालकांगनी, कंजा, आक, सपेदआक, लहसन, अतीस, अदरख, तालीसपत्र, तमालपत्र, तुलसी, कुहेरक, हिंगोट, मेढासिंगी, विजौरा, अरण्यबीज, पीलू, चमेली, शाल, ताल. महुआ, लाख, हींग, निमक, मद्य, गोबरकारस और गौका मूत्र, यह मस्तकके, विरेचक हैं । कनेरके, जो, प्रथम हैं उनके फल लेवे, कणेरसे आदिले आकपर्यंतकी जडले, तालीससे जो प्रथम हैं उनके कंद लेवे, तालीससे लेकर कुठेरक तकके पत्ते लेवे । हिंगोट और मेढासिंगी इनकी छालले, विजौरा अरण्यबीज और पीलू इनके फूलले, शाल, ताल, महुआ इनका सारले हींग, लाख, इनका गोंदले, पृथ्वीका विकार निमक, आसव आदिके संयोगसे मद्य जानने गोबर और गोमूत्र आदि मल ये सब प्रसिद्धही हैं अतएव इनको स्वरूपसे ही ग्रहण करे ॥

संशमनान्यत ऊर्द्ध्वं वक्ष्यामः ।

अर्थ–संशोधनको कहकर अब संशमन वर्गोंको कहतेहैं, उत्तम रीतिसे

दुष्ट दोषोंको विना निकालेही शमन करे और जो दोषदूषित नहीं हैं उनको बढावे नहीं अर्थात् जो देहमें व्याधि है उसको संशमन करे अर्थात् दूर करे और जो व्याधि होनेवाली है उसको प्रगट न करे, उस औषधको संशमन कहते हैं। जैसे प्रमाण है "नशोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि॥समीकरोति च क्रुद्धान् तत्संशमनमुच्यते"दोषशब्द इस जगे दोषोंमें दोषोंके कार्योंमें और रोगमें भी कहा है।

वातसंशमनोवर्गः।

तत्र भद्रदारुकुष्टहरिद्रावरुणमेषशृंगीबलातिबलार्त्तगलकच्छुरासल्लकीकुबेराक्षीवीरतरुसहचराग्निमन्थवत्सादन्येरण्डाश्मभेदकालर्कार्कशतावरीपुनर्नवावसुकवसिरकांचनकभार्गीकार्पासीवृश्चिकालीधत्तूर बदरयवकोलकुलत्थप्रभृतीनि विदारिगन्धादिश्च द्वे चाद्येपंचमूल्यौ समासेन वातसंशमनोवर्गः॥

अर्थ–देवदारु, कूट, हलदी, वरना, मेढासिंगी, वला (खिरेटी) अतिबला (कंगही) कोह, कौंछ, साल, काष्टपाढर, वीरतरु, कटसरैया, अरनी, गिलोय, अंडपाषानभेद, सपेदआक, आक, सतावर, सांठ, बकपुष्प, ओंगा, धतूरा, भारंगी, बनकपास, वृश्चिकपाक, पतंग, वेर, जों, बेर, कुलथी, विदारिगंधादिगण और दोनोंपंचमूल, यह संक्षेपसे वात संशमन अर्थात् वातनाशक वर्ग है। (प्रभृति) शब्द ग्रहणसे उडद, तिल, और आलसी आदिका ग्रहण है॥

पित्तसंशमनोवर्गः।

चन्दनकुचन्दनह्रीवेरोशीरमञ्जिष्ठापयस्याविदारीशतावरीगुन्द्राशैवालकल्हारकुमुदोत्पलकदलीकन्दलीदूर्वामूर्वाप्रभृतीनि काकोल्यादिर्न्यग्रोधादिस्तृणपंचमूलमिति समासेनपित्तसंशमनो वर्गः॥

अर्थ–चंदन, पतंग वा लालचंदन, नेत्रवाला, खस, मजीठ, क्षीरकाकोली, विदारीकंद, शतावर, सुगंधितृण, शिवार (काई) लालकमल,

कमोदनी, नीलकमल, केला, कंदली [नवीन अंकुर] दूर्वा, मूर्वा, आदि काकोल्यादिगण, न्यग्रोधादिगण, तृणपंचमूल ये संक्षेपसे पित्तसंशमन वर्ग हैं आदिशब्दसे मधुर, कडुए और कषेले पदार्थोंका ग्रहण है ॥

कफसंशमनवर्ग ।

कालेयकागुरुतिलपर्णीकुष्टहरिद्राशीतशिवशतपुष्पासरलारास्नाप्रकीर्य्योदकीर्य्येंगुदीसुमनःकाकादनीलाङ्गलकीहस्तिकर्णमुञ्जातकलामज्जकप्रभृतीनि वल्लीकन्टकपंचमूल्यौपिप्पल्यादिर्बृहत्यादिर्मुष्ककादिर्वचादिः सुरसादिरारग्वधादिरिति समासेन श्लेष्मसंशमनो वर्गः ॥

अर्थ–कालेयक (चंदनविशेष) अगर, हुलहुल, कूट, हलदी, कपूर, सोंफ निसोथ, रास्ना, कटेरी, कंजा, हिंगोट, चमेली, काकडोडी, कलयारी, भूपलास, सुजातक, लामज्जक (खसकाभेद) इत्यादि तथा, वल्ली-पंचक, कंटकपंचक, दशमूल, पिपल्यादिगण, बृहत्यादिगण, मुष्ककादिगण, वचादिगण, सुरसादिगण और आरग्वधादिगण ये संक्षेपसे कफ संशमनवर्ग हैं ॥

संशमनऔरसंशोधनद्रव्योंकीमात्रा ।

तत्र सर्वाण्येवौषधानि व्याध्यग्निपुरुषबलान्यभिसमीक्ष्य विदध्यात् ॥

अर्थ–तहां संपूर्ण संशोधन संशमन औषधोंको रोगीके रोगको अग्नि और उसके बल (शक्ति) को देखके अल्प मात्रा या बृहन् मात्रा देवे ॥

व्याधिमेंबलाधिक्यऔषधकेअवगुण ।

तत्रव्याधिबलादधिकमौषधमुपयुक्तंतमुपशमय्यव्याधिं व्याधिमन्यमावहति । अग्निबलादधिकमजीर्णं विष्टभ्य वा पच्यते।पुरुषबलादधिकं ग्लानिमूर्च्छामदानावहति॥

अर्थ–तहां व्याधिके बलसे अधिक औषध देनेसे वह औषध उस रोगको शमनकर दूसरी व्याधिको प्रगटकर । इसीप्रकार जठराग्निकी शक्तिसे अधिक औषध देनेसे वह व्याधि देरमें पचे,अथवा विष्टब्ध होकर पचे । इसीप्रकार पुरुषके बलसे अधिक औषध देनेसे ग्लानि, मूर्च्छा और मत्तावस्थाको करे है ॥

संशोधनकेदोष।

संशमनमेवं संशोधनमतिपातयाति।

अर्थ–इसीप्रकार संशमन और इस्से अधिक संशोधन दोषोंको करे है अर्थात् रोगीके बलको नष्ट करै॥

औषधकीहीनमात्रादेनेमेंदोष।

हीनमेभ्यो दत्तमकिञ्चित्करं भवति॥

अर्थ–रोगके बलसे हीनमात्रा रोगीको देनेसे वो व्यर्थ जाती है उस्से कुछ कार्य नहीं होता॥

सिद्धीहेतुउपाधियोंकोदिखातेहैं।

तस्मात् सममेव विदध्यात्॥

अर्थ–तस्मात् कहिये वही न्यूनाधिक देनेसे रोगीको हित नहीं पडे इसीसे रोगके अनुसार यथार्थ मात्रा वैद्यको देनी चाहिये॥

(दुर्बलकोतीक्ष्णवमनविरेचनदेनानिषेध) भवन्तिचात्र।

रोगे शोधनसाध्ये तु यो भवेद्दोषदुर्बलः।
तस्मै दद्याद्भिषक् प्राज्ञो दोषप्रच्यावनं मृदु॥

अर्थ–जो प्राणी शोधनसाध्य रोगमें दोषोंकरके दुर्बलहो(किंतु उपवासादि करके दुर्बल न हो) उसको बुद्धिमान् वैद्य दोषोंका निकालनेवाला नम्र विरेचन देवे।

अवस्थाविशेषकरकेव्याधिदुर्बलकोभीशोधनकरे।

चले दोषे मृदौ कोष्ठे नेक्षेतात्र बलं नृणाम्।
अव्याधिदुर्बलस्यापि शोधनं हि तदा भवेत्॥

अर्थ–दोषोंके अपने स्थानसे चलायमान होनेपर–तथा नम्रकोष्ठवालेका (आम अवस्थामें) बलाबल न देखे, उपवासादिसे दुर्बल भी हो तथापि उसका शोधन करना चाहिये॥

मध्यबलीतथामध्यअग्निवालेमनुष्यकोकितनी-
मात्रादेयहकहतेहैं।

व्याध्यादिषु तु मध्येषु क्वाथस्याञ्जलिरिष्यते।

विडालपदकं चूर्णं देयः कल्कोऽक्षसंमितः ॥

अर्थ–व्याधिआदिके मध्यबल होनेसे क्काथ और शृतशीत आदिकी मात्रा चारपलकी देवे और चूर्ण १ तोलेदेवे, तथा कल्ककी मात्रा भी एक तोले मात्र कहिये ॥

स्वयं प्रवृत्तदोषस्य मृदुकोष्ठस्य शोधनम्।
भवेदल्पबलस्यापि प्रयुक्तं व्याधिनाशनम् ॥

अर्थ–यदि दोष स्वयं निकलतेहो तथा मृदुकोष्ठ एवं हीनबली पुरुषको शोधन व्याधिनाशकहै।

इति संशोधनसंशमनीयाध्यायः समाप्तः।

अथातो द्रव्यविशेषविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब द्रव्यविशेष विज्ञानीयाध्यायकी व्याख्या करतेहैं।

पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानांसमुदायाद्द्रव्याभिनिर्वृत्तिरुत्कर्षस्त्वभिव्यञ्जको भवतीदं पार्थिवमिदमाप्यमिदं तैजसमिदं वायव्यमिदमाकाशीयमिति।

अर्थ–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इनके एकत्र होनेसे द्रव्योंकी उत्पत्ति, वृद्धि और अभिव्यापकता (प्रसिद्धी) होतीहै। जैसे यह द्रव्य पार्थिव (पृथ्वी संबंधी) है, यह आप्य (जलसंबंधी) है, यह तैजस (अग्निसंबंधी) है यह वायुसंबंधी और यह आकाश संबंधी द्रव्य है ॥

उत्कर्ष उपाधिभेदको दिखातेहैं।

तत्र स्थूलसारसान्द्रमन्दस्थिरखरगुरुकठिनगन्धबहुलमीषत्कषायं प्रायशो मधुरमिति पार्थिवं तत् स्थैर्य्यबलसंघातोपचयकरं विशेषतश्चाधोगतिस्वभावमिति।

अर्थ–तहां स्थूलसार (मोटापणा) सान्द्र (भराहुआ) मंद, स्थिर, खर

(तीक्ष्ण) गुरु (भारी) कठिन, अधिक गंधयुक्त, कुछ केषला और प्रायः मधुर, जो पदार्थ है उसको पार्थिव जानना अर्थात् यह पूर्वोक्त गुणयुक्त पदार्थको पृथ्वीसंबंधी जानना ॥

पार्थिवगुणवत्व कहकर उसीको क्रियावत्व कहते हैं कि, वह स्थिर(अचलता) बलसंघात (दृढबल) और उपचय (बृंहण) को करे है । विशेष करके इस पार्थिव द्रव्यका अधोगमनशील स्वभावहै अर्थात् यह नीचेको जाती है ॥

जलद्रव्यकीउत्कर्षउपाधि ।

शीतस्तिमितस्निग्धमन्दगुरुसरसान्द्रमृदुपिच्छिलरसबहुलमीषत्कषायाम्ललवणं मधुररसप्रायमाप्यं तत् स्नेहनप्रह्लादनक्लेदनबन्धनविष्यन्दनकरमिति ॥

अर्थ-शीत, स्तिमित (आर्द्रता) स्निग्ध (चिकना) मंद, गुरु, सरस, सान्द्र, मृदु (नरम) पिच्छल (लहसदार) रसबहुल (बहुतरसवाला) ईषत्कषाय (कुछकषेला) खट्टा, निमकीन और मधुर रसप्राय ऐसा आप्य (जल) पदार्थ होताहै ॥

वह स्नेहन (चिकनाई करनेवाला) प्रल्हादन (सुखोत्पादन) क्लेदन (आर्द्रकरता) बंधन और विष्यंदनकर (झरने वाला) इत्यादि गुणोंको यह आप्य द्रव्यकरे है ॥

तैजसद्रव्यकेगुण और स्वभाव ।

उष्णतीक्ष्णसूक्ष्मरूक्षखरलघुविशदं रूपगुणबहुलमीषदम्ललवणं कटुकरसप्रायं विशेषतश्चोर्द्धगतिस्वभावमितितैजसं तद्दहनपचनदारणतापनप्रकाशनप्रभावर्णकरमिति ॥

अर्थ-उष्ण, तीक्ष्ण (तीखा चरपरा) सूक्ष्म (छिद्रोंमें प्रवेशकरता) रूक्ष (रूखा) खर (पैंना) लघु (हलका) विशद (फैलनेवाला) रूपगुणबहुल (इसमेंरूपगुण अधिक रहता) है, कुछ खट्टा, निमकीन, और कटुरसप्रायहै तथा इसका स्वभाव ऊर्ध्वगति (ऊपरको जानेवाला) है ये तैजस पदार्थका स्वभाव है ॥

अब इसके गुण कहते हैं कि, ये दहन (दाह) पचन (पाचक)

दारण (चीरना) तापन (संतापकारी) प्रकाशन (उजेलाकरने वाला) तथा प्रभा, तेज और वर्ण गौर (सपेद) इत्यादि गुणोंको करे है ॥

वायवीयद्रव्यके गुणस्वभाव ।

सूक्ष्मरूक्षखरशिशिरलघुविशदं स्पर्शबहुलमीषत्तिक्तं विशेषतः कषायमिति वायवीयं तद्वैशद्यलाघवग्लपनविरूक्षणविचारणकरमिति ॥

अर्थ–सूक्ष्म, रूक्ष, खर, शिशिर (शीतल) लघु, विशद, स्पर्शबहुल (इसमें छूनेका गुण अधिकहै) कुछ कडुआ और विशेषकरके कषेला इत्यादिगुणवान् वायवीय अर्थात् वायुसंबंधी द्रव्य होता है ॥

अब इसके गुण कहते हैं कि, यह वैशद्य (फैलना) लाघव (हलकापना) ग्लपन (वृष्यताके विरुद्ध) विरूक्षण (रूक्षताकारक) और विचारणकर (मनमें अनेक विचार करता) इत्यादि पवन द्रव्यके गुण जानने ॥

आकाशीयद्रव्यके गुणस्वभाव ।

श्लक्ष्णसूक्ष्ममृदुव्यवायिविविक्तमव्यक्तरसम् । शब्दबहुलमाकाशीयं तन्मार्दवशौषिर्य्यलाघवकरमिति ॥

अर्थ–श्लक्ष्ण (गिलगिला) सूक्ष्म, मृदु, व्यवायी (प्रथम सब देहमें व्याप्त होकर पकने वाला) विविक्त (पृथक् हुआ अर्थात् अवयवद्वारा करके शून्य) अव्यक्तरस (जिसमें मधुरादि रसकी प्रतीत नहो) तथा शब्दबहुल (इसमें शब्दका गुण अधिकहै) कुछ कडुआ और विशेष करके कषेला इत्यादि गुणविशिष्ट आकाशीय अर्थात् आकाश संबंधी द्रव्य जानना ॥

अब इसके गुण कहते हैं कि, यह मार्दव (मृदुता) शौषिर्य (छिद्रभाववाला) और हलका करनेवाला आकाशसंबंधी द्रव्य जानना ॥

सब औषधोंको पांचभौतिकत्व ।

अनेन निदर्शनेन नानौषधीभूतं जगति किञ्चिद्द्रव्यमस्तीति कृत्वा तं तं युक्तिविशेषमर्थं वाभिसमीक्ष्य स्ववीर्य्यगुणयुक्तानि द्रव्याणि कर्मकराणि भवन्ति ॥

अर्थ–इस पूर्वोक्त पांचभौतिक द्रव्योंके कहनेसे यह दिखाया कि, इस स्थावर जंगमात्मक जगत्में कोईसी द्रव्य अनौषधिभूत (जो औषध

न कहलाती हो) नहीं है (अर्थात् जितनी संसारमें वस्तुहैं वो सब औषधरूपहैं) इसीसे उनकी पृथक् २ युक्ति[1] विशेष और अर्थ[2] विशेषको विचार स्ववीर्यगुणयुक्त द्रव्य देनेसे वो कर्मके करनेवाली होती है ॥

तानि यदा कुर्वन्ति स कालः यत्कुर्वन्ति तत् कर्म, येन कुर्वन्ति तद्वीर्यं, यत्र कुर्वन्ति तदधिकरणं, यथाकुर्वन्ति स उपायः यन्निष्पादयति तत्फलमिति ॥ ३ ॥

अर्थ–वो द्रव्य जिस कालमें क्रियाकरे है वो काल[3] जानना और जो कार्य करे वो कर्म[4] है, तथा जिस करके करे वो वीर्य[5] है, जिसमें करे वो अधिकरण[6]है, जैसे करे वो उपाँय[7]है, एवं उस क्रियाद्वारा जो रोग अथवा आरोग्य प्रगट होवे उसका फल कहते हैं ॥

औषधज्ञानमें अनुमानकी योजना ।

तत्र विरेचनद्रव्याणि पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठानि पृथिव्यापो गुर्व्यौ गुरुत्वादधोगच्छन्ति तस्माद्विरेचनमधोगुणभूयिष्ठमनुमानात् ।

अर्थ–तहाँ विरेचन द्रव्य (निसोथ, जमालगोटा आदि) पृथ्वी और अंबुगुणभूयिष्ठ है,तो अब जानना चाहिये कि, पृथ्वी और जल यह दोनों भारी[8] हैं भारीहोनेसे दोनों नीचेको जाते हैं,अतएव जितनी विरेचन द्रव्यहैं अर्थात् जुलाब लानेवाली औषधी हैं सो अधोगुणभूयिष्ठ कहिये अधिक

---

१ युक्ति विशेष करके जल, अग्नि, संस्कार, भावना, मात्रा और काल आदिकी योजना विशेष जानना । २ अर्थ करके अनेक व्याधि नाशरूप प्रयोजनका ग्रहण है । ३ काल करके शीतोष्णवर्षालक्षण संवत्सरात्मक रोगीके आनुकूल्यका ग्रहण है । ४ कर्मशब्दसे शोधनादि द्रव्योंका व्यापार जानना । ५ शक्तिहै । ६ अधिकरणशब्दसे पंचमहाभूतोंके बनेहुये इस मनुष्यदेहका ग्रहणहै । ७ उपाय इस शब्दसे, स्वरस, कल्क, शृतशीत, फांट, घृत, तैल, लेह, मोदकादि प्रकार जानना । ८ इस जगे भारी और हलकापना निशोथआदि और मैनफल आदि द्रव्य प्रभावविशेष करके मिश्रित लेना केवल गुरु लघुत्व मात्रही करके नहीं लेना, क्योंकि यदि गुरु लघुत्व मात्रसेही दस्त के होती है ऐसा मानोगे तो मछली, पिसे आटेमें और मसूर आदि भारी हैं इनके खानेसे दस्त होने चाहिये ।

करके नीचेको जानेवाली हैं। यह अनुमान (अटकल) से जाना जाता है। [उदाहरण जैसे--पत्थर ईंट, जल, तेल आदि जानने] ॥

वमनद्रव्याण्यग्निवायुगुणभूयिष्ठान्यग्निवायू हि लघूलघुत्वाच्च तान्यूर्ध्वमुत्तिष्ठन्ति तस्माद्वमनमप्यूर्ध्वगुणभूयिष्ठमुक्तम्॥

अर्थ–इसीप्रकार संपूर्ण वमनद्रव्य (कै लानीवाली औषधी) अग्नि और पवन गुणभूयिष्ठ है तो अब विचारना चाहिये कि, अग्नि और वायु ये दोनों हलके हैं हलके होनेसे यह दोनों ऊपरको जाते हैं इसी कारण वमनद्रव्य ऊर्ध्वगुणभूयिष्ठ ऐसा कहाहै अर्थात् अनुमानसे जाना जाता है [उदाहरण जैसे धूआँ और अग्निकीज्वाला आदि जानने] ॥

उभयगुणभूयिष्ठमुभयतोभागम् ।

अर्थ–इसी प्रकार उभय गुणभूयिष्ठ द्रव्य अर्थात् जिसमें पृथ्वी और अग्नि इस प्रकार दो तत्वोंके गुण मिले हों तो अब विचारना चाहिये कि, पृथ्वी भारी है और अग्नि हलकी है तो ऐसी उभयगुणवाली औषधी दोनों तरफ गमन करती है अर्थात् दस्त और रद दोनों कराती है ऐसा अनुमानसे जाना जाताहै ॥

आकाशगुणभूयिष्ठं संशमनं। संग्राहकमनिलगुणभूयिष्ठमनिलस्यशोषणात्मकत्वात् । दीपनमग्निगुणभूयिष्ठम् । लेखनमनिलानलगुणभूयिष्ठम् । बृंहणं प्रथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठम् । एवमौषधकर्माण्यनुमानात्साधयेत् ॥

अर्थ–आकाशगुण भूयिष्ठ द्रव्यसंशमन है (जैसे आकाश निश्चल और सर्वत्र व्यापकहै उसीप्रकार संशमन औषधी है) जिसमें पवन गुणभूयिष्ठ है वो द्रव्य संग्राहक (शोषक) है, (जैसे पवन शोषण कर्त्ताहै इसी प्रकार संग्राही द्रव्य (आर्द्रता शोषण करै है) अग्नि दीप्त गुणवाला होनेसे अग्निगुणभूयिष्ठ द्रव्यभी दीपन जानना तथा पवन और अग्निगुणभूयिष्ठ द्रव्य लेखन अर्थात् कफ मेदाको पतला करनेवाला जानना । पृथ्वी और जलगुणभूयिष्ठ द्रव्य बृंहण (पुष्टकारी) जाननी) इसी प्रकार औषधोंके कर्मोंको अनुमानद्वारा वैद्य साधनकरै ॥

१ तथा सपेद तीतर और लवा पक्षियोंकामांस हलकाहै तो इससे भी रद होनी चाहिये । परंतु ऐसा नहीं होता तो यही सिद्धहुआ कि, प्रभावविशिष्ट भारी हलकी औषधसे दस्त और रद होती है ॥

भवन्ति चात्र।

भूतेजोवारिजैर्द्रव्यैः शमं याति समीरणः।
भूम्यम्बुवायुजैः पित्तं क्षिप्रमाप्नोति निर्वृतिम् ॥
खतेजोऽनिलजैः श्लेष्मा शममेति शरीरिणाम्।

अर्थ-तहां पृथ्वी, तेज और जलगुणभूयिष्ठ द्रव्यसे बादी शमन होतीहै। पृथ्वी जल और वायुगुणभूयिष्ठ द्रव्यसे पित्त तत्काल शांति होता है। एवं आकाश, अग्नि और पवनगुण बहुलद्रव्यसे मनुष्योंका कफ शांति होताहै ॥

वियत्पवनजाताभ्यां वृद्धिमाप्नोति मारुतः ॥
आग्नेयमेव यद्द्रव्यं तेन पित्तमुदीर्य्यते।
वसुधाजलजाताभ्यां बलासः परिवर्द्धते ॥
एवमेतद्गुणाधिक्यं द्रव्ये द्रव्ये विनिश्चितम्।
द्विशो वा बहुशो वापि ज्ञात्वा दोषेऽवचारयेत् ॥

अर्थ-तथा आकाशपवनजन्य औषधोंसे बादी बढती है, अग्निगुण संबंधी द्रव्य से पित्त बढता है और पृथ्वीजलजन्य औषधोंसे कफकी वृद्धि होती है। इसप्रकार प्रत्येक द्रव्यमें गुणाधिक्य जानना, उन दो दो गुणोंसे तथा तीन २ गुणोंसे उत्पन्न द्रव्योंको दो दो दोषोंमें अथवा बहुतसे दोषोंमें विचार करके देवे ॥

तत्र यइमे गुणा वीर्य्यसंज्ञकाः शीतोष्णस्निग्धरूक्षमृदुतीक्ष्णपिच्छिलविशदास्तेषां तीक्ष्णोष्णावाग्नेयौ। शीतपिच्छिलावम्बुगुणभूयिष्ठौ। पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठःस्नेहः। तोयाकाशगुणभूयिष्ठंमृदुत्वं। वायुगुणभूयिष्ठं रौक्ष्यम् क्षितिसमीरणगुणभूयिष्ठंवैशद्यम्।

अर्थ-तहां शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु,तीक्ष्ण,पिच्छल,विशद,ये जो वीर्यसंज्ञक गुण हैं इनमें तीक्ष्ण और उष्ण ये अग्निसंबंधी गुण हैं। शीत और पिच्छल अंबुगुणभूयिष्ठ हैअर्थात् जल संबंधी हैं।पृथ्वी और अंबुगुणभूयिष्ठ स्नेहगुण है। जल और आकाशगुणभूयिष्ठ मृदुगुण है। रूक्षगुण पवनभूयिष्ठ हैं पृथ्वी और पवनगुणभूयिष्ठ विशद गुण है ॥

गुरुलघुविपाकावुक्तगुणौ। तत्रोष्णस्निग्धौ वातघ्नौ। शीतमृदुपिच्छिलाः पित्तघ्नाः। तीक्ष्णरूक्षविशदाः

श्लेष्मघ्नाः। गुरुपाको वातपित्तघ्नः। लघुपाकः श्लेष्मघ्नः। तेषां मृदुशीतोष्णाःस्पर्शग्राह्याः। पिच्छिलविशदौचक्षुःस्पर्शाभ्याम्। स्निग्धरूक्षौ चाक्षुषौ। शीतोष्णौ सुखदुःखोत्पादनेन। गुरुपाकः सृष्टविण्मूत्रतया कफोत्क्लेशेन च। लघुर्बद्धविण्मूत्रतया मारुताकोपेन च। तत्र तुल्यगुणेषु भूतेषु रसविशेषमुपलक्षयेत्। तद्यथा। मधुरो गुरूश्च पार्थिवः मधुरः स्निग्धश्चाप्य इति।

अर्थ–लघु और गुरु विपाक दोनोंके गुण प्रथम कह आए हैं। उष्ण और स्निग्ध वीर्यसंज्ञक गुण वातको शमन करते हैं। शीत मृदु और पिच्छल वीर्यसंज्ञक गुण पित्तको। तीक्ष्ण रूक्ष और विशद्वीर्यसंज्ञक गुण कफको शमन करते हैं॥

गुरुपाक वातघ्न है। लघुपाक कफघ्न है। इनमें मृदु शीत और उष्णगुण स्पर्शेनन्द्री अर्थात् त्वचाकरके ग्राह्य है। पिच्छल (गिलगिला) और विशद दोनों चक्षुइन्द्री तथा स्पर्शेनंद्री करके ग्राह्य है। स्निग्ध रूक्ष नेत्र करके। शीत और उष्ण सुखदुःखसे उत्पादन से ग्राह्य हैं अर्थात् प्रतीत होते हैं॥

तहां मलमूत्रके निकलनेसे और कफके उत्क्लेशकरके गुरुपाकहुआ जानना, तथा मलमूत्रके न उतरनेसे और वायुके कुपित होनेसे लघुपाक हुआ जानना तहां तुल्यगुण पृथिव्यादि भूतोंमें रसविशेषको जाने। जैसे मधुर और गुरु ये पृथ्वीके हैं और मधुर स्निग्ध ये जलके हैं॥

भवति चात्र।

गुणा य उक्ता द्रव्येषु शरीरेष्वपि ते तथा।
स्थानवृद्धिक्षयास्तस्माद्देहिनां द्रव्यहेतुकाः॥ ४। ८।६

अर्थ–जो वीस गुण द्रव्य (औषधादिक) में कहे हैं वो इस देहोंमेंभी हैं अतएव है, वोस्थान (दोष, धातु, मलकी साम्यता) वृद्धि (दोषादिकोंकी अधिकता) और ह्रास (दोषादिकोंके घटने करके) पांचभौतिक द्रव्यके हेतु होते हैं। अर्थात् जैसे २ दोषधातु मलादिक इस प्राणीकी देहमें घटते बढते हैं तैसे २ पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशजन्य द्रव्योंको इस देहमें घटाते बढाते हैं यह अध्याय सब वैद्योंका विचारने योग्य है॥ इति श्रीमाथुर कृष्णलालतनय दत्तराम संकलिते आयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे द्रव्यविशेष विज्ञानीयाध्यायः समाप्तः॥

अथातो हिताहितीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब हम हिताहितीय अध्यायकी व्याख्या करते हैं। अर्थात् इस प्राणीको ये वस्तु हित (पथ्य) हैं और ये वस्तु अहित (अपथ्य) हैं, इस दोनोंका इस अध्यायमें वर्णन किया जावेगा ॥

प्रथमऔरोंकेमतकोकहतेहैं ।

यद्वायोः पथ्यं तत्पित्तस्यापथ्यमित्यनेन हेतुना न किञ्चिद्द्रव्यमेकान्तेन हितमहितं वास्तीति केचिदाचार्य्या ब्रुवते तत्तु न सम्यक् ॥

अर्थ–जो वस्तु बादीके रोगमें पथ्य है वह पित्तके रोगमें अपथ्य है [कारण यह है कि, बादीको वही वस्तु दूर करेगी जो गरम होवेगी और जो गरम है वह अवश्य पित्तके रोगमें अपथ्य होवेगी जैसे तेल और कांजी है]इस हेतुसे कोईसी द्रव्य निरंतर हितकारी नहीं होसके क्योंकि पित्तको अहितकारी है और न निरंतर अहितकारी होसक्ती है कि,वातको हितकरे है। ऐसे कोई आचार्य कहतेहैं,परंतु उनका यह कहना ठीक नहीं है, क्योंनहींहै सो कहते हैं ॥ अपनामतकहते हैं ।

इह खलु यस्माद्द्रव्याणि स्वभावतःसंयोगतश्चैकान्तहितान्येकान्ताहितानि हिताहितानि च भवन्ति ॥

अर्थ–इस सौश्रुतग्रंथमें द्रव्य, स्वभाव(प्रकृति[१])से और संयोगसे निरंतर

हे बृहन्निघंटुरत्नाकरके ग्राहक मित्र गणहो ! इस हिताहितीयाध्यायके नीचे हम चरकसे यज्ञःपुरषीयाध्यायका केवल भाषांतरमात्र करके आपकी सेवामें निवेदन करते हैं यदि आप प्रसन्न होकर इसको स्वीकारकरेंगे तो हम अपने परिश्रमको सफल मानेंगे ॥

श्रीहरिः–पहिले प्रत्यक्ष धर्मस्वरूप भगवान् पुनर्वसु आत्रेय जी महर्षियोंके साथ यह वार्ता चली कि आत्मा, इन्द्री, मन और इनके अर्थ इनका समूह यह पुरुषसंज्ञक है इस पुरुषका और पुरुषके देहमें जो रोग उत्पन्न होते हैं उनके प्रथमही रोगोत्पत्तिका निश्चय किसप्रकारहो । तब उससभामें काशीपति जिसको वामकभी कहते हैं वो सब ऋषियोंको प्रणामकर अपनी संमती इसप्रकार कहने

---

१ जो संपूर्ण अवस्थाओंमें छूटे नहीं वो द्रव्यकी प्रकृती है।जैसे अग्निमें उष्णत्व औ जलमें द्रवत्व, तो यहां उष्णत्व और द्रवत येही अग्नि और जलद्रव्यकी प्रकृति जाननी ।

हितकारी और निरंतर अहितकारी एवं निरंतर हिताहित कर्त्ता होती हैं। इस जगह चकार जो पडा है इस्से संयोगमें स्वभावभी हेतु जानना तथा देश, काल, मात्रा, संस्कार ये सब स्वभावके संबंधसे जानने ॥

प्रथमएकांतहितोंकोकहतेहैं ।

तत्रैकान्तहितानि जातिसात्म्यात् सलिलघृतदुग्धौदनप्रभृतीनि ॥

लगाकि, यह पुरुष जिन कारणोंसे होता है वही कारणजन्य इसके देहमें व्याधिहोती है यह बात जो मैंने कही है हेऋषिहो ! यह ठीक है या नहीं ? तब उस सभाके मध्यमें श्रीपुनर्वसु आत्रेय महर्षि सब ऋषियोंके प्रति बोले कि, हेऋषिहो ! तुम सब अचिंत्य ज्ञान विज्ञान करके संशय रहितहो आपही इन महात्मा काशीराजके संशयको दूरकरो । यह वचन सुन मौद्गल्य ऋषि बोले कि,–

यह पुरुष आत्मासे उत्पन्न होता है अतएव इसके जो रोग होते हैं वो भी सब आत्मजन्य हैं अर्थात् आत्मासे प्रगट होते हैं । यह पुरुष कर्मोंको संचय करता है अतएव उन कर्मोंके फलको भोगता है, ये जितने अत्माजन्य सुखदुःखहैं वह सुखदुःख चैतन्यरूपको नहीं हैं यह मौद्गल्यके वचन सुन शरलोमा ऋषि बोलेकि,–

यह आपका कथन ठीक नहीं है, क्योंकि आत्मासे आत्मा नहीं हो, न यह पुरुष आपको दुखदाई कर्मोंका संग्रह करता है । इसका यह कारण है कि, दुःखोंसे द्वेषकर्त्ता प्राणी अपनी आत्माको दुखदाई व्याधियोंमें कदाचित् नियुक्त नहीं करनेका । कदाचित् सब ऋषि प्रश्नकरे कि, फिर यह पुरुष कैसे होता है.

तहां शरलोमा अपने मतको कहे है कि, यह सत्वसंज्ञक मन रजोगुण तमोगुणसे मिलाहुआ इस मनुष्य देहका और इस मनुष्यदेहमें होनेवाले रोगोंका कारण है यह शरलोमाके वचन सुन वार्णाविद् ऋषि बोलेकि,–

यह आपका कहना ठीक नहीं है क्योंकि एक मनही इनका कारण नहीं होसक्ता देहके अंतमें न शरीररहे न शरीरके रोगरहे न मन रहता है इस्से मेरी समझमें यह आता है कि, संपूर्ण प्राणी राजसी अर्थात् रजोगुणसे प्रगटहैं और संपूर्ण व्याधिभी राजसी हैं । यह शरलोमाके वचन सुनके हिरण्याक्ष ऋषि बोलेकि,

यह कथन ठीक नहीं है । क्योंकि आत्मा राजसी नहीं है और इन्द्रीरहित मनभी नहीं है और न शब्दादि जन्यरोगहैं । इस्से मेरी समझमें यह आता है कि, यह पुरुष छःधातुओंसे प्रगटहै और रोगभी षड्धातु जन्यहै। अतएव यह छःधा तु

अर्थ-तहां हिताहित द्रव्योंमें मनुष्य मात्रक जातिसात्म्य होनेके कारण जल, घृत, दूध, भात और आदिशब्दसे गेहूं जों आदि निरंतर सबको हितकारी हैं ॥

एकान्तआहित।

एकान्ताहितानि दहनपचनमारणादिषुप्रवृत्तान्यग्निक्षार-विषादीनि। संयोगादपराणि विषतुल्यानि भवन्ति॥

अर्थ-तथा दहन (जराना) पचन (पचाना) और मारणादिकोंमें प्रवृत्त ऐसे अग्नि, क्षार, विषादिक ये सब प्राणिमात्रके जाति असात्म्य होनेसे निरंतर अहितकारी हैं, परंतु यह कथन नैरोग्य पुरुषोंके प्रति है, रोगीको तो रोगमात्राकी अपेक्षा करके अग्नि क्षारादि हितकारी ही होते हैं और बहुतसी द्रव्य द्रव्यांतरोंके संयोग वशसे विषके तुल्य होजाती हैं ॥

ओंका समूहहै। इस वचनको सुन सांख्यायन आद्यपरीक्षित और कुशिकऋषि बोलेकि, हमारी समझमेंभी ऐसाही आता है। इसप्रकार कुशिकऋषिके वाक्यको सुन शौनकऋषि बोलेकि,

यदि आप इसपुरुषको षड्धातुसे उत्पन्नहुआ बतातेहों तो मैं आपसे पूछताहूं कि, बिना माता पिताके कैसे यह पुरुष षड्धातुज प्रगट होसक्ताहै। इस्से मेरी समझमें ऐसा आताहै कि,पुरुषसे पुरुषहोताहै।गौसे गौ। घोडेसे घोडा उत्पन्न होता है और जितने प्रमेहादिक रोग हैं वो पितृजन्य अर्थात् पितासेही होते हैं यह शौनक ऋषिके कहनेको सुनकर भद्रकाप्य नामक ऋषि बोला यह ठीक नहींहै॥

क्योंकि अंधे मनुष्यसे अंधा बालक नहीं होता पहले मातापिताहीकी उत्पत्ति नहींथी फिर बालक कहांसे हुआ, इस्से मेरी समझमें ऐसा आता है कि, यह प्राणी कर्मज है अर्थात् कर्मसे प्रगटहोता है और जितने रोग इस प्राणीके होनेवाले हैं वह सब कर्मज हैं। क्योंकि कर्मके बिना न पुरुषका जन्म और न रोगोंका जन्म है। इस प्रकार भद्रकाप्यके वाक्यको सुन भरद्वाजबोलेकि, यह ठीक नहीं क्योंकि उस कर्मकाभी रचनेवाला उसके प्रथम था ऐसा देखागया है जिसकर्मका फल पुरुषहै ऐसा अकृतकर्म नहीं देखा गया, अतएव हमारी समझमें ऐसा आता है कि, इस प्राणीके और रोगोंके उत्पन्नहोनेमें स्वभावही हेतु है। जैसे

---

१ जो वस्तु आत्मा और देहके साथ रहकर देहमें विकार न करे उसको सात्म्य कहते हैं।

एकांतहिताहित ।

हिताऽहितानितु यद्वायोः पथ्यं तत्पित्तस्यापथ्य मित्यतः सर्वप्राणिनामयमाहारार्थं वर्ग उपदिश्यते ॥

अर्थ–और बहुतसी द्रव्य हितकारी तथा अहितकारी दोनों प्रकारकी हैं जैसे जो द्रव्य वादीको पथ्य है वह पित्तको अपथ्य है इसप्रकार सकल द्रव्य हिताहित कर कहाती है, अब सब प्राणियोंके आहारके वास्ते एकांतहितवर्ग एकांत अहितवर्ग और एकांत हिताहितीय वर्गोंको कहते हैं ॥

द्रव्योंमें खर, द्रव, चल, उष्ण, तेज इनमें स्वभावही कारण है उसीप्रकार इस पुरुष और रोगोंके होनेमेंभी स्वभाव कारण है ॥

इस वचनको सुन कांकायनऋषि बोले यह भी ठीक नहीं है क्योंकि यदि स्वभावही पुरुष और व्याधिका कारणहै तो उस स्वभावका फल प्रारंभमेंही क्यों नहीं होता, भावोंके होने न होनेकी सिद्धी अथवा असिद्धी स्वभावसे होतीहै यदि स्वभावसेही पुरुष होताहै तो उस ब्रह्माको रचनेवाला और प्रजापति कहते हैं वो व्यर्थ है और संतानहोनेके निमित्त जो प्रजाहितैषी दुःख उठाते हैं वोभी न होना चाहिये क्योंकि वह तो स्वभावसेही होतीहै ? फिर दुःख क्यों उठाना इसवास्ते मेरी बुद्धिमें यह आता है कि, यह पुरुष कालज्ञ अर्थात् कालसे उत्पन्नहै और इसके होनेवाले रोगभी कालजन्य हैं और यह संपूर्ण जगत् कालके वशहै । इसवास्ते सर्वत्र कालही कारण है ॥

इस प्रकार ऋषियोंके आपसमें विवाद (झगडा) करनेमें श्रीपुनर्वसु आत्रेय बोले कि, भाईहो ! ऐसा बिवाद मतकरो, क्योंकि जहां पक्षपात है वहां परतत्व निश्चय अर्थात् किसी बातका निर्णयद्वारा सिद्धांत करना दुष्प्राप्य है । वाद और प्रतिवादोंको कहते हैं उस २ पक्षकी समाप्तिको नहीं पहुँचे, जैसे तेलकी घानीका बैल चलते २ समाप्तिको नहीं पहुँचे तात्पर्य यह है कि, जैसे घानीका बैल बराबर उस घानीके और पास डोलाही कर्त्ता है, उसीप्रकार पक्षपाती दो बिवाद करनेवालोंका झगडा नहीं समाप्त होवे, इसवास्ते आत्रेय महर्षि कहते हैं कि, इस विवादको त्यागके अध्यात्म (सिद्धांत) का चिंतवन करो ॥

जैसे अंधकारमें एक खंभखडा हुआ है उसको जाननेवाले जबतक नहीं जानेंगे कि, यावत् वह अंधकार दूर नहीं हो । जिन भावोंकी संपत्य इस प्राणीको उत्पन्न करेहै वोही उन प्राणियोंकी अनेक प्रकारकी व्याधियोंको उत्पन्न करे है ।

इसप्रकारका आत्रेय ऋषिके वचन सुन काशीपति वामक फिर आत्रेयसे बोला कि, हे प्रभो !संपान्निमित्तजन्य प्राणिके संपन्निमित्तजन्य रोगके बढनेमें क्या कारणहै?

तद्यथा-रक्तशालिषष्टिककङ्कुकमुकुन्दकपाण्डुकपीतकप्रमोदककालकाशनकपुष्पककर्दमकशकुनाहृतसुगन्धककलमनीवारकोद्रवोद्दालकश्यामाकगोधूमवेणुयवादयः ॥

अर्थ–लालचावल, सांठीचावल, कंगू (कांगुनी) मुकुंदक (कालेरंगके सांठीचावल) पांडुक (पीले रंगके चावल) पीतक, प्रमोदक, कालक, अशनक, पुष्यक, कर्दमक, शकुनाहत, सुगंधक, (देवशालि) कलमक (कल्मी) इत्यादि चावलोंकी जाति गेंहूं तथा वेणयव(बांसके चावल)इत्यादि धान्य।

तब आत्रेय महर्षि बोलेकि, अहित आहार अर्थात् कुपथ्य भोजन करना व्याधि होनेका कारण है, इस प्रकार कहरहे जो आत्रेय उनसे अग्निवेश ऋषि बोला कि, हेभगवन् ! हित और अहित आहारका लक्षण वादरहित हम किसप्रकार जाने तथा हम देखतेहैं कि, मात्रा, काल, क्रिया, भूमि, देह, दोष, पुरुषकी अवस्थांतर और इनमें युक्तभी आहार अपने विपरीत गुणकरता है इस्से आप कहिये कि, इनमें क्या कारण है? ॥

हिताहित आहारके लक्षण।

तब आत्रेयमहर्षि बोले कि, प्रथममें तुमसे हितआहारके लक्षण कहताहूं सो सुनो, हे अग्निवेश ! जो आहार शरीरके समान धातुओंको प्रकृतिमें स्थापनकरे अर्थात् घटने बढने न देवे और जो धातु विषम होरहीहो उनको समानकरे उसको हित आहार जानना। यह सब प्राणियोंके सेवन करने योग्य है और इस कहे हुए लक्षणसे विपरीतहो वह आहार अहित है, उसको मनुष्य त्यागदेवे ॥

इस प्रकार हिताहित कहनेवाले भगवान् आत्रेयसे अग्निवेश बोला कि, हेभगवन् ! यह जो आपने हिताहित कहा इसको क्या वैद्य जान जावेंगे? तब आत्रेय बोले कि, हेपुत्र ! जिनको गुणोंसे, द्रव्यसे, कर्मसे, संपूर्णअवयवोंसे, मात्रासे और भावसे आहारतत्त्वका ज्ञानहै वोही वैद्य जानसक्ते हैं अन्यनहीं, परंतु जैसे सब वैद्य जाने उसको मैं कहताहूं ॥

मात्रादि भावोंके कहनेसे उनके अनेक भेद होते हैं इसवास्ते आहार विधि विशेषोंको लक्षणसे और अवयवोंकरके व्याख्यान करे हैं ॥

एकप्रकारका आहार अर्थभेदसे वह स्थावर जंगमात्मक द्वियोनिके कारण दोप्रकारका तथा द्विविध प्रभाव अर्थात् एक हितकारी दूसरी अहितकारी होकर उसको चारप्रकारसे उपयोग करते हैं जैसे भक्ष (बूरा, खांड, चूर्णआदि) भोज्य

एणहरिण कुरङ्गमृगमातृकाश्वदंष्ट्राकरालक्रकरकपोत-लावतित्तिरिकापिञ्जलवर्त्तीरवर्त्तिकादीनांमांसानि।

अर्थ–कालामृग, लालवर्णकामृग कुरंग(काले हरिणके बराबर कुछ २ लालरंगका) मृगमात्रिका (कुंरगकी स्त्री) श्वदंष्ट्रा (अतिदुष्टकर्कटका) कराल(कस्तूरीमृग) क्रकर (क्रकसपक्षी) कपोत (पिंडुकिया) लवा,काला-तीतर, सपेद तीतर, वटेर, वर्त्तिक (वटेरका भेद घर्घर) इनसबका मांस॥

(लड्डू पेडा आदि) लेह्य (अवलेह, ल्हापसी,चटनीआदि) और चोष्य (जो चूसने योग्य पदार्थ हैं जैसे ईखकी गंडेरी और आम इत्यादि) ॥

उस आहारमें रसोंके भेदसे छःप्रकारका (मीठा, खट्टा, चरपरा, निमकीन, कडुआ और कषेला) स्वाद है। और वीस गुण हैं जैसे गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मंद, तीक्ष्ण, स्थिर, रस, मृदु, कठिन, विषद, पिच्छल, श्लक्ष्ण, खर, सूक्ष्म, स्थूल, सांद्र, द्रव इनके आपसमें संयोग होनेसे असंख्यात भेद होजाते हैं ॥

द्रव्यसंयोग करणकी अधिकतासे उस आहारके जो जो विकारके अवयव अत्यंत प्रगटहोते हैं, वह मनुष्योंकी प्रकृतिसे हिततम और अहिततम अधिक कल्पना होती हैं उन्हीं २ कल्पनाओंको हम व्याख्यान करते हैं ॥

तहां लालचावल शूकधान्योंमें पथ्यतम और उत्तमहै, इसीप्रकार फलीके धान्योंमें मूंग उत्तम, निमकोंमें सैंधानिमक, शाकोंमें (तरकारियोंमें) डोडीका साग उत्तमहै, हिरनके मांसोंमें कालेहिरनका मांस, पक्षि (परंदों) में लवा, बिलेमें रहने वाले जीवोंमें गोह, मछलियोंमें रोहू मछली, घीयोंमें गौका घी, दूधोंमें गौका दूध, स्थावर अर्थात् वृक्षादिजातिके, तेलोंमें तिलकातेल, चर्बियोंमें सूअरकी चर्बी, रूपमृग चर्बियोंमें सेह (जो कांटेवाला जानवर होताहै उसकी) चर्बी, मछलियोंकी चर्बीमें जो पाकहंस नाम मछली होती है उसकी वसा, जलमें रहनेवाले पक्षियोंमें जलमुर्गाबीकी चर्बी, पखेरुओंमें विष्किर (जो खानेकी चीजको विखैरके खाने वाले ऐसे) मुरगा, कबूतर, पिंडुकिया, और चिडाआदि उत्त-महैं, चारपैरोंके जीवोंमें बकरी दुंवा आदि पथ्यहै । कंदोंमें अदरख पथ्य है। फलोंमें मुनक्का,दाख पथ्यहै।ईखके विकारोंमें मिश्री वा चीनी उत्तम है ॥

ये आहारकी अर्थात् खानेयोग्य वस्तु सब मनुष्यकी प्रकृतिसेही हितहै (येप-दार्थ सबको खाने चाहिये) ये हित आहारसमूह मैंने संक्षेपसे कहेहैं ॥

अपथ्यगण ।

अब अहित पदार्थोंको कहते हैं। शूकधान्योंमें जों कुपथ्य हैं,फलीवाले अनाजों-

मुद्गवनमुद्गमकुष्ठकलायमसूरमङ्गल्यचणकहरेणवाढकी सतीलाः । चिल्लिवास्तुकसुनिषण्णकजीवन्तीतण्डुलीयकमण्डूकपर्ण्यः ॥

अर्थ–बनकी मूंग, मूंग, मोठ, मटर, मसूर, पीलेरंगकी मसूर, चना, गोलमटर, अरहर और केराव इतने फलीवाले धान्य, खेतकावथुआ, वनकावथुआ, चौपतिया, डोडी, चौलाई और ब्राह्मीयेसागोंमें ॥

में उडद अपथ्य है, नदियोंमें वारिषका जल कुपथ्य है। निमकोंमेंऊषर जमीनमें जो निमक होता है वह कुपथ्य है। सागोंमें सरसोंका साग कुपथ्य है। चौपाएन् में गौका मांस कुपथ्य है [इसी कारण हमारे हिन्दुओंमें गोमांस खाना निषेधहैं] अब मांसखाने वालोंसे हम मार्थना करते हैं कि, जब यह गोमांस खानेको निषेध करताहै तो*हेगोमांसभक्षीहो! तुम क्यों हठसे अवगुणकारी पदार्थको खाकर अपनी आत्मा और अस्मदादि हिंदुओंके दुश्मन होते हो] पक्षि (परंदो) में कौएका मांस कुपथ्यहै। बिलेमें रहने वालोंमें मेडकका कुपथ्य है। मछलियोंमें चिलचिम मछली कुपथ्यहै। घृतोंमें भेडका घी कुपथ्यहै। दूधोंमें भी भेडका दूध कुपथ्यहै। तेलोंमें स्थावर तैल (अर्थात् वृक्षसंबधी तेलोंमें) कसूम (करड) का तेल कुपथ्यहै। जलसमीप रहनेवाले जानवरोंमें भैंसकी चर्बी कुपथ्य है । मछलीकी वसामें कुंभीर नामक मछलीकी वसा कुपथ्यहै । जलमें रहनेवाले जीवोंमें जलौकका कुपथ्य है । कंदोंमें मूली कुपथ्य है। पक्षियोंकी वसामें विष्किर पक्षियोंकी वसा कुपथ्य है। जो वृक्षोंकी शाखा (गुद्दे) खाने वाले हैं उनमें हाथीकी वसा कुपथ्यहै। फलोंमें लकुच (कटहर) फल कुपथ्यहै। ईखके विकारोंमें उस ईखकी राव कुपथ्यहै। येआहार की वस्तुओंमें ये सब प्रकृतिसे ही कुपथ्यतम हैं इनमें जो मुख्य २ द्रव्यहैं सो हमने कही ॥

अब हिताहित अवयवरूप आहार विहारको फिर दूसरे प्राधान्यतासे और अनुबंधसहित द्रव्योंका व्याख्यान करते हैं ॥

अन्न देहरक्षा करनेवालेमें श्रेष्ठहै । जल प्राणरक्षकोंमें श्रेष्ठहै । मद्य श्रम हरनेवालोंमें श्रेष्ठहै। जीवनदाताओंमें दूध श्रेष्ठहै। पुष्ट करनेवालोंमें मांस श्रेष्ठहै।

* गोमांसभक्षणनिषेधका कारण मुख्य यही है फिर भी जिह्वास्वादलंपट सर्वनाशी विधर्मी क्यामानेंगे 'प्राणजायपरवचननजाऊ'। यह वचन इनही दुराग्रही पामरोंमें चरितार्थ होताहै नहीं तो इस अभक्षको क्योंभक्षणकरें सभ्यता इसी से प्रगटहोती है धन्यरे कलियुगके अंडबंड साले सभ्यहो ??।

गव्यं घृतं क्षौद्रसैन्धवदाडिमामलकमित्येषवर्गःसर्वप्राणिनां सामान्यतः पथ्यतमः । तथा ब्रह्मचर्य्यनिवाताशयनोष्णोदकनिशास्वप्नव्यायामाश्चैकान्ततः पथ्यतमाः ॥

अर्थ–घृतोंमें गौकाघी, सहत, निमकोंमें सैंधानिमक, विलायतीअनार अथवा अनारदाना और फलोंमें आमले इत्यादि कहेहुए वर्ग सब प्राणीमात्रोंको सर्वथा हितहैं ॥

तथा ब्रह्मचर्य(स्त्रीसेवनसे बचना)निवात स्थानमें शयन करना,गरमजलसे स्नान,रात्रिमेंसोना और दंड कसरत करना,ये एकान्त हित हैं अर्थात् एक २ ही हित है ॥

भोजनद्रव्य रुचि करानेवालोंमें निमक श्रेष्ठहै । हृदय प्रियोंमें खटाई श्रेष्ठहै । बलकारियोंमें मुरगेका मांस श्रेष्ठहै । वीर्यके बढाने वालोंमें मगरका वीर्य श्रेष्ठहै ।

कफपित्तनाशकारियोंमें सहत उत्तम है । वातपित्तनाशकर्ताओंमें घी उत्तम है । वातपित्तशमनकर्त्ताओंमें तेल उत्तम है । कफ हरणकारियोंमें वमन कराना उत्तमहै । पित्तहरणकरनेवालोंमें जुलाब कराना उत्तम है। बस्तीकर्म वात हरणकर्त्ताओंमें उत्तम है । नम्र करनेवालोंमें पसीने निकालना यह कर्म उत्तम है । स्थिर करनेवालोंमें दंडकसरत करना उत्तम है । नपुंसक (हिजडा) करनेवालोंमें खार(सज्जीखार,जवाखार और निमक,आदि) उत्तम है।अन्न द्रव्यरहित जो पदार्थहैं उनमें रुचिकर्त्ताओंमें तेंदुआ उत्तमहै। हृदयके अहितकारियोंमें भेडका घी उत्तमहै।देहसूखनेके रोग हरणकरनेवालोंमें बकरीका दूध उत्तमहै । समानरुधिरके संग्रहण करनेवालोंके शांतिकरनेमें स्त्रीका दूध उत्तमहै । कफ पित्तके संचय करनेवालोंमें मेंढीका दूध उत्तम है। निद्रा उत्पन्न करनेवालोंमें भैंसका दूध उत्तमहै। देहके छिद्र रोकनेवालोंमें दही उत्तम है । कर्षण(देहसुखानेवालों) में समापसाई अन्न उत्तमहै । देहमें रुखाई करनेवालोंमें कोदों अन्न उत्तम है । मूत्र पैदाकरनेवालोंमें ईख उत्तमहै । वादी पैदाकरनेवालोंमें जामुनका फल उत्तमहै । कफ और पित्त करनेवालोंमें पूडी पिरामठे उत्तम है । अम्लपित्त करनेवालोंमें कुलथी उत्तमहै । कफपित्तकरनेवालोंमें उडद उत्तम है । वमन, आस्थापनबस्ती, अनुवासन बस्ती इनके उपयोगी पदार्थोंमें मैनफल उत्तम है। सुखपूर्वक दस्तलानेवालोंमें निसोथ उत्तम है, नरम जुलाबोंमें अमलतास उत्तम है । तीक्ष्णजुलाब लानेवालोंमें थूहरका दूध उत्तम है । शिरोविरेचनीयद्रव्योंमें सपेद ओंग

एकान्तहितान्येकान्ताहितानि प्रागुपदिष्टानि । हिताहितानि तु यद्वायोः पथ्यं तत्पित्तस्यापथ्यमिति ॥

अर्थ–एकान्तहित जल हैं और एकान्त अहित अग्नि ये प्रथम कह आये हैं और हिताहित वही जानना कि, जो वादीमें पथ्य है वो पित्तमें अपथ्यहै॥

उत्तम है। पेटके कीडे नाशकोंमें वायविडंग उत्तमहै। विष हरणकरनेवाले पदार्थोंमें सिरस उत्तम है। कोढरोग हरणकरनेवालोंमें खैर (खैरसार) उत्तम है। वादी हरणकरनेवालोंमें रास्ना उत्तम है। अवस्था स्थापनकरनेवालोंमें आमले उत्तम हैं। पथ्यवस्तुओंमें हरड उत्तम है। वृष्य और वातहरणकरनेवालोंमें अंडकी जड उत्तमहै।दीपनीय, पाचनीय और अफरा हरण करनेवाली औषधेंमें पीपरामूल उत्तम है। दीपनीय गुदाका शूल और सूजन हरणकरनेवालोंमें चीतेकी जड उत्तम है। हिचकी, श्वास, खांसी और पसवाडेके शूलहरण करनेवालोंमें पुहकरमूल उत्तम है। संग्राहक, दीपनीय और पाचनीयोंमें मोथा उत्तम है। शीतलकरना, दीपन, वमन और अतिसार, हरणकरनेवालोंमें नेत्रवाला (सुगंधवाला) उत्तमहै। संग्राहक और दीपनीयोंमें स्योनाक अर्थात् टेटू- उत्तमहै। संग्राहक और रक्तपित्तनाशकोंमें अनंतमूल उत्तमहै संग्राहक वातहरदीपनी कफ और रुधिरके विबंधको नाशकरनेवालोंमें गिलोयउत्तमहै।संग्राहक, दीपनीय और वातकफनाशकोंमें बेलफल उत्तम है। दीपनीय, पाचनीय, संग्राहक और सर्वदोष हरनेवालोंमें अतीस उत्तम है। संग्राहक और रक्तपित्तनाशकोंमें उत्पल (नीलाकमल) कमोदनी और कमलका केशरा उत्तम है। पित्तकफके शोषणकरनेवालोंमें धमासा उत्तम है। रक्तपित्तके अत्यंत गिरनेको दूर करनेवालोंमें गंधप्रियंगु उत्तमहै। कफपित्तरक्तकेसंग्राहक और शोषण करनेवालोंमें कूडाकी छाल उत्तम है। रक्तसंग्राहकनाशकोंमें कंभारीके फल उत्तम हैं। संग्राहक, वातहर, दीपनीय और वृष्योंमें पृश्निपर्णी (पिठवन) उत्तम है। वृष्य और सर्वदोष करनेवालोंमें विदारीगंधा उत्तम है। संग्राहक और बंधवातहरण करनेवालोंमें खिरेटी उत्तम है। मूत्रकृच्छ्र और वादी हरणकरनेवालोंमें गोखरू उत्तम है। छेदनीय और भेदनीय दीपनीय अनुलोमनी और वातकफके नाशकर्त्ताओंमें अमलवेत उत्तम है। संसनीय और पाचनीय और बवासीरनाशकोंमें जों उत्तम है, ग्रहणीदोष, बवासीर, घृतके विकार इनके नाशकरनेवालोंमें छाछ पीनेका अभ्यास उत्तम है।वृष्यहो और उदावर्त्तहरण कर्त्ताओंमें समान घृत,सत्तूका खानेका अभ्यास उत्तम है, दांतोंमें बल और रुचि-

संयोगविरुद्ध।

संयोगतस्त्वपराणि विषतुल्यानि भवन्ति; तद्यथा-वल्लीफलकरककरीराम्लफललवणकुलत्थपिण्याकदधि-तैलविरोहिपिष्टशुष्कशाकाजाविकमांसमद्यजाम्बवचिलि-चिममत्स्यगोधावराहांश्च नैकध्यमश्नीयात् पयसा॥

अर्थ–और बहुतसी द्रव्य संयोगहोनेसे विषके तुल्य होजाती हैं अर्थात् विषके समान एकांत अहित हो जाती हैं। जैसे बेलके फल (पेठा, कोला, धीया, तोरई; आदि) करक (छत्राक, छतोना) करील, बाँसकी कोपल, खटाईवाले फल, निमक, कुलथी, खल, दही, तेल, विरोहि (जिस्केअंकुर नहो)चावलोंका चून,सूखेसाग, मेंढेका मांस,मद्य,जामुन,चिलचिलनामकी मछली,गोह और सूअरका मांस इन सबवस्तुओंको दूधके साथनभक्षणकरे॥

कारियोंमें तेलके कुल्ले करनेका अभ्यास उत्तम है । निर्वापण (शांतकरना) और लेपकरनेवालोंमें चंदन और गूलर उत्तम है। शीतनाशक और लेपकी औषधोंमें रास्ना उत्तम है । दाह त्वचाके दोष,पसीने और लेपकारी औषधोंमें लामज्जक[1] और खस उत्तम है । वातहर, उवटना और पसीनेवालोंमें कूट उत्तमहै । नेत्रका-हितकारी,बालोंको हितकारी, कंठसुधारनेवाला वणको उज्ज्वल करनेवाला रंगने-वालोंमें और घावके भरने वालेंमें महुआ उत्तम है । प्राणसंज्ञाप्रधानहेतुओंमें पवन उत्तमहै । जल, स्तंभ, शीत, शूल, कंप इनके नाशकरनेवालोंमें अग्नि उत्तम है। आमदोष करनेवालोंमें अति भोजनकरना उत्तम है। अग्निको चैतन्यकारि-योंमें यथा अग्निके अनुसार भोजन करना उत्तम है। चेष्टा और व्यवहारोपसेवियोंमें सात्म्य (अपनी आत्माको जो हितहोसो) उत्तम है । आरोग्यकरनेवालोंमें यथा-समय भोजन करना उत्तम है । रोगीकरनेको मलमूत्रोंका वेग धारण उत्तम है। आहारके गुणोंमें तृप्तिहोना उत्तमहै । मन प्रसन्न करनेवालोंमें मद्य (दारू) उत्तम है । धी,धृति, स्मृति, हरण करनेवालोंमें मद्यका अत्यंतसेवन उत्तमहै। पेटमें दुष्टपाक करने वालोंमें भारी पदार्थोंका भोजन उत्तम है । सुख और परिणाम करनेवालोंमें एकवार भोजन करना हितकारी है। देहका शोषण करनेवालोंमें स्त्रीसंग उत्तम है । नपुंसककरने वालोंमें

---

१ पीलेरंगकी खसके समान तृणहोताहै ।

क्वचित्‌विरुद्धकाभीप्रयोगदिखातेहैं।

रोगं सात्म्यञ्च देशञ्च कालं देहञ्च बुद्धिमान्।
अवेक्ष्याग्न्यादिकान् भावान् रोगवृत्तेःप्रयोजयेत्॥

अर्थ–उदरादिकरोग, सात्म्य[1], देश, (अनूपादि) काल (शीतादिक) देह (स्थूलकृशादि) और अग्न्यादिभाव कहिये जठराग्निआदिकी सामर्थ्य विचारके बुद्धिमान् वैद्य उक्त विरुद्धपदार्थोंको रोगीकोभीदेवे॥

अत्यंत शुक्रके वेग (स्तंभनदवाई द्वारा) रोकना उत्तमहै। देहके घटाने वालोंमें अन्नका त्यागदेना उत्तम है। देहके सुखानेमें थोडा भोजन करना उत्तम है। ग्रहणीके दूषितकरनेमें अजीर्ण और अध्यशन[2] उत्तम है। विषाग्निकरनेवालोंमें विषमाशन[3] करना उत्तम है। दुष्ट रोगकरनेवालोंमें विरुद्धवीर्य पदार्थ खाना उत्तम है। पथ्योंमें प्रशम (क्रोध मोहादिकाजीतना) उत्तम है। संपूर्ण अपथ्योंमें कुछभीकर्म न करना एक जगह बैठारहना उत्तम है। व्याधिके सुखोंमें मिथ्यायोग उत्तम है। अलक्ष्मी (तेजबलादि) हरणकरनेवालोंमें रजस्वला स्त्रीसे गमन करना उत्तम है। आयुकरनेवालोंमें ब्रह्मचर्य उत्तम है॥

सब वृष्योंमें मनको प्रसन्न राखना उत्तम है, अवृष्य कारियोंमें दौर्मनस्य अर्थात् चित्तको दुःखित रखना उत्तम है। प्राणोंके हरणकर्ता कर्मोंमें ठीक २विचार के बिना करना उत्तम है। रोगबढानेवालोंमें दुःखी रहना उत्तम है। परिश्रम हरणकरनेवालोंमें स्नान करना उत्तम है। प्रसन्न कर्ताओंमें हर्ष परमोत्तमहै। शोषण करनेवालोंमें शोक (सोच) करना उत्तमहै। पुष्टिकारियोंमें मैथुनादि कर्मसे निवृत्ति होना उत्तमहै। तंद्राकरनेवालोंमें निद्रा उत्तम है। बलबढाने वालोंमें सर्वरस भोजन करना उत्तम है। दुर्बलकरनेवालोंमें एकरसका सेवन करना उत्तम है। निकालनेयोग्योंमें गर्भशल्यका निकालना उत्तम है। उद्धारकर-नेमें अजीर्ण उत्तम है। नम्र औषधोंके देनेमें बालक उत्तम है। याप्यकर्मोंमें वृद्ध उत्तम है। तीक्ष्ण औषध और परिश्रमसे बचानेवालोंमें गर्भिणी स्त्री उत्तम है। गर्भधारणकर्ताओंमें प्रसन्न चित्त रहना उत्तम है॥

दुश्चिकित्स्यरोगोंमें सन्निपातका रोग उत्तम है। विषम किचित्सावाले रोगोंमें

१ सात्म्य आठ प्रकारका है जैसे जातिसात्म्य,आतुरसात्म्य, औषधसात्म्य अन्नसात्म्य, रससात्म्य, देशसात्म्य, ऋतुसात्म्य, जलसात्म्य,। २ भोजनके ऊपर भोजन करना। ३ कभीथोडा और कभी अधिक कभी सिदोसी कभी अबेरी।

अबकहतेहैंकिहिताहितत्वनहींहै ।

अवस्थान्तर बाहुल्याद्रोगादीनांव्यवस्थितम् ।
द्रव्यं नेच्छन्ति भिषज इच्छन्ति स्वस्वरक्षणे ॥

अर्थ-रोगादिकको अवस्था विशेषाधिक्यतासे वैद्य यह द्रव्यहितहै, और यह अहितहै ऐसी द्रव्य व्यवस्था नहीं मानते, किंतु स्वस्थ रक्षणमें उस द्रव्य व्यवस्थाको मानते हैं ॥

आमका रोग श्रेष्ठहै । संपूर्ण रोगोंमें ज्वर श्रेष्ठ है । दीर्घरोगोंमें कुष्ठरोग श्रेष्ठहै । रोगोंके समूहोंमें राजयक्ष्मा रोग श्रेष्ठ है । अनुसंगिकरोगोंमें प्रमेह श्रेष्ठ है ॥

अनुशस्त्रोंमें जोख लगाना उत्तम है। तंत्रोंमें बस्तिकर्म करना उत्तम है। औषध उत्पन्न होनेवाली संपूर्ण पृथ्वीभरमें हिमालय पर्वत श्रेष्ठहै। आरोग्य देशोंमें माडवारकी पृथ्वी उत्तम है। अहित देशोंमें अनूपदेश श्रेष्ठहै, आज्ञा कर्त्ता रोगी उत्तमहै । चिकित्साके अंगोंमें वैद्य श्रेष्ठ है । वर्जितोंमें नास्तिक उत्तम है। क्लेशकारियोंमें हाँसी ठठोरी करना श्रेष्ठहै।अनिष्टोंमें वैद्यकी आज्ञा न मानना श्रेष्ठ है। वमनके लक्षणोंमें जीका मचलाना श्रेष्ठ है । वैद्यके गुणोंमें औषधका योग जानना उत्तम है । औषधोंमें पहचान करना उत्तम है। साधनोंमें शास्त्रके साथ तर्क (बहिश) करना श्रेष्ठ है । कालज्ञान प्रयोजनोंमें संप्रतिपत्ति उत्तम है । रुजगारमें आपत्ति डालनेवालोंमें उद्योग (कोशिश) न करना श्रेष्ठ है। निःसंशय करनेवालोंमें ढीठता श्रेष्ठ है । भयकारियोंमें असामर्थ्य होना श्रेष्ठ है । जो विद्या आप पढाहो उसमें बादकरना उस विद्याकी वृद्धिमें श्रेष्ठ है । शास्त्रप्राप्ति होनेमें आचार्य श्रेष्ठ है। अमृत (जरामरण रहितकरने) में वैद्यविद्या श्रेष्ठहै । अनुष्ठानकरनेमें सद्वचन (उत्तमवाणी) श्रेष्ठ है । सर्वहितोंमें परित्याग उत्तम है, सुखोंमें सबका संन्यास श्रेष्ठ है ॥

इसप्रकार जो जो वस्तु जिस २ में उत्तम हैं सबके १५२ एकसो बावन उत्तर सब रोगोंको दूरकरनेको मैंने कहेहैं। समान अर्थ उत्तम और निकृष्टोंका उदाहरण देकर दिखाए हैं तथा वातपित्त और कफ इनपर जो जो नाशकरनेमें हित हैं वो कहे हैं। वे मैंने व्याधिहरणकर्ता जो जो मुख्य हैं सो सो कहेहैं निपुण वैद्य इनको विचारके चिकित्सामें प्रयोगकरे ॥

श्री आत्रेय महर्षिकहते हैं कि, जो वैद्य इसप्रकार करता है वो धर्म और कामनाओंको प्राप्तहोता है । इनमें आपको अप्रिय और अपथ्य है उसको यह प्राणी

१ आदिशब्दसे सात्म्य और देशादिकोंका ग्रहणहै ।

पूर्वोक्तअर्थकोस्पष्टकरतेहैं ।

द्वयोरन्यतरादाने वदन्ति विषदुग्धयोः ।
दुग्धस्यैकान्तहिततां विषमेकान्ततोऽहितम् ॥

अर्थ—तहाँ स्वस्थ मनुष्यको इन दोनों विष और दूधमें विष सर्वथा एकान्त अहित और दूधको वैद्यजन हितकारी बाताते हैं ॥

एवं युक्तरसाद्येषु द्रव्येषु सलिलादिषु ।
एकान्तहिततां विद्धि वत्स सुश्रुत ! नान्यथा ॥

अर्थ—हेसुश्रुतवत्स!इसीप्रकार स्वस्थोपयोग प्रकारकरके रसादिद्रव्योंमें और जलआदिमें एकांतहितता जानना अन्यथा अर्थात् जो स्वस्थता हरण-करे उनमें एकांत अहितता जानना ॥

अतोऽन्यान्यपि संयोगादहितानि वक्ष्यामः । न च विरूढधान्यैर्वसामधुपयोगुडमाषैर्वा ग्राम्यानूपौदक-पिशितादीनि नाभ्यवहरेत् । न पयोमधुभ्यां रोहिणी-शाकं जातुशाकं वाश्नीयात् । बलाकां वारुणीकुल्माषा-भ्याम् । काकमाचीं पिप्पलीमरिचाभ्याम् । नाडीभ-ङ्गशाककुक्कुटदधीनि च नैकध्यम् । मधु चोष्णोदका-नुपानं पित्तेन वा मांसानि । सुराकृशरापायसाश्च नैक-ध्यम् । सौवीरकेण सह तिलशष्कुलीम् । मत्स्यैः सहे-क्षुविकारान् । गुडेन काकमाचीं मधुना मूलकं गुडेन वाराहं मधुना च सह विरुद्धम् । क्षीरेण मूलकम् । आम्रजाम्बवश्वाविच्छूकरगोधाश्च सर्वांश्च मत्स्यान् विशेषेण चिलिचिमं पयसा । कदलीफलं तालफलेन पयसा दध्ना तक्रेण वा । लकुचफलं पयसा दध्ना माष-

कदाचित् सेवन न करै और जो आपको पथ्यहो तथा प्रियहो उसका सेवन करे। मात्रा, काल, क्रिया, भूमि, देह, दोष और गुणान्तर इनमें द्रव्यादिभाव प्राप्तहोकर उसी उसीके अनुसार दीखते हैं ॥

सूपेन वा मधुना घृतेन च । प्राक्पयसं पयसोऽन्ते वा ॥

अर्थ–अब अन्य जो संयोग विरुद्ध हैं उनको कहते हैं । विरूढधान्य (जिसमेंसे अंकुर निकले हों या अंकुर दूर होगए हों) उनको वसा (चर्वी) सहत, दूध, गुड,उडद इनके साथ भक्षण न करे । ग्रामके जीवोंका मांस अनूप संचारी जीवोंका मांस, जलसंचारी जीवोंका मांस इनकोभी वसा सहत आदिके साथ न खाय, क्योंकि संयोगसे विरुद्ध है। कुटकीका शाक और कमलका शाक दूध और सहत के साथ न खावे ।बलाका (बगलाका भेद) का मांस मद्य और उबालेहुए उडदके साथ न खाय । पीपर और काली मिरचके साथ काकमाचीके[१] सागको न खाय । नाडी सागके पत्तोंका साग मुरगेका मांस और दही इनको दो मिलायके अथवा तीनो मिलायके न खावे । गरमजलके साथ अथवा पित्तेके साथ सहतको न खाय । अथवा मांसोंको पित्तेके साथ न खाय । दारू खिचडी और खीर इनको मिलायके न खाय । तिलकी पूडियोंको काँजीके साथ न खाय । मछलीके साथ कोईसा ईखका विकार (खांड, मिश्री, गुडआदि) न खाय । काकमाचीको गुडके साथ न खाय ।सहतसे मूली न खाय। तथा सूअरका मांस सहतके साथ खाना विरुद्ध है।दूधके साथ मूली न खाय। आम जामुन सेह (कांटेवाला जानवर) सूअर और गोह तथा सब प्रकारकी मछली उनमेंभी चिलचिम नामकी मछली इन सबको दूधके साथ न खावे । केलाका फल (गहर) को ताडफलके साथ वा दूधके साथ वा दहीकेसाथ अथवा छाछके साथ न खाय । वडहरके फलको दूध, दही, उड़दकीदाल, सहत अथवा घीके साथ न खावे। दूध पीनेके प्रथम अथवा अंतमें वडहरका फल नखावे । इति ॥

कर्मविरुद्ध ।

अतः कर्मविरुद्धान् वक्ष्यामः । कपोतान् सर्षपतैल-भृष्टान्नाद्यात् । कपिञ्जलमयूरलावतित्तिरिगोधाश्चैरण्ड

इसी हेतुसे यह प्राणी और स्वभाव और मात्रादिके आश्रित कहाहै अतएव स्वभाव और मात्राका प्रथम विचार करके सिद्धिकी इच्छा करनेवाले वैद्यको प्रयोग करना चाहिये ॥

---

१ काकमाचीको मकोय कहते हैं ।

दार्वाग्निसिद्धा एरण्डतैलसिद्धावा नाद्यात्। कांस्यभाजने दशरात्रपर्य्युषितं सर्पिर्मधुचोष्णैरुष्णे वा।मत्स्यपरिपचने शृङ्गवेरपरिपचने वाभाजने सिद्धां काकमाचीम् । तिलकल्कसिद्धमुपोदिकाशाकम्।नारिकेलेन वराहवसापरिभृष्टां बलाकाम्। भासमङ्गारशूल्यं नाश्नीयादिति ॥

अर्थ-अब संयोग विरुद्धोंको कहकर कर्मविरुद्धोंको कहते हैं। तहाँ कपोत (कबूतरका भेद पिंडुकिया) को सरसोंके तेलमें भूनके न खावे। सपेदतीतर, मोर, लवा,कालातीतर,गोह इनको अंडकी और दारुहलदीकी लकडियोंकी आंचमें भूनके न खावे। तथा अंडीके तेलमें भी तलके न खाय। गरमीकी ऋतुमें काँसेकेपात्रमें अथवा गरम कांसेके पात्रमें घी, सहत ये दशदिन धरेहुएनको न खाय।मछली जिस पात्रमें बनाईहो अथवा अदरखका साग जिस पात्रमें किया होवे उस पात्रमें सिद्धकरी काकमाचीका साग न खाय। तिलकल्कमें सिद्धकरा (पकाया हुआ) पोईका साग न खाय। सुअरकी चर्बीमें भुनीहुई बगलीके मांसको नारियलकी गिरीके साथ न खाय। भास (जो एक गीधका भेद है)उसको लोहेके सूएसे भेदकर आगमें सेंकेहुएको न खाय ॥

अथमानविरुद्ध।

अतो मानविरुद्धान् वक्ष्यामः । मध्वम्बुनी मधुसर्पिषी मानतस्तुल्ये नाश्नीयात्। मधुस्नेहौ जलस्नेहौ वा तैलसर्पिषी तैलवसे तैलमज्जानौ सर्पिर्वसे सर्पिर्मज्जानौ विशेषादान्तरिक्षोदकानुपानौ ॥

अर्थ-अब कर्मविरुद्ध कहनेके अनंतर मान (तोल) विरुद्धोंको कहते हैं।

आगे इसअध्यायमें८४ आसव इस प्रकार कहे हैं ॥

तहाँ धान्य, फल, सार, पुष्प, कांड, पत्र, छाल ये सात वस्तु आसवकी योनि हैं अर्थात् आसव इन्हींसे बनती है तथा शर्करा और नवमद्रव्य संयोग इनके मिलापसे अनेक आसव अमृतके तुल्य बनती है। तिनमें ८४ आसव पथ्यतमहैं। उनको सुन-सुरा, सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक, धान्याम्ल, ये छः धान्यासव हैं ॥

सहत जल और सहत घी ये समान भाग मिलायके न खावे । सहत और घृतादि स्नेह।तथा जल और घी आदि तेल और घी तेल और चर्बी तेल और मज्जा । घी और चर्बी तथा घी और मज्जा ये समान भाग मिलायके न खाय । तथा घी और मज्जाको पीकर अंतरिक्ष संबंधी जल न पीवे ॥

दोदोरस रसवीर्य और विपाकसेविरुद्ध ।

अत ऊर्ध्वं रसद्वन्द्वानि रसतो वीर्य्यतो विपाकतश्च विरुद्धानि वक्ष्यामः । तत्र मधुराम्लौ रसवीर्य्यविरुद्धौ मधुरलवणौ च, मधुरकटुकौ च सर्वतः । मधुरतिक्तौ रसविपाकाभ्यां मधुररसकषायौ च,अम्ललवणौ रसतः । अम्लकटुकौ रसविपाकाभ्यां । अम्लतिक्तावम्लकषायौ च सर्वतः । लवणकटुकौ रसविपाकाभ्यां लवणतिक्तौ लवणकषायौ च सर्वतः। कटुतिक्तौ रसवीर्य्याभ्यां । कटुकषायौ तिक्तकषायौ च रसतः ॥

अर्थ–मान विरुद्धोंको कहकर अब दोदो रसोंको रस, वीर्य और विपाक से विरुद्धको कहते हैं । तहाँ मधुर और खट्टे दोनोंरस रस और वीर्यसे विरुद्ध है अतएव मिलायके न खावे एवं मधुर और लवणरसभी रसवीर्य से विरुद्धहै मधुर और तीक्ष्णरस सर्व रसवीर्य विपाक से विरुद्ध है,मधुर और कडुआ रस रसविपाक से विरुद्ध है, एवं मधुर और कषेला रसभी रसविपाकसे विरुद्ध है खट्टा और निमकीनरस रससे विरुद्ध है।खट्टा और चरपरा रस तथा विपाकसे विरुद्ध है । अम्ल, तिक्त तथा अम्ल और कषाय ये रसवीर्य और विपाक से विरुद्ध हैं। लवण कटुकरस रसविपाक से विरुद्ध हैं । लवण

मुनक्का, दाख, खजूर, कंभारी, धन्वन, राजादन, तृणशूल्य, परुष, अभया, आमलक, मृगलिंडिका, जाम्बव, वक, कैथ, कुवल, बदर, कर्कंधु, पीलू, पियाल, पनस, न्यग्रोध, अश्वत्थ, द्राक्षा, कपीतन, उदुंबर, अजमोद, सिंघाडे और संखनी इन फलोंसे बननेवाले २६ फलासव हैं ॥

१ दही बूरा । यद्यपि खट्टे और मीठे रसहोनेपरभी उपयोगी होनेसे दोष नहींहै, परंतु जो खटाई और मिठाई मिली किसी उपयोगमें नहीं आवे वो विरुद्धहै उसको ग्रहण नहीं करना ।

तिक्त तथा लवण और कषाय ये सबसे विरुद्ध हैं । चरपरा और कडुआ रस एवं कटुकषायरस, रसवीर्यसे विरुद्ध हे । तिक्त (कडुआ) और कषाय सबसे अर्थात् रसवीर्य और विपाक से विरुद्ध है ॥

तहाँ गयदास इस रसवीर्यविपाक विरुद्धोंको नहीं माने कारण यह है कि, प्रथम मधुररस भोजन करना लिखा है फिर सब रसखाय एकरसकाही सेवन निषेध है, परंतु प्राचीन ग्रंथोंमें लिखा देखकर हमनेभी लिखकर व्याख्या करदी ॥

अब कहते हैं कि, अत्यंत गुणकारी भैंसके दूधआदि पदार्थ हितकारी हैं, परंतु स्वस्थ मनुष्यको उसी एकका सेवन अहितकारी होता है यहकहतेहैं॥

तरतमयोगयुक्तांश्च भावानतिरूक्षानतिस्निग्धानत्युष्णा नतिशीतानित्येवमादीन्विवर्जयेत् ॥

अर्थ -अत्यंत स्नेहादि सहित जैसे अतिरूक्ष, अतिस्निग्ध, अतिउष्ण, अतिशीतल इत्यादि पदार्थोंका सेवन इसप्राणीको वर्जनीय है । इसमें चकार जो पडा उस्से अत्यंत पथ्यतम, अत्यंत आयुके बढानेवाले, अत्यंतवृष्यपदार्थोंकोभी सेवन न करे ॥

पूर्वोक्तकोस्पष्टकरतेहैं ।

विरुद्धान्येवमादीनि रसवीर्य्यविपाकतः ।
तान्येकान्ताहितान्येव शेषं विद्याद्धिताहितम् ॥

अर्थ--पूर्वोक्त जो विरुद्ध पदार्थ कहे हैं उनसे आदिले जो जो अन्य पदार्थ रसवीर्य और विपाकसे विरुद्ध हैं, उनको एकान्त अहित, वैद्य अपनी बुद्धिसे विचारलेवे । बाकी जो द्रव्य है वो एकांत हिताहितहै ॥

विरुद्धपदार्थभक्षणकेअवगुण ।

व्याधिमिन्द्रियदौर्बल्यं मरणञ्चाधिगच्छति ।
विरुद्धरसवीर्य्यादीन् भुञ्जानोऽनात्मवान्नरः ॥

अर्थ--रस--वीर्यादि विरुद्ध अहितकारी द्रव्य भोजन करनेसे उस चंचल

विदारीगन्धा, असगंध, कृष्णगंध, शतावर, श्यामा, त्रिवृत्, दंती, द्रवंती, बिल्व, आरुक और चित्रक ये ११ मूलासव अर्थात् जडसे बननेवाली आसवहैं ॥

---

१ जैसे भैंस गौकादूध अत्यंत स्निग्धहै इसी वास्ते नैरोग्य मनुष्यको अपनी समाग्निके रक्षाके वास्ते ये नहीं खाना चाहिये ।

पित्तवाले मनुष्यके अनेक प्रकारकी व्याधि, इन्द्रियोंमें दुर्बलता अथवा मृत्यु पर्यंतको करे है, इसवास्ते विरुद्ध पदार्थको सर्वथा त्याग देवे ॥

विकारकर्त्तापदार्थ ।

यत्किञ्चिद्दोषमुत्क्लेश्य भुक्तं कायान्न निर्हरेत् ।
रसादिष्वयथार्थं वा तद्विकाराय कल्पते ॥

अर्थ–कोई २ द्रव्य भोजनके अंतमें भोजनके पदार्थको प्रकुपित करके वमनकीसी इच्छा कराती है, उसको वमनके द्वारा देहके बाहर न निकाले तो वह कोई न कोई पीडाको करे ऐसा जानना। यह केवल दोषकारी होकर व्याधिमात्रको ही नहीं करे किंतु रसादिधातु दुष्टकारी व्याधियोंकोभी करे हैं। तहाँ बहुतसी द्रव्य दोषोंको दुष्टकरे है और बहुतसी द्रव्य धातुओंको दुष्टकारी है उनको ग्रंथ बढनेके भयसे इसजगेपर नहीं लिखा ॥

विरुद्धभोजनजनितरोगोंकीचिकित्सा ।

विरुद्धाशनजान्रोगान्प्रतिहन्ति विरेचनम् ।
वमनं शमनं वापि पूर्वं वा हितसेवनम् ॥

अर्थ–विरुद्ध भोजनसे उत्पन्न रोगोंको[2] विरेचन (दस्तकराना) दूरकरता है तथा वमन करना और शमनकर्त्ता औषध नष्ट करती है। एवं उस विरुद्धपदार्थजन्य व्याधिके होनेसे प्रथम ही हितसेवन करे तो विरुद्धदोष शमनहोवे। तहाँ बलवान्का वमन विरेचनद्वारा रोग शांति करे और हीनबलीका शमन औषधसे शमनकरना चाहिये ॥

विरुद्धभोजनकरनेपरभीकिसीकोरोगनहींहोयहकतेहैं ।

सात्म्यतोऽल्पतया वापि दीप्ताग्नेस्तरुणस्य च ।
स्निग्धव्यायामबलिनां विरुद्धं वितथं भवेत् ॥

अर्थ–जो अपने सात्म्यसे अल्प भोजन करते हैं अर्थात् जिसका थोडा २

साल, प्रियकसाल, चंदन, स्यंदन, खैर, कंदर, सतवन, कोह, विजेसार, अरिमेद, तिंदुक, किणही, शमी, शुक्ति, सीसव, सीरीस, वंजुल, धान्यरू और महुआ ये वीस सारसे बननेवाली सारासव हैं ॥

---

१ गरमदूधमें चीनी बूरा शीतल डालना विरुद्ध होनेपरभी बिकारनहीं करे ।
२ विरुद्धपदार्थजन्यरोगोंको विरेचन दूरकरता है अतएव विरुद्धभोजनजन्य कुष्ठरोगकोभी दूरकरे है इस्से यह सिद्धहुआ कि, विरेचन कुष्ठरोगका शत्रु है ॥

अभ्यास कराहो ऐसी द्रव्य तथा जिसकी दीप्ताग्निहै और जो तरुण है एवं जो स्निग्ध और दंडकसरत करनेसे बलिष्ठहै अथवा जो दंडकसरत करते हैं और बली हैं ऐसे प्राणियोंके विद्धरुभोजनभी निष्फल होजाता है। अर्थात् रोग नहींकरे।

व्यायामशीलो बलवाञ्छिशुश्चस्निग्धोऽग्निमांश्चा-
पिमहाशनश्च। आप्नोतिरोगान्नविरुद्धजातान-
भ्यासतो वाल्पतया च जन्तुः॥

अर्थ—जो दंडकसरत करा कर्त्ता है, बलीपुरुष, बालक, स्निग्ध देहवाला, प्रबल जठराग्निवाला, अत्यंत भोजन करनेवाला तथा जिसने जिसविरुद्ध वस्तुका अभ्यास करलीना होवे तथा वह विरुद्ध पदार्थ बहुत अल्प खाय तो वह प्राणी विरुद्धभक्षणजन्य रोगोंको नहीं प्राप्त होवे॥

अब इस अध्यायकी समाप्तिमें वातके गुणकहते हैं तहां हितकारीभी पवन दिशाओंके संयोगसे अहितकारी होजाता है अतएव उनके पृथक् २ गुण कहते हैं।

पूर्वपवनकेगुण।

पूर्वः समधुरः स्निग्धो लवणश्चैव मारुतः। गुरुर्विदाह-
जननो रक्तपित्ताभिवर्द्धनः॥ क्षतानां विषजुष्टानां
व्रणिनः श्लेष्मलाश्चये। तेपामेव विशेषेण सदा रोगवि-
वर्धनः॥ वातलानां प्रशस्तश्च श्रान्तानां कफशोपि-
णाम्। तेषामेव विशेषेण व्रणक्लेदविवर्द्धनः॥

अर्थ—पूर्वकीपवन मीठी, स्निग्ध और निमकीनहै; भारी, दाहउत्पन्नकरता और रक्तपित्तके बढाने वाली है, घाववाले और विषसेपीडित तथा जिसके फोडेहो एवं कफसे व्याप्त हैं उनको यह पूर्वकी पवन सदैव रोगके बढाने वाली है। वादीवाले, श्रांत (थकेहुए, और जिनका कफ सूखगया है उनको विशेषकरके पूर्वकी पवन अति उत्तम है। तथा यह घावोंमें सदैव क्लेदके बढाने वाली है॥

पद्म, उत्पल, नलिन, मुकुद, सौगंधिक, शतपत्र, मधूक, प्रियंगु, धायकेफूल ये पुष्पासव हैं इक्षु, कांडेक्षु इक्षुवालिका, पुंड्रक, ये छालकी आसव हैं और शर्करा सब इस प्रकार आसवोंके भेद ८४ हैं॥

॥इति यज्जःपुरुषीयाऽध्यायः॥

दक्षिणपवनकेगुण ।

मधुरश्चाविदाही च कषायानुरसो लघुः ।दक्षिणो मारुतः श्रेष्ठश्चक्षुष्यो बलवर्द्धनः । रक्तपित्तप्रशमनो न चवातप्रकोपनः ॥ विशदो रूक्षपरुषः खरः स्नेहबलापहः ॥

अर्थ–दक्षिणकीपवन मधुर है, दाह नहींकरे और कषेले रसवाली हलकीहै तथा नेत्रोंको हितकारी, बलको बढानेवाली, रक्तपित्तरोगको हरणकर्त्ता और वातको कुपित नहीं करे, विषद, रूक्ष, कठोर, तीखी, चिकनाईके बलको नाशक है और उत्तम है ॥

पश्चिमकीपवन ।

पश्चिमो मारुतस्तीक्ष्णः कफमेदोविशोषणः ।
सद्यः प्राणक्षयकरः शोषणस्तु शरीरिणाम् ॥

अर्थ–पश्चिमका पवन तीखा, कफ और मेदाको शोषणकरने वाला है, तथा सद्यप्राण नाशन और प्राणियोंके देहको सुखाने वाला है ॥

उत्तरकीपवन ।

उत्तरो मारुतः स्निग्धो मृदुर्मधुर एव च । कषायानुरसः शीतो दोषाणामप्रकोपनः ॥ तस्माच्च प्रकृतिस्थानां क्लेदनो बलवर्द्धनः।क्षीणक्षयविषार्तानां विशेषेण तुपूजितः ॥

अर्थ–उत्तरका पवन चिकना, नम्र, मीठा और कुछ कषेला है, शीतल दोषोंको कुपितनहींकरे, इसी कारण जो प्रकृतिस्थ अर्थात् नैरोग्य पुरुष है उनको आर्द्रकरे और बलको बढावे है । तथा जो प्राणी क्षीणहै क्षईरोगवाले और विषरोगी उनको प्रायः माननीय है ॥

॥ इति हिताहितीयाध्यायः समाप्तः ॥

इति श्रीमाथुरकृष्णलालतनय दत्तरामप्रणीते आयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे मिश्रप्रकरणं समाप्तम् ॥

समाप्तोऽयंमिश्रखंडः ।

ॐ

श्रीशंवन्दे

श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः ।

आयुर्वेदोद्धारांतर्गतबृहन्निघंटुरत्नाकरे

चिकित्साखण्डप्रारम्भः ।

शिष्य–चिकित्सा किसको कहते हैं ?

गुरु–शरीरमें धात्वादि विकृत दोष समान करनेवाले कर्मको चिकित्सा कहते हैं जैसे–वाग्भटमें लिखा है ।

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः ।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्मतद्भिषजां मतम् ॥

अर्थ–जिनक्रियाओं करके देहमें रसरक्तादि धातु समानहोवे वही रोगोंकी चिकित्साहै और वैद्योंका वही कर्मकहाहै ॥

सुश्रुतेऽपि ।

चतुर्णां भिषगादीनां शस्तानां धातुवैकृते ।
प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्था चिकित्सेत्यभिधीयते ॥

अर्थ–सुश्रुतमेंभी लिखाहै कि, उत्तम वैद्यादि (वैद्य, रोगी, सेवक और औषध) चतुष्टयोंका विकृत (कुपित) धातुके समान करनेके लिये जो प्रवृत्ति है उसको (चिकित्सा) ऐसे कहते हैं ॥

अन्यच्च ।

या क्रिया व्याधिहरणी सा चिकित्सा निगद्यते ।
दोषधातुमलानां या साम्यकृत्सैव रोगहृत् ॥

अर्थ–अन्यत्रभी लिखाहै कि, जो क्रिया व्याधिके हरण करने वाली है उस को चिकित्साकहते हैं । जो चिकित्सा दोष (वातादि) धातु (रसरक्तादि) और मलादिकोंको समान करती है वही रोगहरणकर्त्ता जाननी । क्रिया शब्द करके इसजगे कर्मका ग्रहणहै ॥

क्रियाकेलक्षण ।

यात्युदीर्णं शमयति नान्यं व्याधिं करोति च ।
सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत् ॥

अर्थ–जो बढीहुई व्याधिको शमनकरे परंतु अन्य व्याधिको प्रगट न करे उसीको क्रिया (चिकित्सा) कहते हैं और जो एकव्याधिको हरणकरे और तत्काल दूसरी व्याधिको प्रगटकरदे उसे क्रिया नहीं कहते ।(क्रिया) शब्द करके इस जगे (चिकित्साका) ग्रहणहै. जैसे " आरंभो निष्कृतिः शिक्षा पूजनं संप्रधारणम् । उपायः कर्मचेष्टा च चिकित्सा च नवक्रियाः " यह अमरकोषमें नौ नाम चिकित्साके कहे हैं ॥

चिकित्सा और उसका प्रयोजन ।

यद्व्याधिनिर्घातकरंवक्ष्यतेतच्चिकित्सितम् ।
चिकित्सितार्थएतावान्विकाराणांयदौषधम् ॥

अर्थ–जो व्याधि अर्थात् रोगका नाशकरे वही चिकित्सा जाननी उस चिकित्साका प्रयोजन इतनाही है कि, विकारोंकी औषधि करना ॥

चिकित्साकेनाम ।

चिकित्सितं व्याधिहरं पथ्यं साधनमौषधम् ।
प्रायश्चितप्रशमनंप्रकृतिस्थापनंहतम् ॥
विद्याद्भेषजनामानि–

अर्थ–अब प्रथम चिकित्साके नाम कहते हैं जैसे चिकित्सित, व्याधिहर, पथ्य- साधन, औषध, प्रायश्चित, प्रशयन, प्रकृतिस्थापन और हत ये भेषज (औषधी और चिकित्सा) के नाम हैं ॥

उपचारास्तूपचर्याचिकित्सारुक्प्रतिक्रिया ।
निग्रहोवेदनानिष्ठाक्रियाचोपक्रमश्रमाः ॥

अर्थ-ग्रंथातरसे चिकित्साके नाम कहते हैं जैसे-उपचार, उपचर्या, चिकित्सा, रुक्प्रतिक्रिया, निग्रह, वेदनानिष्ठा, उपक्रम और श्रम ये चिकित्साके नाम।

प्रायश्चितं प्रशमनं चिकित्सा शांतिकर्मच।
पर्यायास्तस्यनिर्दिष्टा॥

अर्थ-सुश्रुतमें भी लिखाहै जैसे कि, प्रायश्चित्त, प्रशमन, चिकित्सा और शांतिकर्म ये चिकित्साके पर्यायवाचकशब्द हैं॥

शिष्य-चिकित्सा कितने प्रकारकी है?

गुरु-चिकित्सा दो प्रकारकी हैं जैसे, लिखाहै "चिकित्सितं कर्षणबृंहणाख्यं" अर्थात् चिकित्सा दो प्रकारकी है एककर्षण,दूसरी बृंहण। परंतु किसी आचार्यके मतसे तीन प्रकारकी है। जैसे लिखाहै॥

निदानरोगविपरीतऔरतदर्थकारिणीचिकित्सा।
निदानविपरीता च विपरीतारुजस्तथा।
तदर्थकारणीचेति चिकित्सा त्रिविधा मता॥

अर्थ-निदानविपरीत और रोगविपरीत तथा निदानरोगविपरीत ऐसे चिकित्सा तीनप्रकारकी है निदान विपरीत चिकित्सा जैसे विषभक्षणजन्य गरमीमें दूध घृतका पान करना, रोगविपरीत चिकित्सा जैसे अतीसाररोगमें दस्तोंका बंद करना, उसीप्रकार निदान और रोगविपरीतचिकित्सा जैसे, शीत कफज्वरमें सोंठका काढा परंतु ये तीनों प्रकारकी चिकित्सा उन्हीं पूर्वोक्त कर्षण बृंहणके अंतर्गत है॥

दैवीमानुषीऔरराक्षसीचिकित्सा।
रसादिभिर्याक्रियते चिकित्सा दैवीति वैद्यैःपरिकीर्त्तिता सा।
सा मानुषी याऽथकृताफलाद्यैःसा राक्षसी शस्त्रकृताभवेद्या॥

अर्थ-जो रसादिकरके चिकित्सा करीजावे उसको दैवी चिकित्सा वैद्यकहते हैं और जो फलमूलादि करके करीजावे उसे (मानुषीचिकित्सा) तथा शस्त्रकृत अर्थात् चीरने फाडनेको (राक्षसी चिकित्सा कहते हैं) यह अधमहै

१ जो दोषधातुमलादिकों को क्षीणकरदे उसको कर्षण चिकित्सा कहते हैं जैसे-वमन विरेचन, लंघनादि। २ जो दोषधातुमलादिकोंको बढाकर रोगको दूरकरे उसको बृंहणचिकित्सा कहते हैं अर्थात् जिसमें रोगीका देहभी यथार्थ बना रहै और रोग दूर होजाय इस चिकित्साको प्रायः हकीम और डॉक्टर लोग बहुतप्रसन्न करते हैं।

आसुरी मानुषी दैवी चिकित्सा त्रिविधा मता।
शस्त्रैः कषायैर्लोहाद्यैः क्रमेणांत्यासुपूजिता॥

अर्थ–चिकित्सा--आसुरी, मानुषी और दैवी इन भेदोंसे तीनप्रकारकी है तहां शस्त्रसे अर्थात् चीरना, फाडना, काटना आदि चिकित्साको आसुरी (राक्षसी) कहते हैं और काढे, चूर्ण, गुटिका आदिकरके जो चिकित्सा करीजाय वो मानुषीचिकित्साहै और जो सुवर्ण, चांदी और लोह आदि शब्दसे पारा, गंधक, रसोपरस, रत्नोपरत्न और विषादिकसे चिकित्सा करीजावे वो दैवीचिकित्सा कहलाती है। इनमें अंतकी चिकित्सा अर्थात् दैवीचिकित्सा माननीय है॥

शिष्य–चिकित्सामें कौन २ वस्तु जानने योग्यहैं॥

गुरु--–चिकित्साकरने वालोंको प्रथम चिकित्साके अंगोंका जानना अतिआवश्यक है।

शिष्य—तो आप कृपापूर्वक चिकित्साके अंगोंको कहिये।

गुरु---जैसे अंगहीन मनुष्य अच्छा नहीं इसी प्रकार अंगहीन चिकित्साकीभी शोभा नहीं अतएव मैं उन अंगोंको कहता हूं॥

अथचिकित्सांगानि।

रोगी दूतो भिषग्दीर्घमायुर्द्रव्यं सुसेवकः।
सदौषधं चिकित्साया इत्यंगानि बुधा जगुः॥

अर्थ–रोगी, दूत, वैद्य, दीर्घआयु, द्रव्य, उत्तमसेवक और उत्तम औषधी ये चिकित्साके अंग विद्वानोंने कहे हैं। जैसे अंगहीन मनुष्य अशोभित होता है उसीप्रकार चिकित्साभी अंगहीन उत्तम नहीं कहलाती॥

शिष्य–आपने " चतुर्णांभिषगादीनां " इसश्लोकमें जो वैद्यादिचतुष्टय कहे उनका चिकित्सामें क्या प्रयोजन है और उनको क्याकहते हैं॥

गुरु---वो चिकित्साके पादचतुष्टयहैं अर्थात् चिकित्साके चारपैरहैं इनके विना चिकित्सा चल नहीं सक्ती यहीप्रयोजन है॥

चिकित्साकेपादचतुष्टय।

भिषग्द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम्।
गुणवत्कारणं ज्ञेयं विकारस्योपशान्तये॥

अर्थ–वैद्य–द्रव्य (औषधि) रोगीका सेवक और रोगी ये चिकित्सा

के चार पैरहैं। यह पादचतुष्टय उपयुक्त गुणसंपन्न होनेसे रोगशांतिकरनेको समर्थ होते हैं ॥

पाठांतरम् ।

वैद्यो व्याध्युपसृष्टश्च भेषजं परिचारकः।
एते पादाश्चिकित्सायाःकर्मसाधनहेतवः ॥

अर्थ–वैद्य, रोगी, औषध और परिचारक (सेवक) ये चिकित्साके चार पैर कर्मसाधनके हेतुहैं; अर्थात् इनके विना चिकित्सा कर्म नहीं होसक्ता ॥

वैद्यविना पादत्रयको निष्फलत्व ।

वैद्यहीनास्त्रयः पादागुणवंतोऽप्यपार्थकाः।
उद्गातृहोतृब्रह्माणो यथाध्वर्युंविनाध्वरे ॥

अर्थ–वैद्यरहित चिकित्साके अन्य तीनपाद गुणवान्‌भी निरर्थक हैं, जैसे–यज्ञमें विना अध्वरी (उपाध्यायके) उद्गाता, होता और ब्रह्मा ये निष्फल हैं। जैसे अध्वरी–उद्गाता होता और ब्रह्माको पृथक् २ कर्ममें युक्ति बताता रहता है उसीप्रकार वैद्य, रोगी, सेवक और औषधमें युक्ति बताता रहता है ॥

पादत्रयविनाभीवैद्यको मुख्यत्व ।

वैद्यस्तुगुणवानेकस्तारयेदातुरान्सदा ।
प्लवं प्रतितरैर्हीनं कर्णधारइवार्णवम् ॥

अर्थ–गुणवान् अकेला वैद्यही रोगियोंको सदैव उद्धार करता है अर्थात् रोगसे निर्मुक्त करता है जैसे प्रतितर(भीतरभरे हुए जलके उलीचने वालों करके) हीन नावको अकेला मल्लाह (केवटिया) पार लगाता है ॥

पादचतुष्टयमें वैद्यको प्राधान्यत्व ।

कारणंषोडशगुणंसिद्धौपादचतुष्टयम्। विज्ञाता शासिता योक्ता प्रधानं भिषगत्र तु । पक्तौहि कारणं पक्तुर्यथा पात्रेंधनानलाः॥ विजेतुर्विजये भूमिश्चमूः प्रहरणानि च । आतुराद्यास्तथा सिद्धौ पादाःकारणसंज्ञिताः ॥ वैद्यस्यातश्चिकित्सायां प्रधानं कारणं भिषक् । मृद्दंड चक्रसूत्राद्याः कुंभकारादृतेयथा ॥ नावहंति गुणं वैद्यादृतेपादत्रयं तथा ॥

अर्थ–चिकित्साकी सिद्धीमें सोलहगुण संपन्न पादचतुष्टय कारण हैं, तथा चिकित्साके पादचतुष्टयोंमें जानने वाला, आज्ञा करनेवाला, युक्ति बताने वाला वैद्य है, इसीसे वैद्यको मुख्यत्व है। इनको दृष्टांत देकर समझाते हैं कि, जैसे रसोई करनेवाले प्राणीको रसोईके करनेमें पात्र, ईंधन और अग्नि ये कारण हैं तथा जीतनेकी इच्छा करनेवाले राजा को जीतनेमें जैसे पृथ्वी, फौज और हथियार कारण हैं। इसी प्रकार वैद्यको चिकित्साकी सिद्धिमें अतुरादि (रोगी आदि) तीनपाद कारण हैं, इसीसे चिकित्सामें प्रधान कारण वैद्यहै और दृष्टांत देते हैं कि, जैसे मिट्टी (जिस्से बरतन बनते हैं) दंड (चाक फिरानेकी लकडी) और बासन तयार होनेपर काटनेका डोरा इत्यादि सब वस्तु धरी हैं, परंतु बिना कुम्हार (बनाने वाले) के वो अपने २ गुणोंको नहीं करते (मिट्टी स्वयं बासनरूप नहीं बनती, लकडी स्वयं चाकको घुमाती नहीं है और डोरा काटता नहीं है, तात्पर्य यह है कि, जैसे मिट्टी, लकडी और डोरा उस कुम्हारके आधीन हैं वो उनसे काम लेसक्ता है) इसीप्रकार रोगी औषधी और सेवक ये वैद्यके आधीन हैं बिना वैद्य कुछ नहीं करसक्ते परंतु वैद्य सब कार्य करा सक्ता है॥

तहां प्रथमवैद्यकेलक्षण।

चिकित्सां कुरुते यस्तु स चिकित्सक उच्यते।
सच यादृक् समीचीनस्तादृशोऽपि निगद्यते॥

अर्थ–जो चिकित्साकरे उसको चिकित्सक कहते हैं वो वैद्य जैसा उत्तम उसको लिखते हैं॥

वैद्यशब्दकीव्युत्पत्ति।

पंचतत्वात्मकं सर्वं वेत्ति यस्मादशेषतः।
तस्माद्वैद्य इति ख्यातो तस्य नामानि कथ्यते॥

अर्थ–संपूर्णब्रह्मांडके पदार्थोंको पंचतत्वात्मक जाननेसे इसको वैद्य कहते हैं अथवा (विदज्ञाने) इस धातुसे वैद्य पद सिद्ध होताहै इससे संपूर्ण त्रिस्कंधात्मक आयुर्वेद तथा अन्य व्याकरण, न्याय, ज्योतिषादि संपूर्ण शास्त्रोंके आशयोंको तथा लौकिकके संपूर्ण व्यवहारोंको जाननेसे इसको वैद्य ऐसा कहते हैं अब उस वैद्यके नामोंको कहते हैं॥

वैद्यकेनाम।

वैद्यः श्रेष्ठोऽगदंकारो रोगहारी भिषग्विधिः।
रोगज्ञो जीवनो विद्वानायुर्वेदी चिकित्सकः॥

अर्थ–वैद्य, श्रेष्ठ, अगदंकार, रोगहारी, भिषक्, विधि, रोगज्ञ, जीवन, विद्वान्, आयुर्वेदी और चिकित्सक ये वैद्यके संस्कृत नाम हैं इसी प्रकार गदहागदारि, प्राणाचार्य, प्राणद और वैद्यराज इत्यादि और भी अनेक नाम वैद्यके हैं

वैद्यकेलक्षण।

तत्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयंकृती। लघुहस्तः
शुचिः शूरः सज्जोपस्करभेषजः॥ प्रत्युत्पन्नमतिर्धीमान्
व्यवसायी प्रियंवदः[1]सत्यधर्मपरो यश्च वैद्य ईदृक् प्रशस्यते॥

अर्थ–जिसने यथायोग्य आयुर्वेदशास्त्र अध्ययन कर उसका यथार्थ तात्पर्य हृदयंगम अर्थात् हृद्गत करलियाहो, अन्यवैद्यके करेहुए छेदनादि और स्नेहपाकादि क्रियादि चिकित्साको अनेकवार देखचुकाहो, स्वयं चिकित्सामें कुशल तथा जिसका हलकाहाथहो, अर्थात् छेदनादि क्रियामें जिसका हाथ कांपे नहीं। पवित्राचार,(बाहरभीतरसे शुद्ध) शूर(खेदरहित)नवीन तयार करीहुई औषधयुक्त तथा अग्रोपहरणीयाध्यायमें पठितयंत्र शस्त्रादि युक्त, तात्काल स्फुरणवाली बुद्धि, अर्थात् वादकी किसी अवस्थामें मोहित न हो। बुद्धिवान् (जो अनुक्त और दुरुक्त ग्रहण करनेवाली और त्यागनेवाली बुद्धिवाला) उद्योगी (रोगीकी बिगडीहुई अवस्थामेंभी यत्नकरनेमें मोहित न हो)प्रियवचन बोलने वाला, कोई प्रियंवदकेस्थानमें (विशारद)ऐसा पाठ कहते हैं तहां विशारद कहिये शास्त्रके कठिन शब्दोंको देखकरभी न घबडावे, सत्य और धर्ममें तत्पर ऐसा वैद्य उत्तम कहाहै॥

वैद्यकेगुणचतुष्टय।

श्रुतेपर्यवदातृत्वंबहुशोदृष्टकर्मता।
दाक्षंशौचमितिज्ञेयं वैद्येगुणचतुष्टयम्॥

अर्थ–शास्त्रमें प्रवीणत्व तथा अनेक प्राचीन वैद्योंकी कर्मसिद्धीको जिसने अनेक वार देखाहो, चतुर और पवित्र ये वैद्यमें चारगुण जानने॥

१ विशारदः इतिपाठातरम्।

अब प्रसंगवश चरकसे तीनप्रकारके वैद्योंको यहाँ परवर्णन करतेहैं ॥

त्रिविधवैद्य ।

भिषक्छद्मचराः सन्ति सन्त्येके सिद्धिसाधिताः ।
संति वैद्यगुणैर्युक्तास्त्रिविधा भिषजो भुवि ॥

अर्थ–इस पृथ्वीमें तीनप्रकारके वैद्यहैं जैसे कि, छद्मचर (कपटी) वैद्य, दूसरे सिद्धसाधित और तीसरे वैद्यगुणोंकरके युक्त अर्थात् उत्तम वैद्य हैं ॥

ठगवैद्यकेलक्षण ।

वैद्यभांडौषधैः पुस्तैः पल्लवैरवलोकनैः ।
लभन्ते ये भिषक्शब्दमज्ञास्ते प्रातिरूपकाः ॥

अर्थ–वैद्योंके पात्र, औषधि, पुस्तक और पत्तेआदिके देखनेसे जो भिषक् (वैद्य) शब्दको प्राप्तहोते हैं वो वैद्य मूर्खहैं, उनको प्रातिरूपक अर्थात् ठगिया कपटके बने वैद्यजानने चाहिये, तात्पर्य यहहै कि, जो मूर्खवैद्य ठगियाहोते हैं वो अनेक शीशी, अमृतवान् आदि पात्रोंसे और झूँठी औषध, पोथी, रूखडीआदिसे अपने स्थानको सजायेहुए रखते हैं कि, जिससे रोगियोंको यह मालूम होवे कि, ये कैसे बडेभारी वैद्य हैं, परंतु ऐसे दुष्टवैद्य रोगियोंको त्यागदेने चाहिये ॥

सिद्धिसाधितवैद्यकेलक्षण ।

श्रीयशोज्ञानसिद्धीनां व्यपदेशादतद्विधाः ।
वैद्यशब्दं लभंते ये ज्ञेयास्ते सिद्धिसाधिताः ॥

अर्थ–चिकित्साश्री और यशोज्ञान कहिये चिकित्साक्रियाकी सिद्धी इनके मिषसे जो वैद्यशब्दको प्राप्त होते हैं परंतु उनमें उक्तगुण होवे नहीं उनको सिद्धिसाधित वैद्य कहतेहैं अर्थात् विना चिकित्साकरे और बिना चिकित्साकी क्रियाके करे जिनका संसारमें यह नाम होजावे कि, अमुक वैद्य की चिकित्साके बराबर दूसरेकी चिकित्सा (इलाज) नहीं है और वो इसकर्म में अत्यंत निपुणहैं उसको सिद्धसाधित वैद्य शास्त्रमें कहाहै। (ऐसे वैद्य क्या काम करते हैं कि, किसी नवीन शहरमें जाकर आप वैद्यबन बैंठते हैं और उसीशहरके अथवा दशवीस अन्य शहरके धूर्त्त मनुष्योंको कुछ लोभदेकर अपना नाम इसप्रकार प्रसिद्धकराते हैं कि, वो उस शहरमें जाकर यह प्रसिद्धी करतेहैं कि, भाईहो! ये नये वैद्य आयेहैं इनका भगवान् मंगलकरे कि मेरेवर्षोंसे कोढका रोग था सो इन्होंने दशही दिनमें दूर करदिया। दूसरा मनुष्य कह-

ताहै कि मेरे महीनोंके पुराने ज्वरको दोतीन पुडियोंमें खोय दिया। तीसरा कहताहै कि, मेरे दमेके रोगको जो बडे २ वैद्य और डाक्टरोंसे अच्छा न होसका उसकोइन्होंने थोडेहीदिनमें बिलकुल जडसे उखाड दिया परमात्मा इनकी जय करे,इसी प्रकार कोई कुछ और कोई कुछ रोगका नामलेहैं बस इन दुष्ट मनुष्योंके वचनरूप जालमें फसकर उस शहरके भोले भाले मनुष्य इन बनेहुए सिद्धसाधक वैद्योंके पास खिचेहुए चलेजाते हैं और जब ठगा जाते हैं तब पश्चात्ताप करते उन दुष्टमनुष्योंकी निंदा करते हुए (जो कि, उन वैद्योंकी बडाई करतेथे) चुपहो बैठ रहते हैं ॥

सद्वैद्यकेलक्षण ।

प्रयोगज्ञानविज्ञानसिद्धिसिद्धाःसुखप्रदाः ।
जीविताभिषरास्तेस्युर्वैद्यत्वंतेष्ववस्थितम् ॥

अर्थ-प्रयोग (औषध प्रयोग करण) ज्ञान (शास्त्रज्ञान) विज्ञान (लोकव्यवहारज्ञान) सिद्धि (चिकित्साकर्मकी सिद्धी) इन करके जो विख्यातहैं और रोगियोंको सुखके देनेवाले वो प्राणाभिषर अर्थात् प्राणरक्षक वैद्य हैं ये रोगियों करके उपादेय हैं अर्थात् ऐसे वैद्योंसे अपनी चिकित्सा करानी चाहिये ॥

अब प्रसंगवस चरकसे द्विविध वैद्यवर्णनके वास्ते दशप्राणायतनीयाध्यायका वर्णन करते हैं ॥

अथातोदशप्राणायतनीयमध्यायंव्याख्यास्यामः।

अर्थ-अब हम दशप्राणायतनीय अध्यायकी व्याख्या करेंगे अर्थात् प्राणोंके रहनेके दशस्थान जिस्मेंकहे अतएव उसका वर्णन इस अध्यायमें कराजायगा ॥

दशैवायतनान्याहुःप्राणायेषुप्रतिष्ठितः ।
शङ्खौमर्मत्रयंकण्ठोरक्तशुक्रौजसीगुदः ॥
तानीन्द्रियाणिविज्ञानं चेतनाहेतुमामयम् ।
जानीतेयःसविद्वान्वै प्राणाभिषरउच्यतेइति ॥

अर्थ-जिनमें प्राणरहतेहैं वो दशस्थान कहे हैंजैसे दोनोंकनपटी,तीनमर्म,

कंठ, रुधिर, शुक्र, ओज और गुदा इनदशस्थानमें प्राणरहाकरते हैं- इनको और इन्द्रियोंके विज्ञानको तथा चेतनाके हेतुको और रोगको जो जानता है उस विद्वान् वैद्यको प्राणाभिसर अर्थात् प्राणरक्षक वैद्य जानना॥

अब इसजगे यह जिज्ञासाहुई कि, प्राणाभिसर किसका नाम है इसवास्ते कहते हैं॥

द्विविधवैद्यवर्णनम्।

द्विविधास्तुखलुभिषजोभवंत्यग्निवेश-
प्राणानामेकेऽभिसराहन्तारोरोगाणा-
मेकेऽभिसरारोगाणांहन्तारःप्राणिनामिति॥

अर्थ-अब चरकके मतसे दोप्रकारके वैद्य कहते हैं। महर्षिआत्रेय प्रियशिष्य अग्निवेशको संबोधन देकर बोलेकि, हेवत्स! इसपृथ्वीमें दोप्रकारके चिकित्सक (वैद्य) हैं, एक प्राणाभिसर अर्थात् प्राणोंके रक्षक और रोगोंके नाशक। दूसरे रोगाभिसर अर्थात् रोगोंके रक्षक और प्राणोंके नाशकर्त्ता॥

एवं वादिनं भगवन्तमात्रेयमग्निवेश उवाच। भगवंस्ते कथमस्माभिर्वेदितव्याभवेयुरिति। भगवानुवाच। ये इमे कुलीनाःपर्यवदातश्रुताःपरिशिष्टकर्माणो दक्षाःशुचयोजितहस्ता जितात्मानःसर्वोपकरणवन्तःसर्वेंद्रियोपपन्नाःप्रकृतिज्ञाःप्रतिपत्तिज्ञास्ते प्राणिनामभिसरा हन्तारो रोगाणाम्॥

अर्थ-इसप्रकार आचार्यके वाक्यको श्रवणकर अग्निवेश बोलेकि, हेभगवन्! ये दोप्रकारके जो वैद्य आपने वर्णनकरे उनको हम किसप्रकार जाने, अतएव अनुग्रह करके उनके लक्षण कहो। तब महर्षि बोले कि,हेवत्स! श्रवणकर अबमैं दोनोंप्रकारके वैद्योंके लक्षण वर्णन करताहूं। उत्तम कुलमें जन्म जिन्होंका शुद्ध शास्त्रज्ञान संपन्न, कृतकर्मा (जिन्होंने वैद्यकी क्रिया स्वयं करलीनीहो) कर्मकरनेमें चतुर, पवित्र, जितहस्त (चोरीआदि दुष्टकर्मसे रहित) जीती है आत्मा जिन्होंने सर्व चिकित्साकी सामग्री करके युक्त, सर्व इन्द्रीन् करके युक्त (अर्थात् कॉंणा, भेड़ा,लूला, लंगड़ा, टोंटा इत्यादि लक्षण युक्त नहो) रोगियोंकी प्रकृतिको जाननेवाला और प्रतिपत्तिवेत्ता अर्थात् ज्ञानी एसे वैद्य रोगियोंके प्राणोंके रक्षक और रोगोंके नाश करनेवाले होते हैं॥

तथाविधाहि केवले शरीरज्ञाने शरीराभिनिर्वृत्तिज्ञानेप्रकृतिविकारज्ञाने च निःसंशयाः सुखसाध्यकृच्छ्रसाध्ययाप्यप्रत्याख्येयानां च रोगाणां समुत्थानपूर्वरूपलिंगवेदनोपशयविशेषविज्ञाने व्यपगतसंदेहाः ॥

अर्थ–उसीप्रकार जो शारीरविज्ञान और प्रकृति तथा विकृतिके नियम विषयमें भलेप्रकार जानने वाला, सुखसाध्य, कृच्छ्रसाध्य, याप्य तथा असाध्यरोग समस्तकी उत्पत्ति, पूर्वरूप, लक्षण, पीडा और उपशयज्ञानमें संदेहशून्यहो ॥

त्रिविधस्यायुर्वेदसूत्रस्य ससंग्रहव्याकरणस्य सत्रिविधौषधग्रामस्य प्रवक्तारः सर्वेषां मूलफलानां चतुर्णांमहास्नेहानां पंचानां लवणानामष्टानां च मूत्राणामष्टानां च क्षीराणां क्षीरत्वक्वृक्षाणां च षण्णां शिरोविरेचनादेश्च पंचकर्माश्रयस्यौषधगणस्याष्टाविंशतेश्च यवागूनां द्वात्रिंशतश्च सर्वेषां चूर्णप्रदेहानां षण्णां विरेचनशतानां पंचानां च कषायशतानामितिस्वस्थवृत्तौ च भोजनपाननियमस्थानचंक्रमणशय्याशनमात्राद्रव्यांजनधूमनावनाभ्यंजनपरिमार्जनवेगाविधारणाविधारणव्यायामसात्म्येन्द्रियपरोक्षोपक्रमसद्वृत्तकुशलाश्चतुष्पादोपगृहीते च भेषजेशोडषकले सविनिश्चये सत्रिपर्यैषणे सवातकलाकलज्ञाने व्यपगतसंदेहाः ॥

अर्थ–जिसका संग्रह तथा व्याकरण एवं त्रिविध (वृद्धिप्राप्तदोषके घटानेवाली, घटेहुएरोगकी बढानेवाली, तथा समभावावस्थित दोषोंके संरक्षक) औषधसहित त्रिस्कंध (हेतु, लक्षण और औषधज्ञानात्मक) आयुर्वेदमें विशिष्टज्ञानसंपन्न सर्वप्रकारके मूल, फल, चतुर्विधमहास्नेह, पाँचप्रकारके निमक, आठमूत्र, आठ प्रकारके दूध, त्वचामें क्षीरवाले वृक्षोंके तथा छः प्रकारके शिरोविरेचन पंचकर्म संबंधी २८ औषधसमूह और ३२, प्रकारकी यवागू, सर्वप्रकारके चूर्ण और प्रदेह समस्त, छः सौ विरेचन और पाँचसौ कषाय (काढे) आदि द्रव्यगण, स्वस्थावस्था भोजन

और पानके नियम, अवस्थान, डोलना, फिरना, शयन, बैठना द्रव्यादिकोंका परिमाण, अंजन, धूमपान, नस्याविधि उबटना, देहका पोंछना, उपस्थितरोगका धारण और अधारण, व्यायाम सात्म्यता, उसीप्रकार इन्द्रियोंके अप्रत्यक्षस्थलमें क्रियासंपादनका नियम, उत्तम आचरणमें इत्यादि सर्वविषयोंको जाननेमें कुशल, पाद चतुष्टयोपगृहीत, औषध तथा सोलहकला करके निश्चित त्रिश्रैषणाका ज्ञाता सवातकलाकल ज्ञानमें संदेहरहित हो ॥

चतुर्विधस्यच स्नेहस्यचतुर्विंशत्युपनयस्य चतुःषष्टिपर्यंतस्य व्यवस्थापयितारो बहुविविधविधानयुक्तानां च स्नेह्यस्वेद्यवम्यविरोध्यौषधोपचाराणां कुशलाः ॥

अर्थ—चार प्रकारके स्नेह चौवीसप्रकारके उपनय तथा चौसठ पर्यंतका स्थापन करनेको भलेप्रकार जानताहो। अनेक प्रकार विधिके साथ स्नेहनीय, स्वेदनीय, वमनीय और विरेचनीय औषध समस्तोंके प्रयोग विषयमें कुशल ॥

शिरोरोगादेश्च दोषांशविकल्पज्ञस्य व्याधिसंग्रहस्य संक्षयपीडकाविद्रधेः सर्वेषां च शोफानांबहुविधशोफानुबंधानामष्टचत्वारिंशतश्च रोगाधिकारिणां चत्वारिंशस्य च नानात्वजस्य व्याधिशतस्य तथा विगर्हितातिमलातिकृशानां सहेतुलक्षणोपक्रमाणां स्वप्नस्य च हिताहितस्यास्वप्नातिस्वप्नस्य च सहेतूपक्रमस्य षण्णांचलंघनादीनामुपक्रमाणां संतर्पणापतर्पणज्ञानां रोगाणांस्वरूपप्रशमनानांशोणितज्ञानां च व्याधीनां मदमूर्च्छासंन्यासानां च सकारणरूपौषधानां कुशलाः कुशलाश्च ॥

अर्थ-शिरोरोग, दोषोंके अंश, विकल्पजात, आधि व्याधिसंग्रह, क्षय, पिडका, विद्राधि, समस्त प्रकारकी सूजन, संपूर्ण सोथोंके १४८ अनुबंध मुख्यरोग ४०, तथा अनेक प्रकारकी १०० व्याधि, तथा दुष्ट मल, अतिकृशोंके सहेतु लक्षणक्रमोंका जानने वाला, स्वप्नका शुभाशुभ ज्ञाता, सोना तथा अत्यंत सोना इनके सहेतु चिकित्साका ज्ञाता अनुबंध, लंघनादि छः वस्तुओंका उपक्रम,

संतर्पण और अपतर्पण मद मूर्च्छा और संन्यास, इत्यादि सकल रक्तजन्य व्याधि एवं इनके निदान, लक्षण और प्रशमक औषध समस्त विषयमें विशेष विज्ञानशाली ॥

आहारविधिविनिश्चयस्य प्रकृत्याहिततमानामाहारविकाराणामग्र्यसंग्रहस्यासवानांच चतुरशीते द्रव्यगुणविनिश्चयस्य रसानुरससंशयस्य सविकल्पकवैरोधिकस्य-द्वादशवर्गाश्रयस्य चान्नपानस्य सगुणप्रभावस्य सान्नपानगुणस्य नवविधार्थसंग्रहया आहारगतेश्च हिताहितोपयोगविशेषात्मकस्य च शुभाशुभविशेषस्य धात्वाश्रयाणां च रोगाणामौषधसंग्रहाणांच दशानांच प्राणायतनानां यं च वक्ष्याम्यर्थे दशमहामूलीयं त्रिंशततमाध्याये तत्र च कृत्स्नस्य च तंत्रोद्देशलक्षणस्य तंत्रस्य च ग्रहणधारणविज्ञानप्रयोगकर्मकार्यकालकर्तृकरणकुशलाः कुशलाश्च ॥

अर्थ—आहारकी विधिका निश्चय,प्रकृतिके हिततम आहारविकारोंका ज्ञाता, अग्निसंस्कारसे बने चौरासी आसवोंके,द्रव्यगुणोंका निश्चय,रसानुरससंशय सविकल्प और उनके विरोधी तथा द्वादशवर्गाश्रित अन्नपानका सगुणप्रभावका तथा अन्नपान आहारगतीके हिताहित उपयोग विशेष शुभाशुभका ज्ञाता, धातुसंश्रित रोग सकलकी औषध प्रयोग विषयमें निपुण तंत्रोक्त निखिल लक्षण और तंत्रका ग्रहण धारण विज्ञान तथा प्रयोगादि विषयमें भलेप्रकार जाननेवाला ॥

स्मृतिमतिशास्त्रयुक्तिज्ञान आत्मनः शीलगुणैरविसंवादनेन संपादनेन सर्वप्राणिषुचेतसो मैत्रस्य मातृपितृभ्रातृबंधुवदेवं च परंकृपालव इत्येवं बहुविधगुणयुक्ता भवंत्यग्निवेश प्राणानामभिसराहन्तारोरोगाणामिति ॥

अर्थ—स्मृति, बुद्धि, युक्ति और शास्त्रज्ञानसंपन्न, एवं सर्वप्राणीमात्रमें मातापिता भैयाके और बांधवोंके समान परम कृपाकरने वाला, इत्यादि

समस्त और इसीप्रकार अन्यान्यबहुगुणविशिष्ट वैद्य प्राणरक्षक और रोगनाशक कहाताहै ॥

प्राणनाशकवैद्यकेलक्षण ।

अतो निपरीता रोगाणामभिसरा हन्तारः प्राणिनामिति तेभिषक्छद्मप्रतिछन्ना राज्ञांप्रमादाच्चरंति राष्ट्राणि तेषामिदं विशेषविज्ञानमत्यर्थं वैद्यवेशेन श्लाघमानाविशिखान्तरमनुचरंति कर्मलोभाच्छ्रुत्वा च कस्यचिदातुर्यमभितः परिपतन्ति गृध्राइव मांसलोभात्, संश्रवणेचास्यात्मनोवैद्यगुणानुच्चैर्वदंति यश्चास्य वैद्यः प्रतिकर्मकरोति तस्य च दोषान् मुहुर्मुहुरुदाहरंत्यातुरमित्राणि च प्रहर्षणोपजापोपसेवाभिरिच्छन्त्यात्मीकर्तुमल्पेच्छतांचात्मनःख्यापयंतिकर्मचासाद्य मुहुर्मुहुरवलोकयंति दाक्ष्येणाज्ञानमात्मनश्छादयितुकामा व्याधितं चापवर्त्तयतुमशक्नुवंतोव्याधितमेवानुपकरणमपचारिकमनात्मवन्तमुद्दिशंति अन्तगतं चाभिसमीक्ष्यान्यमाश्रयंति देशमपदेशमात्मनः कृत्वाप्राकृतजनसन्निपाते चात्मनः कौशलमकुशलवद्वर्णयन्ति अधीरवच्च धैर्यमपवदन्ते विद्वज्जनसन्निपातं चाभिसमीक्ष्य प्रतिभयमिव कान्तारमध्वगाः परिहरंति । नचैषामाचार्याः शिष्यावा स ब्रह्मचारी वैवादिको वा कश्चित्प्रज्ञायते इति ॥

अर्थ—अब दुष्टवैद्यके लक्षण कहते हैं कि,जो लक्षण कह आयेहैं इस्से विपरीत लक्षण वाले वैद्यको रोगाभिसर अर्थात् रोगोंका रक्षक और प्राणोंका नाशक जानना। ऐसे कपटीवैद्य छिपेहुए राजाके प्रमादसे(राजाके बंदोबस्त न करनेसे)नगर सहरोंमें फिरते हैं[इसकहनेसे यह प्रयोजन है कि,ऐसे दुष्ट वैद्योंको राजा अवश्य दंडदेवे जिस्से ये बढे नहीं]अब इन दुष्टवैद्योंके जाननेके लिये कुछ लक्षण कहते हैं। कि, ये दुष्ट वैद्यवेशको धारण करे रहते हैं और अपनी बडाई आप अत्यंत करते हैं और कुछ कर्म वैद्योंकेसे कराकरते हैं,

एवं किसी मनुष्यको रोगी सुनकर इसप्रकार उसके ऊपर गिरते हैं जैसे मांसके लोभी गीध गिरतेहैं, [इस्से यह दिखाया कि, गीध केवल मांसके लोभसे गिरताहै उसीप्रकार ये छलिया वैद्य द्रव्य और उसरोगीके प्राणहरण करनेको जाते हैं] प्रत्येक उपायोंको करके उसरोगीके पास पहुंच उसको प्रसन्न करते हैं,–उसके सुनते ऊंचे स्वरसे पुकारकर अपने वैद्यगुणोंको कहते हैं,–यदि कोई दूसरा वैद्य उसरोगीकी चिकित्सा करताहोवे तो उसके वारंवार दोषोंको कहै अर्थात् इसवैद्यमें ये ये अवगुणहैं और रोगीके मित्र बांधवोंको अनेक प्रसन्नता, जप, सेवादि कर्मकरके अपनाय लेनेकी चेष्टा करे और इसप्रकार अपनेको बेपरवाही दिखावे कि, रोगीके बांधवोंको यह प्रतीत होजावेकि, इनको इसके चिकित्सा करनेका कुछ आग्रह नहीं है,–केवल हमारे कहनेसे लाचार होकर करते हैं,–जब रोगी इन दुष्टवैद्योंके हस्तगत होजाताहै तब किसीक्रिया प्रयोगके बिगडनेसे वारंवार क्रियाके फलको देखते हैं (अर्थात् हमने यह रोगविचारकर इसरोगीको यह औषध दीनी,परंतु यह विपरीत गुणवाली क्यों होगई) इसचितामें डूबजाते हैं। जब रोगी अच्छा न होसके तब अपने दोष छिपानेके निमित्त रोगीको उपकरण विहीन कहै (अर्थात् हम क्या करैं जो वस्तु रोगीको चाहिये वोतो इसके यहाँ नहींथी) और यह रोगी अत्याचारी है (पथ्यसे नहीं रहता) और सत्त्वसून्य है, इस प्रकार उस रोगीको दोष देते हैं। रोगीके मरनेपर अपने ऊपर विपत्यके भयसे छलकरके दूसरे देशमें चलेजाते हैं (अर्थात् रोगीकें मरनेपर उसके बांधव कहीं सरकारमें रिपोर्ट न करदेवे अथवा लडनेको तयार न होजावें, इस कारण परदेशको चलेजाते हैं) और ये सामान्यमनुष्योंके समीप अकुशलके समान अपनी कुशलता और अधीरके समान अपने धैर्यको प्रगट करते हैं। विद्वानोंके समूहको देखके जैसे रास्ता चलनेवाला मनुष्य घोर वनको त्याग देताहै उसीप्रकार ये दुष्टवैद्य उस विद्वानोंके समाजको देखकर चलेजाते हैं इन दुष्टोंके न आचार्य (गुरु) जाने जावे, न शिष्य न सहाध्याई न विवादकर्त्ता जाने जावे॥

मूर्खवैद्योंकेलक्षण।

भिषक्छद्मप्रतिछन्ना व्याधितांस्तर्कयन्तिये।
वीतंसमिव संश्रित्य वने शाकुन्तिको द्विजान्॥
श्रुतदृष्टक्रियाकालमात्राज्ञानबहिष्कृताः।

वर्जनीया हि ते मृत्योश्चरन्त्यनुचरा भुवि ॥
वृत्तिहेतोर्भिषङ्मानपूर्णान्मूर्खविशारदान् ।
वर्जयेदातुरो विद्वान्सर्पास्ते पीतमारुताः ॥

अर्थ-जैसे वधिकलोग (अहेरकरनेवाला) जाल आदिको लेकर बनमें जाय एकांतमें बैठकर वधार्थ पक्षी (पखेरुओं) की खोज करताहै। उसी प्रकार ये कपटी दुष्टवैद्य किसी शहरमें प्रवेशकर उसजगे रोगी मनुष्योंको ढूंडते हैं । इन दुष्टवैद्योंने किसीगुरुके समीप रहकर कभी किसी चिकित्साका विशेष विवरण सुना नहीं है। कभी किसीकी चिकित्सा देखी नहीं चिकित्साका समय नहीं जानते । औषधादिकी मात्राका ज्ञाननहीं ये संपूर्ण इस वैद्यकविषयमें मूर्ख हैं । ये मृत्यूके दूतस्वरूपहोकर पृथ्वीमें विचरते हैं। ये जिविकाके हेतु, वैद्याभिमानी, मूर्खतामें कुशल, द्रव्यकेलोभी, ऐसे वैद्य बुद्धिमान् रोगियोंको त्याग करने योग्यहैं । तथा पवनभक्षक सर्पके समान भयंकरहैं ॥

अबवैद्यकेकुछपालनेयोग्यानियमकहतेहैं ।

भिषजा सर्वथा सर्वप्राणभृतां शर्माशासितव्यम् । अहर हरुत्तिष्ठताचोपविशता च सर्वात्मना चातुराणामारोग्ये । प्रयतितव्यम् । जीवितहेतोरपि चातुरानदोग्धव्याः ॥

अर्थ-अब वैद्यके अवश्य प्रतिपालनीय कितनेक नियम वर्णन करते हैं-जैसे कि, चिकित्सक (वैद्य) सर्वतो भावसे (सब प्रकारसे) संपूर्ण प्राणियोंके मंगलकी आकांक्षा करे (यह न कहे कि, कब मनुष्योंके रोग-उठे और कब हमारी जीविका चेते) उठते बैठते अनेक प्रकारके भाव-करके और आप क्लेशोंको सहकर सर्वप्रयत्नसे देह मन वाणी करके रोगीके आरोग्यके निमित्त निरंतर यत्नशील होवे। अपने प्राणभी जाते हो तथापि आतुर (रोगी) को क्लेशित (दुःखित) करके उससे धन हरण न करे,॥

मनसापि च परस्वम् निभृतवशेपरिछदेन भवितव्यम् श्लक्ष्णशुल्कधर्म्याशम्यधन्यसत्यहितमितवचसादेश कालविचारिणास्मृतिमता ज्ञानोत्थानोपकरणसंपत्सुनि त्यंयत्नवतानकदाचिद्राजद्विष्टानांमहाजनद्विष्टानां वाप्यौ षधमनुविधातव्यम् ॥

अर्थ-परस्व(परायाधन)ग्रहण और पराईस्त्रीको धर्षणादि चिंतवनको

मनकरकेभी न करे । वैद्यको शांतवेश धारणकर्ताहोना चाहिये, तथा जडतारहित, निःसंदेह, निर्दोष, धर्मात्मा, प्रशंसायुक्त, सत्य, हित और परिमाणका बोलने वाला होना चाहिये, उसीप्रकार देश, कालकाविचारवान् और स्मृतिमान् होकर सर्वदा ज्ञानके बढानेका उद्योगी होवे, राजा और महात्माआदिके शत्रु मनुष्योंकी कदाचित् चिकित्सा न करे ॥

एवंसर्वेषामत्यर्थविकृतदुष्टदुःखशीलाचारोपचाराणांमुमूर्षतां तथैवासन्निहितस्वराणांस्त्रीणामनध्यक्षाणांवा विशेषतस्तु युवतीनां न प्रतिकर्त्तव्यम् ॥

अर्थ-जो अत्यंत विकृत हो गए हों दुष्ट, दुःशील, तथा दुराचारी आदिका एवं जो मरनेकी इच्छा करताहो, तथा अपनास्वामी (मालिक) अथवा जो अध्यक्ष (सरदारपुरुष) हैं उनके परोक्षमें (हाजिर न रहते) उनकी स्त्रियोंकी चिकित्सा न करे और विशेष करके जो स्त्री[1] युवा अवस्था वाली अर्थात् थोडी उमरकी हैं उनके रोगकी चिकित्सा उनके स्वामीके न होनेपर कदाचित् न करे ॥

आतुरकुलं चानुप्रविशता विदितेनानुमतप्रवेशिनासार्द्धं पुरुषेणसुसंवीतेनावाक्शिरसा स्मृतिमतास्तिमितेनावेक्ष्यावेक्ष्यबुद्ध्यासम्यगनुप्रवेष्टव्यं अनुप्रविश्यचवाङ्मनोबुद्धीन्द्रियाणिनक्वचित् प्रणिधातव्यानि अन्यत्रातुरोपकारार्था दातुरगतेष्वन्येषुवाभावेषुनचातुरकुलप्रवृत्तयो बहिर्निश्चारयितव्याः ॥

अर्थ-विना आज्ञाके रोगीके घरके[2] भीतर न जावे, रोगीका कोईभी सुहृद संबंधीकी आज्ञा होय तब घरके भीतर जाय, जब रोगीको देखने जावे तब वैद्यको उचितहै कि, शुद्ध और उज्ज्वल कपडे पहन

---

१ ऐसी स्त्रियोंके इलाजकरनेसे वैद्यको अपलांछनका भय रहता है । २ बिनाकिसी मालिकके कहे घरके भीतर वैद्य जाय और उसको कोई वस्तु गुप्तरखनी हो अथवा घरमें स्त्री आदि अंग खोले बैठी हो तो उस वख्त उनको वो बहुत बुरा लगताहै अथवा कोई कारणवस उस रोगीको लाकर बाहरही वैद्यको दिखादेते हैं यदि ऐसे मौकेपर भीतर जावे तो सिवाय मानिहानिके और वो क्या प्राप्ति करसक्ता है ।

देहको ढककर और मस्तकको नीचा झुकाके स्मृतिमान् शांति स्वरूप, स्थिरबुद्धि और रोगसंबंधी शास्त्रका चिंतवन करने वाला होना चाहिये। रोगीके घरकी कोईभी छिपीहुई बात बाहर निकलके किसीके आगे कहेनहीं

ह्रसितंचायुषः प्रमाणंनवर्णयितव्यम् जानतोपित-त्रयत्रोच्यमानमातुरस्यान्यस्यवाप्युपघाताय संपद्य-ते तेनैतदप्यवश्यंचिंतनीयं यज्जीवनाशाच्छेदात्प्रा-णिनां धैर्यगांभीर्यादि प्रभृष्टाः परंशोचनीयतांया-न्ति अपिचनकश्चिज्जगत्यप्रमत्तो विद्यते, कदाचित् व्या-धेः साध्यत्वेऽप्यसाध्यताभ्रांतिस्तद्वत् व्याख्यानात् त-द्वचनप्रतीतोह्यातुर आयुष्मानपिविपद्यते अतोनानिवा-र्यहेतुंविनारिष्टलक्षणंप्रकटनीयम् । ज्ञानवतापि च नात्य-र्थमात्मनोज्ञानेकथितव्यम् । आप्तादपिकथमानादत्यर्थ-मुद्विजंत्येके ॥

अर्थ–तथा रोगीके आगे अथवा रोगीके किसी आत्मीय बांधवके आगे जिस्से उनको दुःख होय ऐसी रोगीकी भावी (होनहार मृत्यु) को जानकरभी न कहे, क्योंकि कहनेसे उस रोगी और उसके बांध-वोंकी धैर्यता जाती रहती है और वो घबडा जाते हैं अतएव इस बातको अवश्य याद रखना चाहिये । इस मनुष्य की जीवनआशा टूटीसुनतेही धीरज और गांभीर्यतादि गुण तत्काल चलायमान होजाते हैं और वो घोर शोकसागरमें डूब जाते हैं, इसीसे उस दुष्टवैद्यकी बराबर दूसरा प्रमत्त और कौन होगा ।दूसरा कारण यहहै कि,जिस रोगीको वैद्यने भ्रमसे असाध्य बताया यदि वो साध्य होय तो उस वैद्यके वाक्यका विश्वास जाता रहता है । और जिसको वैद्यने भ्रांतीसे साध्य बतायाहै

१ देहढकने और मस्तक नीचा करनेसे वैद्यकी साधुता प्रगट होती है अन्यथा उद्धत और बेकूफ तथा बदमास जाहिरहोता है । २ जब वैद्य रोगीके घरमें जाता है तो उसके घरकी सबीभली और बुरीबात इसको जाहिरहो जाती है उस वक्त बाहर आनके उसकी धूर नउडावे यह बडे भारी ऐबकी बातहै । ३ यदि वैद्यको उस रोगीका अशुभ कहनेकी ही अतिआवश्यताहो तो उसके किसी बुद्धिमान् बांधवको एकांतमें ले जाकर कहदेवे ॥

और वो रोगी मरजावे तो फिरभी मनुष्योंको उसके कहनेका विश्वास नहीं रहता अतएव जब तक यह वैद्य अरिष्ट लक्षणोंको भलेप्रकार न विचार लेवे तब तक भला और बुरा कुछभी न कहे। यद्यपि आप विशेष ज्ञानवान्भी हैं, परंतु अपनी बहुत प्रशंसा आप न करे क्योंकि यथार्थ विद्वान और बहुदर्शीके भी मुखसे आत्मश्लघा सुननेसे बहुतसे मनुष्य उससे विरागलेआते हैं अर्थात् फिर उनकी वो श्रद्धा नहीं रहती हैं। ये वैद्यकोही क्या मनुष्य मात्रको अपनी बडाई आप करना एक तुच्छता दिखानेका कारण होता है इससे अच्छे मनुष्यको आत्मश्लाघा करना त्याज्य है॥

प्रसंगवसकलियुगियावैद्योंकासिद्धांत।

स्वस्थैरसाध्यरोगैश्च जन्तुभिर्नास्तिकिञ्चन।
कातरादीर्घरोगाश्च भिषजां भाग्यहेतवः॥

अर्थ–स्वस्थ (रोगरहित) और असाध्यरोगवाले प्राणियों करके कुछ नहीं है, किंतु जो कायर (डरपोक) और दीर्घरोगी है वो प्राणी वैद्योंके भाग्यके कारणहैं। तात्पर्य यह है कि,रोगरहित देनेहीका क्याहै और जो असाध्य है वो जानता है कि, अबमैंमरूंगातो सही फिर इन वैद्योंके ठगाने से क्या हासिल है, परंतु डरपोक प्राणी तत्काल ही वैद्यके दाबमें आजाते हैं।एवं जो बहुत दिनका रोगी है,वोभी नित्य प्रति वैद्यको बुला येगा तो जबतक पडा रहेगा तबतक कुछन कुछ वैद्यको छीजता ही रहेगा॥

नातिधैर्यं प्रदातव्यं नातिभीतिश्च रोगिणम्।
नैश्चिन्त्यान्नादिमे दानं नैराश्यादेव चांतिमे॥

अर्थ–वैद्यको उचितहै कि, रोगीको अत्यंत धीरजभी न देय और न बहुत भयही दिखलावे,क्योंकि यदि अत्यंत धीरज वधाय देवेगा तो वो रोगी यह विचारके कि,अब मैं अच्छातो होयही जाऊँगा वैद्यको क्यों ठगाऊं और अत्यंत भयदिखाने से वह रोगी मनमें विचारेगा कि, अब मैं बचनेका तो होई नहीं फिर इस वैद्यको देकर क्यों घरखूका करे जो बचेगा तो बाल बच्चोंके ही काम आवेगा,अत एव अत्यंत धीरज और अत्यंत भय वैद्य रोगीको न देवे जैसे रुपया हाथ आवे वो युक्ति करे॥

भैषज्यं तु यथाकामं पथ्यं तु कठिनं वदेत्।

"वैद्यानां शारदीमाता पितातु कुसुमाकरः"॥
१ चैत क्वार भूले फिरे पटवारी और वैद्य।

आरोग्यं वैद्यमाहात्म्यादन्यथात्वमपथ्यतः ॥

अर्थ-वैद्यको उचित है कि, रोगीको जो मनमें आवे वोही (धूल, खाक) की पुडिया बांधके देदेवे, परंतु उसके ऊपर पथ्य कठिन बतावे (जो रोगीसे न बन आवे) यदि ऐसा करनेपर उस रोगीको आराम होगया तो वैद्यका माहात्म्य अर्थात् वैद्यने अच्छा करा है और आराम न होवे तो कह देवे कि, हम क्या करें तुमने पथ्यतो किया ही नहीं (हमनेतो रामबाण दवाई दीनी भाग्य तुम्हारा) ॥

निदानं पूर्वरूपाणि सात्म्यासात्म्यचिकित्सिते ।
सर्वमप्युपदेक्ष्यन्ति रोगिणः सदने स्त्रियः ॥

अर्थ-कदाचित् मूर्खवैद्य अपने मनमें यह विचार करे कि,मैं कुछ पढातो हूँ ई नहीं वहाँ रोगीके रोगका निदान और दवाई क्या करूंगा उसको कहते हैं कि, भाई तुम बुलानेवालेके साथ जायके उसरोगीके घरमें रोगीके समीप चुपके थोडी देर बैठतो जाउ फिर तो रोगका निदान (कारण) तथा पूर्वरूप, एवं रोगीका हिताहित और चिकित्सा(इलाज) ये सब उसके घरकी स्त्री (औरत) अपने आप तुमको बताय देवेंगी (क्या आपको जानेमेंभी आलस्य आताहै भला ऐसी मुफ्तकी जीवका तुमको कब हाथ लगनेकी है) ॥

जृम्भमाणेषु रोगेषु म्रियमाणेषु जन्तुषु ।
रोगतत्वेषु शनकैर्व्युत्पद्यंते चिकित्सकाः ॥

अर्थ-जब चारों तरफसे रोग यूं फैलाते हैं अर्थात् फैलते हैं और हजाराँ प्राणी मरते हैं तब वैद्य धीरे २ रोगतत्वोंमें बुद्धियुक्ति होते हैं । तात्पर्थ यह हैं कि, तब तक रोग बढते नहीं और विशेष मरी नहीं चेते तब तक वैद्य एकदोही दीखते हैं और जहां रोगबढे तथा मरी चेती फिरतो वैद्यका बजारचेता और सेकडों नएनए वैद्य प्रगट होजाते हैं ॥

प्रवर्त्तनार्थमारंभे मध्येत्वौषधहेतवे ॥
बहुमानार्थमन्तेच जिहीर्षन्ते चिकित्सकाः ॥

अर्थ-प्रथम रोगीका यत्न आरंभ करनेको भेट आदि लेते हैं,फिर बीचमें कहते हैं कि, अब हमारे पास दवाई नहीं रही यदि कुछ देऊतो दवाई बनावे ऐसे कहकर लेते हैं और जब अच्छा होगया तब अंतमें बहुमानार्थ

अर्थात् अपनी विदाईके वास्ते वैद्य धनको हरण करते हैं। रोगी के पास वैद्यके आनेकी देरी है ॥ क्या ये पैसेको छोडते हैं। कभी नहीं, परंतु इनकेभी गुरूघंटाल हकीम और डाक्टर है "दुल हामरोचहिये दुलहनमेरा टका तो मोयदे" ॥

बहुश्रुतवैद्यकीप्रशंसा।

स्वतंत्रकुशलोऽन्येषु शास्त्रार्थेष्वबहिष्कृतः।
वैद्योध्वजइवाभाति नृपतद्विधपूजितः॥

अर्थ-जो वैद्य वैद्यविद्यामें कुशल है और अन्य ज्योतिष व्याकरणादिमें अबहिष्कृत (थोडा २ जाने) है, वो वैद्य ध्वजाके समान प्रकाश करता है। इसीप्रकार अन्यप्रजाओं करके पूजित राजा शोभित होताहै ॥

निदानऔषधीऔरसाध्यासाध्यज्ञातावैद्यकोकर्मकीसिद्धि।

यस्तुकर्मविशेषज्ञःसर्वभैषज्यकोविदः।
साध्यासाध्यविधानज्ञस्तस्य सिद्धिः करे स्थिता॥

अर्थ-जो वैद्योंके कर्मका विशेष जानताहै और संपूर्ण औषधोंके योग अयोगमें कुशल है तथा साध्यासाध्य विभागके विधानको जाननेवालाहै उसको चिकित्साकी सिद्धि हाथमें है अर्थात् वो तत्काल आराम करसक्ताहै॥

शास्त्र और क्रियाज्ञातावैद्यकीप्रशंसा।

दृष्टकर्माच शास्त्रज्ञो वैद्यःस्यात् सिद्धिभागसौ।
एकाङ्गहीनो न श्लाघ्य एकपक्ष इवद्विजः॥

अर्थ-जो छेदन भेदन आदि कर्म देखचुकाहो और शास्त्रभी पढाहो वो चिकित्सासिद्धिका भागी है,परंतु जो एकही वस्तुको जानता है अर्थात् कर्म और शास्त्र इनमेंसे एकके जाननेवाला वैद्य प्रसंशाके योग्य नहीं है जैसे एक पांखका पखेरु। तात्पर्य यह है कि,एक पंखसे जैसे पक्षी नहीं उडसके उसीप्रकार एकवस्तु जाननेवाला वैद्य चिकित्सा नहीं करसक्ता ॥

चतुर्विधज्ञानवान्वैद्यकोराजत्व।

हेतौ लिंगप्रशमने रोगाणामपुनर्भवे।
ज्ञानं चतुर्विधं यस्य सराजाद्भिषक्तमः॥

अर्थ-रोगोंका हेतु (आदिकारण) रोगोंके लक्षण और उनरोगोंका नाश करना, तथा जैसे नाशहुए रोग फिर इसप्राणीकी देहमें कभी प्रगट

नहो ऐसा उपाय करना ये चार प्रकारका जिसको ज्ञानहै वह सब वैद्योंका राजा है ॥

षड्गुणयुक्तवैद्यकीप्रशंसा।

विद्यावितर्को विज्ञानं स्मृतिस्तत्परताक्रिया।
यस्यैते षड्गुणास्तस्य नसाध्यमतिवर्त्तते ॥

अर्थ-विद्या, वितर्क, विज्ञान, स्मरण और उसीकर्ममें तत्पर होजाना एवं क्रिया यह षड्गुणसंपन्न वैद्यसे साध्यव्याधि कदाचित् नहीं रहती अर्थात् तत्काल दूर करदेताहै ॥

वैद्यशब्दप्राप्तीकाकारण।

विद्या मतिः कर्मदृष्टिरभ्यासः सिद्धिराश्रयः।
वैद्यशब्दाभिनिष्पत्तौबलमेकैकमप्यदः॥
यस्यत्वेतेगुणाः सर्वेसन्तिविद्यादयः शुभाः।
सवैद्यशब्दं सद्भूतमर्हन्प्राणिसुखप्रदः ॥

अर्थ-विद्या, मति, कर्मदृष्टी, वैद्यकर्मका अभ्यास तथा उसकर्मकी सिद्धि और आश्रय ये एक २ वैद्यशब्द प्राप्तहोनेमें बल कहिये कारण हैं जिसवैद्यमें ये संपूर्ण विद्यादि गुण हैं वो वैद्यशब्दको प्राप्तिहो प्राणियोंको सुखदाई जानना।इसश्लोकका तात्पर्ययही है कि, जो विद्या विनयआदि गुणयुक्त है उसीको वैद्य कहना ठीक है मूर्खको नहीं। वो उनमेंहै कि“ वैद्यराज नमस्तुभ्यं यमराजसहोदरः।यमस्तु हरतिप्राणान् वैद्यःप्राणान् धनानिच” ॥

गुरुमुखपठितवैद्यकोवैद्यत्व।

शास्त्रं गुरुमुखोद्गीर्णमादायोपास्य चासकृत्।
यः कर्म कुरुते वैद्यः स वैद्योऽन्ये तु तस्कराः॥

अर्थ-जो गुरुमुखसे शास्त्रको पढके और उसके तात्पर्यको विचारके अथवा उसके कर्मोंको सीखकर जो कर्म कर्ता है वो वैद्य है और बाकीके चोर हैं ऐसा जानना ॥

पूज्यवैद्यकेलक्षण।

शीलवान्मतिमान्युक्तो द्विजातिःशास्त्रपारगः।
प्राणिभिर्गुरुवत्पूज्यःप्राणाचार्यःसहि स्मृतः ॥

अर्थ-शीलवान् और बुद्धिमान् द्विजाती तथा शास्त्रमें पारंगत ऐसा वैद्य प्राणियों करके गुरुके समान पूज्यहै क्योंकि ऐसा वैद्य प्राणोंका आचार्य है ॥

जीवनदानको श्रेष्ठत्वकथन।

धर्मार्थं सदृशस्तस्यदातानेहोपलभ्यते ।
नहिजीवितदानाद्धि दानमन्याद्विशिष्यते ॥

अर्थ-धर्म,अर्थ और काम का दाता उसके बराबर और नहीं है कि, जिसने जीवनदान किया। कारण यह है कि, जीवनदानके समान दूसरा कोईभी दान नहीं है ॥

परोपकारत्वकथन।

परोभूतदयाधर्म इतिमत्वाचिकित्सया ।
वर्त्तते यः ससिद्धार्थः सुखमत्यंतमश्नुते ॥

अर्थ-प्राणियोंके दया धर्मपर यह वैद्यकशास्त्र है ऐसाविचारके जो चिकित्सामें वर्तता है वह सिद्धार्थ है और अत्यंत सुखको भोगे है ॥

वैद्यकोदानित्वकथन ।

धर्मस्यार्थस्य कामस्य त्रैलोक्यस्याभयस्यच ।
दातासंपद्यते वैद्यो दानाद्देहसुखायुषाम् ॥

अर्थ-देह सुख और आयु इनके देनेसे धर्म, अर्थ, काम और त्रिलोकी को अभय का दाता वैद्य कहलता है ॥

दारुणैः कृष्यमाणानां गदैर्वैवस्वतक्षयम् ।
छित्वावैवस्वतान्पाशाञ्जीवितंच प्रयच्छति ॥

अर्थ-दारुणरोगोंकरके यमपुरीको खीचे हुये मनुष्यकी जमफांसोंको छेदनकर यह वैद्य इन प्राणियोंको जीवन देताहै। अतएव इस वैद्यके समान धर्मअर्थका दाता दूसरानहीं है क्योंकि जीवनदानसे बढकर संसारमें दूसरा दान कौनसा है ॥

चिकित्साकरनेकापुण्य ।

कपिला कोटिदानाद्धि यत्फलं परिकीर्तितम् ।
तस्मात्कोटिगुणंपुण्यमेकातुराचिकित्सया ॥

अर्थ-करोड कपिलागौदान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है उस्सेभी करोड गुणा अधिक पुण्य एकरोगीकी। चिकित्सा (इलाज) करनेसे होता है ॥

अन्यच्च ।

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यंमूलमुत्तमम् ।
तस्मादारोग्यदानेन नरोभवति सर्वदः ॥

अर्थ–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरुषार्थ चतुष्टयोंका मूलकारण आरोग्यताहै। इसीसे आरोग्यदान करके यह प्राणी सर्व वस्तुका दाता होता है। चाहिये सर्व दानकरो और चाहिये तो रोगीका यत्न करो दोनोंका फल बराबर है ॥

ग्रन्थांतरेच ।

अप्येकंनीरुजीकृत्यव्याधितं भेषजैर्नरः ।
प्रयातिब्रह्मसदनं कुलसप्तकसंयुतः ॥

अर्थ–एकभी रोगीको औषधी करके रोगरहित करनेसे यह प्राणी अपने सात कुलोंको संग लेकर ब्रह्मलोकको जाताहै । तात्पर्य यह है कि, वैद्य आप तो तरताही है परंतु चिकित्साके प्रभावसे अपनी सात पीढी (पुस्तों) को तार देताहै ॥

अपिमूलेनकेनापि मर्दनाद्यैरथापिवा ।
सुस्थीकृतं लभेन्मर्त्यः पूर्वोक्तं लोकमुत्तमम् ॥

अर्थ–किसीएक जडीबूटीसे अथवा तैलादि मर्दनसे जो वैद्य रोगीको अच्छा कर्त्ता है वह पूर्वोक्त उत्तम लोक (ब्रह्मलोक) को प्राप्त होता है ॥

प्रमाणांतर ।

धर्मार्थौ कीर्तिमत्यर्थं सतां ग्रहणमुत्तमम् ।
प्राप्नुयात्स्वर्गवासंच हितमारभकर्मणा ॥

अर्थ–जो वैद्य प्राणियोंकी चिकित्सा करता है वह धर्म, अर्थ, कीर्ति और महात्माओं करके ग्राह्य स्वर्गवासको प्राप्तहोता है ॥

सर्वत्रवैद्यवृत्तिकाकथन ।

नदेशोमनुजैर्हीनोनमनुष्यानिरामयाः ।
अतः सर्वत्रवैद्यानांसुसिद्धाएववृत्तयः ॥

अर्थ-ऐसा कोईसाभी देशनहीं है जो मनुष्योंसे रहित हो और जहाँ २ मनुष्य हैं वहां २ वो रोगरहित नहीं है, अर्थात् थोडे और बहुत अवश्य रोगी होवेंगे इसी कारण सर्वत्र वैद्योंकी वृत्ति तो सिद्ध है अर्थात् बनीबनाई तयार है कहीं जाओ ॥

न प्राणिरहितो देशो न च प्राणिनिरामयः।
तस्मात्सर्वत्रभिषजांकल्पिताएववृत्तयः॥

अर्थ–ऐसा कोईसा देश नहीं हैं कि, जहां प्राणी (मनुष्य) नहीं रहते और प्राणी रोगरहित नहीं है अर्थात् सर्वत्र मनुष्य रोगपीडित हैं, इसी कारण वैद्योंकी वृत्ति सर्वत्र कल्पित है अर्थात् सर्वत्र मौजूदहै (जिसदेशमें जायगा उसी देशमें वैद्यकी चाहहै)॥

रोगके अंतमें वैद्यपूजन।

चिकित्सितशरीरं यो ननिष्क्रीणाति दुर्मतिः।
सयत्करोति सुकृतं तत्सर्वंभिषगश्नुते॥

अर्थ–जो दुष्टबुद्धि रोगी अपने चिकित्सित शरीरको धनादि दान देकर उऋण नहीं करता, वह जो कुछ सुकृत (पुण्य) करता है वह सब वैद्यको प्राप्त होताहै। अतएव रोगीको उचित है कि, इस लोक और परलोक की भलाईके वास्ते अपनी यथाशक्ति धन, रत्न, वस्त्रादिक देकर वैद्यको प्रसन्नकरे। अन्यथा वह कृतघ्नियोंकी गणनामें है॥

योरोगीभिषजं सम्यक् रोगशांतौ न पूजयेत्।
तस्यार्जितस्य पुण्यस्य प्राप्नोत्यर्द्धं भिषग्वरः॥

अर्थ–जो रोगी रोग शांतहोनेपर वैद्यका पूजन नहींकरे, अर्थात् धन-वस्त्रादि देकर संतुष्ट नहीं करता उसके संचितपुण्यका आधाभाग वैद्यको प्राप्त होता है। यदि रोगी कुछ न देवे तो हे भिषग्वरहो ! तुम इसी वाक्यपर संतोषकरो॥

चिकित्साकाफल।

क्वचिदर्थःक्वचिन्मैत्री क्वचिद्धर्मःक्वचिद्यशः।
कर्माभ्यासःक्वचिच्चापिचिकित्सानास्तिनिष्फला॥

अर्थ--कहीं अर्थ (धनकी प्राप्ति) कहीं मित्रता, कहीं धर्म, कहीं यश-की प्राप्ति और कहीं चिकित्सा करनेसे कर्मकाही अभ्यास होता है, इत्यादि करणोंसे चिकित्सा निष्फल नहीं है किंतु सफलही है॥

चिकित्साकाफल।

सनातनत्वाद्वेदानामक्षरत्वात्तथैवच।
तथादृष्टफलत्वाच्च हितत्वादपि देहिनाम्॥

वाक्समहार्थविस्तारात्पूजितत्वाच्चदेहिभिः ।
चिकित्सितात्पुण्यतमं नकिंचिदपि सुश्रुमः ॥

अर्थ–वेदोंके सनातन और अविनाशी होनेसे तथा प्रत्यक्ष फल दिखानेसे और प्राणीमात्रको हितकारी होनेसे तथा वाणीसमूहोंके कारण एवं देहधारियोंको माननीय होने से हम चिकित्सासे बढकर दूसरा पुण्यतम वस्तु नहीं सुना यह सुश्रुतमें लिखा है ॥

वैद्यकोशिक्षा ।

स्त्रीभिःसहास्यं संवादं परिहासं च वर्जयेत् ।
दत्तं च ताभ्यो नादेयमन्नादन्यद्भिषग्वरैः ॥

अर्थ–वैद्यको उचित है कि, स्त्रियोंके साथ एकजगे बैठना उनसे बात चीतकरना एवं उनसे हांसी ठटोरी करना त्यागदेवे । तथा अन्नके सिवाय और कोईसी वस्तु स्त्रियों से न लेवे, तात्पर्य यह है कि, रोगीके यहाँ स्त्रियोंके साथ बैठना हांसी ठटोरी करना और कोई वस्तु लेनेसे अन्य मनुष्यको यहप्रतीत होगी कि, इस रांडसे इस वैद्यकी कुछ सट्टलग रही है॥

नसुप्याद्रोगिसदने नभुंजीयात्कदाचन ।
विनाह्वानं न गच्छेच्च नब्रूयान्मरणं भिषक् ॥

अर्थ–वैद्यको कदाचित् रोगीके घरमें न सोना चाहिये और नरोगीके घरमें भोजनकरे, एवं विनाबुलाए रोगीके यहां कदाचित् न जावे तथा रोगीका मरण जानकरभी न कहे ये पूर्वोक्त कर्म वैद्यकी प्रतिष्ठा हानि कारक है ॥

प्राणीकोवैद्यशब्दकीप्राप्ति ।

विद्यासमाप्तौ भिषजो द्वितीयाजातिरुच्यते ।
अश्नुते वैद्यशब्दंहि न वैद्यःपूर्वजन्मना ॥

अर्थ–इस भिषकको विद्याकी समाप्तिमें द्विजाती जाति कहते हैं, अर्थात् दूसरी जाति होजाता है, तब यह वैद्य शब्दको प्राप्तहोता है किंतु जन्मलेने मात्रसेही वैद्य नहीं कहलाता ॥

वैद्यमात्रकोद्विजत्व ।

विद्यासमाप्तौ ब्राह्मं वा सत्वमार्षमथापि वा ।
ध्रुवमाविशति ज्ञानात्तस्माद्वैद्यो द्विजःस्मृतः ॥

अर्थ-आयुर्वेद विद्याकी समाप्तिमें ज्ञानहोनेके कारण इस प्राणीमें ब्राह्मसत्व अथवा ऋषिसत्व अवश्य प्राप्त होता है अतएव इस वैद्यको शास्त्रमें द्विज कहा है ॥

वैद्यकेप्रतिरोगीकावर्त्ताव ।

नाभिध्यायेन्नचाक्रोशेदहितैर्न समाचरेत् ।
प्राणाचार्यम्बुधःकश्चिदिच्छन्नायुरानित्वरम् ॥

अर्थ-इस वैद्यका किसी प्रकार दुष्टचितवन न करे, न गालीदे, तथा जिसमें वैद्यका अहितहोवे सो कर्मभी न करे, क्योंकि यह प्राणाचार्य है । अतएव आयुकी इच्छा करनेवाला बुद्धिमान् पुरुष वैद्यको सदैव प्रसन्नराखे ॥

कहकरनदेनेमेंअधर्मित्व ।

चिकित्सितस्तु संश्रुत्ययोवासंश्रुत्यमानवः ।
नोपाकरोतिवैद्याय नास्ति तस्येह निष्कृतिः ॥

अर्थ-जोरोगी वैद्यको देनाकरके नहीं देता अथवा किसीप्राणीको जो वस्तु देनी कहके नहीं देता, अर्थात् देनेसे उऋणनहीं होता उस अधर्मीके पापकी निष्कृति कहीं नहीं है ॥

वैद्यकेधर्म ।

भिषगप्यातुरान्सर्वान् स्वसुतानिव यत्नवान् ।
आबाधेभ्योहिसंरक्षेदिच्छन्धर्ममनुत्तमम् ॥

अर्थ-अब वैद्यके धर्मकहते हैं कि, वैद्यभी उत्तम धर्मकी इच्छा करता, संपूर्ण रोगियोंको अपने पुत्रके समान रोगोंसे रक्षाकरे ॥

अनाथान्रोगिणो वैद्यःपुत्रवत्समुपाचरेत् ।

अर्थ-अनाथ रोगियोंको वैद्य अपने पुत्रके समान चिकित्सा करे । अर्थात् यदि उनके पास भोजनको न होवे तो भोजनको देय और औषधको द्रव्य न होवे तो आप उस औषधको मगायके देवे ॥

प्राणाचार्यश्च पितृवत्संपूज्यःशक्तिभक्तितः ॥

अर्थ-रोगी, रोगनिर्मुक्त होनेपर प्राणाचार्य(वैद्य) को अपने पिताके समान अपनी यथाशक्तिसे पूजनकरे (कि, जिस्से वैद्य प्रसन्न होकर और आशीर्वाद देवे जिस्से फिर रोगी नहो) ॥

धर्मार्थेनार्थकामार्थमायुर्वेदोमहर्षिभिः ।
प्रकाशितो धर्मपरैरिच्छद्भिःस्थानमुत्तमम् ॥

अर्थ-धर्मपर महर्षियोंने उत्तमलोककी इच्छा करके यह आयुर्वेद शास्त्र धर्मार्थ प्रकाशकरा है किंतु कामनाके अर्थ नहींकरा, अतएव सब वैद्योंको उचित है कि, इस अमूल्य पदार्थको तुच्छ कामनाओंमें न लगावे ॥

नार्थार्थं नापिकामार्थं अथभूतदयांप्रति ।
वर्त्तते यश्चिकित्सायां ससर्वमतिवर्त्तते ॥

अर्थ-यह आयुर्वेद, शास्त्र, धन एकत्र करनेको अथवा इसके द्वारा अनेक काम भोगना, इसके वास्ते नहीं है किंतु जो चिकित्सामें प्राणियोंकी दया विचारके यत्न करता है वह वैद्य सबमें श्रेष्ठ है ॥

नैवकुर्वीतलोभेनचिकित्सापण्यविक्रयम् ।
ऐश्वराणांवसुमतां लिप्सेतार्थंतुदत्तये ॥

अर्थ-इस वैद्यको उचितहै कि, जो ऐश्वर्यसंपन्न अर्थात् सेठसाहूकार राजा बाबू हैं उनसे अपने वृत्तिके लगनेको लोभके वशहो चिकित्साका पण्यविक्रय (दुकानदारी) न करे अर्थात् इसरोगीसे इतनेही रुपयालेकर यत्न (इलाज) करेंगे । क्योंकि बडे आदमी साले क्या देवेंगे. उनसे द्रव्यलेना ऐसाहै जैसे जवाहिरको कोडियोंमें बेचना ॥

वृत्यर्थचिकित्साकरनेकानिषेध ।

कुर्वते येतुवृत्यर्थंचिकित्सापण्यविक्रयम् ।
तेहित्वाकाञ्चनंराशिं पांशुराशिमुपासते ॥

अर्थ-जो प्राणी वृत्ति (जीविका) के अर्थ चिकित्साकी विक्रीकरते हैं वो सुवर्णकी रासको छोडके धूलमिट्टी की रासको ग्रहण करते हैं ॥

अप्येकंनीरुजं कृत्वाजन्तुंयादृशतादृशम् ।
आयुर्वेदप्रसादेन किंन्नदत्तं भवेद्भुवि ॥

अर्थ-वैद्य आयुर्वेदके प्रतापसे जैसे तैसे एकभी रोगीको नैरोग्य करता है उसने या पृथ्वीमें क्या वस्तु नहीं दीनी, अर्थात् वो सब वस्तु दे चुका अब कुछभी देना बाकी नहीं रहा, 'आयुर्वेदप्रसादेन' इस पदके

धरनेसे यह प्रयोजन है कि, आयुर्वेद पढकर रोगोंका निश्चय करके जिसने यत्न करा उसको सर्वदानीकी पदवी प्राप्त होसक्ती है किन्तु मूर्ख वैद्य भलेही सैकडों रोगियोंका यत्न करके अच्छा करदे, परंतु अधर्मकाही भागी होगा क्योंकि बिना पढेसे चिकित्सा कराना निषेध लिखाहै ॥ सो आगे कहेंगे " औषधं मूढवैद्यानामित्यादि " ॥

शस्त्रादिविशोधन।

शस्त्रं शास्त्राणि सलिलं गुणदोषप्रवृत्तये।
मात्रापेक्षीण्यतः प्रज्ञां चिकित्सार्थं विशोधयेत् ॥

अर्थ–शस्त्र, शास्त्र, जल, ये मात्राकी अपेक्षा करते हैं अतएव इनको गुणदोषकी प्रवृत्ति अर्थ और चिकित्साके अर्थ वैद्य शोधनकरे। तहां शस्त्र, शास्त्र और जलको चिकित्साके वास्ते शुद्ध (उज्वल) करे। एवं गुणदोष प्रवृत्तिके वास्ते प्रज्ञाका शोधन करना चाहिये।

शास्त्रंज्योतिःप्रकाशार्थं दर्शनंबुद्धिरात्मनः।
ताभ्यांभिषक् सुयुक्ताभ्यांचिकित्सन्नापराध्यति ॥

अर्थ–ज्योति प्रकाशार्थ शास्त्र और आत्मकी बुद्धि दर्शनकेअर्थ इन दोनों (शास्त्र और बुद्धि) करके युक्त होकरजो वैद्य चिकित्सा करता है वह चिकित्सा कर्ममें कदाचित् नहीं चूके अर्थात् उसकी चिकित्सा ठीकहोती है

चिकित्सितेत्रयः पादा यस्माद्वैद्यव्यपाश्रयाः।
तस्मात्प्रयत्नमातिष्ठेद्भिषक्स्वगुणसंपदि ॥

अर्थ–चिकित्साके तीनों पैर वैद्यके आश्रित हैं अतएव वैद्यकोभी उचित है कि, वह अपनेगुण संपत्तिमें यत्नपूर्वक स्थित रहै। तात्पर्य यह है कि, रोगी दूत और औषधी ये सब वैद्यके आधीन हैं यदि वैद्यही मूर्ख हुआ तो फिर ये कुछ कामके नहीं हैं इसी से वैद्य विद्या और वैद्यकर्ममें कुशलरहे॥

वैद्यकीचतुर्विधवृत्ति।

मैत्रीकारुण्यमार्त्तेषु शक्येप्रीतिरुपेक्षणम्।
प्रकृतिस्थेषु भूतेषुवैद्यवृत्तिश्चतुर्विधा ॥

अर्थ–अब वैद्यकी चतुर्विधवृत्ति कहते हैं कि, रोगियोंमें मित्रभाव और करुणाकरे तथा जो प्रकृतिस्थ प्राणी हैं अर्थात् रोगहीन हैं उनमें प्रीति और सावधानीसे देखना ॥

अश्विनावग्निरिंद्रश्चवेदेषुसुतरांस्तुताः ।
वैद्यावित्यश्विनौदेवौपूज्येतेविबुधैरपि ॥

अर्थ–वेदमें अश्विनीकुमार अग्नि और इन्द्र निरंतर स्तुति करे गए हैं। वे अश्विनीकुमार वैद्य हैं सो देवताओंकरकेभी पूजेजाते हैं। फिर औरोंको तो अवश्य पूजने चाहिये ॥

अजरैरमरैर्नित्यं सुखितैरेवमादृतैः
व्याधिमृत्युजराग्रस्तैर्दुःखप्रायैः सुखार्थिभिः ।
किंपुनर्भिषजोमर्त्यैःपूज्याःस्युर्नात्मशक्तितः ॥

अर्थ–जब अजर अमर और सदैव सुखित देवताओंकरके वैद्य पूजे जाते हैं तो फिर व्याधि,मौत और वृद्धावस्था करके ग्रसित, दुखिया और सुखकी इच्छा करनेवाले ऐसे मनुष्योंको वैद्य अपनी शक्तिके माफिक क्या नहीं पूजने चाहिये किंतु सर्वथा पूजनेही चाहिये ॥

चिकित्सासिद्धियोग्यवैद्य ।

यस्तुरोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्यकोविदः ।
देशकालविभावज्ञस्तस्यसिद्धिर्नसंशयः ॥

अर्थ–जो वैद्य रोगविशेषोंको जानता है अर्थात् संपूर्ण रोगोंको जानता है और संपूर्ण औषधोंके बनानेमें चतुर है तथा देशकालके विभागोंको जानने वाला है उसको चिकित्सा की सिद्धिमें कुछभी संशय नहीं अर्थात् ऐसे वैद्यको तो सिद्धी अवश्यही होती है ॥

वैद्यशास्त्रपठितको चिकित्साकरनेका अधिकार ।

आयुर्वेदं ततोऽधीत्य सकाशात्सद्गुरोर्भिषक् ।
चिकित्सांरोगिणांकुर्यादन्यथा पापभाग्भवेत् ॥

अर्थ–वैद्य गुरूसे आयुर्वेदशास्त्रको पढकर रोगियोंकी चिकित्साकरे अन्यथा पापका भागी होता है [तात्पर्य यह है कि, केवल अमृतसागर आदि बांचकरही वैद्य मत बनो भाइयो! कुछ गुरुमुखसे भी पढो जिस्से ज्ञान और प्रतिष्ठाकी प्राप्ति हो]

अन्नजलऔरचिकित्सादानकाफल ।

अन्नदो जलदश्चैव आतुरस्यचिकित्सकः ।

त्रयस्ते स्वर्गमायांति विनायज्ञेनभारत ! ॥

अर्थ-हेभारत ! अन्नदाता जलदाता और रोगीकी चिकित्सा करने वाला ये तीनों प्राणी विनायज्ञकियेही स्वर्गको जाते हैं । तात्पर्य यह है इन तीनों प्राणियोंको विनायज्ञ करने परभी यज्ञ करनेका फल प्राप्त होता है । यह प्रमाण भारतके शांतिपर्वमें लिखा है, फिर न मालूम बडे २ पंडित, वैद्यवृत्तीको क्यों दोषारोपण करतेहैं ।

राजाकोवैद्यादिचतुष्टयोंकानित्यदर्शन ।

वैद्यः पुरोहितो मन्त्रीदैवज्ञश्चचतुर्थकः ।
द्रष्टव्याः प्रातरेवैतेनित्यंश्रेयोविवृद्धये ॥

अर्थ-औरभी लिखा है कि, राजा अपने कल्याणकी वृद्धिके लिये नित्य प्रातःकाल उठकर वैद्य,पुरोहित,मंत्री और चतुर्थदैवज्ञ (ज्योतिषी) का दर्शनकरे । येभी प्रमाण धर्मशास्त्रका है देखोमित्र ! इसश्लोकमें भी प्रथम वैद्यका दर्शन करना लिखता है, इसीसे आयुर्वेदमें इसवैद्यका नाम प्राणाचार्य लिखा है जो प्राणोंसे द्वेषकराचाहे वो वैद्यसे भलेही द्वेषकरे जैसे नीचेके श्लोकमें लिखते हैं ॥

गतश्रीर्गणकान्द्वेष्टि गतायुश्चचिकित्सकान् ।
गतश्रीश्च गतायुश्च ब्राह्मणान्द्वेष्टिभारत ॥

अर्थ-गई है श्री (संपत्ति वा शोभा) जिसकी वो ज्योतिषीयोंसे द्वेष (वैर) करता है । गतायु अर्थात् गई है आयु जिसकी (मरणासन्न) वो वैद्योंसे द्वेष (वैर) करता है और हेभारत ! गतश्री और गतायु ऐसाप्राणी ब्राह्मणोंसे द्वेषकरता है (हमब्राह्मण उसीको कहेंगे कि, जो ब्राह्मणवंशमें प्रगटहुआ हो और विद्यापढा हो) केवलविद्याभ्यासी अथवा केवल ब्राह्मणकुलमें जन्म होनेसे ब्राह्मण नहीं होता तथापि विद्याहीन ब्राह्मणसे पढा हुआ क्षत्री वैश्य उत्तम है तथा शूद्रभी चनिस्वत विना पढेसे पढाहुआ उत्तम है ॥

विनाशास्त्रप्रायश्चित्तादिकथनमेंब्रह्महत्याकेपापकीप्राप्ति ।

प्रायश्चित्तं चिकित्सांच ज्योतिषं धर्मनिर्णयम् ।
विनाशस्त्रेणयोब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥

अर्थ-प्रायश्चित्त, चिकित्सा, ज्योतिष और धर्मका निर्णय इनको जो विनाशास्त्रप्रमाणके कहता है, उसको बडे२मुनीश्वर ब्रह्महत्याराकहते हैं ।

तहां प्रायश्चित उसको कहते हैं जो पापीके वास्ते दंडकल्पना (कृच्छ्र- चांद्रायणादि) है चिकित्सा उसको कहते हैं जो रोगीके आरोग्य करनेको निर्णय करीजावे जैसे औषध और चीरना फाडनाआदि । ज्योतिषकरके इसजगे ग्रहादिकों का फल तथा प्रश्नादिक जानने । और धर्मनिर्णय एकादशी जन्माष्टमीआदि व्रतोंका निर्णयआदि) जानना । इनके उदा- हरण दिखाते हैं, जैसे किसी पुरुषने चांडालादिकका अन्न भोजनकरा अब शास्त्रसे तो उसका निश्चय नकरा किंतु जो जातीमें पंचहैं उन्होंने कह दियाकि १०० रुपये हमको देउ हम तुझको जातमें लेलेवेंगे, बस जहाँ उनको रुपयेदिये और उन्होंने कही जा मूंड मुडाय जनेऊ पलट अमुक देवके आगे दियाधरआ और जात जिमायदे, तो यह शास्त्रविरुद्ध प्राय- श्चित्तहुआ । एवं विनारोगका और औषधका निर्णय हुए औषधदेना ये शास्त्रविरुद्ध चिकित्सा हुई । एवं विनाग्रह गोचर दशांतर्दशाके कह- देना कि, तुझको मारकेश है अथवा अटकलपंजे प्रश्नबतानेलगे वा तिथि वार बताने लगे,तोयह शास्त्रविरुद्ध ज्योतिष हुआ इसी प्रकार विनाशास्त्रके जाने सूतकादिका निर्णय करना ये शास्त्रविरुद्ध धर्मनिर्णय हुआ ॥

गुणयुक्तपादचतुष्टयोंकीप्रशंसा ।

गुणवद्भिस्त्रिभिः पादैश्चतुर्थोगुणवान् भिषक् ।
व्याधिमल्पेन कालेन महांतमपि साधयेत् ॥

अर्थ–गुणवान् तीन पैर (रोगी, औषधि और परिचारक) करके और चौथा गुणवान् वैद्य घोर व्याधिकोभी शीघ्रही साधन करसक्ताहै, अर्थात् बढीहुई भी व्याधिको शीघ्र रोक सके है ॥

शास्त्रऔरबुद्धिद्वाराकर्मकरनेकी आज्ञा ।

प्रदीपभूतशास्त्रेण दर्पिता विपुलामतिः ।
ताभ्यां भिषक्सुयुक्ताभ्यां चिकित्सन्नापराध्यति ॥

अर्थ–शास्त्रहै सो दीपक रूपहै उसने विशेष बुद्धि दिखाई है । अर्थात् जैसे दीपक अंधकारकी वस्तुको दिखाता है उसी प्रकार शास्त्रने अज्ञा- नांधकारसे ढकी हुई बुद्धिको बढायके दिखाई,इन दोनों अर्थात् शास्त्र और बुद्धिसे भलेप्रकार मिलाकर जो चिकित्सा करताहै वो कदाचित् नहींचूके॥

उत्तमवैद्यकेलक्षण ।

येतु शास्त्रविदोदक्षाः शुचयः कर्मकोविदाः ।

जितहस्ता जितात्मानस्तेभ्यो नित्यकृते नमः ॥

अर्थ-अब उत्तमवैद्यकी प्रशंसा करते हैं कि, जो शास्त्रज्ञ, चतुर, पवित्र, चिकित्साकर्ममें निपुण, जितहस्त और जिती हैं आत्माजिन्होंने ऐसे उत्तम वैद्योंके अर्थ हमारी नित्य नमस्कार है ॥

निदानरहितवैद्यकोकर्मकीअसिद्धि।

यस्तु रोगमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक्।
अप्यौषधविधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया ॥

अर्थ-जो रोगकी परीक्षाके विना चिकित्सा करता है यद्यपि वो औषध विधानमें प्रवीणभी है, परंतु फिरभी उसको सिद्धीकी यथेच्छाहै अर्थात् चिकित्साकरनेसे रोगी अच्छाहोय चाहिये नहोवे ॥

विनापाठित वैद्यकी निंदा।

अविज्ञायतुशास्त्राणि भेषजं कुरुते भिषक्।
यमएव सविज्ञेयो मर्त्यानां मर्त्यरूपधृक् ॥

अर्थ-जो विनाशास्त्र पढे औषध करता है वो मनुष्योंमें मनुष्यका रूप धारणकर्त्ता साक्षात् यमराज है ॥

मूर्खवैद्यकाहास्य ॥

पाणिचाराद्यथा चक्षुरज्ञानाद्भीतभीतवत्।
नौर्मारुतवशे वाज्ञा भिषक्चराति कर्मसु ॥

अर्थ-विनानेत्रके अंधापुरुष हाथपैरोंको जैसे डरता हुआ धीरे धीरे धरता है और जैसे पवनके प्रबलवेगसे नौका (जिहाज) जैसे समुद्रमें मारा २ डोलता है उसीप्रकार मूर्खवैद्य चिकित्साकर्ममें चलता है ॥

वैद्याभिमानीमूर्खवैद्यकीनिंदा।

यदृच्छयासमापन्नमुत्तार्यनियतायुषम्।
भिषग्मानी निहंत्याशु शतान्यनियतायुषम् ॥
तस्माच्छास्त्रेऽर्थविज्ञाने प्रवृत्तौ कर्मदर्शने।
भिषक्चतुष्टये युक्तःप्राणाभिसरउच्यते ॥

अर्थ-मूर्खवैद्य यदृच्छापूर्वक प्राप्तहुए पूर्णआयुवालेको रोगसे बचायके मारे अभिमानके अनेक अनियतायुषी अर्थात् जिनकी आयुका

कुछ ठीक नहीं ऐसे सैकडों प्राणियोंको यह वैद्याभिमानी दुष्टवैद्य मारता है इसीकारण इस प्राणीको शास्त्र और शास्त्रके अर्थ ज्ञानमें तथा उस वैद्यकर्मकी प्रवृत्ती एवं उसकर्मोंके देखनेमें प्रवृत्तहो तथा चतुष्पाद संपत्तियुक्तहो जो चिकित्सा करता है वो प्राणाभिसर अर्थात् प्राणरक्षक वैद्य कहलाता है ॥

निदान विनाजाने चिकित्सा करनेमें वैद्यको दंडनीयत्व कथन।

भेषजं केवलं कर्तुं यो जानाति न चामयम्।
वैद्यकर्म सचेत्कुर्याद्वधमर्हति राजतः॥

अर्थ-जो वैद्य केवल औषध देना जानता है किंतु रोगोंको नहीं जाने कि, इस रोगीके क्या विकार है यदि वो वैद्य कर्म (चिकित्सा) करे तो वो राजासे वधके योग्य है। अर्थात् ऐसे वैद्यको राजा, फांसी, देदेवे, इससे वैद्यको उचित है कि, प्रथम निदानका अभ्यास करके फिर चिकित्साकरे ॥

केवल शास्त्रज्ञाता और औषधज्ञान रहित वैद्यकी निंदा।

यस्तु केवलशास्त्रज्ञोभेषजेष्वविचक्षणः।
तं वैद्यं प्राप्य रोगीस्याद्यथा नौर्नाविकं विना॥

अर्थ-जो वैद्य केवल शास्त्र पढा है, परंतु चिकित्सा करनेमें अकुशल (मूर्ख) है, उस वैद्यको प्राप्तहो रोगीकी ऐसी दशा होती है, जैसे बिना केवटिया (मलाह) के बीच धारमें नावकी गति ॥

शास्त्रपठित और क्रियारहित वैद्यको भीरुत्वकथन।

यस्तु केवलशास्त्रज्ञःक्रियास्वकुशलो भिषक्।
समुह्यत्यातुरं प्राप्य प्राप्यभीरुरिवाहवम्॥

अर्थ-जो वैद्य केवल शास्त्रको जानता है किंतु उस शास्त्रकी क्रियाओंमें अकुशल (मूर्ख) है वह वैद्य रोगीको देखके ऐसे घबडाता है कि,जैसे भीरु (कायरमनुष्य) संग्राम (लड़ाई) को प्राप्तहोकर घबड़ाताहै ॥

विनापठित वैद्यको राजासे दंडनीयत्वकथन।

यस्तुकर्मसु निष्णातो धाष्ट्र्याच्छास्त्रबहिष्कृतः।
स सत्सु पूजां नाप्नोति वधमर्हति राजतः॥

अर्थ-जो वैद्यके कर्ममें तो निपुणहैं, परंतु ढीठतासे शास्त्र बहिष्कृत अर्थात्

शास्त्रको नहीं जाने वो सत्पुरुषोंमें सत्कार नहीं पाता, किंतु राजासे वध (मृत्यु) को प्राप्त होता है ॥

कर्त्तव्यमें मूर्खवैद्यकी निंदा।

छेद्यादिष्वनभिज्ञो यः स्नेहादिषु च कर्मसु।
स निहंति जनं लोभात्कुवैद्यो नृपदोषतः ॥

अर्थ–जो वैद्य छेदन भेदनादि कर्ममें मूर्ख है, तथा घृत तैल आदिके बनानेमेंभी मूर्ख है वह दुष्टवैद्य राजाके दोषसे प्राणियोंको लोभवश होकर मारता है [यदि राजाही ऐसे दुष्टवैद्योंकी परीक्षा कियाकरे तो ये इतने क्यों बढे और हजारों अनाथके समान प्राणी यमपुरकी यात्रा क्यों करे] धन्यरे अंगरेजी राजा तू धन्य है ! ! !

मूर्खवैद्यकेदोष ।

लोभयंत्यातुरं मूर्खा विचित्रैःकर्मकौशलैः।
तेभ्योरक्षेत्सदात्मानमात्मायस्मात्सुदुर्लभः॥

अर्थ–मूर्खवैद्य अपना चित्रविचित्र कर्मकौशल (अर्थात् चालाकी) से रोगी को लोभित करते हैं। उन दुष्ट वैद्योंसे मनुष्यको सदैव सावधानी के साथ अपनी आत्माकी रक्षा करनी चाहिये क्योंकि इस संसारमें आत्मा अत्यंतही दुर्लभ है ॥

तेघुणाक्षरवत्किंचिदुत्थाप्यनियतायुषम्।
घ्नंतिवैद्याभिमानेन शतानानियतायुषान् ॥

अर्थ–वो घुणाक्षरन्यायसे अनियतायुषीप्राणीको रोगसे बचायके वैद्याभिमानी हो अनेक अनियतायुषी प्राणियोंको नाश करते हैं ॥

ये क्रियां विक्रियां कुर्वन्त्युपेक्षंते स्खलंति वा।
खादंति ते परप्राणान्निजानि सुकृतानि च ॥

अर्थ–जो वैद्य क्रियाको विक्रिया करते हैं अथवा जिससमय क्रिया करनेका कालहै उसकी उपेक्षा करदेते अथवा चिकित्सामें चूकजाते हैं वो दुष्टवैद्य दूसरे के प्राणों को और अपने सुकृतोंको खाते हैं ॥

वैद्यकोस्वयंतर्ककरनेकीआज्ञा ।

नचैकांते न निर्दिष्टे शास्त्रेनिर्विशते बुधः।
स्वयमप्यत्रभिषजातर्कनीयं चिकित्सता ॥

अर्थ-शास्त्रमें सब कहा है तथापि वैद्य सब जानता है ऐसा नहीं होता इससे वैद्यको स्वतः तर्क चलायके चिकित्साकरे। तात्पर्य यह है कि, शास्त्रमें भी कुछ हगनी मूतनी छोटी २ बात नहीं लिखी है। अतएव वैद्य को उचित है कि, अपनी बुद्धिसे विचारकरे केवल शास्त्रके भरोंमें ही न रहे ॥

निषिद्धवैद्य ।

कुचैलःकर्कशस्तब्धो ग्रामीणःस्वयमागतः ।
पंचवैद्यानपूज्यं ते धन्वंतरिसमाअपि ॥

अर्थ-मलिन कपडेको धारणकर्त्ता, कर्कश, गर्ववाला (अभिमानी) ग्रामीण (गंमईका रहनेवाला) और जो विनाबुलाए आयाहो, ये पांच वैद्य धन्वंतरिके भी समान होवे तथापि पूजे नहींजाते । अर्थात् ऐसे वैद्योंका कोई सत्कार नहीं करता ॥

वैद्यकोपाककारित्वमेंप्रमाण ।

अन्यजातिकृतःपाकोह्यस्पृश्यःसर्वजातिभिः ।
इतिविज्ञाय मतिमान् वैद्यं पाकेनियोजयेत् ॥

अर्थ-अन्य जातिका करापाक सब जातियोंको अस्पृश्य (छूने योग्य नहीं) है, ऐसा जानके बुद्धिमान् पुरुष वैद्यको पाक करनेपर नियुक्त करे। तात्पर्य यह है कि,अपनी२ जातिका करा पाक सब खातेहैं दूसरी जातिका किया कोई नहीं छूता और वैद्यके हाथका करा सब खाते हैं अतएव पाककर्त्ता वैद्यही होना चाहिये ।

अन्यजातिकेकरेपाकभोजनमें प्रायश्चित ।

मोहाद्द्विजातिवर्णाद्यैः पाचितं खादितेसति ।
प्रायश्चित्तीभवेच्छूद्रो जातिहीनो भवेद्द्विजः ॥

अर्थ-जो प्राणी मोहवश ब्राह्मण आदिके करे हुए पाकको भक्षण (भोजन) करता है। यदि वह शूद्र होवे तो प्रायश्चित्ती होवे और ब्राह्मण होय तो जातिसे रहित अर्थात् जात बाहर होताहै । यह प्रमाण पूर्व बंगालदेशमें है, परंतु हमारे पश्चिमोत्तर देशमें प्रमाणिक नहींहै। क्योंकि सब पुराणोंमें राजा महाराजाओंके ब्राह्मण और ब्राह्मणोंके राजा महाराजा भोजन करते रहे हैं । फिर हमारे देशमें भी प्रायः पक्की रसोई भोजनका व्यवहारहै कच्चीका नहीं ॥

वैद्यशास्त्रऔरज्योतिषशास्त्रकोप्राधान्यता।

अन्यानिशास्त्राणिविनोदमात्रं नकिञ्चिदेषांतुविशिष्टमस्ति।
चिकित्सितं ज्योतिषमंत्रवादाः पदेपदे प्रत्ययमावहंति ॥

अर्थ–अन्य (व्याकरण, न्यायआदि) शास्त्र केवल विनोदमात्र अर्थात् बालकोंकेसे खेल हैं उन व्याकरणादि शास्त्रोंमें कुछ विशेषता नहीं है,परंतु चिकित्सित (वैद्यविद्या) ज्योतिष और मंत्रवाद ये तीनोंशास्त्र पद पदमें विश्वासदेते हैं।

तात्पर्य यह है कि, व्याकरण, छंद, काव्य, अलंकार, प्रहसन आदि ये सब खेलनेके समान हैं, जैसे खेलकी वस्तुसे खेले और धरदीनी इसी प्रकार ये अन्य शास्त्रहैं, परंतु प्रत्यक्षपरचादिखाने वाले ये तीनही शास्त्र हैं, जैसे वैद्यक, ज्योतिष और तंत्रशास्त्र, इनमें भी हमको तो वैद्यशास्त्रमें विश्वास है। क्योंकि इसकी जितनी क्रिया हैं सब प्रत्यक्ष हैं और ज्योतिषमें हम गणितभागको प्रत्यक्ष फलदायक मानते हैं। रहा-मंत्रशास्त्र उसमें हम संदेहयुक्त हैं तथापि वाममार्ग तो सर्वथा दुष्ट पामरोंका निर्मित प्रतीत होता है अस्तु ॥ " जिस गावमेंही न जाना उसके कोश गिनना व्यर्थ "

चोरी कपट और बलपूर्वकविद्या ग्रहणमें दोष।

विद्यां गृहीतुमिच्छन्ति चौर्य्यच्छद्मबलादिना।
न तेषां सिद्ध्यते किंचिन्मणिमंत्रौषधादिकम् ॥

अर्थ–जो प्राणी विद्याको चोरीसे कपटसे और जबरदस्तीसे ग्रहण करनेकी इच्छा करता है उनको मणिपरीक्षा, मंत्र और औषधकी सिद्धि ये कोईभी फलीभूत नहींहों ॥

मरणपर्यंतचिकित्साकरनेकीआज्ञा।

यावदुच्छ्वसितिप्राणी यावद्भेषजमत्तिच।
तावच्चिकित्साकर्त्तव्यादैवस्यकुटिलागतिः ॥

अर्थ–जबतक यह प्राणी श्वासलेता है और जबतक औषध भक्षण करसके तावत्कालपर्यंत वैद्यको इस प्राणीकी चिकित्सा करनी ही चाहिये क्योंकि दैव (विधाता) की गति कुटिल (टेढी) है अर्थात मालूमनहीं-पडे नमालूम उस वक्तभी औषध देनेसे रोगी जीउठे ॥

यावत्कंठगताः प्राणायावन्नास्तिनिरिन्द्रियः।
तावच्चिकित्साकर्त्तव्या दैवस्यकुटिलागतिः॥

अर्थ-यावत् कंठमें प्राणहो और जबतक यह प्राणी इन्द्रीरहित न होवे तावत् पर्यंत रोगीकी चिकित्साकरनी चाहिये क्योंकि दैवकी गति कुटिल है (कदाचित् इस अवस्थामेंभी औषध देनेसे रोगी बचजावे)

रोगीकेलक्षण।

रोगोयस्यास्तिरोगीस सचिकित्स्यस्तुयादृशः।
यादृशश्चाचिकित्स्योपिवक्ष्यमाणोनिशम्यताम्॥

अर्थ-अब चिकित्साके दूसरे पादका अर्थात् रोगीके लक्षण वर्णन करते हैं जैसे कि, जिसके रोग हुआहो वो रोगी कहलाता है, तहां जैसे रोगीकी चिकित्सा करनी चाहिये और जैसे कि, चिकित्सा नहीं करनी उन दोनोंके लक्षण मैं आगे कहताहूं उनको सुन॥

चिकित्साकेयोग्यरोगी।

निजप्रकृतिवर्णाभ्यांयुक्तः सत्वेन चक्षुषा।
चिकित्स्योभिषजारोगीवैद्यभक्तोजितेन्द्रियः॥

अर्थ-जो रोगी अपने प्रकृति, वर्ण, धैर्य, बल और नेत्र, इनकरके युक्त है तथा जो वैद्यका भक्त और जितेन्द्री है, वो वैद्यको चिकित्सा करनेके योग्य है॥

आयुष्मान् सत्ववान् साध्यो द्रव्यवान् मित्रवानपि।
चिकित्स्योभिषजारोगी वैद्यवाक्यकृदास्तिकः॥

अर्थ-जो रोगीदीर्घायु, धैर्ययुक्त, साध्य, द्रव्यवान्, और वैद्यकी आज्ञा पालन करनेवाला एवं आस्तिक ऐसे रोगीकी चिकित्सा वैद्यको करनी चाहिये॥

आढ्योरोगीभिषग्वश्योज्ञापकः सत्ववानपि।
वैद्यशास्त्रेचविश्रब्धः कृतज्ञः पथ्यकारकः॥

अर्थ-जोरोगी धनवानहो, वैद्यके वशीभूत, अपनीप्रकृतिको यथार्थ कहने वाला धैर्यवान् तथा चिकित्सा और शास्त्रमें विश्वासरखने वाला उपकारका माननेवाला और पथ्य करनेवाला ऐसा रोगी उत्तम जानना॥

रोगीकेगुणचतुष्टय।

स्मृतिनिर्देशकारित्वमभीरुत्वमथापिच।
ज्ञापकत्वं चरोगाणामातुरस्य गुणाः स्मृताः॥

अर्थ–स्मरणवान्, वैद्यकी आज्ञाका पालन करनेवाला, निर्भय और अपने रोगको वैद्यको बतानेवाला, ये चारगुण रोगीके हैं॥

उत्तमरोगी।

प्राज्ञोरोगेसमुत्पन्ने बाह्येनाभ्यंतरेणवा।
कर्मणालभतेशर्म शास्त्रोपक्रमणेनवा॥

अर्थ–बुद्धिमान्रोगी रोग उत्पन्न होतेही बाहरके यत्नसे अथवा भीतरके यत्नसे कल्याणको प्राप्तहोताहै, अथवा शास्त्रोपक्रम (चीरना फाडनाआदि) से कल्याणको प्राप्तहोताहै तात्पर्य यह है कि, चतुररोगी रोगको प्रगट होतेही बाहर भीतरकी चिकित्सा अथवा चीरना फाडनेआदिसे तत्काल उसे नष्टकर सुखी होता है॥

मूर्खरोगी।

बालस्तु खलुमोहाद्वा प्रमादाद्वानबुध्यते।
उत्पद्यमानं प्रथमं रोगंशत्रुमिवाबुधः॥

अर्थ–बाल (मूर्खरोगी) मोहवश अथवा प्रमादसे उस उत्पन्न एहु रोगंको नहींजानता, जैसे मूर्खमनुष्य प्रगटहुए अपने शत्रुको नहींजानता॥

अग्राहिप्रथमंभूत्वारोगः पश्चाद्विवर्द्धते।
सजातमूलोमुष्णातिबलमायुश्च दुर्मतेः॥

अर्थ–प्रथम रोग अग्राह्यहोकर धीरे२ बढता है जब वो जडबद्ध होजाता है तब इस दुर्बुद्धिकी बल और आयुको हरणकरै है॥

न मर्त्यो लभते श्रद्धां तावद्यावन्नपीडयते। पीडितस्तु मतिं पश्चात् कुरुते व्याधिनिग्रहे। अथ पुत्रांश्चदारांश्च ज्ञातींश्चाहूय भाषते। सर्वस्वेनापि मे कश्चिद्भिषगानीयतामिति। तथाविधं च कः शक्तो दुर्बलंव्याधिपीडितम्॥ कृशं क्षीणेन्द्रियं दीनं परित्रातुं गतायुषम्। सत्रातारम-

नासाद्य बालस्त्यजति जीवितम्। गोधालाङ्गूलबद्धे वा कृष्यमाणा बलीयसा । तस्मात्प्रागेव रोगेभ्यो। रोगेषु तरुणेषु वा । भेषजैः प्रतिकुर्वीत यइच्छेत्सुखमात्मनः॥

अर्थ–जबतक यह प्राणीदुखीनहीं होता तबतक वैद्य और औषधीमें श्रद्धा नहींलाता । और जो रोगोंसे पीडितहुआ कि,फिर रोगनाशकरनेमें बुद्धि करता है। तब अपने पुत्रोंको स्त्रियोंको और अपने कुटुंबके मनुष्योंको बुलायके उनसे कहता है कि,मेरा सर्वस्वभीदेकर वैद्यको लाओ [और जैसैहो तैसे मुझको बचाओ मैं तुह्मारीशरणहूं अबके बचगयातो आपलोगोंका उपकार जन्मभर नहीं भूलूंगा] परंतु फिर उस असाध्य दुर्बल कृश, क्षीणेन्द्रिय, दीन और मरणासन्न रोगीके बचानेको कौनसामर्थ्य है। बस, इसीप्रकार पुकारता २ अपने बचाने वालेको न प्राप्तहो कर यह मूर्खरोगी अपने प्राणोंको त्यागदेता है ।जैसे गोहकी पूँछ बँधीहुई हो और वो जब चले उसी वक्त बली मनुष्य उसको खीचलेता है इसप्रकार यमराज इसप्राणीको खीचलेता है।अतएव यदि अपने आत्माको सुख चाहैतो रोगों से प्रथमही अथवा तरुणरोंगोंमेंही औषधद्वारा उस रोगको शांति करना चाहिये ॥

त्याज्यरोगी ।

चंडः साहसिकोभीरुःकृतघ्नोव्यग्रएवच । शोकाकुलोमुमूर्षुश्चविहीनकरणैश्चयः ॥ वैरीवैद्यविदग्धश्च श्रद्धाहीनश्च शंकितः। भिषजामविधेयश्च नोपक्रम्याभिषग्विधः । एतानुपाचरन् वैद्योबहून् दोषानवाप्नुयात् ॥

अर्थ–जो अत्यंतक्रोधी साहसी (अर्थात् बिनाविचारे करनेवाला) डरपनेवाला कृतघ्न (वैद्यके उपकारको न माननेवाला) व्यग्र (व्याकुल) शोकार्त्त, मरनेकी इच्छा करनेवाला गतेन्द्री (जिसकी इन्द्रियोंकी शक्ति नष्टहो गईहो) वैर करनेवाला वैद्यपनेका अभिमान रखनेवाला, अविश्वासी और शंका रखनेवाला स्वतः औषधका जाननेवाला और वैद्यके स्वाधीन न रहनेवाला इत्यादि गुणवाले रोगीकी चिकित्सा करेतो वैद्यको अनेक दोष लगते हैं ॥

जारं चौरं तथाम्लेच्छंब्रह्मघ्नं मत्स्यघातिनं॥द्वेष्टारंग्रामकूटंचबद्धकंमांसविक्रिणम्। एतेसुव्याधिनाग्रस्तानकुर्याच्छमनक्रियाम्।तेषांजीवाप्तिसंजाताद्वैद्योभवतिपापभाक्॥

अर्थ–जार (परस्त्रीगामी वा रंडीबाज) चौर म्लेच्छ ब्रह्महत्यारा मछलियोंको मारनेवाला (धीवर) ग्रामकूट(गामकोदुखदाई) बद्धक (जीवोंको बांधनेवाला) और मांसका बेचने वाला ऐसे प्राणी यदि रोगी होवेंतो उनको वैद्य औषध न देवे, क्योंकि यदि इन प्राणियोंको औषध देनेसे प्राणबचने पर ये जो हत्या आदि पातक करेंगे वो पाप वैद्यको लगेगा॥

भैषज्यलक्षण।

वैद्योव्याधिहरेद्येनतद्द्रव्यंप्रोक्तमौषधम्।
तद्यादृशमवश्यंस्याद्रोगघ्नंतादृशंब्रुवे॥

अर्थ–अब चिकित्साके तीसरे पादका अर्थात् औषधके लक्षण कहते हैं। जिससे वैद्य रोगहरणकरे उस द्रव्यको औषध कहते हैं वो रोगनाशक औषध वैद्यको जैसी लेनी चाहिये उसके लक्षण कहते हैं॥

उत्तम औषध।

प्रशस्तदेशसंजातंप्रशस्तेऽहनिचोद्धृतम्॥ अल्पमात्रंबहुगुणंगन्धवर्णरसान्वितम्॥ दोषघ्नमग्लानिकरमधिकंनविकारियत्॥समीक्ष्यकालेदत्तंचभेषजंस्याद्गुणावहम्॥

अर्थ–उत्तम स्थानमें प्रगट और शुभदिनघड़ी मुहूर्त्तमें उखाड़ीगई अल्पमात्र (थोडी दी जावे) और बहुतगुण दिखावे, तथा यथायोग्य गंध वर्ण और रसकरके युक्त वातादि दोषोंके नाशकरनेवाली, तथा जो ग्लानि और अधिक अवगुणकारी नहोवे, तथा रोगोंको विचारके तथा समयपरदीनी एसी औषध परमगुणदायक होती है॥

औषधकेचारगुण।

बहुतातत्रयोग्यत्वमनेकविधकल्पना।
सम्पच्चेति चतुष्कोऽयं द्रव्याणांगुणउच्यते॥

अर्थ-बहुतातत्रयोग्यत्व (रोगानुसारी) अनेक विधि कल्पना अर्थात् जिसकी कल्पना अनेक प्रकारसे होवे और संपत्ती (रसादि संपत्ति) ये चारगुण द्रव्यों के कहे हैं ॥

प्रसंगवश औषधोंके भेद चरकसे लिखते हैं।

त्रिविधऔषध।

त्रिविधमौषधमिति । दैवव्यपाश्रयं युक्तिव्यपाश्रयंसत्वावजयश्च ॥

अर्थ-औषध तीनप्रकारकी है जैसे कि १ दैवव्यपाश्रय २ युक्तिव्यपाश्रय ३ सत्वावजय अब इनके पृथक् २ लक्षण कहते हैं ॥

दैवव्यपाश्रय।

तत्रदैवव्यपाश्रयं मन्त्रौषधिमणिमङ्गलनियमप्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्ययनप्रणिपातगमनादि ॥

अर्थ-तहां मंत्रजाप औषधी, धारण, मणियोंका धारण, मंगलकर्म, (पुण्याहवाचन आदि) नियमधारण, प्रायश्चित्तकरण, उपवासादि व्रतधारण, स्वस्तिवाचन, देवगुरुवृद्धोंको प्रणाम करना और तीर्थोंमें गमन ये सब दैवव्यपाश्रय औषध कहलाती हैं ॥

युक्तिव्यपाश्रय।

युक्तिव्यपाश्रयंपुनराहारौषधद्रव्याणांयोजना ॥

अर्थ-युक्तिव्यपाश्रय औषध वो है जो युक्तिपूर्वक भोजनादिक और औषध आदि द्रव्योंकी योजना करना ॥

सत्वावजयः।

सत्वावजयःपुनरहितेभ्योऽर्थेभ्यो मनोनिग्रहः ॥

अर्थ-सत्वावजय औषधी वो है जैसे दुष्टकर्मसे अपने मनको रोकके उत्तम शुभकर्ममें लगाना अब औरभी औषधोंके भेद कहते हैं ॥

शरीराश्रितत्रिविधऔषधी।

शरीरदोषप्रकोपेखलुशरीरमेवाश्रित्यप्रायशस्त्रिविधमौषधमिच्छन्ति अन्तःपरिमार्जनंबहिःपरिमार्जनशस्त्रप्रणिधानंचेति ॥

अर्थ–देहमें दोषोंके कोप होनेसे वो दोष शरीरके आश्रित होकर वैद्य-प्रायः त्रिविध औषधकी इच्छा करते हैं, जैसे १ अंतःपरिमार्जन, २ बहिः परिमार्जन ३ शस्त्रप्रणिधान, अब इन प्रत्येकके लक्षण आगे पृथक्२कहते हैं॥

अंतःपरिमार्जन।

तत्रान्तःपरिमार्जनं यदंतःशरीरमनुप्रविश्यौषधमाहारजा तव्याधीन् प्रतिमार्ष्टि।

अर्थ–तहां जो औषध शरीरके भीतर प्रवेशकर भोजनजनित व्याधियोंको दूर करे उसको अंतः परिमार्जन औषध कहते हैं उदाहरण-जैसे क्काथ, चूर्ण, गुटिका, रस, पाक आदि जानने ॥

बहिःपरिमार्जन।

यत्पुनर्बहिःस्पर्शमाश्रित्याभ्यंगस्वेदप्रदेहपरिषेकोन्मर्दनाद्यैरामयान् प्रमार्ष्टि तद्बहिःपरिमार्जनम्।

अर्थ–जो औषध बाहर त्वचाके स्पर्शके आश्रित हो उवटना, पसीने निकालना, तरडा देना, मालिश करना इत्यादि कर्मद्वारा जो रोगोंको नष्ट करे उसे बहिःपरिमार्जन औषध कहते हैं, उदाहरण–जैसे तैलका लगाना, लेपकरना, अंजन, मंजन आदिजानना ॥

शस्त्रप्रणिधानम्।

शस्त्रप्रणिधानंपुनश्छेदनभेदनव्यधनदारणलेखनोत्पाटन प्रच्छन्नसीवनैषणक्षारजलौकाश्चेति।

अर्थ–शस्त्रप्रणिधान चिकित्सा जैसे छेदन, भेदन, व्यधन, दारुण' लेखन, पाटन, प्रच्छन्न, सीवन, एषण, क्षार और जलौका आदिकर्म जो अष्टविधशस्त्रकर्माध्याय और क्षारकर्म तथा जलौकावचारण अध्यायमें लिखआये हैं वो जानने।

त्रिविधऔषधी।

किंचिद्दोषप्रशमनं किंचिद्धातुप्रदूषणम्।
स्वस्थवृत्तौ हितंकिञ्चिद्द्रव्यंत्रिविधमुच्यते॥

अर्थ–द्रव्य तीनप्रकारकी है कोई दोषनाशक, कोई धातुको दूषणकर्ता और कोई स्वस्थवृत्ति अर्थात् आरोग्यप्राणीको हितकारी॥

जंगमादि भेदसे त्रिविध औषध ।

तत्पुनस्त्रिविधंज्ञेयंजांगमौद्भिदपार्थिवम् ।

अर्थ–फिर वो पूर्वोक्त द्रव्य तीनप्रकारकी है जैसे जंगम, औद्भिद (स्थावर) और पार्थिव ॥

जंगमद्रव्य ।

मधूनिगोरसाः पित्तंवसामज्जासृगामिषम् ।
विण्मूत्रंचर्मरेतोऽस्थिस्नायुरंगंखुरानखाः ।
जंगमेभ्यः प्रयुज्यन्ते केशालोमानिरोचना ॥

अर्थ–सहत, गोरस (दूध, घी) पित्ता (मोर, मछली, आदिका पित्ता) वसा (चर्वी) मज्जा, रुधिर, मांस, विष्ठा, (गोबर, लीद) मूत्र, चाम, वीर्य (मगर आदिका) हड्डी, स्नायु, अंग, खुर और नख (नाखून) तथा केश (बाल) लोम (रुआं) और गोलोचन ये जंगम (पशु, पक्षी, मनुष्यादि) के लियेजाते हैं, ये जंगम द्रव्य जानना ॥

भौमद्रव्य ।

सुवर्णसमलाःपंचलोहाःससिकतासुधा॥मनः शिलालेमण-
योलवणं गैरिकाञ्जने । भौममौषधमुद्दिष्टं–

अर्थ–सुवर्ण और अपने २ मल अर्थात् कीटीसहित पांचों लोह, धूल, चूना, मनशिल, हरताल, मणी, निमक, गेरू और सुरमा इत्यादि भौम औषध अर्थात् पृथ्वी संबंधी औषध जाननी ॥

औद्भिदंतुचतुर्विधम् ।

वनस्पतिर्वीरुधश्च वानस्पत्यस्तथौषधिः ॥

अर्थ–औद्भिद अर्थात् स्थावरसंबंधी औषध चारप्रकारकी है जैसे, वनस्पति, वीरुध, वानस्पत्य और औषधी इन प्रत्येकके लक्षण आगे कहते हैं॥

फलैर्वनस्पतिः पुष्पैर्वानस्पत्यफलैरपि ।
औषध्यः फलपाकान्ताः प्रतानैर्वीरुधः स्मृताः ॥

अर्थ–जिनमें केवल फलही लगते हैं फूल नहीं लगते उनको वनस्पति कहते हैं, जैसे गूलर, पीपर, वडआदि । और जिनमें फल फूल दोनों लगे

उनको वानस्पत्य कहते हैं, ऐसे आम, जामुन, आदिके वृक्ष । और जो फलके आनेसे पककर नष्ट हो उनको औषधी कहते हैं, जैसे जों, गेहूं चना आदि । और जो बेलके माफिक प्रतान वाली हैं उनको वीरुध कहते हैं, जैसे गिलोय, पान, आकाशवेल आदि । कोई औषधके पांच-भेद कहता है वो हम इसके निघंट भागमें लिखेंगे ॥

औद्भिदगण ।

मूलत्वक्साराानिर्यासनाडचःस्वरसपल्लवाः । क्षाराक्षीरंफलंपुष्पंभस्मतैलानिकंटकाः । पत्राणिशुङ्गाकन्दाश्वप्ररोहाश्चौद्भिदोगणः ॥

अर्थ–तहां जड, त्वचा, सार, गोंद, नाडी, स्वरस, नवीन पत्ते, क्षार, दूध, फल, फूल, भस्म, तेल, कांटे, पत्ते, शुङ्ग (कली) कंद और प्ररोह (अंकुर) ये औद्भिद गण हैं अर्थात् वृक्षादिकोंसे इतनी वस्तु ग्रहण करी जाती हैं ॥

उद्भिदजऔषधोंकीगणना ।

मूलिन्यःषोडशैकोनाःफलिन्योविपरीतकाः । महास्नेहाश्चचत्वारःपञ्चैवलवणानिच ॥ अष्टौमूत्राणिसंख्यातान्यष्टावेवपयांसिच । शोधनार्थाश्चषड्वृक्षाःपुनर्वसुनिदर्शिताः ॥ यएतान्वेत्तिसंयोक्तुंविकारेषुसवेदवित् ॥

अर्थ–जडवाली रूखडी मुख्य १६ हैं, फलवाली १९ हैं, महास्नेह४हैं, पांच प्रकारके निमक हैं।आठप्रकारके मूत्र, आठप्रकारके दूध और शोधनकरनेके अर्थ छः वृक्ष हैं, ये पुनर्वसु आत्रेयने कहे हैं। जो इनको विकारोंमें देना जानता है वो आयुर्वेदका ज्ञाता है ऐसा जानना। इन सबका खुलासा चरकके प्रथमाध्यायमें लिखा है सो लेना ॥

औषधज्ञानकोदुर्ज्ञेयत्व ।

ननामज्ञानमात्रेणरूपज्ञानेनवापुनः ।
औषधीनांपरांप्राप्तिंकश्चिद्वेदितुमर्हति ॥

अर्थ–औषधोंका यथार्थज्ञान केवल नामज्ञानमात्रसे, अथवा रूपज्ञान करकेही नहीं होता किंतु रूप और नाम दोने जाननेसे होता है ॥

ओषधोंकेरूपऔरयोगज्ञातावैद्यकीप्रशंसा ।

योगज्ञःस्तस्यरूपज्ञस्तासांतत्वविदुच्यते ।
किंपुनर्योविजानीयादौषधीःसर्वदाभिषक् ॥

अर्थ-जो वैद्य औषधोंके योगको और उनके रूपको जानता है उसको तत्ववेत्ता कहते हैं और जो सदैव औषधोंको जानता रहताहै उस वैद्यका तो क्या कहना है ॥

तथावैद्यकोउत्तमत्वकथन ।

रूपंतासांतुयोविद्याद्देशकालोपपादितम् ।
पुरुषंपुरुषंवीक्ष्यसविज्ञेयोभिषक्तमः ॥

अर्थ-देशकालोपपादित औषधोंके रूपको प्रत्येक पुरुषोंके प्रति जो देना जानता है वह संपूर्ण वैद्योंमें श्रेष्ठ है ॥

ज्ञाताज्ञातऔषधोंकेगुणागुण ।

यथाविषं यथाशस्त्रं यथाग्निरशनिर्यथा ।
तथौषधमविज्ञातं विज्ञातममृतंयथा ॥

अर्थ-जैसे विष, जैसेशस्त्र, जैसे अग्नि, जैसे वज्रपात प्राणीके प्राणहारक होते हैं । उसीप्रकार विनाजानी औषध प्राणोंको हरण करती है और जो जानी हुई औषध है वो अमृतके तुल्य प्राणदायक जाननी ॥

अज्ञात और दुष्प्रयोजितऔषधकीनिंदा ।

औषधं ह्यनविज्ञातं नामरूपगुणैस्त्रिभिः ।
विज्ञातं वापि दुर्युक्तं युक्तिबाह्येन भेषजम् ॥

अर्थ-जो औषध नाम,रूप और गुण इन तीनोंकरके विना जानीहुई है अथवा जो इन तीनों प्रकार करके जानीभी है, परंतु अविधिसे उसका प्रयोग करा है, वो युक्तिरहित औषध अपना गुण नहीं करे ॥

युक्तऔरअयुक्तऔषधकेगुणागुण ।

योगादपिविषं तीक्ष्णमुत्तमं भेषजं भवेत् ।
भेषजं वापि दुर्युक्तं तीक्ष्णं संपद्यते विषम् ॥

अर्थ-तीक्ष्ण, विषभी योगके साथ उत्तम औषधीरूप होजाता है,

और उत्तम औषधीभी दुष्टयुक्तीके साथ देनेसे घोर विषके समान प्राण-हरण कर्ता होतीहै ॥

युक्तिपूर्वकऔषधकोमुख्यत्व ।

तस्मान्नभिषजायुक्तं युक्तिबाह्येन भेषजम् ।
धीमता किंचिदादेयं जीवितारोग्यकांक्षिणा ॥

अर्थ—इसीसे जीवन और आरोग्यकी इच्छा करने वाले बुद्धिमान् रोगीको युक्तिबाह्य औषधका प्रयोग कदाचित् नहीं करना चाहिये । अर्थात् मूर्खवैद्यकी औषधका ग्रहण न करे ॥

मूर्खवैद्यकेहाथकीऔषधनलेना ।

कुर्यान्निपतितं मूर्ध्नि सशेषं वासवाशनिः ।
सशेषमातुरं कुर्यान्नत्वज्ञमतमौषधम् ॥

अर्थ—रोगी अपनेमस्तकपर वज्रपात गिरना अंगीकार करले,रोगयुक्त रहना अंगीकार करलेवे, परंतु मूर्खवैद्यकी अनुमतीसे दीहुई औषधको कदाचित् अंगीकार न करे ॥

अज्ञानीवैद्यसेभाषणकरनेमेंपापकथन ।

दुःखिताय शयानाय श्रद्दधानाय रोगिणे । यो भेषजम-विज्ञाय प्राज्ञमानी प्रयच्छति ॥ तस्य च मृत्युदूतस्य दुर्मतेस्त्यक्तधर्मणः । नरो नरकपातीस्यात्तस्य संभाष-णादपि ॥

अर्थ—दुखिया, पडेहुए, श्रद्धावाले रोगीको जो पंडिताभिमानी वैद्य विना जानी औषधको देता है, उस मृत्युके दूत दुष्टमतिवाले अधर्मीके संभाषण (बोलने) से यह प्राणी नरकगामी होता है । अर्थात् ऐसे दुष्टवै-द्यसे भाषणभी नकरे, परंतु इसबातको कौन देखता है।भला विनाबुलाये और थोडेसेमें खुसी होने वालेभी तो येही वैद्य हैं,भलेही प्राणचलेजावें परंतु धनतो बचजायगा धन्यरे दुष्ट समय तू धन्य है ॥

शरणागतरोगीसे द्रव्यादिलेनेकानिषेध ।

वरमाशीविषविषं क्वथितं ताम्रमेव वा । पीतमत्यग्निसन्त-प्ता प्राशितावाप्ययोगुडाः॥नतु श्रुतवतावेशंबिभ्रता शर-

णागतात् । ग्रहीतमन्नपानं वा वित्तं वा रोगपीडितात् ॥

अर्थ—सर्पका हलाहल विष पीलेना, औटाहुआ ताम्र पीलेना तथा अग्निसे दहकते हुए लोहेके गोलेको खायलेना उत्तम है, परंतु पंडित वेषधारी होकर शरणागत रोगीसे अन्नजल अथवा द्रव्य ग्रहण करना कदाचित् उचितनहीं है ॥

मूर्खवैद्यसेयत्नकरानानिषेध ।

वरं दस्यौ वरंव्याले वरं यादोविभीषणे । सागरे जीवनोत्सर्गः सुघोरे वापि धन्वनि ॥ नाधीतशास्त्रे नाभ्यस्ते कर्मण्यखिलवैरिणि । न कार्यं दुर्मतौ पापे भिषजात्मसमर्पणम् ॥

अर्थ—चौरके हाथसे,हिंसकजीव (सिंह व्याघ्रादि) से,मगरआदि जलके जीवोंसे समाकुल घोर समुद्रमें अथवा घोर मारवाडकी भूमिमें, अपने प्राणोंको त्यागदेना परमोत्तम है,परंतु विना शास्त्रपढेहुए और विना अभ्यस्त कर्मवाले, सबके वैरी, दुर्बुद्धी,पापात्मा वैद्यके,हस्तगत अपना आत्मसर्पण करना कदापि उचित नहीं है ॥

वैद्यकोवैद्यकेगुणसीखनेकीआवश्यकता ।

भिषक्बुभूषुर्मतिमानतः स्याद्गुणसम्पदि ।
परं प्रयत्नमातिष्ठेत्प्राणदःस्याद्यथा नृणाम् ॥

अर्थ—एतएव इत्यादि उक्त कारणोंसे बुद्धिमान् प्राणी वैद्यहोनेकी इच्छा रखनेवाला वैद्य गुणसंपत्तिमें परम यपूत्नर्वक स्थितहोवे,क्योंकि यह वैद्य प्राणियोंको प्राणका देनेवाला है ॥

उत्तमऔषधऔरवैद्य ।

तदेवमुक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते ।
सचैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् ॥

अर्थ--वही औषधी उत्तम है वो रोगियोंको आरोग्यकरे । और वही वैद्योंमें श्रेष्ठ है जो रोगियोंको रोगोंसे छुडावे ॥

उत्तमप्रयोगऔरउत्तमवैद्यकीप्रशंसा ।

सम्यक्प्रयोगं सर्वेषां सिद्धिराख्यातिकर्मणाम् ।

सिद्धिराख्याति सर्वैश्च गुणैर्युक्तं भिषक्तमम् ॥

अर्थ–उत्तम प्रयोग संपूर्ण कर्मोंकी सिद्धिको प्रगटकरै है और सर्वगुणयुक्त वैद्यको कर्मसिद्धि विख्यात करती है ॥

परिचारककेगुण।

उपचारज्ञतादाक्ष्यमनुरागंचभर्त्तरि ।
शौचंचेतिचतुष्कोऽयंगुणः परिचरेजने ॥

अर्थ–अब चिकित्साके चतुर्थपाद अर्थात् परिचारक (सेवक) के गुण लिखते हैं जैसे कि, उपचारज्ञाता (अर्थात् रोगीकी सेवाके नियमोंका जानने वाला,) चतुर और अपने स्वामी (मालिक) में अनुराग, तथा पवित्रता ये चारगुण सेवकके हैं। तहाँ चारगुण वैद्यके, चारगुण रोगीके, चारगुण औषधके और चारगुण सेवकके ये संपूर्ण सोलह गुण चिकित्साकी षोडश कला कहलाती हैं। अर्थात् चिकित्साके वैद्य आदि चार पादहैं और एक एक के चारगुण ऐसे सोलहगुण सोलह कला कहलाती हैं ॥

परिचारककेलक्षण।

स्निग्धोऽजुगुप्सुर्बलवान्युक्तोव्याधितरक्षणे । वैद्यवाक्यकृदश्रांतोयुज्यतेपरिचारकः ॥ अनुरक्तः शुचिर्दक्षो बुद्धिमान्परिचारकः ॥

अर्थ–स्नेह रखनेवाला, अनिंदित, बलवान्, रोगीके संरक्षण करनेमें चतुरवैद्यकी आज्ञापालन करनेवाला, निरंतर परिश्रम करते २ न थके, कृपालु, शुद्ध, कुशल और बुद्धिमान् ऐसा सेवक रोगीके समीप रहना चाहिये।

अब चिकित्साके चारों पैर और शोडष कला ओंको कहकर चिकित्साके अंग कहते हैं। तहाँ रोगी, दूत, वैद्य, सेवक और उत्तम औषधोंके लक्षणक अब शेषोंको कहते हैं ॥

आयुर्विचार।

भिषगादौपरीक्षेतरुग्णस्यायुः प्रयत्नतः ।

ततः आयुषिविस्तीर्णेचिकित्सासफलाभवेत् ॥

अर्थ–वैद्य प्रथम रोगीके आयुकी परीक्षा करे कारण यह हैकि, यदि आयु बडी होयगी तो चिकित्साभी सफल होतीहै, अन्यथा निष्फल होतीहै, परंतु दीर्घायुके लक्षण इस बृहन्निघंटुरत्नाकरकी प्रथम जिल्दमें अर्थात् शारीर भागमें लिख आयेहैं, इस वास्ते यहाँपर नहीं लिखे हैं ॥

आयुकाप्रमाण ।

जलजानवलक्षास्तु दशलक्षास्तुपक्षिणः । रुद्रलक्षास्तु-कृम्याद्यास्थावराणांचविंशतिः ॥ त्रिंशल्लक्षंगवादीनां चतुर्लक्षास्तुमानवाः ॥

अर्थ–जलज (जलमें होनेवाले) ९००००० नौलाख हैं, पक्षी १०००००० दशलाख हैं, कृमि (कीड़े) ११००००० ग्यारहलाख हैं स्थावर (वृक्षादिक) योनि २०००००० वीस लाख हैं, गवादि (अर्थात् गौ भैंसबकरी आदि) योनि ३०००००० तीसलाख हैं, और मनुष्य योनि ४००००० चार लाख हैं ॥

शतायुःपुरुषश्चैववृक्षाणांतुसहस्रकम् ।द्वात्रिंशश्वतुरंगाणां शतंकुजरसिंहयोः ॥ व्याघ्राणांचचतुः षष्टिः सहस्रंफणि-काकयोः । जम्बुकानांषोडशाब्दं शुनांद्वादशवत्सरम् ॥ चतुर्विंशतिरुक्तंगोमहिष्योः सूकरस्यच । अजानांद्वा-दशप्रोक्तंमत्स्यानामयुतंतथा ॥ कुक्कुटानववर्षाणि मृगा-णांविंशतिर्भवेत् । पक्षिणांदशवर्षाणिखराणांद्वादशद्व-यम् ॥ चतुर्विंशतिरुष्ट्राणां रासभानांतथैवच ॥

अर्थ–पुरुष (मनुष्य) की १०० सौवर्षकी आयु है, वृक्षोंकी १००० हजार वर्षकी, घोडोंकी ३२ बत्तीस वर्षकी है । सिंह और हाथीकी उमर १०० वर्षकी है वघेरे की आयु ६४ वर्षकी है सर्प (सांप) और कौआ इनकी १००० वर्षकी आयु है। स्यार (गीदड़) की आयु १६ वर्षकी है। कुत्तेकी उमर १२ वर्षकी है । गौ भैंस और सूअरकी उमर २४ वर्षकी है, बकरी की उमर १२ वर्ष की, मछली की उमर १०००० दशह-

जार वर्षकी है, मुरगेकी ९ वर्ष की, मृग (हिरण) की उमर २० वर्ष की है, पक्षि (तोता मेंना चिडिया आदि) की उमर दशवर्ष की है, गधेकी उमर २४ वर्ष की है, ऊंटकी उमर २४ वर्ष की और खिच्चरकी आयु २४ वर्ष की जाननी, ये इनकी परमायु है, परंतु कोई २ इस्से अधिकभी जीते हैं ॥

अथद्रव्यम्।

सर्वेद्रव्यमपेक्ष्यंतेरोगीप्रभृतयोयतः
विनावित्तंनभैषज्यंचिकित्सांगंततोधनम् ॥

अर्थ-रोगीसे आदिले संपूर्ण द्रव्यकी इच्छा करते हैं, विना धनके औषधी नहीं हो सकती, इसीसे चिकित्साका मुख्य अंग धनहै।

शिष्य-रोग और आरोग्य किसको कहते हैं ॥

गुरु-दोषोंकी विषमावस्थाको रोग और समानावस्थाको आरोग्य कहते हैं जैसे वाग्भटमें लिखा है ॥

व्याधेर्लक्षणंवाग्भटे।

रोगस्तुदोषवैषम्यंदोषसाम्यमरोगता।
रोगादुःखस्यदातारोज्वरप्रभृतयस्तुते ॥

अर्थ-दोषोंकी विषमता (समान न रहनेको) रोग कहते हैं और समाना वस्थाको आरोग्य कहते हैं तहां दुखदाई रोग वे ज्वरप्रभृति अर्थात ज्वरादिक जानने ॥

अथातोव्याधिसमुद्देशीयमध्यायंव्याख्यास्यामः।

अर्थ-अब हम व्याधिसमुद्देशीयाध्यायकी व्याख्या करेंगे ॥

द्विविधा व्याधयःशस्त्रसाध्याःस्नेहादिक्रियासाध्याश्च।तत्र शस्त्रसाध्येषु स्नेहादिक्रिया न प्रतिषिध्यते। स्नेहादिक्रियासाध्येषु शस्त्रकर्म न क्रियते ॥

अर्थ-इस संसारमें दोप्रकारकी व्याधि हैं एक शस्त्रसाध्य (शस्त्रकर्मसे अच्छी होनेवाली है दूसरी स्नेहादिक्रियासाध्य, अर्थात् घृत तैल क्वाथ

चूर्णादि से अच्छी होनेवाली तहां अष्टविध शस्त्रसाध्यव्याधियोंमें स्नेहादिकक्रिया करना सिद्धिकारक नहीं होती, जैसे भगंदरादि रोग चीरनेफाडनेयोग्य हैं उनपर तैलादि लगानेसे कुछ फायदा नहींहोता। और जो स्नेहसाध्य व्याधि हैं उनपर शस्त्रकर्म न करे, क्योंकि तैलकाथादिसे अच्छे होसकें ऐसे वातव्याधि और ज्वरादिरोगमें चीरना फाडना केवल दुःखदायक हैं ॥

अस्मिन् पुनः शास्त्रे सर्वतन्त्रसामान्यात्सर्वेषांव्याधीनां यथा स्थूलमवरोधः क्रियते ॥

अर्थ—तहां शल्यतंत्रमें शस्त्रक्रियाकोही मुख्यत्व है, स्नेहादि क्रियाको नहीं है इसशंकासे दोनों क्रियाओंका अधिकार दिखाते हैं। इस सौश्रुत शल्यतंत्रमें शालाक्यादि तंत्रोंको समान होनेसे संपूर्ण व्याधियोंका स्थूलदृष्टिकरके ग्रहण किया है ॥

प्रागभिहितं तद्दुःखसंयोगो व्याधिरिति तच्च दुःखं त्रिविधमाध्यात्मिकमाधिभौतिकमाधिदैविकमिति तत्तु सप्तविधे व्यधावुपनिपतति ॥

अर्थ—इस सुश्रुतकी प्रथमाध्यायमें लिखआये हैं कि, शरीरी और शरीरका अथवा शरीर और मनके दुःख संयोगको व्याधि अर्थात् रोग कहते हैं। तहां वो दुःख तीनप्रकारका है १ अध्यात्मिक[2] २ आधिभौतिक[3], ३ और आधिदैविक यही त्रिविधदुःख सात प्रकारकी व्याधियोंमें विभाजित किया है अर्थात् सातप्रकारसे वांटा है ॥

ते पुनः सप्तविधा व्याधयः। तद्यथा-आदिबलप्रवृत्ता-जन्मबलप्रवृत्ता दोषबलप्रवृत्ताः संघातबलप्रवृत्ताः कालबलप्रवृत्ताःदैवबलप्रवृत्ताःस्वभावबलप्रवृत्ता इति ॥

अर्थ--वो सातप्रकारकी व्याधि इसप्रकारसे हैं जैसे, १ आदिबलप्रवृत्त,

१ आदिशब्दसे स्वेदन, वमन, विरेचनादि जानने। २ आत्मशब्दसे मनकरके सहित शरीरका ग्रहणहै। वातपित्त और कफसे उत्पन्न शरीरमें होनेवाली तथा रजोगुण तमोगुणसे होनेवाली व्याधियोंको आध्यात्मिक कहते हैं। ३ भूतप्राणियोंको भूतोंमें अधिकारकरके जा वर्त्ते उसको अधिदैव कहते हैं। ४ देव, असुर, भूत, प्रेत, इत्यादिसे होनेवाले रोगोंको अधिदैव कहते हैं ॥

२ जन्म बलप्रवृत्त,३दोषबलप्रवृत्त, ४ संघातबलप्रवृत्त, ५ कालबलप्रवृत्त६ दैवबलप्रवृत्त और ७ स्वभावबलप्रवृत्त, अब इन प्रत्येकका वर्णन नीचे करते हैं ॥

तहांआदिबलप्रवृत्तव्याधि ।

तत्रादिबलप्रवृत्ता ये शुक्रशोणितदोषान्वयाः कुष्ठार्शः प्रभृतयः । तेऽपि द्विविधा मातृजाःपितृजाश्च ॥

अर्थ–तहां पूर्वोक्त सप्तविधव्याधियोंमें जो आदिबलप्रवृत्त व्याधिहैं वह ये हैं जैसे जो दुष्टशुक्र और दुष्टरुधिरसे उत्पन्न होते हैं–ऐसे कोढ, बवासीर, प्रभृति[१] । वोभी दोप्रकारके हैं-एक माताके रुधिरसे और दूसरे पिताके वीर्यदोषसे जो होते हैं ॥

जन्मबलप्रवृत्तव्याधि ।

जन्मबलप्रवृत्ता ये मातुरपचारात्पङ्गुजात्यन्धबधिरमूकमिण्मिणवामनप्रभृतयो जायन्ते । तेऽपि द्विविधारसकृताद्दौहृदापचारकृताश्च ॥

अर्थ–जन्मबलप्रवृत्त वह रोगहैं जो मातापित्ताके शुक्रशोणितकी दुष्टीके बिनाभी गर्भावस्थामें माताके दुष्टआहार और आचार करनेसे पांगुरा, जन्मांध, बहरा, गूंगा, गिनगिनाके बोलने वाला, बोना आदि रोग होते हैं । वोभी जन्मबलप्रवृत्तरोग दोप्रकारके हैं, एक रसकृत, दूसरे दौहृद[२]के अपचार करनेसे होतेहैं ॥

दोषबलप्रवृत्तव्याधि ।

दोषबलप्रवृत्ता य आतंकसमुत्पन्ना मिथ्याहाराचारभवाश्च तेऽपि द्विविधा आमाशयसमुत्थाः पक्काशयसमुत्थाश्च पुनश्च द्विविधाः शारीरा मानसाश्च त एतआध्यात्मिकाः॥

अर्थ–दोषबलप्रवृत्त जो व्याधि होती हैं वो मिथ्या आहार विहारसे होती हैं, अर्थात् जो वात,पित्त कफ और रज तमकी शक्तिकरके रोग प्रवृत्त (उत्पन्न) होते हैं, वो दोप्रकारके हैं एक आमाशयसे प्रगट होने वाले, दूसरे पक्काशयसे उत्पन्न होनेवाले, फिर वो आमाशय और पक्काश-

१ प्रभृतिशब्दसे प्रमेह, क्षय, आदिजानने । २ गर्भवती माताके चतुर्थादिमासोंमे इन्द्रियोंकी इच्छाको दौहृद कहते हैं ॥

यसे उत्पन्न होनेवाले रोग दो प्रकारके हैं एकशारीरक अर्थात् शरीरसे उत्पन्न होनेवाले, दूसरे मानसिक अर्थात् मनमें प्रगटहोनेवाले, इन्हीं दोषबलप्रवृत्त रोगोंको आध्यात्मिक कहते हैं ॥

संघातबलप्रवृत्तव्याधि ।

संघातबलप्रवृत्ता ये आगन्तवो दुर्बलस्य बलवद्विग्रहात्तेऽपि द्विविधाः शस्त्रकृता व्यालादिकृताश्च । एतेआधिभौतिकाः ॥

अर्थ--संघातबलप्रवृत्तव्याधि वोहैं जो आगंतुक और दुर्बल मनुष्यका बलवान्से लडना, फिर वो दोप्रकारकी है १ पहली शस्त्रकृत और दूसरी व्यालादि (सर्पादि) कृत, इन्हीको आधिभौतिक व्याधिकहतेहैं॥

कालबलप्रवृत्तव्याधि ।

कालबलप्रवृत्ता ये शीतोष्णवातवर्षाप्रभृतिनिमित्तास्तेऽपि द्विविधा व्यापन्नर्त्तुकृता अव्यापन्नर्त्तुकृताश्च ॥

अर्थ--कालबलप्रवृत्तव्याधि वो हैं जैसे-शरदी, गरमी, पवन, वर्षा आदि षड्ऋतुओंके निमित्तसे होती हैं वोभी दोप्रकारकी हैं एक व्यापन्नऋतुकृत[1], दूसरी अव्यापन्नऋतुकृत[2] ॥

दैवबलप्रवृत्तव्याधि ।

दैवबलप्रवृत्ता ये देवद्रोहादभिशस्तका अथर्वकृता उपसर्गकृताश्च तेऽपि द्विविधा विद्युदशनिकृताः पिशाचादिकृताश्च पुनश्च द्विविधाः संसर्गजा आकस्मिकाश्च ॥

अर्थ–दैवबलप्रवृत्त अर्थात् देवशक्तिसे होने वाले रोग वो हैं जो देव (देवता, गौ, गुरु, सिद्ध, इनसे द्रोहकरने) से होते हैं। तथा अभिशस्तक अर्थात् ऋषियोंके शापदेनेसे, अथर्वकृत (अथर्वणवेद प्रणीत अभिचारिक मंत्रोंकरके होनेवाले मारण, मोहनादि व्याधि) और उपसर्गज (अर्थात छूतकेरोग जैसे ज्वरवालेके पास रहनेसे वो ज्वर उडकर दूसेरको लगजाता है इत्यादि) । फिर वो दैवबलप्रवृत्त रोगभी

---

१ ऋतुके दूषित होनेसे रोगहोते हैं वो व्यापन्न ऋतुकृत कहाते हैं । २ और जो उत्तम ऋतुमें दूषित औषध जलके सेवनसे होनेवाली व्याधि होती हैं वो अव्यापन्न ऋतुकृत जाननी।

दोप्रकारके हैं, एक बिजली[1] और अशनि[2]कृत दूसरा पिशाचादि[3]कृत। फिर इसके दोभेद हैं एकसंसर्गज[4], दूसरा आकस्मिक[5]।

स्वभावबलप्रवृत्त।

स्वभावबलप्रवृत्ताःक्षुत्पिपासाजरामृत्युनिद्राप्रभृतयस्तेऽपि द्विविधाः, कालकृता अकालकृताश्च तत्र परिरक्षणकृताःकालकृता अपरिरक्षणकृता अकालकृता एते आधिदैविकाः॥ तत्र सर्वव्याध्यवरोधः॥

अर्थ–स्वभावबल (अर्थात् प्रकृतिकी शक्तिसे) उत्पन्न होनेवाले ऐसे भूख, प्यास, बुढापा, मौत, निद्राआदि वोभी दोप्रकारके हैं एक कालकृत और एक अकालकृत, तहां रक्षाकरने परभीहोय वो काल[6]कृत रोग है और बिना रक्षा करनेसे जो होवे वो अकालकृत जानने। इन्हीको आधिदैविक कहते हैं तहाँ इन्ही आदि बलप्रवृत्तादि सात प्रकारकी व्याधियोंमें संपूर्ण व्याधिमात्र अंतर्गत जाननी॥

कदाचित् कोई कहे कि,सबव्याधियोंका कैसे इन्हमें संग्रह होसक्ता है इस वास्ते कहते हैं॥

सर्वेषाञ्च व्याधीनां वातपित्तश्लेष्माण एव मूलं तल्लिङ्गत्वाद्दृष्टफलत्वादागमाच्च तथाहि कृत्स्नं विकारजातं विश्वरूपेणावस्थितं सत्वरजस्तमांसि न व्यतिरिच्यन्ते। एवमेव कृत्स्नं विकारजातं विश्वरूपेणावस्थितमव्यतिरिच्यवातपित्तश्लेष्माणो वर्त्तन्ते॥

अर्थ–संपूर्ण व्याधियोंके आदिकारण वातपित्त और कफहैं। कारण कि,

---

१ लताके आकार तिरछी गिरे वो बिजली गिरी कहाती है। २ और अग्निके समान गोला रूप गिरे उसको अशनि अर्थात् (वज्रपात) कहते हैं। ३ आदि शब्दसे भूत, प्रेत, ब्रह्मराक्षसादि जानने। ४ देवद्रोहकरके मनुष्योंके आपसमें मिलनेसे जो महामारी आदि रोग होते हैं। ५ बिना संसर्गके जो पूर्व जन्मोपार्जित कर्मकरके होनेवाले। ६ इसीसे कालरोगोंकी चिकित्सा नहीं कही॥

सर्व व्याधिमात्र तल्लिंगत्व होनेसे, तथा दृष्टफलत्व होनेसे और शास्त्रप्रमाण होनेसे तथा यह संपूर्णविकार समूहे विश्वरूप करके स्थितहै अर्थात् जाग्रत रूपकरके स्थित है। इसीसे यह सत्वगुण, रजोगुणसे पृथक् नहीं है इसी प्रकार यह संपूर्ण विकारजात विश्वरूपकरके स्थित अर्थात् रोगसमूहकरके स्थित पृथक् नहीं है॥

कोई प्रश्नकरे कि, तीनदोषोंसे आदिबलप्रवृत्तादि अनेक व्याधि कैसे होती हैं तहाँ कहते हैं॥

दोषधातुमलसंसर्गादायतनविशेषान्निमित्ततश्चैषां विकल्पा भवन्ति॥

अर्थ-दोष धातु मल इनके संयोगसे आयतन विशेषसे और निमित्तसे व्याधियोंके अनेक भेद होते हैं॥

दोषदूष्यसंज्ञालक्षणाकरकेहोतीहै।

दोषदूषितेष्वत्यर्थं धातुषु संज्ञाक्रियते रसजोऽयं शोणितजोऽयं मांसजोयं मेदोजोऽयमस्थिजोऽयं मज्जजोऽयं शुक्रजोऽयं व्याधिरिति॥

अर्थ-दोषोंकरके दूषित धातुओंकी संज्ञाकरीजाती है यह रसजन्यव्याधि है, यह रुधिरजन्य है, यह मांसजन्य है, यह मेदाजन्य है, यह अस्थिजन्य है, यह मज्जाजन्य है और यह व्याधि शुक्रजन्य है॥

---

१ तल्लिंग कहिये वातादिदोषोंके लक्षण रूक्ष, अल्प, और स्नेहादिक तथा तोद, दाह और खुजली आदि कार्यजानने। २ दृष्टफलत्व कहिये वातादिकका शमन होना प्रत्यक्ष देखाजाताहै। ३ शास्त्रमें भी लिखाहै ११२० ग्यारहसोवीस व्याधियोंको कार्यभूत वातपित्त और कफही कारण है। ४ विकार इसजगे २३ महदादिक जानने ५ संयोग जैसे। वातादिदोष, रसधातु, मल, मूत्रादिके संयोगसे अतीसारादिरोग होते हैं। वातादिदोष रक्तधातु इनके संयोगसे विद्रधि और रक्तगुल्मादि रोग होते हैं। तथा वातादिदोष और रसधातुके संयोगसे ज्वरादिक रोग होते हैं। रसादि दूष्य और मलमूत्र आदिके संयोगसे बीसप्रकारकी प्रमेह होती है। ६ स्थानभेदसे रोगोंके भेद जैसे सातस्थानोंमें ६५ मुखरोग है। नेत्ररोग ७० इत्यादिजानने १३ निमित्त कहिये वातादिसेभी रोगोंके अनेकभेद हैं-जैसे वातादि ज्वर तीन, संनिपातका एक, द्वंद्वजतीन, आगंतुज आठवां इसीप्रकार और भी भेद अनेक जानने॥

जैसे यह घीसे जलगया तेलसे जलगया, तामेसे जलगया, लोहसे जलगया इत्यादि, जैसे घी, तेल, तामा और लोहमें अग्नि कारण है उसी प्रकार रसरक्तादिजन्य रोगोंमें वातादि दोष कारण हैं ॥

अब चिकित्सा विशेष विज्ञानार्थ सुखसाध्यत्वादि कर्मके बोधार्थ प्रत्येक रसादि धातु विकारोंको दिखाते हैं ॥

रसजन्यविकार।

तत्रान्नाश्रद्धारोचकाविपाकाङ्गमर्दज्वरहृल्लासतृप्तिगौरवहृत्पाण्डुरोगमार्गोपरोधकार्श्यवैरस्याङ्गसादकालबलिपलितदर्शनप्रभृतयोरसदोषजा विकाराः ॥

अर्थ—तहां अन्नमें अश्रद्धा और अन्नमें अरुचि (नफरत) विपाक, अंगोंमे फूटन, ज्वर, हल्लास, तृप्ति (पेटभरेके समान) देहमें भारीपना, हृदयरोग, पांडुरोग, छिद्रोंका बंद होजाना, कृशता, मुखमें विरसता, अंगोंमें उत्साहरहितपना, विना समय बुढापा और बालोंका सपेदहोजाना इत्यादि रसदोषजन्य विकार हैं ॥

रुधिरजन्यविकार।

कुष्ठविसर्पपिडकामशकनीलिकातिलकालकन्यच्छव्यङ्गेन्द्रलुप्तप्लीहविद्रधिगुल्मवातशोणितार्शोऽर्बुदाङ्गमर्दासृग्दररक्तपित्तप्रभृतयो रक्तदोषजा गुदमुखमेढ्रपाकाश्च॥

अर्थ—कोढ, विसर्प, पिडका, मस्से, निलिका, तिलकालक (तिल) न्यच्छ (लहसन) व्यंग (झांई) इन्द्रलुप्त (जिसमें मूंडके बालजाते रहें प्लीह (तिल्ली) विद्रधि, गोला, वातरक्त, बवासीर, अर्बुद, अंगमर्द, (अंगोंका टूटना) असृग्दर (रक्तप्रदर) और रक्तपित्तआदि ये रुधिरदोषजन्यबीमारी है। तथा गुदा, मुख और भगलिंगका पकना येभी रुधिरजन्यविकार हैं ॥

मांसदोषजविकार।

अधिमांसार्बुदार्शोऽधिजिह्वोपजिह्वोपकुशगलशुण्डिकालजीमांससंघातौष्ठप्रकोपगलगण्डमालाप्रभृतयोमांसदोषजाः॥

अर्थ—अधिमांस, अर्बुद, बवासीर, अधिजिव्ह, उपजिव्ह, उपकुश,

गलशुंडी, अलजी, मांससंघात, ओष्ठप्रकोप, गलगंड, गंडमाला आदि मांसदोषज विकारहैं

मेददोषजविकार।

ग्रन्थि वृद्धिगलण्डार्बुदमेदोजौष्ठप्रकोपमधुमेहातिस्थौल्यातिस्वेदप्रभृतयो मेदोदोषजाः ॥

अर्थ–गांठ, अंडवृद्धि, गलगंड, अर्बुद, मेदरोग, ओष्टप्रकोप, मधुमेह, अतिस्थूल और अतिपसीनोंका आना आदि मेददोषजविकार हैं ॥

अस्थिदोषजविकार।

अध्यस्थ्यधिदन्तास्थितोदशूलकुनखप्रभृतयोऽस्थिदोषजाः ॥

अर्थ–अधिक हड्डीका होना, अधिदंत (दांतकेऊपर दांतका आना) हड्डियोंमें चभकाचलना और हड्डीका दर्द तथा कुनख आदि अस्थिदोषज विकार अर्थात् ये विकार हड्डीके हैं ॥

मज्जादोषजन्यविकार।

तमोदर्शनमूर्च्छाभ्रमपर्वगौरवस्थूलमूलोरुजङ्घानेत्राभिष्यन्दप्रभृतयो मज्जदोषजाः ॥

अर्थ–अंधकार दर्शन, मूर्च्छा, भ्रम, स्थूलमूलवाले फोडान्का पर्वों (जोडों) में होना, भारीपना, ऊरू (जांघ) और पीडुरी इनमें पीडा, तथा नेत्राभिष्यंद आदि मज्जादोषजन्य विकार जानने ॥

शुक्रजन्यविकार।

क्लैब्याप्रहर्षशुक्राश्मरीशुक्र मेहशुक्रदोषादयश्चतद्दोषजाः ॥

अर्थ–नपुंसकता, स्त्रीसंगमें इच्छा न रहना, वीर्यकी पथरी शुक्रप्रमेह, और शुक्रदोषादिक शुक्रके विकार जानने अर्थात् येदोष शुक्रके दोषसे होतेहैं

मलायतनविकार।

त्वग्दोषाःसङ्गोऽतिप्रवृत्तिर्वामलायतनदोषाः ॥

अर्थ–कुष्ठसे आदिले त्वचाके विकार, मलमूत्रादिकोंका रुकजाना अथवा अत्यंत उतरना तथा कान, मुख, नाक, नेत्रआदि मार्गके रुकनेको संग ऐसा कहते हैं ॥

इन्द्रियायतनदोष।

इन्द्रियाणामप्रवृत्तिरयथाप्रवृत्तिर्वेन्द्रियायतनदोषाः। इत्येवंसमासउक्तो विस्तरनिमित्तानि चैषां प्रतिरोगं वक्ष्यामः ॥

अर्थ–इन्द्रियोंका अपने २ कार्यमें प्रवृत्तनहोना अथवा कुछका कुछकरना ये इन्द्रियातन दोष हैं। तहां दोषधातु मल संसर्गादि दो व्याधियोंके कारण जो पूर्व कहआये तथा आयतनविशेष दूसरा व्याधि होनेका कारण ये दोनोंको संक्षेपसे कहकर ॥

अब तीसरे निमित्तजन्य कारणको कहते हैं कि निमित्त (वातादि) कारण जैसे बलवान्से विरोधकरना और मिथ्याप्रयुक्त स्नेहादिक से होनेवाले अतिसारादिरोगोंको प्रत्येक रोगोंके प्रति पृथक् २ कहेंगे ॥

भवन्ति चात्र ॥

कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम्।
यत्र सङ्गस्ववैगुण्याद्व्याधिस्तत्रोपजायते ॥

अर्थ–शरीरमें विचरनेवाले कुपित दोषोंका जिस मार्गमें बिगाड होनेसे रुकेंगे वही रोग उत्पन्न करते हैं ॥

इति।

चिकित्साविधिकाउपदेश।

जातमात्रश्चिकित्स्यः स्यान्नोपेक्ष्योऽल्पतयागदः।
वह्निशत्रुविषैस्तुल्यः स्वल्पोऽपिविकरोत्यसौ ॥

अर्थ–व्याधि उत्पन्न होतेही उसकी चिकित्सा करे, किंतु यह अल्पहै क्या बिगाडकरेगी इसप्रकार उपेक्षा न करदेवे। क्योंकि उपेक्षा करनेसे वह अल्पही व्याधि अग्नि, शत्रु और विषके तुल्य विकार करने वाली होजातीहै। जैसे अग्निकी चिनगरी बडे २ महलोंको फूक देतीहै, छोटासा शत्रु काल पायके सर्वनाशकरैहै। एवं थोडासाभी विष प्राणहरण करताहै, उसीप्रकार अल्पव्याधि प्राणनाश करे है ॥

वैद्यकाकर्त्तव्य।

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः।

एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥

अर्थ–व्याधिका भलेप्रकार जानना और उस व्याधिजनित पीडाका नाशकरना यही वैद्यका वैद्यत्वहै किंतु वैद्य आयुका प्रभु नहींहै अर्थात् आयुका मालिक नहीं। परंतु कोई आचार्य इसश्लोकको इसप्रकार लगाते हैं कि, व्याधिका यथार्थ ज्ञान करना और पीडाकी शांति करनाही वैद्यका वैद्यपना नहींहै, किंतु सौ आगंतु मृत्युओंको हरणकरेहै इसवास्ते वैद्य आयुका प्रभुहै ॥

रोगमादौपरीक्षेत ततोनंतरमौषधम्।
ततःकर्मभिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥

अर्थ--वैद्य प्रथम रोगकी परीक्षा करे, रोगज्ञानके पश्चात् औषधकी परीक्षा करे, जब रोग और औषध दोनोंकी परीक्षा करचुके तब सावधानीके साथ कर्म (औषधदेना आदि चिकित्सा) का प्रारंभकरे। असावधानीसे चिकित्सा न करे ॥

अब–प्रसंगवश रोगोंके जाननेके वास्ते चरकसे त्रिविधविज्ञानीयाध्यायको भाषा लिखते हैं ॥

अब हम त्रिविध विज्ञानीध्यायायका वर्णन करते हैं ॥

तहां रोगका विज्ञान तीन प्रकारसे होता है। जैसे १ उपदेश, २ प्रत्यक्ष और ३ अनुमान।

तहां आप्तवचनको उपदेशकते हैं। अब यह जिज्ञासा हुई कि, आप्त किसको कहते हैं तहां आप्तोंके लक्षण कहते हैं ॥

आप्तलक्षण।

जो तर्करहित स्मृतविभागके जानने वाले और विना प्रीतिके परदुःखसे आप दुखी होवे उन महात्माओंको आप्त ऐसा कहते हैं। उनका गुणसंयुक्त वचन प्रमाण है अर्थात् ग्रहणकरने योग्य है ॥

और मत्त (सिडी पागल) उन्मत्त (मद्यादिपीनेसे पागल) मूर्ख, विना विचारेकहने वाला इनका वचन अप्रमाण है अर्थात् अमाननीय है॥

प्रत्यक्षकेलक्षण।

जो वस्तु अपने नेत्रादि इन्द्री और मनकरके ग्रहण करी जावे वो प्रत्यक्ष है

अनुमान।

तर्क और युक्तिकी जिसमें अपेक्षा होवे उसको अनुमान कहते हैं

इस (उपदेश, प्रत्यक्ष और अनुमान) त्रिविध ज्ञानसमुदायसे प्रथम रोगपरीक्षा कराहुआ रोगी चिकित्साकरनेमें संशयरहित होता है ॥

संपूर्ण ज्ञान केवल ज्ञानके एकदेश जाननेसे कदाचित् नहीं होता किंतु संपूर्ण ज्ञानके अंगोंके जाननेसे होता है ॥

इन तीनोंप्रकारके ज्ञानमें प्रथम आप्तोपदेशज्ञान मुख्य है फिर प्रत्यक्ष और अनुमानद्वारा निश्चय करना कहा है ॥

परंतु वादी शंकाकर्त्ता है कि, हम आप्तोंको नहीं जानते । इस वास्ते हम प्रत्यक्ष और अनुमान ये दोही परीक्षाओंको मुख्य करके मानते हैं इसीसे अब ज्ञानवालोंको दोही परीक्षा करना मुख्य है, प्रत्यक्ष और अनुमान, परंतु बहुतसे बुद्धिमान पुरुष इनदोनों परीक्षाओंके साथ उपदेश प्रमाणको मानते हैं अर्थात् इन दोनोंमें आप्तवचन संमतजो होवे वो प्रमाण है ॥

जैसे एक २ रोग, दोषोंका प्रकोप, रोगोंकी योनी, आत्मा, अधिष्ठान, वेदना, संस्थान, शब्द, स्पर्श,रूप,रस, गंध उपद्रव, वृद्धिस्थान, क्षययुक्त इनका प्रसर और इनके नाम इत्यादियोग आप्तवचनसे जानना अर्थात् प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति है यह आप्तवचनसे जाना जाता है ॥

प्रत्यक्ष ।

रोगतत्वको प्रत्यक्ष जानना होवे तो सब इन्द्रियोंसे रोगीके देहगत सबइन्द्रियार्थ (शब्द स्पर्शादिकों) की परीक्षा करे, बिना जिव्हाद्वारा परीक्षाके । तात्पर्य यह है कि, वैद्य नेत्र, कान, नासिका और हाथोंसे परीक्षा करे और स्वाद जानना जिव्हा इन्द्री द्वारा होता है,परंतु इसको जिव्हा इन्द्रीसे नहीं करते अतएव यहाँ वर्जित है ॥

तहाँ इन्द्रीयद्वारा जो परीक्षा करीजाती है उसको लिखते हैं॥पोरुओं

कर्णइन्द्री ।

जैसे आँतोंका बोलना, संधियोंका चटकना और उंगलीके पूर्वोका चटकना इत्यादि और जो शरीरमें शब्द होनेवाले धर्म हैं उनको कर्ण इन्द्रीद्वारा परीक्षा करे ॥

नेत्रइन्द्री ।

देहका वर्ण,ऊंचा,नीचा,छाया शरीरकी प्रकृति,पांडुरोगादि विकार और जो नेत्रविषयक ज्ञान है उनको नेत्र इन्द्रीद्वारा परीक्षा करे ॥

जिह्वाइन्द्री ।

जिव्हाइन्द्रीका ज्ञान जैसे–रोगीके मलमूत्रका और देहका खारा मीठा

जायका यह अनुमानसेही जानलेवे, यह रसनेन्द्री ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा नहीं होता है, इससे रोगीसे प्रश्नद्वारा करना चाहिये अर्थात् आपके मुखका जायका कैसा है जब मल मूत्र करते हो उस पर मक्खी बहुत बैठती है या थोड़ी और इसीप्रकार देहपर मक्खियोंके बैठनेसे देहमें मिष्टताका अनुमान करना और यदि जूंआँ आदि जीव देहपर दौड़े तो जाननाकि, इसरोगीके देहमें विरसता है ॥

अब रक्तपित्तकी परीक्षामें यह परीक्षा करना कि, इसके यह जलही-रुधिरमिला लाल २ गिरे है अथवा रक्तपित्त गिरता है। तहाँ उस रुधिरको कौआ कुत्ते आदि भक्षणकरे तो जानना कि, रुधिर मिला जल गिरता है। और यदि कुत्ते कौआ आदि न खावेतो जानना कि, इसरोगीके रक्तपित्त गिरता ॥

इसी प्रकार औरभी खट्टे चरपरे आदि इस प्राणीके देहगतरसोंकी परीक्षा वैद्य अपनी बुद्धिके बलसे करे ॥

नासिकाइन्द्री।

रोगीके देहमें दुर्गंध आती है या सुगंध आती है, और दुर्गंध सुगंध किसप्रकारकी आती है इत्याहि प्रकृतिविकारजन्य गंधको नासिका-इन्द्रीसे सूँघकर जाने ॥

स्पर्शनेन्द्री।

हाथोंसे प्रकृति और विकृतियुक्त यह कठोर है यह नम्र है यह गरम और शीतल इत्यादि परीक्षा स्पर्श द्वारा प्रत्यक्ष और अनुमानके एकदेश द्वारा जाननी

अबअनुमान ज्ञानको कहते हैं।

अर्थ–अब आगे जो भाव कहते हैं इनसे आदिले औरभी अनुमानसे वैद्योंको जाने जातेहैं जैसे पचनेकी शक्तिद्वारा जठराग्निका मंदतीक्ष्णादि ज्ञान होता है। दंडकसरत डोलने फिरनेसे बलका अनुमान होता है शब्दादिग्रहणसे प्राणीके सुननेकी शक्तिका ज्ञानहोता है व्याभिचारसे मन और मनके अर्थोंका निश्चय होता है। व्यापार आदिसे विज्ञानका निश्चय होता है। संगतिसे रजोगुणका निश्चय होता है ज्ञानसे मोहका निश्चय होता है। द्रोह (वैरभाव) करनेसे क्रोधका निश्चय होता है। दीनता करनेसे शोकका निश्चय होता है प्रसन्नता (खुशवख्ती) से हर्षका निश्चय होताहै संतुष्टतासे प्रीतिका ज्ञानहोता है। घबडाहटसे भयका ज्ञानहोता है। स्वस्थचित्तसे धैर्यका ज्ञानहोता है। उत्साहद्वाराधी-र्यका निश्चय होताहै। बिना भ्रमके स्थितिका निश्चय होताहै। अभिप्रायसे

श्रद्धाका निश्चय होता है। ग्रहण धारणसे मेधाका निश्चयहोता है। नाम ग्रहणसे संज्ञाका निश्चय होता है। स्मरणसे स्मृतिका ज्ञान होता है। लज्जा-युक्त होनेसे लज्जा (शरम) का बोध होता है। सुशीलोंके आचरणसे शीलताका ज्ञान होता है। वर्जित करनेसे द्वेषका ज्ञान होता है। अनुबंधनसे उपाधिका निश्चय होता है। चंचलता रहित होनेसे धृतिका निश्चय होता है। आज्ञाके अनुसार चलनेसे वशीभूतपनेका निश्चय होता है। काल, देश, उपशय और पीडा इनसे अवस्था, भक्ति (भोजनक्रिया) सात्म्य और व्याधि इनका निश्चय होता है जिस व्याधिके लक्षण छिपेहुए हैं उसका ज्ञान उपशय[1] और अनुपशय द्वारा होता है ॥

तथा दोषोंका प्रमाण, अपचार, आयुकी क्षीणता ये अरिष्टद्वारा जाने जाते हैं ग्रहणीका मृदु और दारुणत्व, दुःस्वप्नदर्शन, अनपेक्षितवस्तुओंमें अभिप्राय, सुख, दुःख, इन सबका रोगीसे प्रश्न करनेसेही निश्चय होता है ॥

इसीवास्ते अत्रिय महर्षि कहते हैं—आप्तोपदेश प्रत्यक्ष इन्द्रियोंसे और अनुमानद्वारा चतुर वैद्य व्याधियोंकी परीक्षाकरे ॥

अर्थवेत्ता वैद्य यथासंभव सबको सर्वथा ज्ञानबुद्धिरूप दीपकसे देखकर कार्य करता है वह तत्ववेत्ता है ॥

प्रथम तत्वविचारकरे फिर कार्य करके उसको जाने। जो कार्य तत्वमें विशेष ज्ञाता है वह परीक्षा विषयमें मोहको नहीं प्राप्त होता है और बुद्धिमानीका उत्तम फल प्राप्त करताहै। जो वैद्य केवल ऊपरहीसे रोगकी परीक्षा करता है और ज्ञान बुद्धि दीपकसे रोगीके अंतःकरणका विचार नहीं करता वह चिकित्सा करनेका अधिकारी नहीं है ॥

इस प्रकार संपूर्ण रोगविशेषोंका त्रिविधज्ञानसंग्रह है—जैसे आप्तउपदेश करते हैं और जैसे प्रत्यक्ष ग्रहणकरा जाताहै एवं जैसे अनुमानसे रोग-जाने जाते हैं उनको उदार बुद्धि वैद्य जाने इसप्रकार त्रिविधरोगविज्ञा-नीय विमानमें भावोंका मुनिने वर्णन करा है ॥

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे त्रिविधरोगविशेषविज्ञानीयं समाप्तम्।

रोगज्ञानानंतरचिकित्सा।

आदावंते रुजाज्ञाने प्रयतेत चिकित्सकः।

१ जिस औषध अन्न और विहारसे रोगीको सुखहो उसको उपशय और सात्म्य कहते हैं और इससे विपरीतको अनुपशय और असात्म्य कहते हैं ॥

भेषजानां विधानेन ततः कुर्याच्चिकित्सितम् ॥

अर्थ–वैद्य प्रथम रोगकी परीक्षामें यत्नकरे फिर औषधोंके विधान करके चिकित्सा करना चाहिये।

सबरोगोंकेनामनजाननेमेंअलज्जत्व।

विकारनामाकुशलोनजिह्नियात्कदाचन।
नहि सर्वविकाराणां नामतोस्ति ध्रुवास्थितिः ॥

अर्थ–वैद्य रोगका नाम न जाननेपर कदाचित् लज्जा न करे, क्योंकि संपूर्ण रोगोंकी नामकरकेही परीक्षा नहीं करी, अर्थात् अनेकानेक रोग इससंसारमें विना नामके दीखते हैं।

अनुक्तदोषोंमेंलक्षणद्वाराचिकित्साकीआज्ञा।

नास्तिरोगोविनादोषैर्यस्मात्तस्माच्चिकित्सकः।
अनुक्तमपिदोषाणां लिंगैर्व्याधिमुपाचरेत् ॥

अर्थ–विनादोषोंके रोग नहींहो इसीसे वैद्य, जो दोष शास्त्रमें नहीं कहे उनदोषोंको रोगीके उपद्रवोंसे जानके चिकित्साकरे।

असाध्यरोगीकीचिकित्साकानिषेध।

येनकुर्वंत्यसाध्यानां चिकित्सा ते भिषग्वराः।
अतो वैद्यः श्रमः कार्यः साध्यासाध्यपरीक्षणे ॥

अर्थ–जो असाध्य रोगीका यत्न नहीं करते वोही वैद्योंमें श्रेष्ठ हैं अतएव वैद्यको उचित है कि, साध्यासाध्यकी परीक्षामें श्रम करे॥

उत्पन्नहोतेही चिकित्साकरनेकाहेतु।

यथास्वल्पेनयत्नेन छिद्यते तरुणस्तरुः ॥
सएवातिप्रवृद्धस्य छिद्यतेऽतिप्रयत्नतः ॥

अर्थ–जैसे तरुणवृक्ष अर्थात् नवीनोत्पन्नवृक्ष थोडे यत्न करने परही काटा जासक्ता है, परंतु जब वोही बढकर शाखाप्रशाखाओंकरके बढजाता है तब उसका काटना बडाकठिन हो जाता है, उसीप्रकार रोग प्रगटहोते ही कुछ थोडीसी चिकित्सासे दूरहोसक्ता है, परंतु जब रोगबढके बद्धमूल होजाता है फिर उसका दूरकरना बडा कठिन है॥

औषधकीआवश्यकता।

आयुष्मान् पुरुषो जीवेत्सव्यथो भेषजं विना।
भेषजेन पुनर्जीवेत्स एवहि निरामयः ॥

अर्थ-जिसकी दीर्घावस्थाहै यदि वो रोगग्रस्तहो औषध न करे तो वो दुःख सहित जीता है और यदि वही औषध करे तो रोगरहित हो आनंदसे जीवे। तात्पर्य यह है कि, दीर्घ आयुवाला बिना औषधके दुःखी रहता है और औषध के करनेसे रोगरहित जीवन पाता है ॥

नचौषधीनामपिसर्वथैव प्रभावहानिःपरिकल्पनीया।
फलंप्रयात्यूर्ध्वमधस्त्रिवृच्च प्रत्यक्षतः कस्यनसिद्धिमेतत् ॥

अर्थ- इसप्राणीको उचित है कि, औषधोंमें सर्वथा [कलिदोषसे] प्रभाव हानीकी कल्पना नकरे [अर्थात् अब कलियुगमें ये औषध अपना प्रभाव नहीं दिखाती ऐसाविचार कदाचित् न करे] क्योंकि मैनफलके खानेसे उलटी होती ही है और निसोथ खानेसे दस्तहोते यह बात प्रत्यक्षमें किसको सिद्ध नहीं है?अर्थात् सबजानते हैं तथा जमालगोटा, इन्द्रायणके फल, चोक ये सब औषध अपना फलदिखाती हैं इसी कारण औषधोंके गुणमें किसीको भी संदेह नहीं करना ॥

यदि जो औषधके गुण हैं वो गुण नहोवे तो जानना कि, येदवाई पुरानी है अथवा इसके प्रयोगमें कुछ नकुछ विपरीतता आगई है या इसप्राणीकी प्रकृति के अनुसारनहीं है इत्यादि करणोंसे औषध गुण नहीं करती; परंतु मूर्खमनुष्य अपने मूर्खता पर तो देखते नहीं व्यर्थ औषधको दोषदेतेहैं ॥

सतिचायुषिनोपायंविनोत्थातुंक्षमोरुजी।
दर्शितश्चात्रदृष्टांतः पंकमग्नोमहागजः ॥

अर्थ-आयुष्यमानभी रोगी विना उपायके रोगसे नहीं उठसके, इसमें दृष्टांत है कि, जैसे कीचमें फँसा हुआ हाथी विना यत्नके नहीं निकलसक्ता उसीप्रकार रोगी-विना यत्नके अच्छा नहीं होता। यहाँ रोगी है सो हाथी है और रोगहै सोई कीचड है, उसमें फँसेको औषध देना मानो उस कीचडसे निकालनेका उपाय है ॥

सतिचायुषिनष्टःस्यादामयैश्चचिकित्सितः।
यथासत्यपितैलादौदीपोनिर्वातिवात्यया ॥

अर्थ–दीर्घावस्थावालाभी रोगी रोगकी विना चिकित्सा (इलाज) करे नष्ट होजाता है इसमें दृष्टांत है कि, जैसे तेल और बत्ती होनेपर भी हवाके वेग करके दीपक बुझ जाता है, यहाँ मनुष्यकी देहही दीपक है और आयुरूप तेल है समयरूप बत्ती तामें जीवरूप ज्योति है और रोगरूप पवन इस जीवरूप दीपकको बुझाय देती है जैसे उस दीपकको रक्षामें रखनेसे नहीं बुझे इसीप्रकार इस देहकी रक्षा करनेसे अकाल मृत्यु नहीं हो ।

यथासत्यपितैलादौदीपंनिर्वापयेन्मरुत् ।
एवमायुष्ययुक्तंचदेहिंसंत्यागंतुमृत्यवः ॥

अर्थ-पूर्वोक्त वाक्यको दृष्टांत देकर फिर पुष्ट करते हैं जैसे तैल वाती आदि रहनेपर भी दीपकको पवन बुझादेती हैं इसीप्रकार दीर्घ आयु होनेपरभी आगंतुज मृत्यु इसप्राणीको नाशकर देती है ॥

दोषागंतुनिमित्तेभ्योरसमंत्रविशारदौ ।
रक्षेतांनृपतिंनित्यंयत्नाद्वैद्यपुरोहितौ ।

अर्थ–इसीवास्ते शास्त्रमें लिखा है कि, दोष जन्यव्याधि और आंगतुज व्याधियोंसे रस और मंत्रके ज्ञाता (जाननेवाले) वैद्य और पुरोहित राजकी रक्षा करे ॥

रोगज्ञानमेंअभ्यासकोमुख्यत्व ।

अभ्यासात्प्राप्यतेदृष्टिः कर्मसिद्धिप्रकाशिनी ।
रत्नादिसदसज्ज्ञानं नशास्त्रादेवजायते ॥

अर्थ–अभ्यास (वारंवार चिकित्साकर्ममें प्रवृत्त होने) से कर्मसिद्धि प्रकाशकरता दृष्टी होती है, अर्थात् चिकित्सा करनेका ज्ञान होता है, इसमें दृष्टांत है कि, जैसे हीरापन्ना आदि रत्नोंके सच्चे झूंठेका ज्ञान जैसे शास्त्रके पढनेसेही नहीं होता किंतु उसमें अभ्यास करनेसे होता है इसीप्रकार वैद्य विविधव्याधि चिकित्सामें जाने ॥

दृष्टापचारजः कश्चित्कश्चित्पूर्वापराधजः ।
तत्संकराद्भवत्यन्योव्याधिरेवंत्रिधास्मृतः ॥

अर्थ–अब त्रिविध व्याधियोंको कहते हैं तहाँ कोई व्याधि दृष्टापचारज (इस लोकमें व्याधिके कारणोंसे होनेवाली) है और कोई पूर्वापराधज

(पूर्वजन्मके करे अशुभ कर्मोंसे हुए) है और तीसरे इन दृष्टापचारज और पूर्वापराधजके मिलनेसे होते हैं इसप्रकार रोग तीन प्रकारके हैं ॥

यथानिदानंदोषोत्थैःकर्मजोहेतुभिर्विना।
महारंभोल्पकेहेतावातंकोदोषकर्मजः ॥

अर्थ--तहां दोषजन्यरोग अपने २ निदानसे प्रगट होते हैं (जैसे वातके रूक्ष लघु आदि कारण हैं इनसे जो रोग प्रगटे वो वातजन्य जानना इसीप्रकार पित्त और कफजन्य रोगोंको भी समझना चाहिये) और जो दोषोंके कारण विनाही प्रगट होवे वो कर्मजन्य रोग जानना और जिसमें थोडे दोषोंके कुपित होनेसे बडीभारी व्याधि प्रगट हो उसको दोषकर्मज व्याधिकहते हैं ॥

दूष्यं देशं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः । सत्वं सात्म्यं तथा हारभवस्थाथपृथग्विधाः ॥ सूक्ष्मासूक्ष्माःसमीक्ष्यैषा दोषौषधनिरूपणे । यो वर्त्तते चिकित्सायां न सस्खलति जातुचित् ॥

अर्थ-दोष औषध निरूपणमें जो वैद्य दूष्य, देश, बल, काल, अग्नि, प्रकृति, अवस्था, सात्म्य, आहार और दूष्यादिकोंकी सूक्ष्म और बडी अवस्थाको देख (विचार) कर चिकित्सा करता है वह कदाचित् नहीं स्खलन होता अर्थात् कदाचित् नहीं भूले ॥

गुर्वल्पव्याधिसंस्थानंसत्वदेहबलाबलात् ।
दृश्यतेप्यन्यथाकारं तस्मिन्नवहितोभवेत् ॥

अर्थ-वैद्य,सत्व देह और बलाबलके कारण गुरु और अल्प व्याधियोंकी आकृति अन्यथा दीखती है उसमें सावधान होवो।जैसे अधिक सत्व और उत्कृष्ट देहबलवाले प्राणीके होने वाले भारी भी रोग हलके मालूम होते हैं कारण कि, उसके देहमें सत्व बल ये अधिक हैं । इसीप्रकार हीनसत्व हीनदेह हीनबल वालेके उत्पन्न हुई व्याधि हलकी भी बडी भारी दीखे है।

गुरुंलघुमितिव्याधिंकल्पयंतुभिषग्ध्रुवः[1] ।
अल्पदोषाकलनयापथ्येविप्रतिपद्यते ॥

अर्थ-जो कुत्सित वैद्य है वो व्याधिके संस्थान (स्वरूप,मात्रके देखते

१ भिषक् ध्रुवम् इति पाठांतरम् ॥

ही भारी रोगको हलका समझते हैं, जब हीन दोष समझा तो मात्रा भी हलकी देते हैं अतएव वो मात्रामें मोहको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार हलकी व्याधिको बडी भारी विचारके मात्रा देनेमें मोहको प्राप्त होते हैं॥

ततोल्पमल्पवीर्यंवा गुरु व्याधौप्रयोजितम् ।
उदीरयेत्तरांरोगान् संशोधनमयोगतः ॥

अर्थ-अब कहते हैं कि, अल्पमात्र अल्पवीर्य ऐसी संशोधनरूप औषध प्रबल रोगोंमें दीनीहुई हीनयोग होता है, इसवास्ते रोगोंको अत्यंत बढाती है। इससे तो औषध न देनाही ठीक है जैसे पुत्रके कार्य न करनेसे अपुत्र कहाता है उसी प्रकारका अयोग ही हीनयोग कहलाता है ॥

शोधनंत्वतियोगेनाविपरीतंविपर्यये ।
क्षिणुयान्नमलानेव केवलंवपुरस्यति ॥

अर्थ-लघुव्याधिमें विपरीत शोधन अर्थात् अत्यंत वीर्यवान् और अधिक औषधी देवे, वह अतियोगके वश मलोंकोही नहीं क्षीणकरे है किंतु देहको भी नष्टकरे है ॥

अतोभियुक्तःसततंसर्वमालोच्यसर्वथा ।
यथायुंजीतभैषज्यमारोग्याययथाध्रुवम् ॥

अर्थ-इसकारण अर्थात् रोगोंकी गति दुर्विज्ञेय होनेसे निरंतर आयुर्वेद पठन पाठन अनुष्ठानमें तत्पर वैद्य सब दूष्यादि वस्तुओंको विचार इसप्रकार औषध देवे कि, जैसे आरोग्य अवश्य होवे ॥

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैर्व्याधिज्ञानं त्रिधा मतम् ।
दर्शनान्मूत्रजिह्वाद्यैःस्पर्शनान्नाडिकादिभिः ॥
प्रश्नैःदूतादिवचनादितित्रेधासमुच्यते ॥

अर्थ-रोगका ज्ञान तीन प्रकारसे होता है जैसे दर्शन (देखना) स्पर्शन (छूना) और प्रश्न (पूँछना) तहाँ मूत्र और जिह्वा आदिशब्दसे मल देहकी आकृति आदि देखने करके जाने। नाडी आदिको छूनेसे जाने और दूतादिके वचन पूँछने करके वैद्य जाने इस प्रकार परीक्षा तीन प्रकारकी है ॥

शारीरामानसागंतुसहजाव्याधयोमताः ।
शारीराज्वरकुष्ठाद्याःक्रोधाद्यामानसामताः ॥

आगंतवोभिशापोत्था सहजाक्षुत्तृषादयः ॥

अर्थ–तहां व्याधि चारप्रकारकी है १ शारीरी २मानसी ३आगंतु और ४ सहज । तहां ज्वरकुष्ठादिक शारीरी व्याधि है । क्रोध लोभादिक मानसिक व्याधि है। अभिशापजन्य व्याधि आगंतुज है और भूख, प्यास, निद्राआदि सहज व्याधि कहलाती है ॥

रोगोंकेभेद ।

तेचस्वाभाविकाः केचित्केचिदागंतवः स्मृताः ।
मानसाःकेचिदाख्याताःकथिताःकेऽपिकायिकाः ॥

अर्थ–उनरोगोंमें कोई स्वाभाविक रोगहै। कोईआगंतु और कोई मानसिक एवं कोईरोग कायिक अर्थात् देहसे संबंध रखते हैं ॥

त्रिविधव्याधि ।

कर्मजाः कथिताः केचिद्दोषजाःसंतिचापरे ।
कर्मदोषोद्भवाश्चान्येव्याधयास्त्रिविधाः स्मृताः ॥

अर्थ–व्याधी तीन प्रकारकी हैं जैसे एकतो कर्मज (जो पूर्वजन्मोपार्जितकर्मसे होती है) दूसरी दोषज (जो वातादि दोषोंके कुपित होनेसे) होती है और तीसरी कर्म और दोष दोनों करके त्रिविधव्याधियोंकी चिकित्सा होनेवाली, ये तीनभेद हैं ॥

त्रिविधव्याधियोंकीचिकित्सा ।

कर्मक्षयात्कर्मकृतादोषजाः स्वस्वभेषजैः ।
कर्मदोषोद्भवायांतिकर्मदोषक्षयात्क्षयम् ॥

अर्थ–कर्मकृत व्याधि कर्मके जीर्ण होनेसे शांति होतीहै । दोषजन्य

---

१ स्वाभाविक रोग भूख,प्यास, निद्रा, वृद्धावस्था और मृत्यु आदिहै, अथवा अपने स्वभावसे उत्पत्ति होवे उसके स्वाभाविक कहिये सहज रोग वो जन्मांधादिक जानने । २ जो किसी प्रकारकी चोट लगनेसे होवे वो आगंतुज है । ३ काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अभिमान, दीनता, पिशुनता, शोक,विषाद, हर्ष, इर्ष्या, असूया और मात्सर्यादिक ये मानसिक व्याधिहैं । ४ अथवा उन्माद, अपस्मार, भ्रम, मोह, तम संन्यासादिक जानने । ५ पूर्वजन्मोपार्जित दुष्टकर्म जन्यव्याधि ॥

व्याधि अपनी २ पृथक् २ औषध करनेसे शांति होती है और कर्मदोष दोनोंसे प्रगट व्याधिकर्म और दोष दोनोंके क्षयहोनेसे दूर होती है ॥

पुनः त्रिविधव्याधि ।

साध्यायाप्याअसाध्याश्चव्याधयस्त्रिविधाः स्मृताः ।
सुखसाध्यःकष्टसाध्यो द्विविधः साध्यउच्यते ॥

अर्थ–साध्य–याप्य और असाध्य ऐसे व्याधि तीन प्रकारकी हैं । अब कहते हैं कि, साध्यव्याधिके दोभेद, एक सुखसाध्य–दूसरी कष्टसाध्य ॥

याप्यकेलक्षण ।

यापनीयंतुतंविद्यात्क्रियांधारयतेहियत् ।
क्रियायांतुनिवृत्तायांसद्योयश्चविनश्यति ॥

अर्थ–अब याप्यके चिह्न कहते हैं कि, जो चिकित्साकी क्रियाको धारण करे उसको याप्य अर्थात् दूर होने योग्य व्याधि जाननी और औषधोपाय न चले तो वो रोगी शीघ्रमरे उस रोगीको याप्य जानना ॥

प्राप्ताक्रियाधारयतिसुखिनंयाप्यमातुरम् ।
प्रपतिष्यदिवागारंस्तम्भोयत्नेनयोजितः ॥

अर्थ–याप्य रोगीको प्राप्तहुई क्रिया धारण करती है अर्थात् जबतक उसका यत्नहुआ करेगा तबतक रोगी नहीं मरे, जैसे गिरतेहुए घरमें अडवार अथवा किसी पत्थर वगेरहका नीचे सहारा लगादेनेसे वह घर नहींगिरे॥

साध्यायाप्यत्वमायांति याप्याश्चासाध्यतां तथा ।
घ्नंति प्राणानसाध्यस्तु नराणामक्रियावताम् ॥

अर्थ–विना यत्नकरनेवाले मनुष्योंके साध्यरोग याप्यहोजाते हैं और याप्यरोग असाध्य होते हैं, एवं असाध्य रोग इन प्राणियोंके प्राणोंको हरण करते (इसीसे मनुष्य मात्रको उचित है कि, रोगके उत्पन्न होतेही उसका यत्नद्वारा निवारण करे) ॥

याप्यत्व ।

याप्यःकेचित्प्रकृत्यैवकेचिद्याप्याउपेक्षया ।
प्रकृत्याव्याधयोऽसाध्याकेचित्साध्याउपेक्षया ॥

अर्थ–कोई रोगतो प्रकृतिसेही याप्य होते हैं और कोई रोगकी उपेक्षा

से होते हैं। कोई व्याधि प्रकृतिसे ही अर्थात् उत्पन्न होते ही असाध्य होती है और कोई उपेक्षा अर्थात् उसका यत्न नहीं करनेसे होती है॥

साध्योयमितियःपूर्वंनरोरोगमुपेक्षते।
सकिंचित्कालमासाद्यमृतएवावदृश्यते॥

अर्थ–यह रोग अभीतो साध्य है इसप्रकारजो उसकी उपेक्षा करदेता है, वह थोडेही कालमें मरगया ऐसा दीखता है॥

सप्तविधव्याधि।

स्वभावजाश्चदोषोत्थाः सहजाश्चापचारजाः।
आगंतवःप्रभावोत्थाः कालजाश्चेतिसप्तधा॥

अर्थ–१ स्वभावज २ दोषज ३ सहज ४ अपचारज ५ आगंतुज ६ प्रभावोत्थ और ७ कालज ऐसे व्याधि सात प्रकारकी है॥

स्वभावजाः समाख्यातावार्द्धक्यंक्षुत्तृषादयः । दोषो त्थाश्चाऽनृताहाराविहारादिसमुद्भवाः॥सहजारक्तरेतस्थ-दोषसंभारसंभवाः।गर्भेपचारजास्तेस्युः कुब्जावामनता-दयः। आगंतवोऽग्निवाय्वादिभूतावेशादिसंभवाः। प्रभा वोत्थासुरक्षोणिसुरगुर्वादिशापजाः॥ वर्षाशीतातपाद्यु-त्थाव्याधयः कालजामताः॥

अर्थ–तहां भूख, प्यास और बुढापा आदि स्वभावज रोग हैं। मिथ्याआहारसे प्रगट होनेवाली व्याधि दोषज कहाती है। मातापिताके रुधिर और वीर्यदोषसे जो रोगप्रगट होवे वो सहजव्याधि कहलाती है। गर्भवतीके विरुद्धाचरणसे जो कुबडा बोनाआदि व्याधि हैं उनको अपचारजन्य कहते हैं। अग्नि,पवन आदि और भूतावेशसे होनेवाली व्याधियोंको आगंतव कहतेहैं ब्राह्मण देवता गुरुआदिके शापसे होनेवाली व्याधियोंको प्रभावोत्थ कहते हैं और वर्षा (वारिश) सरदी और गरमीसे जो प्रगट उन व्याधियोंको कालजन्य कहते हैं॥

उपद्रवकेलक्षण।

रोगारंभकदोषस्यप्रकोपादुपजायते।
योऽन्योविकारः सबुधैरुपद्रवइहोदितः॥

अर्थ–जो रोगके उत्पन्न करनेवाले वातादिदोष हैं उनके कुपित होने-

से जो रोगमेंभी दूसरा विकार उत्पन्न होता है उसको उपद्रव कहते हैं। उदाहरण, जैसे ज्वरमें तृषा अनिद्रा आदि उपद्रव होते हैं॥

अरिष्टकेलक्षण।

रोगिणोमरणंयस्मादवश्यंभाविलक्ष्यते।
तल्लक्षणमरिष्टंस्याद्रिष्टंचापितदुच्यते॥

अर्थ-जिन लक्षणोंसे रोगियोंका मरण अवश्य सूचितहो उनको अरिष्ट अथवा रिष्ट ऐसे कहते हैं॥

नजंतुकश्चिदमरः पृथिव्यामेवजायते।
अतोमृत्युरवार्यःस्यात्किंतुरोगान्निवारयेत्॥

अर्थ-इस पृथ्वीमें कोई प्राणीअमर(जो न मरे ऐसा) नहीं है अर्थात् सब एकदिन मरेंगे इसीवास्ते मृत्यु निवारण नहीं होसकती किंतु रोग निवारण होसक्ते हैं। तात्पर्य यह हैं कि, वैद्य रोगरहित करदेवे जैसे मरते समय कंठमें कफ घडघडाता है तो वैद्यकी चातुर्यता यह है कि, ऐसी औषध देवे कि कफका बोलना बंद हो जावे फिर वो रोगी चहिये इसीक्षणमें मरजाय॥

मृत्युसंज्ञाऔरकालसंज्ञा।

एकोत्तरं मृत्युशतमथर्वाणः प्रचक्षते।
तत्रैककालसंयुक्तः शेषास्त्वागंतवः स्मृताः॥

अर्थ-अथर्वाण ऋषिने १०१ एकसौ एक मृत्युकही हैं तिनमें एककाल संज्ञक मृत्युहै बाकी आगंतु संज्ञक मृत्युकही हैं। तहां कालसंज्ञक मृत्यु-आयुष्यके अंतमें प्राणियोंको अवश्य मारेगा वह सब उपायोंसेभी अवार्य है तथा ब्रह्मादिकोंकी भी आयु अंतमें हरण करता है जैसे लिंगपुराणमें कार्तिकेयके प्रति श्रीशिवका वाक्य है॥

ममायुर्ग्रसतेकालः कुतः पुत्ररसायनम्॥

अर्थ-हे पुत्र! यह काल मेरी भी आयुको ग्रसता है जिनको प्राणी रसायन कहता है। सो कहां है। अतएव जो कालसंज्ञक मृत्यु है वह अवश्य होकर रहती है और जो आगंतुसंज्ञक जैसे, विषभक्षण अजीर्णमें अत्यंत भोजन दुष्ट देशका जलपीना, अत्यंत बलवान्से व्याघ्र,वनका भैंसा मतवारा हाथी आदिसे लड़ना, सर्पके साथ खेलना,अत्यंत ऊंचे वृक्षपर चढना, हाथोंसे तैरकर बडीभारी नदीको पारजाना, अकेला रात्रिमें जाना इत्यादि जानना ये यत्नकरनेसे रुकसक्ती हैं॥

शीतेशीतप्रतीकारमुष्णेतूष्णनिवारणम्।
कृत्वा कुर्यात् क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत् ॥

अर्थ–शरदीके रोगमें शरदीके निवारण कर्त्ता गरम और गरमीके रोगमें गरमीके निवारणकर्त्ता शीतल औषध करके प्राप्तक्रियाको करे, किंतु क्रिया-के समयको नष्ट न करे, अर्थात् जो समय क्रिया करनेका शास्त्रने निश्चय कियाहै, वह उसी समय क्रियाकरनी, आगे पीछे नहीं।

विकारेऽल्पे महत्कर्म क्रियालध्वी गरीयसि।
द्वयमेतदकौशल्यं कौशल्यं युक्तकर्मता ॥

अर्थ–छोटेसे रोगमें बडीभारी क्रियाका करना अर्थात् अधिक और उत्कट औषधदेना, एवं बडेभारी रोगमें छोटी क्रिया अर्थात् थोडीदवा और अल्पगुण वाली देना, ये दोनों कर्म वैद्यकी मूर्खतासूचक हैं। कुशलता वैद्यकी उसीमें है कि, यथायोग्य कर्म करना ॥

क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत्।
पूर्वस्यां शांतिवेगायां न क्रिया संकरो हितः ॥

अर्थ–जो रोगीके प्रति क्रियाकरे यदि वह अपना गुण न दिखलावे तो दूसरी क्रियाकरे, अर्थात् दूसरी औषध देवे, परंतु जब पहली औषधका वेग शांति होलेवे तब दूसरीदेवे, क्योंकि संकर(विपरीत)क्रिया रोगीको हितकारी नहीं होती ॥

क्रियाभिरल्परूपाभिर्नक्रियासंकरोहितः।
ताभिस्तु भिन्नरूपाभिः सांकर्यं नैवदुष्यति ॥

अर्थ–वैद्यको एकसी दो चिकित्सा एकही कालमें नहीं करनी चाहिये, वो हितकारी नहीं होती, परंतु यदि दोनों भिन्न२रूप अर्थात् पृथक् २रूप वाली होवे तो वो संकर दोषकारक नहीं होती ॥

उत्पद्यते च सावस्था दोषकालबलं प्रति।
यस्यां कार्यमकार्यं स्यात्कर्मकार्यं विवर्जितम् ॥

अर्थ–देश, काल, बल इनकी अवस्था देखके वैद्य रोगीको औषध देनेसे यदि विकृति देखे तो वह औषध वैद्यको त्यागदेनी चाहिये। इसका यह तात्पर्य है कि, बहुतसे रोगोंमें देश, काल और बलके अनुसार कोई करनेयोग्य

कार्यतो न करने योग्य होजाता है और न करनेयोग्य कार्य करनेयोग्य होजाता है । इस बातका विचार वैद्यको करलेना चाहिये ॥

अच्छेहोनेपरभीपथ्यकरनेकीआज्ञा ।

निवृत्तोऽपिपुनर्व्याधिः स्वल्पेनायातिहेतुना ।
दोषैर्मार्गीकृतेदेहेशेषः सूक्ष्मइवानलः ॥

अर्थ-दोषोंकरके रास्ता करी हुई देहमें दूरहुईभी व्याधि थोडेसेभी कुपथ्य करनेसे फिर लौट आती है,जैसे बहुत सूक्ष्म अग्निकी चिनगारी रहने पर फिर प्रज्वलित आग होजाती है ॥

कर्मदोषजऔरदोषजव्याधि ।

पुण्यैश्चभेषजैःशांतास्तेज्ञेयाः कर्मदोषजाः ।
विज्ञेयादोषजास्त्वन्येकेवलावाथसंकराः ॥

अर्थ-जो व्याधि पुण्य और औषधों करके शांत होवे वो कर्म और दोषजन्य जाननी अन्य व्याधि केवल दोषजन्यही होती है और कोई २ मिश्रित व्याधि होती है ॥

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षेतचरोगिणम् ।
रोगंनिदानप्राग्रूपलक्षणोपशयाप्तिभिः ॥

अर्थ-दर्शन,स्पर्शन और प्रश्नसे,रोगीकी परीक्षाकरे तथा निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और संप्राप्ति इस निदानपंचक द्वारा रोगकी परीक्षा वैद्यको करनी चाहिये ॥

अब रोगपरीक्षा करनेका क्रम लिखते हैं ॥

वैद्यको उचित है कि, एक ऐसी पुस्तक बनावे कि, जिस्में ८खाने हों । उनमें जिसरोगीका यत्नकरे उसकी व्यवस्था इस प्रकार लिखलिया करे।

१ पहले खानेमें रोगीका नाम तथा उपनाम लिखे ॥
२ दूसरेमें उसकी अवस्था लिखे ॥
३ तीसरेमें ज्ञाति और वर्णन तथा उसका रुजगार लिखे ॥
४ चौथेमें विवाहित है या कारा है वह लिखे ॥

५ पांचवेमें उसका जन्म और वर्तमानमें रहनेका स्थान लिखे ॥

६ छठेमें रोगका नाम और उसके उत्पन्न होनेकी तिथिवार संवत लिखे ॥

७ सातवेमें रोगीके चिकित्सा आरंभका दिनलिखे ॥

८ आठवेमें रोगीकी अवस्था आदि लिखनी ॥

अब लिखते हैं कि, वैद्यको रोगीसे यह पूछना चाहिये कि, तुम्हारे यह रोग कबसे हुआ है और उत्पन्न होनेमें इसकी क्या व्यवस्था थी अर्थात् यह रोग एकसाथ बढा है या धीरेधीरे तथा किस प्रकार बढा ॥

दूसरे वैद्यको पूछना कि, इसरोगीके कुलमें कोई पैतृज रोगतो नहीं है तथा इसके माता पिताकी मृत्यु कौनसी अवस्थामें हुई और वो कौनसे रोगसे मरे ॥

तथा इसकी जठराग्नि कैसी है और शीतला, फेंफड़ेके रोग हुए होतो उनको भी पूछे तथा स्त्रियोंमें ऋतुका हाल पूछे अर्थात् ऋतु कुछ पीडाके साथ तो नहीं हो, एवं समय २ परहोता है कि, कुछ हेरफेरसे होता है और थोडाहोता है या अधिक ॥

फिर यह तलाशकरे कि, प्रथम यह रोग कैसे आया और किसकी दवाई करी उस दवाईने क्या फायदा और नुकसान करा ॥

फिर रोगीकी अवस्थाकी परीक्षा एवं मल, मूत्र, जिव्हा, श्वास, त्वचा, स्वर, नेत्र, मुख, बलाबल और नाडीआदि की परीक्षा सावधानीके साथ करे तो रोगका ज्ञान भलेप्रकार होवे इसमें संदेह नहीं है ॥

औषधं मंगलं मंत्रमन्याश्चविविधाःक्रियाः ।
यस्यायुस्तत्रसिध्यंति नसिद्ध्यंतिगतायुषि ॥

अर्थ–औषधी मंगल (स्वस्तिवाचन पुण्याहवाचनादि) मंत्र और अनेकप्रकारकी क्रिया (जादू टोना टोंटकाआदि) ये सब जिसकी आयुबाकी है उसजगे चलती है औरगतायु मनुष्य परनहीं चले ॥

आरोग्यलक्षण ।

मंगलाचारसंपन्नपरिवारस्तथातुरः । श्रद्धानोऽनुकूलश्च प्रभूतद्रव्यसंग्रहः ॥ सत्वलक्षणसंयुक्तोभक्तिर्वैद्यद्विजातिषु । चिकित्सायामनिर्वेदस्तदारोग्यस्यलक्षणम् ॥

अर्थ–मंगलाचारसंपन्न, परिवार (कुटंब) के प्राणियों करके युक्त श्रद्धा-

वाला, अपने, अनुकूल बहुतसा द्रव्यसंग्रहवाला,सत्वगुणी,वैद्य और ब्राह्म-णोंका भक्त और चिकित्सामें अरुचि न लानेवाला, ऐसा रोगी होवे तो जानना कि, यह आरोग्य होयगा इसमें संदेहनहीं ॥

दीर्घतीव्रामयग्रस्तं ब्राह्मणं गामथापिवा।
दृष्ट्वापथिनिरातंकमकृत्वाब्रह्महाशुचिः॥

अर्थ–जो वैद्य,मार्गमें तीव्ररोगसे ग्रस्त ब्राह्मण अथवा गौको रोगी देखे उसकी बिना चिकित्साकरे वैसेही चलाजावे उसको ब्रह्महत्याका पाप लगकर अपवित्र होता है ॥

॥ इति चिकित्सापादचतुष्टयवर्णनं समाप्तम् ॥

अथ

ज्वरप्रकरणम् ।

शिष्य—रोग कितने हैं ?

गुरु--रोग असंख्यात अर्थात् बेशुमारी हैं, परंतु उसमेंसे मुख्य २ जो प्राचीन आचार्योंने संग्रह करे हैं उनको मैं कहताहू तूं सुन ॥

रोगसंख्या हेमाद्रौ ।

ज्वरातिसारो ग्रहणीह्यर्शो जीर्णविषूचिका । सालसाच विलंबी च कृमिरुक्पांडुकामलाः ॥ हलीमकं रक्तपित्तं राजयक्ष्मा उरःक्षतम् । कासो हिक्का तथा श्वासःस्वर-भेदस्त्वरोचकः ॥ छर्दिस्तृष्णा च मूर्च्छा च तथापाना-त्ययादयः । दाहाख्यश्च तथोन्मादो ह्यपस्मारोऽनिला मयः ॥ वातरक्तमुरुस्तंभमामवातोऽथशूलरुक् । पक्तिजं शूलमानाहमुदावर्तोथ गुल्मरुक् ॥ हृद्रोगो मूत्रकृच्छ्रंच मूत्राघातस्तथाश्मरी । प्रमेहोमधुमेहश्च पिडिकाश्च प्रमे-हजाः ॥ मेदो दोषोदरं शोथो वृद्धिश्च गलगंडकः । गंड-मालापचीग्रंथीह्यर्बुदं श्लीपदं तथा॥ विद्रधिव्रणशोथौ च द्वौव्रणौ भग्ननाडिकौ । भगंदरोपदंशौ च शूकदोषास्त्व-गामयः॥शीतपित्तमुदर्दश्चोत्कोठकश्चाम्लपित्तकम्॥विस-र्पश्च सविस्फोटस्तथैव च मसूरिका॥ क्षुद्रास्यकर्णनासा क्षिशिरस्त्रीबालकामयाः॥विषंचेत्ययमुद्देशःसंग्रहेस्मिन्प्रकीर्त्तितः

अर्थ--१ ज्वर २ अतिसार(दस्तोंकी बिमारी)३ संग्रहणी (पेचिस)४बवा-सीर ५ अजीर्ण (बदहजमीकारोग) ६ विशूचिका (हैजा) ७ अलस ८ बिलंबिका (ये दोनों रोग उसी हैजाके भेद हैं,)९ कृमिरोग (देहके

बाहर भीतर जो कीडे पडजाते हैं) १० पांडुरोग (पीलियाका रोग) ११ हलीमक (पीलियाका भेद) १२ रक्तपित्त (जिस रोगमें मुख और गुदासे खून गिरता है) १३ राजरोग (खई) १४ उरःक्षत (छातीका घाव) १५ खांसी १६ हिचकी १७ श्वास (दमाका रोग) १८ स्वरभेद (जिसमें आवाज बैठ जाती है) १९ अरुचि (भोजनमें नफरत होना) २० छर्दि (रद्द होनेका रोग) २१ तृष्णा (प्यासका रोग) २२ मूर्च्छा (बेहोशी) २३ पानात्यय (जो बहुत दारूके पीनेसे होते हैं) २४ दाह (जलनकारोग) २५ उन्माद (पागलपना) २६ अपस्मार (मृगीका रोग) २७ वार्दाके रोग २८ वातरक्त (जिस्से देहमें काले २ चकत्ते पडजाते हैं) २९ उरुस्तंभ (जांघ रहकर जिस्से डोलना फिरना बंदहो जाताहै) ३० आमवात रोग (आंउका गिरना) ३१ शूलरोग (पेटमें दर्द ऐंठेका चलना) ३२ परिणाम शूल (जो दर्द भोजन करनेके उपरांत होता है) ३३ अफरा ३४ उदावर्त्त (जो मलमूत्रादिके रोकनेसे होताहै) ३५ गुल्म (गोलेका रोग) ३६ हृदय (छातीका रोग) ३७ मूत्रकृच्छ्र (पेसाबका रुकना) ३८ मूत्राघात (पेसाबका पीडाके साथ उतरना इसीकाभेद सुजाक का रोग है) ३९ अश्मरी (पथरीका रोग) ४० प्रमेह (जरियान्का रोग) ४१ मधुमेह (जिस्से पेसाब सहतके मानिंद निकले) ४२ पिडिका (इसी प्रमेह रोगके कारण जो बदनमें फुंसी होती है) ४३ मेदरोग (जिस्से यह मनुष्य बेसुमार मोटा होजाता है) ४४ उदर (जलंधर रोग) ४५ शोथ (सूजन वरम रोग) ४६ वृद्धि (पोते छिटकना) ४७ गलगंड (घेंघारोग जो अकसर पूरबके देशोंमें देखाजाता है) ४८ गंडमाला (जिसमें नाडके चारोतरफ गांठ और फोडे हो जावे) ४९ अपची (भरने फूटने वाली गांठ) ५० ग्रंथी (गांठका रोग) ५१ अर्बुद (बहुत दिनमें पकनेवाली गांठ) ५२ श्लीपद (पीलपाऊका भेद) ५३ विद्रधि (पेटका फोडा)५४ व्रणशोथ (घावकी सूजन) ५५ व्रण (घाव) ५६ नाडीव्रण (नासूरका फोडा) ५७ भग्नरोग (हड्डी आदिका टूटना) ५८ भगंदर (गुदाके ऊपर होनेवाला घाव) ५९ उपदंश (इन्द्रीकी बिमारी) ६० शूकदोष। (लिंगबढानेसे होने वालारोग) ६१ त्वचा (जिल्दके कोढ आदि रोग) ६२ शीतपित्त (पित्ती) ६३ उदर्द (पित्तीकाभेद) ६४ उत्कोढ (चकत्तोंका रोग) ६५ अम्लपित्त (जिस्में खट्टी डकारके साथ मुँहमें खट्टा पानी आवे)

६६ विसर्प (बहूत जल्दी फैलनेवाले फोडे) ६७ विस्फोट (फोडेन्कारोग) ६८ मसूरिका(शीतलाका रोग) ६९ क्षुद्ररोग (छोटे २रोग जैसे तिल मस्से खारुआआदि)७०मुखकेरोग७१कानके रोग ७२ नाककेरोग ७३ नेत्रकेरोग ७४ शिरके रोग७५ स्त्री (औरतोंके रोग) ७६बालकोंके रोग और७७ विष (जहरसे होने वाले) रोग, इतने रोग इस ग्रंथमें कहे हैं बाकी फिरंग-रोग, बदका रोग, नपुंसक इत्यादि सब रोगोंका निदानचिकित्सा इस ग्रंथमें विस्तारपूर्वक कहा जावेगा ॥

रोगनाम ।

गदोरुजोव्याधिरषाढपाप्मारोगामयातंकमयोंसघातः ।
रुडंधमंगार्त्तितमोविकारग्लानिःक्षयानार्जवमृत्युभृत्याः॥

अर्थ–अबरोगके नाम कहते हैं तहां गद, रुज, व्याधि, अषाढ, पाप्मा, रोग, आमय, आतंक,मय, अंसघात, रुट्, अंध, अंगार्त्ति, तम, विकार, ग्लानि, क्षय, अनार्जव और मृत्युभृत्य ये रोगके नामांतर हैं ॥

रोगीकेनाम ।

व्याधितोविकृतोग्लाष्णुर्ग्लानोमंदस्तथातुरः ।
अभ्रांतोभ्रामितोरुग्णश्चामयाव्यपटुश्चसः ॥

अर्थ–अब रोगीके नाम कहते हैं जैसे व्याधित, विकृत, ग्लाष्णु, ग्लान, मंद, आतुर, अभ्रांत, भ्रमित, रुग्ण, आमयावी, अपटु ये रोगीके नामांतर हैं ॥

रोगीकेलक्षण ।

उत्साहीद्विजदेवभेषजभिषग्भक्तोऽतिपथ्येरतो धीरोध-
र्मपरायणःप्रियवचोमानीमृदुर्मानदः । विश्वासीऋजुरा-
स्तिकःसुचरितोदातादयालुःशुचिः यःस्यात्काममवं-
चकःसविकृतोमुच्येतमृत्योरपि ॥

अर्थ–उत्साही ब्राह्मण, देव, औषध और वैद्य इनका भक्त, अत्यंत पथ्यसे चलने वाला, धीर, धर्मात्मा, मिष्टबोलने वाला, मानरहित, नम्रतायुक्त, औरको मानकादेने वाला, विश्वास रखनेवाला, सरल-स्वभावका, आस्तिक, पवित्र चरित्रवाला, दाता, दयालु, शुद्धतासे रहनेवाला और ठगवृत्तिकरके रहित ऐसा रोगी मौतसे भी बच जाता है, अतएव रोगीको उक्तगुण संयुक्त होना चाहिये ॥

आमव्याधिलक्षण।

आलस्यतंद्राहृदयाविशुद्धिदोषाप्रवृत्याकुलमूलभावैः।
गुरूदरत्वादरुचिसुप्तताभिरामान्वितंव्याधिमुदाहरांति ॥

अर्थ-आलस्य, तंद्रा, हृदयकी विशुद्धि अर्थात् चित्तमें अस्वास्थ्य और मलमूत्रका अवरोध, पेटका भारीपना, अरुचि, अंगोंका रहजाना, इत्यादि लक्षणोंसे आमयुक्त व्याधि जानना ॥

उसकायत्न।

आमंजयेल्लंघनकोष्णपेयाल्लघ्वन्नरूक्षोदनातिक्तयूषैः।
निरूहणैःस्वेदनपाचनैश्चसंशोधनैरूर्ध्वमधस्तथाच ॥

अर्थ-लंघन, मंदोष्णपेया, हलकेअन्न, रूखेअन्न, कडुएरस, मूंगका यूष आदि, निरूहवस्ती, स्वेदन, पाचन, रेचन और वांति, इत्यादि उपायोंसे आमव्याधिका नाश करे ॥

दोषत्रयकायत्न।

कफंतुरिपुवत्तीक्ष्णैर्वातंस्नेहेनमित्रवत्।
पित्तंजामातरमिव मधुरैःशीतलैर्जयेत् ॥

अर्थ-कफको शत्रुके समान तीक्ष्ण औषधोंसे जीते, वादीको मित्रके समान स्नेहनद्रव्य से जीते और पित्तको अपने जामाता (जमाई) के समान मधुर और शीतल पदार्थोंसे जीते ॥

औषधकेनाम।

भैषज्यंभेषजंजैत्रमगदोजायुरौषधम्।
आयुर्योगोगदारातिरमृतंचतदुच्यते ॥

अर्थ-अब औषधके नाम कहते हैं जैसे-भैषज्य, भेषज, जैत्र, अगद, अजायु, औषध, आयुयोग, गदाराति और अमृत ये औषधके नामांतरहैं।

औषधकेदोभेद।

भेषजंद्विविधंचतत्।
स्वस्थस्योजस्करंकिंचित्किञ्चिदार्त्तस्यरोगनुत् ॥

अर्थ-अब कहते हैं कि,वह चिकित्सा अर्थात् औषध दो प्रकारकी है,

एक तो नैरोग्य पुरुषको तेज-(पुरुषार्थ) के करनेवाली और दूसरी रोगीके रोगको नाश करनेवाली ॥

स्वस्थस्योजस्करंयत्तु तद्वृष्यंतद्रसायनम् ।
प्रायः प्रायेण रोगाणां द्वितीयं प्रशमे मतम् ॥
प्रायः शब्दो विशेषार्थोह्युभयं ह्युभयार्थकृत् ॥

अर्थ-अब दोनोंके भेदोंको, कहते हैं कि,जो स्वस्थ (नैरोग्य) पुरुषके तेज, बल, कांतिको बढावे वो वृष्य और रसायन है ।(वह इस चिकित्साखंडके अंतमें लिखेंगे) तथा दिनादिचर्याभी इसी ओजस्कर चिकित्सामें है यह प्रथम इस बृहन्निघंटुरत्नाकरके दूसरेभागमें लिख आये हैं । और दूसरी रोगीके रोगहरणकारी चिकित्सा है वह इसी चिकित्साखंडके प्रत्येक ज्वरादिरोगोंमें पृथक् २ लिखी जावेगी ॥ प्रायःयह शब्द विशेषार्थ वाचक है और उभयशब्द दोअर्थका वाचक है ॥

अभेषजंचद्विविधं बाधनंसानुबाधनम् ।

अर्थ-अभेषज (अर्थात् जो औषध नहीं है) वह दो प्रकारकी है एक-बाधन और दूसरी सानुबाधन ॥

अभेषजमितिज्ञेयं विपरीतंयदौषधम् ॥

अर्थ-जो औषधसे विपरीत कर्मकरे उसकोअभेषज ऐसे वैद्य कहते हैं॥

शिष्य-प्रथम ज्वर कहनेका क्या प्रयोजन है? ॥

गुरु-यह संपूर्ण रोगोंका राजा है अतएव प्रथम हम ज्वराधिकार कोही वर्णन करते हैं जैसे लिखा है ॥

यतः समस्तरोगाणांज्वरोराजेतिविश्रुतः ।
अतोज्वराधिकारोत्रप्रथमंलिख्यतेमया ॥

अर्थ-संपूर्ण रोगोंमें ज्वर राजा है इस प्रकार सुना है अतएव प्रथम मैं इस जगे ज्वराधिकार लिखता हूं तहां प्रथम ज्योतिषके मतको कहते हैं ॥

पूर्वजन्मकृतंपापंग्रहरूपेणबाधते ॥

अर्थ-पूर्वजन्मके पाप इस प्राणीको ग्रहरूप होके बाधा करते हैं ॥

ग्रहेषुप्रतिकूलेषुनानुकूलंहिभेषजम् ।

तेभेषजानांवीर्याणिहरन्तिबलवंत्यपि ॥
प्रतिकृत्यग्रहानादौ पश्चात्कुर्याच्चिकित्सितम् ॥

अर्थ–ग्रह (सूर्यचंद्रादि) के प्रतिकूल (मारकादि) होनेसे प्राणीको औषधी अनुकूल (हितकारी) नहीं होती, क्योंकि वो दुष्ट ग्रह बडी बलवान् औषधोंके वीर्यको हरण करलेते हैं इसीसे वैद्यको उचित है कि, प्रथम ग्रहोंको जप, दान, हवन पूजनादिसे शांति करके फिर चिकित्सा करे अत एव अब उन ग्रहोंके द्वारा ज्वर रोगका निर्णय कहते हैं ॥

ज्योतिः शास्त्रकाअभिप्राय ।

नीचस्थितस्य भानोर्दशाक्षिनाशो ज्वरः शिरोरोगाः । बंधनमहोग्रपीडाकुष्ठस्य च दर्शनं चिह्नम् । एवंक्षीणेन्दुदशायां परिचिंतनीयम् ॥

अर्थ–नीचस्थितसूर्यकी दशामें नेत्रनाश, ज्वर, मस्तकरोग, बंधन, महाभय, कोढ, रोग इत्यादि पीडाहोती है । इसीप्रकार क्षीणचंद्रकी दशामें भी रोगहोते हैं ॥

सुहृद्बंधुसमायोगो भूनिमित्तं कलिर्भवेत् । देहपीडाज्वरोऽव्याधिः शिखिमध्यगते बुधे । शनिरंतर्गतेप्येवम् । तद्वैकृतनिराकृतयेजपहोमादिकं कुर्यात् इति सारावल्याम् ॥

अर्थ–केतुकी दशामें बुधकीदशाआनेसे सुहृत् तथा बंधु इनका समागम और पृथ्वीके मध्ये झगडा, देहमें पीडा, ज्वर और व्याधि ये उपद्रव होते हैं । तथा शनीकी दशामें बुधकी दशा आनेसे उक्तफलहोता हैं उस पीडाके दूर करनेके निमित्त जपहोमादिक करे यह सारावली ग्रंथमें लिखा है ॥

ज्योतिषकल्पतरौ ।

हेलिः पित्तश्चन्द्रमाश्लेष्मवातौ भौमः पित्तोज्ञः त्रिदोषप्रधानः । जीवः श्लेष्माकारकोभार्गवस्तु वातश्लेष्माभास्करिर्वातकारी ॥

अर्थ–अशुभ सूर्य पित्तके रोगोंको करे है,चंद्रमा कफवातके रोगोंको करे है, मंगल पित्तक, बुध त्रिदोष (संनिपात) के रोगोंको, बृहस्पति कफके

विकार, शुक्र वातकफके विकार, एवं अशुभ शनैश्वर वादीके रोगोंको अपनी दशांतर्दशामें कर्त्ता है ॥

ज्योतिषहरस्येऽपि।

योबलीत्रिकभावेशोदशाश्चांतर्दशास्वपि।
सूर्यभौमार्किभिर्विद्धःसभवेज्ज्वरदायकः॥

अर्थ–त्रिकभाव ६–८–१२) षष्ठेश अष्टमेश और द्वादशेश इन तीनोंमें जो ग्रह बली होय वही अपनी दशा और अंतरदशामें सूर्य, मंगल और शनीश्वर करके विद्ध होवे तो ज्वरको प्रगटकरे हैं ॥

यैर्दृष्टोरिपुभावेशस्तत्तत्प्रकृतिजैर्गुणैः।
ज्वरकृत्स्वदशामध्येवातपित्तकफादिकैः॥

अर्थ–षष्ठेशको जो जो ग्रह देखते हैं और उनकी जैसी २ प्रकृति है उसके माफिक अपनी २ दशामें वात,पित्त और कफादिजन्य ज्वरको प्रगट करते हैं ॥

पैशाचिकज्वरकायोग।

रिपुभावेश्वरोदृष्टोराहुकेतुशनैश्चरैः।
दृष्टोवाव्ययभावेशो ज्ञेयःपैशाचिकज्वरः॥

अर्थ–षष्ठेशको अथवा व्ययेशको राहु केतु और शनैश्चर देखते होवें तो उस प्राणीको पैशाचिक अर्थात् भूतबाधाका ज्वर जानना ॥

खेदज्वरकायोग।

मार्गाधीशोथबलवान्राहुकेतुशनैश्चरैः।
दृष्टेखेदज्वरोज्ञेयइत्याहभगवान्भृगुः॥

अर्थ–मार्गाधीश बली यदि राहुकेतु और शनैश्चर करके वीक्षित होवे तो उस प्राणीके खेदज्वर होवे इस प्रकार भृगुऋषिने कहा है ॥

ज्वरद्वारामृत्युकायोग।

अष्टमेशोयदाभौमोलग्नेशेनेत्थशालवान्।
पित्तराशिगतौतौचेज्ज्वरेणमृतिमादिशेत्॥

अर्थ–मंगल यदि अष्टमेशहोके लग्नेशके साथ इत्थशाल योग करता हो तथा अष्टमेश और लग्नेश दोनों पित्तराशिके होवे तो उसप्राणीकी ज्वररोगसे मृत्यु होवे ॥

औषधजन्यज्वरयोग ।

प्रश्नलग्नेपित्तराशौ रोगेशेन समन्वितः ।
औषधाज्ज्वररोगःस्यादथवा वैद्यचापलात् ॥

अर्थ–प्रश्नलग्नमें पित्तराशिहो और रोगेश (षष्ठेश) करके युक्त होवे तो उस रोगीको औषधसे ज्वर जानना अथवा वैद्यकी चपलतासे ज्वर जानना॥

भीतिज्वरयोग ।

भयाधीशदयाधीशावेकस्मिन् भवने बली ।
चंद्रमाबुधसंयुक्तो भीतिज्वरयुतो नरः ॥

अर्थ–भयाधीश और दयाधीश दोनों बलवान् होकर एकघरमें बैठेहों और चंद्रमा तथा बुधयुक्त होवेतो उस प्राणीको भीतिज्वर जानना ॥

शापज्वरयोग ।

धर्मेशः षष्ठभने षष्ठेशेन समन्वितः ।
रिपुदृष्ट्या चेत्थशाली शनिना शापतोज्वरः ॥

अर्थ–धर्मेश छठेघरमें षष्ठेशकर्के युक्तहोवे, तथा रिपुदृष्टिकरके शनैश्चरसे इत्यशाल करता होवे तो उस प्राणीको शापजनित ज्वर जानना ॥

यमघंटयोग ।

आदित्ययोगेनमघाविशाखाचंद्रेणयुक्ताकुजआर्द्रयातु ।
मूलंप्रबुद्धेगुरुकृत्तिकाचशुक्रेणरोहिण्यसितेनहस्तः ॥
एतान्वदंतिनिपुणायमघंटयोगान्व्याधिप्रपन्नमनुजोय-
दिपुण्ययोगात् । संजायतेमुदितमेवइति ॥

अर्थ–रविवारको मघानक्षत्र, सोमवारको विशाखानक्षत्र, मंगलवारको आर्द्रानक्षत्र, बुधवारके दिन मूलनक्षत्र, गुरुवारको कृत्तिकानक्षत्र, शुक्रवारको रोहिणी और शनिवारको हस्त नक्षत्र, होनेसे यमघंटसंज्ञक योग होता है यदि इस योगमें मनुष्य रोगी होवे पुण्ययोगसे कदाचित् अच्छा होता है ॥

सुखयोग ।

दिनकरकरयुक्तःसोमसौम्येनवापितुरगसहितभौमः

सोमपुत्रे ऽनुराधा । सुरगुरुरपिपुष्येरेवतीशुक्रवारेदिन-
करसुतयुक्तोरोहिणीसौख्यहेतु ॥

अर्थ-रविवारमें हस्तनक्षत्र, चंद्रवारमें मृगशिरनक्षत्र, मंगलवार अश्विनीनक्षत्रयुत बुधवार अनुराधानक्षत्र करके युक्त, बृहस्पति पुष्यनक्षत्रयुत, शुक्रवार रेवतीनक्षत्रयुत और रोहिणीनक्षत्रयुत शनिवार होवे वह सौख्य योग है यदि इस योगमें रोगी बिमारहोवे तो शीघ्र आराम होवे ॥

अथनक्षत्रयोगेनज्वरव्याधिःप्रजायते।
साध्यासाध्यंचयाप्यंचवक्ष्यामिशृणुपुत्रक ॥

अर्थ-अब नक्षत्रयोगसे जो साध्यासाध्य और असाध्य रोग प्रगट होतेहैं उनको हे पुत्र ! मैं तेरे आगे कहता हूं सुन ॥

असाध्यनक्षत्र।

मघा भरणिहस्तेषु मूलेवा ज्वरतोपिवा ।
मृत्युमापद्यते सोपि नात्रकार्याविचारणा ॥

अर्थ-मघा, भरणी, हस्त और मूल इन नक्षत्रोंमें यदि मनुष्य ज्वरपीडित होवेतो अवश्य मृत्युको प्राप्त होवे ॥

साध्यनक्षत्र।

अश्विनीरोहिणीपुष्ये मृगज्येष्टापुनर्वसौ ।
एते सध्यास्तु विज्ञेया ज्वरिणांच विशेषतः॥

अर्थ-अश्विनी, रोहिणी, पुष्य, मृगशिर, ज्येष्ठा, पुनर्वसु इतने नक्षत्र ज्वररोगीको साध्य हैं ॥

कष्टसाध्यनक्षत्र।

पूर्वात्रयं स्वातितथापि चित्रा त्रयोत्तरा वा श्रवणं धनिष्ठा।
मूलं विशाखा सह कृत्तिकाभिः साप्योनुराधा सह ज्ये-
ष्ठया च ॥ एते सकष्टाः सहपीडितानां ऋक्षस्तु याप्यं
कुरुते नरस्य ॥ तस्मात्तुविज्ञायबुधश्चसम्यक्रुजांवि-
नाशंप्रतिकर्मभिश्च ॥

अर्थ-पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ और पूर्वाभाद्रपद, स्वाति, चित्रा, तीनोंउत्तरा, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, विशाखा, कृत्तिका, अश्लेषा, अनुराधा

और ज्येष्ठा ये नक्षत्र रोगीको कष्टसाध्य और याप्यकर्त्ता है [तहां कोई नक्षत्र कष्टसाध्य और कोई नक्षत्र याप्य जानना] इसीसे यह वैद्य प्रथम शुभाशुभ नक्षत्रोंको विचारके फिर रोगनाशक औषधी देवे ॥

कष्टावली ।

अश्विन्यां चैकरात्रं तु भरण्यां मृत्युमादिशेत् । कृत्तिका-नवरात्रं तु रोहिण्यां तु दिनत्रयम् ॥ आश्विनीष्वपिषट्रात्रं सुखं भवति देहिनाम् । यमदैवे समुद्दिष्टं मरणं पंचमेऽहनि ॥ कृत्तिकासुगृहीतस्य सप्तरात्रं भवेज्वरः । न मुंचेद्यदि सप्ताहादेकविंशतिमे सुखम् ॥ अतऊर्ध्वं विपद्येत त्रिपक्षात्संशयो भवेत् ॥ रोहिण्यामष्टरात्रेण मुच्येदेकादशेहनि ॥ मृगेण षडहं ज्ञेयं नवरात्रमथापि वा । आर्द्रया मुपसंसृष्टं पंचाहान्मृत्युमादिशेत् ॥ ऊर्ध्वं यद्यपि वर्तंत त्रिपक्षात्संशयो भवेत् ॥ पुनर्वसूप-सृष्टस्तु ज्वरेण परिपीडितः । त्रयोदशाहान्मुच्येत सप्तविंशेऽथवा हनि ॥ पुष्ये त्रिरात्रं ज्वरितं सप्तरात्रान्नि-वर्त्तते । नवरात्रं तथाश्लेषा मघाचोति यमालयम् ॥

अर्थ–अश्विनी नक्षत्रमें प्रगटहुआ रोग १ रात्रि रहताहै । भरणी नक्षत्रमें प्रगटहुआ रोग मृत्यु करता है। कृत्तिका नक्षत्रमें प्रगटहुआ रोग नौरात्रि रहे। रोहिणीमें तीनदिन जानना । अथवा अश्विनीमें प्रगट हुआरोग छःरात्रि रहकर फिर आनंद होता है और भरणीमें प्रगटहोनेसे पांचमें दिन रोगीका मरणहोवे । कृत्तिकामें हुआ ज्वर सातरात्रि रहता है । यदि सातदिनमें अराम न होयतो फिर २१ दिनमें सुखहोवे । यदि इक्कीसदिनकेभीबाद आराम न होवे तो वह रोगी १॥ महीनेमें बचे अथवा मरजावे। रोहिणी नक्षत्रमें आठदिन रहकर ११दिनमें रोगशांत होवे । मृगशिरमें छःदिन रहे अथवा नौ रात्रिमें उतरे । आर्द्रामें हुआ रोग पांचदिनमें मरणकरे। यदि पांचदिनके उपरांत रोगी बचजावे तो १॥ महीनेमें संशय कारक होता है पुनर्वसुमें हुआ ज्वर १३ दिनमें छूटे अथवा २७ वें दिन ज्वर रहितहोवे। पुष्यनक्षत्रमें प्रगटहुआ ज्वर तीन रात्रि रहे फिर क्रम २ से घटके सातवें

दिन मुक्तहोवे । श्लेषानक्षत्रमें ज्वर ९ रात्रिरहे । और मघानक्षत्रमें रोगहोनेसे रोगीका मरण होय ।

अश्लेषासुभवेन्मृत्युर्दीर्घकालक्रमादथ । मघासुद्वादशाहेनमृत्युर्भवतिदेहिनः ॥ ऊर्ध्वंयातिमघायांतुपुनरेवसुखीभवेत् । पूर्वामासत्रयंज्ञेयंउत्तरापंचकत्रयम् ॥ पूर्वात्रयेत्रयोमासाः शुभाः ज्ञेयामनीषिभिः । पूर्वासुचोपसृष्टस्यफाल्गुनीषु भवेद्दश ॥ उत्तरासुतथाष्टौचनवरात्रमथापिवा । एकविंशतिरात्राद्वाज्वरश्चेत् सौख्यमृच्छति ॥ एतेषांतुर्यगेचांशेयदिरोगस्तदामृतिः ॥

अर्थ-श्लेषानक्षत्रमें रोगहोनेसे बहुतदिनमें मृत्युहोवे । मघानक्षत्रमें १२ दिनसे मरे । यदि १२ दिनसे उपरांत बच जावे तो फिर सुखी होय । पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ और पूर्वाभाद्रपद इनमें हुआ रोग तीन महीनेरहे और अच्छा होजावे । पू० फा० नक्षत्रमें हुआरोग १० रात्रिरहे । उ०फा० नक्षत्रमें आठरात्रि अथवा नौरात्रि रहे अथवा २१ रात्रिरहकर फिर आनंद होवे यदि उक्तनक्षत्रोंके चतुर्थ पादमें रोग होयतो रोगी निश्चय मरे॥

हस्तेनप्रथमेमोक्षश्चित्रायामष्टमेहनि । स्वातिः षोडशरात्रंतुविशाखाविंशरात्रिकम्॥स्वातियोगेदशाहेनमुच्येत्पक्षत्रयेणवा । विशाखासुभवेन्मृत्युरेकविंशतिमेहनि ॥ चानुराधापक्षमेकं ज्येष्ठांदशदिनानितु । ज्वरस्तुदिवसानष्टावनुराधासुवर्त्तते ॥ अतऊर्ध्वंतुमुक्तिःस्यान्नास्तितस्यचिकित्सितम् ॥

अर्थ-हस्तनक्षत्रमें प्रथमदिनही रोगसे मुक्त होजावे । चित्रानक्षत्रमें आठवेंदिन । स्वातिनक्षत्रमें आठ रात्रिमें । विशाखानक्षत्रमें वीसदिनसे रोगमुक्तहोवे । अथवा स्वातिनक्षत्रमें १० दिनसे अथवा १॥ महीनेमें छूटे । विशाखामें २१ दिनसे मृत्यु होय । अनुराधानक्षत्रमें १५ दिनसे । ज्येष्ठानक्षत्रमें दशदिनसे रोगमुक्त होवे अनुराधानक्षत्रमें प्रगटहुआ ज्वर आठदिनरहे । यदि आठदिनसे ज्यादा ज्वर रहे तो उस रोगीका मरण होवे उसका यत्ननहीं हैं ॥

ज्येष्ठायांपंचमेमृत्यरूध्वेवाद्वादशात्सुखम् । मूलेनचोप
सृष्टस्यदशरात्रंभवेज्ज्वरः ॥ तदूर्ध्ववर्त्तमानस्यचैकविंशे
भवेत्सुखम् । पूर्वाषाढ्यांतुनवमेहानि रोगात्प्रमुच्यते ॥
उत्तरासुत्वषाढासुमासंक्लिश्यत्यसंशयः । अष्टौवानवमा-
सानांततोऽस्यसुखमादिशेत् ॥ श्रवणेनाष्टरात्रंतुक्लिश्य
तेज्वरपीडितः ॥

अर्थ–ज्येष्ठानक्षत्रमें पांचवेदिन मृत्युहो, यदि बच जावे तो १२ दिनमें सुखहोवे । मूलनक्षत्रमें प्रगटहुआ ज्वर दशरात्रि पर्यंत रहता है । यदि-दशरात्रिमें रोग न हटेतो २१ दिनमें सुखी होय। पूर्वाषाढनक्षत्रमें यदि रोग प्रगट होवे तो नौमेंदिन अच्छा होय । उत्तराषाढमें रोगोत्पन्न हुआ १ महिने पर्यंत कष्टकारक जानना फिर आठ महीनेमें या नौ महीनेमें रोगशांति होवे और श्रवणनक्षत्रमें यदि ज्वर प्रगट होवे तो वह रोगी आठरात्रिपर्यंत क्लेशित रहता है ॥

मासत्रयंधनिष्ठासुशतभिषक्दिनविंशकम् । नवरात्रंपूर्वा-
भाद्रेउत्तरापंचकत्रयम् ॥ दशाहंरेवतीपीडामुच्यतेव्या-
धिभिस्ततः । दशरात्रंधनिष्ठासुज्वरोभवतिदेहिनाम् ॥
षड्रात्राद्वादशाहंवाभवेच्छतभिषासुच । तथाभाद्रप-
देष्वेवपूर्वासुमरणंध्रुवम् ॥ उत्तरासुभवेन्मोक्षोदिवसेऽर्द्ध-
चतुर्दशे । चतुरात्राष्टरात्रंवारेवत्यांवर्त्ततेज्वरः ॥

अर्थ–धनिष्ठानक्षत्रमें प्रगटहुआ रोग तीनमहीने रहता है । शतभिषा-नक्षत्रमें वीसदिन । पूर्वाभाद्रपदनक्षत्रमें उत्पन्नहुआ रोग नौरात्रि रहता है।उत्तराभाद्रपदमें प्रगट हुआ रोग १५ दिन रहता है । रेवतीनक्षत्रमें प्रगट हुई पीडा दशदिन रहकर नष्टहोती है । धनिष्ठानक्षत्रमें ज्वररोग होयतो दशरात्रिरहे।शतभिषानक्षत्रमें छःरात्रि अथवा बारा रात्रिरहे पूर्वा-भाद्रपदमें ज्वर प्रगट होयतो रोगी मरे।उत्तरा भाद्रपदमें७दिनरहे।एवं रेव-तीनक्षत्रमें यदि ज्वर होवे तो चाररात्रि अथवा आठरात्रि पर्यंत रोग रहताहै॥

अश्विनी ।

अश्विन्याःप्रथमेपादेनवरात्रंप्रकीर्तितम् । द्वितीयेपूर्ण-

माख्यातंतृतीयेसप्तवासराः । संप्रोक्तावासराःपूर्णाश्चतु-र्थेह्येकविंशति ॥

अर्थ–अब नक्षत्रके प्रत्येक चरणका फल कहते हैं । तहां अश्विनीनक्षत्र-के प्रथम पादमें रोग होवे तो नौरात्रिरहे । दूसरेमें होयतो मृत्युकरे । तीसरेपादमें होयतो सातदिन रहे और अश्विनीके चतुर्थपादमें हुआ रोग २१ दिनपर्यंत रहता है ॥

भरणी ।

भरण्यांप्रथमेपादेचैकादशदिनानितु । द्वितीयेचत्वारिं-शत्तुतृतीयेपूर्णमादिशेत् ॥ चतुर्थेरुद्रसंख्याकंदिनसं-ख्याप्रकीर्तिता ॥

अर्थ–भरणीके प्रथमपादमें हुआ रोग ११ दिनरहे, दूसरेमें ४० दिन तीसरेमें मृत्यु और चतुर्थपादमें होवेतो १० दिन रोग रहता है ॥

कृत्तिका ।

कृतिका नक्षत्रके प्रथम चरणमें पित्तजन्यज्वर उत्पन्न होवेतो वो दश-दिनरहे।दूसरे चरणमेंभी दशहीदिन रहे।तीसरेचरणमें होयतो पाँच दिनरहे

रोहिणी ।

रोहिणीके प्रथम चरणमें ९ रात्रि पीडारहे । दूसरे चरणमें १८ दिनरहे। तीसरेचरणमें दशरात्रि पीडा जाननी ॥

मृगशिर ।

मृगशिरनक्षत्रके प्रथम चरणमें७दिन पीडारहे । दूसरे चरणमें १२ दिन-रहे । तीसरेचरणमें २५ दिनपीडा रहती है ॥

आर्द्रा ।

आर्द्रानक्षत्रके प्रथमचरणमें १५ दिन। दूसरे चरणमें १२ दिन और तीसरे चरणमें पीडा होय तो रोगीकी मृत्यु होय ॥

पुनर्वसु ।

पुनर्वसुनक्षत्रके प्रथम चरणमें ज्वर होयतो १५ दिनरहे । दूसरेमें ७ दिन और तीसरे चरणमें होयतो २५ दिन पीडारहे ॥

पुष्य।

पुष्यनक्षत्रके प्रथम चरणमें ७ दिनपीडा रहे। दूसरेमें २० दिन और तीसरेमें २१ दिन पीडा रहती है॥

अश्लेषा।

अश्लेषाके प्रथम चरणमें ज्वर होयतो तीन महीने रहे और रोगी कष्टसे जीवे। दूसरेमें तथा तीसरेमें रोगीकी मृत्यु होय॥

मघा।

मघाके प्रथम चरणमें ७ रात्रि पीडारहे। दूसरेचरणमें २७ दिन और तीसरे चरणमें ३० दिन पीडा रहती है॥

पूर्वाफाल्गुनी।

पूर्वाफाल्गुनीके प्रथम चरणमें ५ रात्रिपीडा रहती है। दूसरेमें १२ दिन और तीसरे चरणमें १ महीनेके बाद रोगी मरे॥

उत्तराफाल्गुनी।

उत्तराफाल्गुनीके प्रथम चरणमें १४ दिन पीडारहे। दूसरेमें सातरात्रि और तीसरे चरणमें ९ दिन पीडारहती है॥

हस्त।

हस्तनक्षत्रके प्रथमचरणमें रोग होवेतो ७ रात्रिरहे। दूसरेमें होयतो ४ दिन रहे और तीसरेमें होवेतो ५ दिन पीडा रहती है॥

चित्रा।

चित्राके प्रथमचरणमें व्याधि होनेसे रोगीकी मृत्युहोवे। दूसरे चरणमें तीन महीने रोगीरहे और तीसरेचरणमें १३ दिन रोग रहता है॥

स्वाति।

स्वातिके प्रथम चरणमें रोग होवेतो २७ दिनरहे। दूसरे चरणम वीस दिन और तीसरे चरणमें रोग होयतो मृत्युहोय॥

विशाखा।

विशाखाके प्रथम चरणमें व्याधि होनेसे ४८ दिनरहे। दूसरे चरणमें होयतो बारह दिन रहे और तीसरे चरणमेंभी १२ दिन पीडा रहती है॥

अनुराधा।

अनुराधाके प्रथम अंशमें पीडा उत्पन्न होयतो ७ दिन। दूसरेमें १५ दिन और तृतीयचरणमें ६४ दिन पीडा रहती है॥

ज्येष्ठा ।

ज्येष्ठाके प्रथम चरणमें रोग होनेसे तीन महीने पीडा रहे । दूसरेमें १६ दिन तथा तीसरेमें मृत्युहो ॥

मूल ।

मूलनक्षत्रके प्रथम द्वितीय तृतीय चरणमें रोग होनेसे १५ दिन पर्यंत पीडा रहती है ॥

पूर्वाषाढ ।

पूर्वाषाढके प्रथम चरणमें रोग होनेसे ३ महीने पीडारहे । दूसरेमें १६ दिन और तीसरे चरणमें मृत्यु होवे ॥

उत्तराषाढ ।

उत्तराषाढनक्षत्रके प्रथम चरणमें रोग होयतो १५ दिनरहे । दूसरेमें १२ दिन और हे महामुने! तीसरे चरणमें रोग होयतो २० दिनरोग रहे॥

श्रवण ।

श्रवणके प्रथम चरणमें ७ दिन,दूसरेमें २० दिन और तीसरे चरणमें १६ दिन रोग रहे है ॥

धनिष्ठा ।

धनिष्ठाके प्रथम चरणमें २० दिन रोगरहे । दूसरे चरणमें ६० दिन तथा तीसरे चरणमें रोग होवेतो १६ दिन रहता है ॥

शतभिषा ।

शतभिषाके प्रथम चरणमें रोग होवेतो १॥ महीने घोर दुखः देवे, दूसरेमें छः महीने और तीसरे चरणमें रोग होनेसे १६ दिन पीडा रहती है॥

पूर्वाभाद्रपद ।

पूर्वाभाद्रपदके प्रथम, द्वितीय और तृतीय चरणमें रोगहोनेसे मृत्यु होवे॥

उत्तराभाद्रपद ।

उत्तराभाद्रपदाके प्रथम चरणमें रोग उत्पन्न होनेसे १५ दिन पीडारहे । दूसरे चरणमें २८ दिन दुखरहे और तीसरे चरणमें होनेसे १५ दिन रोग रहता है ॥

रेवती ।

रेवतीनक्षत्रके प्रथम चरणमें रोग उत्पन्न होनेसे ८ दिन पीडा रहे ।

दूसरे चरणमें होवेतो १६ दिन दुःखीरहे और तीसरे चरणमें रोग होनेसे १० दिन पीडा रहे पश्चात् शांति होती है ॥

एवंज्ञात्वानरः सम्यक्कुर्यात्प्रशमनाक्रियाम् ।
नक्षत्रस्यत्रयोभागारात्रेयेणप्रकीर्त्तिताः ॥

अर्थ–इसप्रकार नक्षत्रके और नक्षत्रके चरणोंका शुभाशुभविचारके शास्त्रोक्त (जो आगे कहते हैं) उस शांतिकर्मको करे, यद्यपि नक्षत्रके चार चरण होते हैं, परंतु यहाँ पर आत्रेयमहर्षिने तीनही चरणका फल कहाहै चतुर्थ चरणका फल जो संपूर्ण रोगका प्रथम कहाहै वह जानना ॥

अबनक्षत्रहवनकीविधि कहतेहैं-तहांप्रथम ।

समिधा ।

आक, खैर, ढाक, बेर, नीम, दूब, छोंकरा, कुश, काश, पीपल, बड, जटामांसी, जामुन, आम, सोमवल्कल, बहेडा, चंदन, अरनी, अगरवृक्ष, कटसरैया, सतावरी, सर्वौषधी, हलदी, दारुहलदी ये सब होमकरनेके लिये समिधा हैं ॥

परंतु राजनिघंटुमें सत्ताईस नक्षत्रोंके सताईस वृक्ष कहे हैं उनकी समि लेनी चाहिये ॥

गंध ।

चंदन, लालचंदन, गोरोचन, हरदी, गेरू, नीब, बेल, पतंग, कदंब, केशर, कस्तूरी, कपूर, श्रीपर्णी, देवदारु, पीतचंदन, पद्माख, दारुहलदी, अगर, सीसों और ढाक ये गंध द्रव्य हैं ॥

फूल ।

कमल, बेल, तुलसी, दूब, कुश, अरनी, छोंकराके पत्ते, आक, ढाक, इनके फूलले ॥

धूपदीपादि अलंकरोंसे वास्तुमंडल अलंकृत करके ईशानादिक्रमसे नवग्रहोंको स्थापनकरे। तथा नक्षत्रोंको स्थापनकरे, प्रथम सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु इनका पूजन करके क्रमसे इनकी समिधाका हवन करे फिर समिधाओंके दही, शहत, घृत इनमें डबो २ के अश्विन्यादि नक्षत्रोंका हवन करे ॥

तहां आककी समिधा लेकर, ' इदमाश्विनो' इस मंत्रसे तथा 'विष्णोरराट' इन मंत्रोंसे अश्विन्यादि नक्षत्रोंका हवनकरे ॥

' इदंभरण्यो' और 'मधुमाध्वी, इसमंत्रसे बेरकी समिधा भरणीनक्षत्रकी शांतिके अर्थ हवनकरे ॥

' कांडात् कांडात् ' इस मंत्रसे नीमकी समिधा कृतिकानक्षत्रकी शांतिके अर्थ हवनकरे, एवं दूर्वा (दूब) कुशा, इनकी सामिधासे रोहिणी मृगशिर आर्द्रा आदि नक्षत्रोंकी शांत्यर्थ हवनकरे इसी प्रकार सब नक्षत्रोंका हवन पृथक् २ है सो शांतिसार, शांतिकमलाकर, शांतिमयूख, आदि ग्रंथोंमें देखो ॥

फिर घृतसे पूर्णाहुती करे और ग्रहोंको अभिषेकस्नान करावे । फिर रोगीको भस्मस्नान और मंत्रस्नान कराय सपेद कपडे पहिनायके उस यज्ञमें बैठाले वे वेदोक्त मंत्रोंसे उसका मार्जन करे तथा अपामार्जनसे उसे मार्जित करे आशीर्वाद देवे । पश्चात् वह रोगी गोदान, वस्त्रदान, पृथ्वीदान आदि यथाशक्त्यनुसार करे इस प्रकार हवन करे तो सर्वग्रह नक्षत्र और योगोंकी शांति होवे ॥

ज्वररोगका कर्मविपाक ।

यथाशास्त्रंतुनिर्णीतं यथाव्याधिचिकित्सितः ।
नशमंयातियोव्याधिः सज्ञेयः कर्मजोबुधैः ॥

अर्थ–जिस व्याधिका शास्त्रानुसार निर्णयकर उस व्याधिके अनुसार चिकित्सा करी फिरभी न शांतिहोवे उस व्याधिको पंडितजन कर्मज जाने

जन्मान्तरकृतंपापंव्याधिरूपेणबाधते ।
तच्छांतिरौषधैर्दानैः जपहोमसुरार्चनैः ॥
तस्मात्कर्मविपाकोक्तप्रायश्चितादिसाधनैः ।
पूर्वपापक्षयात्क्षिप्रंव्याधिः शाम्येदसंशयम् ॥

अर्थ–जन्मांतरमें किया हुआ पाप इस देहमें रोगरूपहोकर दुख देता है उसकी क्षांति औषधपान दिव्यौषधधारण दानकरना जप होम और देवता

ओंका पूजन इन कारणोंसे होती है। इसीसे कर्मविपाकोक्त प्रायश्चित्तादि साधनों करके पूर्वजन्मोपार्जित पापोंके शांति होनेसे रोग निःसंदेह शीघ्र शमनहो जाते हैं । इसीसे पूर्वजन्मजनितपाप परिपाकसे उत्पन्न ज्वरके हेतु और उनका यत्न कहते हैं ॥

येसंपूर्ण प्रायश्चित्त रोगानुसार बड़ा और छोटा करे और इनमें वित्तशाठ्य नकरे अर्थात् जिसकी दशरुपे लगानेकीसामर्थ्य है यदि वो एकरुपा या दो रुपाही लगावे तो वो वित्तसाठ्य कहलाता है ऐसा करनेसे वो फलीभूत नहीं होता है और न रोग शमनहो इसवास्ते अपनी सामर्थ्यके अनुसार प्रायश्चित करे और जो असामर्थ्य है उसको ऋण लेकर प्रायश्चित्त नहीं करना किंतु अपनी देहसे जो बनसके उसको जैसे विष्णुसहस्रनामका पाठ, गायत्रीजप और मनसे परमात्माका ध्यानआदि ॥

सर्वज्वरेकर्मविपाकमाह ।

देवस्वहरणाच्चैव जायते विविधो ज्वरः । ज्वरो महाज्वरश्चैव रौद्रो वैष्णवएव च ॥

अर्थ–अब सर्वज्वरका कर्मविपाक कहते हैं । जैसे देवद्रव्य हरण करनेसे अनेक प्रकारका ज्वर प्रगट होता है उन्होंमें उष्णज्वर शिवसे और महाज्वर (शीतज्वर) विष्णुभगवान्से, प्रगट हुआ है ॥

अथास्यशांतिः ।

ज्वरे रुद्रजपं कुर्यान्महारुद्रं महाज्वरे ।
महारुद्रं जपेद्रौद्रे वैष्णवे तद्वयं जपेत् ॥

अर्थ–ज्वरके दूर करनेको रुद्रजप और महाज्वर दूर करनेको महारुद्रजप कराना चाहिये। रुद्रज्वरवालेको महारुद्र और वैष्णवज्वरमें रुद्र और महारुद्र दोनोंको जप करावे ॥

गार्ग्यः ।

ये पुनः पूर्वजन्मनि क्रूराः पिशुनाः ततस्तेऽन्यजन्मनि सततं ज्वरिणः स्युः ॥

अर्थ–गर्गऋषिका पुत्र लिखता है कि, जो मनुष्य पूर्वजन्ममें क्रूर तथा पिशुन (चुगली करनेवाले) होते हैं,वो उस पापकरके इस जन्ममें सततज्वरी होते हैं ॥

शीतज्वरकाकर्मविपाक ।

ये पुनः क्रूरकर्माणः पापाः पिशुनचेतसः ।
ते भवेयुः सदाशीतज्वरवंतस्तदेनसा ॥

अर्थ–जो कोई क्रूरकर्म करनेवाले, पापी, चुगलखोर हैं वो पुरुष सदैव शीतज्वरसे पीडित होते हैं ॥

उसकाशमन ।

शांतयेऽयुतसंख्याकं प्रकुर्यात्प्रयतो जपम् । जातवेदसमंत्रेण ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥ सुरामांसोपहाराद्यैर्बलिः सर्वत्र शस्यते ॥ सहस्रकलशस्नानं शतभोजनमेव च ॥ शीतज्वरे पुनः कुर्यादभिषेकं हरेर्बुधः ॥

अर्थ–ऊपर कहेहुए शीतज्वरकी शांति करनेको (जातवेदसे) इस मंत्रको दशहजार जप करावे और ब्राह्मणभोजन करावे अथवा मद्यमांस इनकी बलिदानदे किंवा सहस्रकलशाभिषेक करे और १०० ब्राह्मणोंको भोजन करावे अथवा श्रीविष्णुभगवान्का अभिषेक करावे ॥

सहस्रकलशस्नानं रुद्रेणेशस्य कारयेत् ।
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्याजपेद्वैजातवेदसम् ॥

अर्थ–अन्यत्रभी लिखा है कि, शिवका रुद्रीसे सहस्र कलशाभिषेक करावे तथा यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन करावे और 'जातवेदसे' इस मंत्रका जप करावे ॥

ज्वरवालेके दैविकउपचार ।

वेदानां श्रवणं हितस्यचरणं विप्रस्यसंतर्पणं कृष्णस्यस्मरणंशुभस्यकरणंद्रव्यस्यसंतर्पणम् । अश्वत्थभ्रमणं सुरत्नधरणंदीनस्यसंरक्षणं हन्यादष्टविधंज्वरंकुमुदिनीनाथोयथोग्रंतमः ॥

अर्थ–अब ज्वरवान्को दैविक यत्न कहते हैं जैसे कि, वेदश्रवण, हिताचरण, ब्राह्मणभोजन, कृष्णका स्मरण, शुभकार्य, द्रव्यदान, पीपलकी प्रद-

क्षिणा,उत्तम२रत्नोंका धारण तथा दीनजनोंका पोषण ये उपचार अष्टविध ज्वरोंको जैसे चन्द्रमा घोर अंधकारका नाश करता है उसी प्रकार नाश करे।

सहस्रनेत्रस्य सहस्रबाहोः सहस्रवक्रस्य सहस्रमूर्ध्नः ।
सहस्रपादस्य सहस्रनाम्नां सहस्रनाम्नां पठनं ज्वरघ्नम्॥

अर्थ–नेत्र, बाहु, मुख, मस्तक,पैर, हस्तादिअंग तथा उसीप्रकार नाम ये जिसके अनेक हैं ऐसे देवका सहस्रनाम (विष्णुसहस्रनाम) पाठ करे तो ज्वर दूर होवे ॥

गणेश्वरो वा गरुडेश्वरो वा गौरीश्वरो वा दिवसेश्वरो वा ।
महेश्वरो वा कुलदैवतं वा तत्पूजनं तज्ज्वरिणां प्रशस्तम् ॥

अर्थ–गणेश, विष्णु, शिव, गौरी,(दुर्गा)सूर्य अथवा कुलदेव इनका पूजन ज्वरवालेको हितकारी है ॥

मंगलेषुचकार्येषुसततंकोपवान्नरः । उष्णज्वराभिभूतः स्यात्तस्यपापापनुत्तये॥सहस्रकलशस्नानंरुद्रेणेशस्यका-रयेत् । ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्याजपेद्वैजातवेदसम् ॥

अर्थ–जो प्राणी मंगलकार्य(विवाहादिक) में क्रोध करता है वह प्राणी उष्ण ज्वरवाला होता है उस पापके दूर करनेको शिवका सहस्रकलशा-भिषेक करे और यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन करावे और "जातवेदसे" इसमंत्रका जपकराना चाहिये ॥

अथसर्वज्वरहरकुंभदानम् ।

नवंकुंभंसमानीयमृन्मयंचाव्रणंदृढम् । लोहितंकर्णरहितं स्थापयेत्तंदुलोपरि ॥ तंदुलानांपरिमाणंद्रोणपंचकमि-ष्यते । विशुद्धास्तंदुलाग्राह्याःश्वेतवस्त्रेणवेष्टयेत् ॥ मधु-नाप्यथवाज्येनगुडशर्करयापिवा । तैलैर्वापूरयेदद्भिर्य-थाविभवतोनरः ॥ श्वेतपुष्पैरर्चयेत्तंगंधपुष्पैस्तथापरैः । होमश्चपूर्ववत्कार्यः समिदाज्यचरूत्करैः ॥ सुवर्णंचयथा-शक्त्याब्राह्मणायनिवेदयेत् ॥ तस्मैहुतवतेवृत्तश्रुतशी-लायसत्कृतम् । मंत्रेणानेनविधिवत्पूजयित्वाज्वरीनरः ॥

मंत्र ।

महेश ! देवदेवेश ! देवदेव ! परात्पर ! ॥ कुंभेनानेनदानेनज्वरंक्षिप्रंविनश्यतु ॥ एकांतरंसन्निपातंतृतीयकचतुर्थकौ । पाक्षिकंमासिकंचैवसांवत्सरिकमेवच ॥ नाशयेतं ममक्षिप्रंवासुदेवमहेश्वरौ ॥

अर्थ-नवीन मिट्टीका कलश जो फूटा और जो जरा न होवे तथा पक्का होय और रंगमें लाल होवे उसको चावलोंके ढेर पर स्थापन करे चावल पांच द्रोण अर्थात् दो मन होवे परंतु (यह धनाढ्यके वास्ते आज्ञा है गरीबको यथाशक्ति लेना) वो चावल विने और फटके हुए शुद्ध होने चाहिये । फिर उस कलशको सपेद वस्त्रसे लपेटके उस घडेमें शहत, घी, गुड, खांड अथवा तैल इनमें किसी एकको भरे यदि इन वस्तुओंसे किसीके भरनेकी सामर्थ्य न होवे तो स्वच्छ जलसेही भरदेवे पश्चात् उसका सपेद फूल, फल, गंध, धूप, दीप नैवेद्यादिसे पूजनकर पूर्वोक्त विधिसे हवनकरे उसमें समिधा घी और चरूको होममें पश्चात् उस हवन करनेवाले ब्राह्मणको कि, जो वेद और वेदार्थको जानता हो तथा जिसका उत्तम आचार उसको यथाशक्ति इसमंत्रसे उसघटका और सुवर्णका दान करे ॥

उस मंत्रका यह अर्थ है कि, हे महेश ! हे देवदेवेश ! हे देवोंकेदेव ! हे परात्पर ! इस कुभंदानकरके मेरा एकाहिक, संनिपातज्वर, तिजारी, चौथिया, पंद्रहदिनमें आनेवाला, महिनेमें आनेवाला एवं वर्ष दिनमें आनेवाले सब ज्वरोंको हे वासुदेव, महेश्वर, शीघ्र नाश करो ॥

अन्यच्च ।

अपामार्जनकंस्तोत्रंहनुमत्कवचादिकम् ।
पठेज्ज्वरीचसततंसर्वज्वरनिवृत्तये ॥

---

१ जो ब्राह्मण व्याकरणादिभी पढाहो और ग्रहस्थीहो, उसको दानदे । किंतु जैसे पाधा-पुरोहित-दुराचारी, केवल संडमुसंड, खुसामदी, निरक्षर, भट्टाचार्य, परस्त्रीगामी, आदिपापीको दान नदे, इनको दानदेना मानो आपको नरकका महमान बनानाहै ॥

अर्थ-अन्यत्र ग्रंथोंमें लिखाहै कि, ज्वरवाला रोगी ज्वर दूरकरनेके लिये अपामार्जनस्तोत्र, हनूमानकवच और आदिशब्दसे नारायणकवच, विष्णुसहस्रनामादिका पाठ करे यदि अपनी सामर्थ्य न होवे तो अन्य ब्राह्मणको अपने पास बिठाकर पाठकरावे एवं दुर्गापाठ,शतचंडी, सहस्रचंडी, आपदुद्धारका पुरश्चरणभी करावे, परंतु हम तो जाने सर्वोपर वेदपाठ और वेदमंत्र (त्र्यंबकंयजामहे) इत्यादिका जपकराना उत्तम है और जितनी अपनी सामर्थ्यहो मनसे भगवत्का स्मरणकरे क्योंकि लिखा है 'हरिस्मृतिःसर्वविपद्विमोक्षणम्' ॥

शिष्य-अब आप ज्वररोगकी उत्पत्ती हमसे कहो ॥

गुरु-ज्वरकी उत्पत्ती चरकमें इसप्रकार लिखी है ॥

ज्वरोत्पत्ति ।

द्वितीये ह्रियुगे शर्वमक्रोधव्रतमास्थितः । दिव्यं सहस्रंवर्षाणामसुराअभिदुद्रुवुः ॥ तपोविघ्नाशनाःकर्तुंन्तपोविघ्नंमहात्मनाम् । पश्यन्समर्थश्चोपेक्षाश्चक्रेदक्षःप्रजापतिः॥ यज्ञेनकल्पयामासप्रोच्यमानःसुरैरपि। ऋचःपशुपतेर्याश्च शैव्यआहूतयश्चयाः ॥ यज्ञसिद्धिप्रदास्ताभिर्हीनंचैवसइष्टवान् ॥

अर्थ-दूसरे (त्रेता) युगमें श्रीशिव अक्रोधव्रतमें स्थित हो दिव्यहजारवर्ष तपकरनेका प्रारंभकरा उससमय महात्माओंके तपोविघ्न करनेवाले तपविघ्नही है आहारजिनका ऐसे दैत्य चारोंतरफसे श्रीशिवके सन्मुख दौडे, उससमय श्रीशिव उनके मारनेको समर्थभी थे परंतु अक्रोध व्रतमें रहनेके कारण देखके उनकी उपेक्षा करदीनी । उसीकालमें दक्षप्रजापति देवताओंके कहने परभी पशुपति (शिव) मंत्र और शिवकी आहूती जो कि,यज्ञकी सिद्धीकरने वाली उन करके रहित यज्ञ करताहुआ॥

अथोत्तीर्णव्रतोदेवोबुद्ध्वादक्षव्यतिक्रमम् । रुद्रोरौद्रंपुरस्कृत्यभावमात्मविदात्मनः ॥ स्पृष्ट्वाललाटेचक्षुर्वैदग्ध्वातानसुरान्प्रभुः । बाणंक्रोधाग्निसंतप्तमसृजच्छत्रुनाशनम् ॥ ततोयज्ञःसविध्वस्तोव्यथिताश्चादिवौकसः ॥ दाहव्यथापरीताश्चभ्रांताभूतगणादिशः ॥ अथेश्वरंदेवगणाः

सहसप्तर्षिभिर्विभुम् । तमृग्भिरस्तुवन् यावच्छिवेभावे शिवः स्थितः ॥

अर्थ-जब उसहजार वर्षके अक्रोधव्रतसे निवृत्त हुए और दक्षके करे-हुए अपराधको जानके श्रीरुद्रभगवान् अपने रौद्रभावको धारण कर ललाटमें स्थित तीसरे नेत्रका स्पर्शकर उस नेत्रसे निकली हुई अग्निसे जितने दुष्ट दैत्य तपके विघ्नकरने वाले उन सबको भस्म करते हुए। फिर उस क्रोधाग्नि करके संतप्त एक बाण शत्रुनाशक बनायके उस दक्षके मारनेको चलाते हुए, उसबाणने उसयज्ञको विध्वंस कर संपूर्ण देवताओंको व्याकुल करा और प्राणीमात्रोंको तथा दिशाओंको दाहकी पीडासे व्यथितकरा। उससमय सब देवगण और सप्तर्षि मिलकर सर्व सामर्थ्ययुक्त ईश्वरश्रीशिवकी ऋग्वेदके मंत्रोंसे प्रसन्न होने पर्यंत स्तुतिकरते हुये ॥

शिवंशिवायभूतानांस्थितंज्ञात्वाकृताञ्जलिः । क्रोधाग्निरुक्तवान्देवमहंकिंकरवाणिते ॥ तमुवाचेश्वरः क्रोधंज्वरी लोकेभविष्यसि । मनुष्याणांचजन्मादौनिधनेचमहत्तमः ॥

अर्थ-प्राणियोंके कल्याणार्थ श्रीशिव कल्याणरूपमें स्थित हुएको जान वही श्रीशिवका क्रोधाग्नि हाथजोडकर बोला कि, हेदेव! अब मैं क्या आपकी आज्ञा करूं। उसके वचन सुनकर शिव उसअपने क्रोधसे बोलेकि,तू आजसे संसारमें ज्वर नामकरके प्रसिद्ध होगा और मनुष्योंके जन्म-समय और मरनेके समय तूही रहाकरेगा अर्थात् तेरेही प्रतापसे प्राणियोंका जन्म मरण होवेगा ॥

तथा।

मखेमखभुजांगणंकिलनिमंत्र्यदक्षःपुरा चराचरगुरुंहरंमदभरादवाजीगणत् । ततस्तदलिकेक्षणादतिरुषारुणात्पिगलस्त्रिमौलिरुदभूद्गणःसपदिवीरभद्राभिधः ॥ भृशंसचपिशंगदृक्त्वचमरेमृगस्योल्लसद्रुचंपरिदधज्ज्वलत्तनुरनुच्चजंघास्त्रयः । स्फुरत्पृथुतरोदरस्त्रिपुरवैरिणंप्रांजलिर्जगादकरवाणिकिंतमिदमुग्रमुग्रोवदत् ॥

अर्थ-अब ग्रंथांतरसे ज्वरोत्पत्ति कहते हैं कि, पहले दक्षप्रजापति अपने यज्ञमें सब देवताओंको निमंत्रण (नौता) कर चराचरके गुरुश्रीशिवका

अभिमान करके तिरस्कार कर्ताहुआ, उससमय श्रीशिवके अत्यंतक्रोध करके लाल २ तीसरे नेत्रसे पीले रंगका और तीनमस्तकवाला, वीरभद्रगण तत्काल प्रगटहुआ। पीलेनेत्र, बाघंवरको ओढे हुए, अग्निकी कांतिको धारणकर्त्ता,छोटी देह और तीनपैर, बडाभारी उदर जिस्का, ऐसा वो वीरभद्रगण त्रिपुरके वैरी शिवके सन्मुख हाथ जोडकर बोला कि, हेप्रभो! मैंक्याकरूं तब उस घोर रूपवालेसे घोरस्वरूप श्रीशिव यह बोले॥

सवंकुरुनिरुत्सवंसइतिरुद्रतोनिर्दयंनिशम्यसमशीसम-
प्रथममेववह्नित्रयम् । मरुद्गणमदुद्रवद्भवमतुष्टवद्याज्वि-
नोमुनीनलमनीनमद्दमनभीतसन्नस्वनान् ॥

अर्थ-कि, दक्षके यज्ञोत्सवको विध्वंसकर इस प्रकार रुद्रसे निर्दय आज्ञाको सुन प्रथम दक्षके यज्ञमें जो तीन अग्निहैं उनको शांति करताहुआ। उस समय यज्ञमें आये ऐसे मरुद्गणोंकोभजाता हुआ,श्रीशिवको प्रसन्न करता दमनभयसे रुके श्वासजिनके यज्ञकरानेवाले मुनीश्वरको नीचा करता अर्थात् जीतता हुआ वीरभद्र श्रीशिवके सन्मुख प्राप्त हुआ ॥

इदंतमवदात्स्थितंपुररिपुःपुरस्ताद्यतोऽखिलंहविरिहकृतो
झटितिजीर्णमेवत्वया । अतोऽस्यजगतोज्वरोभवततः
प्रभृत्युच्चकैरयंज्वरयतिस्फुरद्विविधनामधेयैर्जगत् ॥

अर्थ-इसप्रकार वैरीको जीतके सन्मुख खडे हुए उस वीरभद्रसे श्रीपुररिपु (महादेव) बोले कि, तैंने शीघ्र इस यज्ञकी सामिग्रीको जीर्णकरी अर्थात् पचागया इसीसे तू इस जगतमें ज्वरनामकरके विख्यात हो, बस उसी दिनसे यह ज्वर अनेक नामोंकर इस जगतको अपने वेगसे ज्वरवान् करता है ॥

ज्वरोनरिसपाकलालसहरिद्रतापेश्वराः गजोष्ट्रमहिषार्व-
गोष्वथयथाक्रमंकीर्त्तिताः । तथैन्द्रमदखोरकर्षभकप-
क्षपाताह्वयाःसमस्ततिमिरासभांबुजखगेष्वलर्कःशुनाम् ॥

अर्थ-तहां मनुष्योंके जो तापहोताहै उसको ज्वर ऐसा कहते हैं।हाथियोंमें इस ज्वरको पाकल कहते हैं । ऊंटोंमें इसको अलस कहते हैं। भैसाओंमें इसकी हरिद्र संज्ञाहै । घोडोंमें ताप कहलाताहै।गौओंमें ईश्वरनाम करके विख्यात है।सब मच्छलियोंकी जातिमें इन्द्रमद कहलाता है।

गधाओंमें खोरक नाम करके विख्यात है । कमलोंमें इसको ऋषभके नामसे पुकारते हैं। सब पक्षियोंमें अर्थात् पखेरुओंमें पक्षपात नामसे पुकारते हैं और कुत्तोंमें इसज्वरको अलर्कनामक कहते हैं ॥

मृगामयाख्योमृगजातिषूक्तःप्रलेपकोऽजाविषुचूर्णकोन्ने ।
उष्णीषसंज्ञः ससरीसृपेषुपर्वाप्रसूनेषुचनीलिकासु ॥

अर्थ—वही ज्वर मृग (हरिणों) की जातिमें मृगामय कहलाताहै। बकरी और भेडोंमें प्रलेपकनाम करके विख्यातहै । अन्न (गेंहूं, चना, चावल आदि धान्यों) में चूर्णक कहलाताहै । सर्पोंमें उष्णीसनाम ज्वरकी संज्ञाहै । पुष्प (फूलों) में पर्वा नामसे कहाताहै और जलमें इसकी नीलिका संज्ञाहै ॥

कुंकुमकोगोधूमेज्योतिष्कस्त्वौषधीषुपर्वासु ।
ग्रंथिकसंज्ञोव्रततावित्यभिधानैर्ज्वराः कथिताः ॥

अर्थ—गेंहूंधान्यमें कुंकुमनाम ज्वर की संज्ञाहै । औषधियोंमें इसकी ज्योतिष्कसंज्ञा है। बेलोंमें इसकी ग्रंथिक संज्ञा है । इस प्रकार नामोंकरके ज्वरकहे हैं ॥

भूमेरूषरकः प्रोक्तोवृक्षाणांकोटरः स्मृतः ॥

अर्थ—पृथ्वीमें ऊषरनामक ज्वर कहलाता है अर्थात् जिसपृथ्वीमें खार पैदा होता है वो ज्वरग्रसित पृथ्वी जाननी। एवं वृक्षोंमें कोटर कहलाता है अर्थात् वृक्षोंमें खोंतरका विकार है ॥

ज्वरकेआठभेद ।

बीभत्सस्त्रिशिराज्वरोथकपिलोभस्मप्रहारास्त्रिपात् पिंगाक्षोऽथमहोदरोऽथपरतोरौद्रोज्वलद्विग्रहः। शंभोःश्वाससमुद्भवाभयकरादक्षक्रतोर्ध्वंसका घोराघर्घरनादिनोमुनिवरैःप्रोक्ताज्वरास्तेऽष्टधा ॥

अर्थ—बीभत्स, त्रिशिरा, कपिल, भस्म, प्रहार, त्रिपाद, पिंगाक्ष, महोदर और ज्वलद्विग्रह ये श्रीशिवकी श्वाससे प्रगट, भयकारी, दक्षयज्ञविध्वंसक, घोररूपवाले और घर्घर नाद करेनवाले ऐसे आठ मुनिवरोंने कहे हैं ॥

बीभत्सज्वरकास्वरूप ।

बीभत्सोरुधिरारुणांबरवृतोगंधास्यमालाधरो

रक्ताक्षःकृमिसंकुलस्त्रिनयनोदुर्गंधिपूर्णोऽनिशम् ।
नग्नोरुद्रसमुद्भवोऽतिबलवान्कोपीजगद्घातकः
कृष्णाङ्गोमलिनोमदांधदमनःपूष्णोर्द्विजध्वंसकः ॥

अर्थ–रुधिरसे रंगे हुए वस्त्रोंको पहने, रुधिरकी गंधआवे, मुंडमालाको धारण करे, लालनेत्र, कृमिसे संकुलदेह, तीननेत्रवाला और दिनरात्रि-दुर्गंध जिसकी देहसे आवे, नग्न और अतिबली, कोपयुक्त, जगत्का घातक,काली देहका,मलिनस्वरूप,मदमस्तोंको दमनकर्त्ता और पूषा देवताके दांतोंको तोडनेवाला ऐसाश्रीशिवसे उत्पन्नहुए बीभत्सज्वरका स्वरूप है ॥

त्रिशिराज्वरकास्वरूप ।

अभूद्दक्षविध्वंसकोरुद्रकोपात्रिशीर्षः स्त्रिपान्नंदनेत्रोऽतिकायः ॥ चलज्जिह्वयासृक्किणीलेलिहंतो बृहद्तालजंघारुणाक्षोऽतिक्रोधी ॥

अर्थ–श्रीरुद्रके कोपसे दक्षका विध्वंस करनेवाला तीनशिरका, तीनपैरका, नौनेत्रका, बडीदेहवाला, चलायमान जीभसे होटोंके प्रांतोंको चाटताहुआ, लंबेतालके समान पीडरीवाला,लालनेत्रका, अत्यंतक्रोधी, ज्वर प्रगट हुआ इसका त्रिशिरा नाम है ॥

कापिलाख्यज्वरकास्वरूप ।

अभूद्रुद्रकोपाज्ज्वरःकापिलाख्योमुखाङ्गारपुञ्जोद्गिरन्तोऽतिकायः । मदाघूर्णिताक्षःस्फुरत्ताम्रकेशोमहामेघगर्जो-मनोहर्षहर्त्ता ॥

अर्थ–श्रीरुद्रके कोपसे जो कापिलज्वर हुआ है वो अत्यंत ऊँची देहका मुखसे अँगारोंके पुंजोंको छोडता, मदसे चढे हुए नेत्र, तामेके समान प्रकाशवाले बाल, घोरमेघकी गर्जनाका करनेवाला और मनकी प्रसन्नताका नाशकहै ॥

भस्मविक्षेपकज्वरकास्वरूप ।

अभूद्भस्मविक्षेपकोरुद्रकोपान्महाट्टाट्टहासोमुहुर्जृंभमाणः । चलत्सप्तजिह्वः करालोग्रदंष्ट्रः स्फुरत्तप्तताम्रारुणश्मश्रुकेशः ॥

अर्थ-श्रीरुद्रके कोपसे एक भस्मविक्षेपक ज्वर प्रगट हुआ वह घोर अट्टाट्टहासका करनेवाला, वारंवार जंभाईको लेताहुआ और चलायमान सातजीभ, विकराल उग्रडाढावाला और प्रकाशमान तपेहुए तामेंके समान लाल डड्ढी और केशवाला ऐसा जानना ॥

त्रिपादज्वरकास्वरूप ।

त्रिपाद्रुद्रकोपाद्बभूवारुणाक्षो भृगोः श्मश्रुविध्वंसकस्तब्धकर्णः । ज्वरोदीर्घकायोमुहुः श्वासकर्त्ता रणेनृत्यमानोङ्गदाहीतृषार्त्तः ॥

अर्थ--रुद्रके कोपसे तीन पैरका ज्वर प्रगटहुआ जिसके लालनेत्र और खडेहुए कान दीर्घदेहवाला वारंवार श्वासको छोडनेवाला तथा संग्राममें नाचनेवाला अंगोंमें दाहका करनेवाला और प्याससे व्याकुल तथा भृगुऋषिकी डाढीका उखाडने वाला जानना ॥

पिङ्गाख्यज्वरकास्वरूप ।

अभूद्वीरभद्रेश्वरादुत्कटास्योज्वरःपिङ्गनेत्रोऽल्पजंघोऽग्निवर्णः । तृषार्त्तोद्विजिह्वोनृसिंहद्वितीयश्चलत्तीव्रकेशः कृशः शुष्कमांसः ॥

अर्थ--वीरभद्रेश्वरसे टेढे मुखका, पीलेनेत्रवाला, छोटी २ पींडरीवाला अग्निके समान लालवर्ण, तृषासे व्याकुल, दोजीभ मानो दूसरा नृसिंहही है, चलायमान तीव्र बालोंवाला, कृशदेह और सूखे मांसवाला ऐसा पिंगनेत्रज्वर प्रगट हुआ ॥

महोदरज्वरकास्वरूप ।

बभूवातिदीर्घोदरोलंबकर्णोज्वलदग्निरूपश्चलद्रक्तनेत्रः । तृषाश्वासजृंभान्वितांगप्रमर्दोभटेशोज्वरोरक्तवर्णः प्रमत्तः ॥

अर्थ--श्रीशिवसे एक बडेपेट और लंबे कानका प्रज्वलित अग्निके समानरूप, चंचल लालनेत्र तृषा श्वास जृंभाकरके युक्त, अंगोंका तोडनेवाला, योद्धाओं का राजा तथा लाल वर्णका और मतवाला महोदरज्वर जानना॥

ज्वलद्विग्रहज्वरकास्वरूप ।

ज्वलद्विग्रहोमुक्तकेशश्चलद्भ्रूस्त्रिशूलासिहस्तोभुजंगेश-

पाशः। ज्वरेशोऽतिवीर्योहरश्वासजातः कृशः शुष्कमांसोबलीभैरवेशः॥

अर्थ–श्रीशिवजीके श्वाससे प्रगट अग्निसमान देहवाला, खुलेहुए बाल चलायमान भ्रुकुटी, त्रिशूल, तलवार, सर्प और फांसका धारण करनेवाला, सबज्वरोंका राजा, अतिपराक्रमी, कृशदेह और शुष्कमांसका बलवान् भयानकोंमेंभी श्रेष्ठ ऐसा ज्वलद्विग्रह ज्वरका स्वरूप जानना॥

सुश्रुतेऽपि।

रुद्रकोपाग्निसंभूतः सर्वभूतप्रतापनः। त्रिपा[८]दभस्म[४]प्रहरण स्त्रिशि[२]राः सु[७]महोदरः॥ वैयाघ्रचर्मवसनः कपि[३]लोज्ज्वलवि[५]ग्रहः। पिंगे[६]क्षणोह्रस्वजंघो बी[१]भत्सोबलवानयम्॥पुरुषो लोकनाशार्थमसौ ज्वर इतिस्मृतः॥

अर्थ–ये आठज्वर जो हंसराज ग्रंथमें लिखे हैं उनका मूलकारण यह सुश्रुतका वाक्य है। अर्थात् इसीके नामोंको लेकर हंसराजकविने अपनी कविता शक्ति दिखलाई है वास्तवमें ज्वर एकही है।तहां रुद्रकोपाग्निसे प्रगट, सर्व प्राणियोंको तपानेवाला, तीनपैरका, भस्मप्रहरण अर्थात् भस्महेति शस्त्रका प्रहार करता, तीनमस्तक, बडेभारीउदरवाला, व्याघ्रचर्मरूप वस्त्र, कपिल, ज्वलद्विग्रह, पीलेनेत्रका, छोटीजांघका, वभित्स, बलवान् ऐसा पुरुष लोकनाशार्थ प्रगट करा इसको ज्वर ऐसा कहते हैं॥

ब्राह्मणज्वरकेलक्षण।

दंडीयज्ञोपवीतीचरौद्रोब्राह्मणरूपधृक्॥

अर्थ–श्रीरुद्रभगवान्से प्रगट दंड यज्ञोपवीत (जनेऊ) को धारणकरे और ब्राह्मणरूप किये हुए ऐसा ब्राह्मणज्वर जानना। तथा छत्र, कमंडलु, मृगचर्मादि भूषित, पवित्र और शांतिवेश आदि जो ब्राह्मणोंके चिन्ह होतेहैं वो सब जानने॥

क्षत्रीज्वरकेलक्षण।

जपाकुसुमसंकाशोरौद्रदंष्ट्राकरालितः।
खड्गहस्तोमहारौद्रोमाहेन्द्रः क्षत्रियोमतः॥

अर्थ–जपा (गुडहर) के फूलके समान लालरंगका, तीखी डाढीवाला, खड्गकोलिये महान् रौद्र, सब रुद्रज्वरोंका राजा, क्षत्रीज्वर जानना॥

वैश्यज्वर ।

चंपकप्रसवाभासःतप्तकांचनभूषितः ।
दंडहस्तोमहावेगी वैश्योज्वरइतिस्मृतः ॥

अर्थ–चंपेके फूल समान पीतवर्ण, तपेहुये सुवर्णसे भूषित, दंडहाथमें महावेगी ऐसा ज्वर वैश्य कहलाता है ॥

शूद्रज्वरकेलक्षण ।

कृष्णमेघांजनाकारस्तीक्ष्णदंष्ट्रोज्ज्वलाननः ।
त्रिनेत्रोज्वलनप्रख्यःकालःशूद्रोविजानता ॥

अर्थ–कालेबादल और काजलके आकार,तीखीडाढावाला,उज्ज्वलमुखका,तीननेत्र,अग्निके समानस्वरूप,कालेरंगका, ऐसा शूद्रज्वर जानना विशेष देखना होवे तो ज्वरपराजय और ज्वरतिमिरभास्कर ग्रंथमें देखो ॥

ज्वरकेनाम ।

रोगः[१]पाप्माज्वरोव्याधिर्विकारोदुःखमामयः ।
यक्ष्मातंकगदाबाधशब्दाःपर्यायवाचिनः ॥

अर्थ–रोग, पाप्मा, ज्वर, व्याधि,विकार,दुःख,आमय, यक्ष्मा, आतंक, गद और आबाध ये शब्द सब आपसमें पर्यायवाचकहैं अर्थात् रोगके नामहैं।

---

१ रोगादिक शब्द पर्यायवाचक हैं अर्थात् एक अर्थकेही देनेवाले है,परंतु इनमें प्रत्यर्थभेद भी दीखता है जैसे–रोग (पीडादेनेसे इसको रोग कहते हैं) पाप्मा पापोंके करनेसे होताहै इसीसे इसको पाप्मा ऐसा कहते हैं) ज्वर (ज्याधातु अवस्थाकी हानिमें वर्त्ते है उसके आगेवर प्रत्ययलानेसे ज्वरशब्द सिद्ध होता है यह देह और मनको संतापकारक होनेसे ज्वर कहाता है) व्याधि (जो देहमें अनेक प्रकारके दुःख प्रगटकरे उसको व्याधि कहते हैं) विकार (मन–बुद्धि और इन्द्रियोंके विकृत करनेसे विकार कहाता है) दुःख (उपतापक होनेसे दुःख कहते हैं) आमय (संपूर्ण रोगआमसे प्रगट होते हैं इस वास्ते आमय कहते हैं अर्थात् संपूर्ण प्राणीमात्र चपलतासे अदेश अकालमें अपथ्य और अत्यंत भोजनके सेवन करने वाले होते हैं इसीसे आमजन्यरोग प्रगट होते हैं यक्ष्मा (सब रोग और रोगोंके समूह होनेसे यक्ष्मा कहलाते हैं,) आतंक (प्राणी रोगोंसे उपतप्तहो स्त्री, पान,भोजनादि त्याग कठिनसे जीते हैं इस वास्ते उनको आतंक ऐसा कहतेहैं) गद (अनेक कारण जन्य होनेसे ज्वरको गद ऐसा कहाहै) आबाध (जो चारों तरफसे देह और मनको बाधाकरे इस वास्ते इसको आबाध ऐसा कहते हैं ॥

अथ निदानपंचकम्[१]।

मंगलाचरणम्।

प्रणम्य जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारणम्। स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं त्रैलोक्यशरणं शिवम्॥ १॥ नानामुनीनां वचनैरिदानींसमासतःसद्भिषजां नियोगात्। सोपद्रवारिष्टनिदानलिङ्गोनिबध्यते रोगविनिश्चयोऽयम्॥ २॥

अर्थ–जगत्की उत्पत्ति पालन और प्रलयके प्रधान कारण, स्वर्ग (सुख) अपवर्ग (मोक्ष) के द्वार अर्थात् दाता, तथा त्रिलोकीके रक्षक शिवको प्रणामकर अनेक चरक सुश्रुत आदि मुनीश्वरोंके वचनोंके अनुसार उत्तम वैद्योंकी आज्ञासे अब मैं संक्षपसे रोगविनिश्चय नाम ग्रन्थकी रचना कर्त्ताहूं। जिसमें (उपद्रव[२])(अरिष्ट[३],)(निदान[४]) और (चिन्ह[५]) इनका लक्षण अच्छी रीतिसे किया गया है॥ १॥ २॥

*शिष्य–*यह अतिसूक्ष्म निदानपंचक सर्वज्ञ ऋषिमुनियोंके जानने योग्यहै उनके वाक्योंका निरादरकर मनुष्यकृत तुह्मारे ग्रन्थमें मनुष्योंकी कैसे प्रवृत्ति होवेगी? इसकारण माधवाचार्य्यने "नानामुनीनां वचनैः" इस पदको धरा, अर्थात् अनेकमुनीश्वरोंके वचनोंका आशयलेमैने यह ग्रन्थ निर्माण कियाहै किंतु मेरे मनकी उक्तिसे कल्पित नहींहै।

शंका–पहलेहीं बहुत ग्रन्थ निर्माणकरे उपस्थितहैं फिर तुह्मारे इस ग्रन्थको कौनपढेगा इसकारण माधवाचार्य्यने "इदानीम्" पद मूलमें धरा, इसपदका यहआश यहै कि, हमहीं अनेक मुनीश्वरोंके वचनोंसे अब ऐसाअलौकिकग्रंथ रचतेहैंकि, पहिलेकि

---

१ प्रथम लिखआयेहैं कि "दर्शनस्पर्शनैःप्रश्नैःसंपरीक्षेतरोगिणम्। रोगंनिदानप्राग्रूपलक्षणोपशयाप्तिभिः" अर्थात् दर्शन, स्पर्श और प्रश्नसे रोगीकी परीक्षा करे, तथा निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और संप्राप्ति करके रोगकी परीक्षाकरे तहां त्रिविधरोगीकी परीक्षा तो प्रथम लिखआएहैं अब हम रोगपरीक्षाके निमित्त निदानपंचकको रुग्विनिश्चय ग्रंथसे लिखते हैं तथा जिस रोगका निदान लिखेंगे उसीके साथ उसकी चिकित्साभी लिखी जायगी॥

२ उपद्रवो–रोगारम्भकदोषप्रकोपजन्योविकारः। ३ नियतमरणख्यापकलिंगमरिष्टम्। ४ निदानंरोगोत्पादकोहेतुः। ५ लिंगं–रोगख्यापकोहेतुः। तेनलिंग्यते व्याधिःअनेनेति व्युत्पत्यापूर्वरूप–रूपो–पशयसप्राप्तयोविज्ञायंते।

सोआचार्यने अद्यापि नहीं निर्माणकरा । कोईवादी शंका करे कि, तुमने ग्रन्थ रचाभी परंतु किसीने नहीं पढातो आपका ग्रन्थनिर्माण करना व्यर्थ होयगा इसकारण माधवाचार्यने" **सद्भिषजां नियोगात्**" यह पद धरा इसपदका आशय यह है कि, हमारे पढ़नेके निमित्त कोई निदानग्रन्थ निर्माणकरो ऐसे बुद्धिमान् वैद्योंके कहनेसे इसग्रन्थकी रचना करी है **शंका**—श्रीमहादेवजीके हर मृड रुद्र शाम्भव इत्यादिनामोंको त्यागकर शिव इसनामकोक्यों मणामकरा? **उत्तर**—इसरोगविनिश्चयग्रन्थके पठनपाठन करनेवालोंकी कल्याणकी इच्छाकर सर्वकामना देनेवाला कल्याणवाचक शिवनाम विचार इसको ग्रन्थके आदिमें माधवाचार्य्यने मणामकरा ॥ १ ॥ २ ॥

नानातंत्रविहीनानां भिषजामल्पमेधसाम् ।
सुखं विज्ञातुमातंकमयमेव भविष्याति ॥ ३॥

अर्थ–अन्यनिदान ग्रन्थोंसे इसकी उत्तमता दिखातेहैं जैसेकी अनेक ग्रंथोंके विचार करनेमें असमर्थ ऐसे मन्दबुद्धिवाले वैद्योंके सुखपूर्वक रोगज्ञानके निमित्त यहीग्रन्थ करण होवेगा. क्यों कि रोगका जाननाही मुख्यहै सो ग्रन्थान्तरोमें लिखाभीहै ॥

रोग जाननेके पांच उपाय उन्को कहतेहैं ।

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ।
संप्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पंचधा स्मृतम् ॥ ४ ॥

अर्थ–निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और संप्राप्ति, ये पांच प्रकार पृथक् पृथक् और समस्तव्याधिके बोधक होतेहैं । इसप्रकार रोगोंका जानना मुनीश्वरोंने पांच प्रकारका कहाहै ।

---

*इसश्लोकमें " उपशयस्तथा " यह जो पद धरा इसका यह आशयहै कि, जैसे निदान पूर्वरूप और रूपसे रोग जाना जायहै उसीमकार उपशयसे और

---

१ रोगमादौपरीक्षिततततोनन्तरमौषधम् ॥ ततःकर्मभिषक्पश्चाज्ज्ञानपूर्वंसमाचरेत् ॥ १ ॥ रोगज्ञानार्थमेवादौयत्नःकार्यो भिषग्वरैः ॥सतितस्मिन्क्रियारम्भःपुण्याययशसेश्रियै ॥ २ ॥ प्रसंगवश रोगज्ञानकी विधि कहतेहैं जैसे रोग चारप्रकारसे जानाजाता है प्रत्यक्ष–अनुमान उपमान–और शब्दसे तहां चित्रकुष्ठादिव्याधि प्रत्यक्ष देखनेसे प्रतीतहोती है, ज्वरादित्वक्इन्द्रीसे जानेजाते हैं ॥

संप्राप्तिसेभी रोग जानाजाताहै '**सम्प्राप्तिश्चेति**' इसपदमें च और इतिके धरनेसे यह प्रयोजनहै कि, रोगजाननेके इन पांचोंसे विशेष और उपाय नहींहै। अब कहतेहैं कि, रोगोंका निदान संनिकृष्ट **समीप** और विप्रकृष्ट **दूर** इन भेदोंसे दोप्रकारकाहै '**संनिकृष्ट**' उसे कहतेहैं कि, जैसे वातादिक कुपित ज्वरादिक रोगोंको प्रगटकरेहैं और **विप्रकृष्ट** उसे कहतेहैं जैसे हेमंतऋतुमें संचितहुआ कफ वसंतऋतुमें कुपित होताहै '**पूर्वरूप**' उसे कहतेहैं जैसे ज्वरमें आलस्यादि धर्म '**रूप**' उसे कहतेहैं जैसे १८ के श्लोकमें लिखाहै '**स्वेदावरोधइति**' अर्थात् पसीनोंका अवरोध होना इत्यादिक '**उपशय**' उसे कहतेहैं जैसे वातरोग तैलादिक लगानेसे शान्ति होयहै। '**सम्प्राप्ति**' उसे कहतेहैं जैसे १० के श्लोकमें लिखाहै '**यथादुष्टेनदोषेण**' इत्यादि **शंका**—क्योंजी ये पांच जो व्याधि जाननेके उपाय कहे इनमें एकहीसे रोगका निश्चय होसकेहै फिर माधवाचार्यने पांचप्रकार व्यर्थ क्यों लिखे? क्योंकि पांचोंका प्रयोजन केवल रोगका जाननाहै— **उत्तर**—तुमने कहा सो ठीकहै, परंतु इन पांचोंका पृथक् पृथक् प्रयोजनहै जैसे **निदान** से यह प्रयोजनहै कि, जिसवस्तुके खानेसे या लगानेसे रोग प्रगटहो उसका त्याग करनेसे रोग नहीं बढे किंतु उलटा शांतिही होताहै और*पूर्वरूप के जाननेसे यह प्रयोजनहै जैसे **सुश्रुतमें** लिखा है कि, वातज्वरके पूर्वरूपमें घृतपानकरानेसे वातज्वरकी उत्पत्ति नहीं होय***रूप** के जाननेसे यह प्रयोजनहै कि, व्याधि अर्थात् रोगका साध्याऽसाध्य और कष्टसाध्यत्व निश्चय होताहै, जैसे—जिसरोगका अल्परूप हो वह सुखसाध्यहै और मध्यरूप कष्टसाध्य और संपूर्णरूप असाध्य इसप्रकार जाननेसे असाध्यका परित्याग करना और कष्टसाध्य तथा सुखसाध्यकी औषधि करनी उचित है*उपशयके जाननेसे यह प्रयोजनहै कि, सुपरीक्षितव्याधिके संपूर्ण लक्षण न मिलनेसे व्याधिका यथार्थज्ञान नहीं होय उसको उपशयके द्वारा निश्चय करे, सो **चरक** में लिखाहै कि, जिस व्याधिके लक्षण प्रगट न होय उसकी उपशय और अनुपशयके द्वारा परीक्षा करे। उसीप्रकार*सुश्रुत में लिखाहै जैसे उबटना, तेल लगाना, स्वेदनविधि, इत्यादि कर्म करनेसे वातरोग शांत न होय तो उसके रुधिरका विकार जाने और **संप्राप्ति** के जानने से यह प्रयोजन है कि, संप्राप्तिके विनाजाने पूर्वरूपादिकोंकरके जानीभईभी व्याधि चिकित्साके योग्यभी है, परंतुअंशांश, विकल्प बल, आदिको जबतक नहींजाने

१ अर्थात् नाडी नेत्र जिव्हा मल मूत्र आदि परीक्षाओंसे रोगोंका ज्ञान यथार्थ नहीहो। २ वातिकज्वरेपूर्वरूपेघृतपानमिति तथाच साध्यरूपाणांसाध्यत्वमपिज्ञायते। ३ कष्टसाध्यके लक्षण चरकमें लिखे हैं-यथा—निमित्तंपूर्वरूपाणांमध्यमेबलेइति। ४ गूढलिंगंव्याधिमुपशयाऽनुशयाभ्यांबुद्धचेतइति। ५ अभ्यंगस्नेहस्वेदाद्यैर्वातरोषोनशाम्यति। विकारस्तत्र विज्ञेयोदुष्टमत्रास्तिशोणितमिति।

निमित्तहेत्वाऽऽयतनप्रत्ययोत्थानकारणैः ।
निदानमाहुः पर्यायैः–

अर्थ–अब निदानके पर्यायवाचक शब्दोंको कहे हैं निमित्त,हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान और कारण ये निदानके पर्य्यायवाचक शब्द शास्त्रव्यवहारके अर्थ मुनीश्वर कहतेहैं कारण इनके कहनेका यहहै।कि, व्यवहारके वास्ते अर्थात् शास्त्रमें इन छहों शब्दोंमेंसे कोईशब्द आवे उसको निदान वाचकही जाने ॥

प्राग्रूपं येन लक्ष्यते ॥ ५ ॥
उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणाऽनधिष्ठितः ।
लिंगमव्यक्तमल्पत्वाद्व्याधीनां तद्यथायथम् ॥ ६ ॥

अर्थ–जिस जंभाई आलस्य आदि करके उत्पत्ति होनेवाली व्याधिका ज्ञान होवे उसको प्राग्रूप अर्थात् (पूर्वरूप) कहतेहैं फिर वो व्याधि दोष (वात पित्त कफ) से बहुधा अप्रगट होवे । * शंका–यदि वातादिक दोषोंसे अप्रगट होवेगी तो व्याधिका प्रगट होना असम्भवहै, क्योंकि कारण तो वातादिक दोषहैं जब दोषही नहीं तो रोग कैसे प्रगट होसकेहैं । * (उत्तर इसपदका यह अर्थहै कि, दोष वातपित कफ इनका व्याधिके अल्प होनेसे अप्रगटरूप होना अर्थात् थोड़ा थोड़ा होना. अत एव तत्तत् ज्वरादिव्याधिका अपने २ अप्रगट लक्षण पूर्वरूप तैसातैसाही होतेहैं अब कहतेहै कि,(पूर्वरूप)दोप्रकारकाहै एक सामान्य दूसरा विशिष्ट सामान्यप्राग्रूप (पूर्वरूप) उसे कहतेहैं जैसे दोष (वात पित्त कफ) से दूषित धातु उसके बिगड़नेसे प्रगट होनेवाले ज्वरादि व्याधिमात्रहीकी प्रतीति होवे और वात आदि दोषोंके चिन्ह न मालूमहों जैसे "श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वमिति" अर्थात् ज्वरमें श्रम, मनका न लगना,देहका विवर्ण इत्यादि लक्षण हो और जिसमें होनहार रोगारम्भक दोष उन्होंके चिन्ह तिसके एक अंशकी प्रतीतिहो उसको विशिष्ट प्राग्रूप कहतेहैं जैसे "जृंभात्यर्थं समीरणात्" अर्थात् जंभाईका आना केवल वातके दोषसेहीहै । इसमें होनहार रोग कौन ज्वर, उसका आरम्भक दोष कौन वात, उस

तबतक चिकित्सा यथार्थ नहीं होसके, इसी से वैद्य निदानपंचकका अवश्यही परिचय करै ॥

वातका एक अंश कौन जंभाई, ऐसे औरभी जानने चाहियोइस विशिष्ट पूर्वरूपमें जंभाईआदि रूप देखकर कदाचित् पूर्वरूपको रूप न समझना चाहिये। क्योंकि यह तो केवल व्याधिके आरम्भक दोषमात्रका सूक्ष्म चिन्ह है, इस वातको दृष्टान्त देकर समझाते हैं।(दृष्टान्त) जैसे तृणके समूहमें छोटी अग्निकी चिनगारी गिरनेसे धूम(धूआं)मात्र प्रकट देखकर हाथ, वस्त्र आदिके मारनेसे ही शान्ति करसक्तेहैं, परन्तु जब अग्नि एकसाथ जोरसे प्रज्वलित होगई तब शान्ति नहीं होसके ऐसेही विशिष्ट पूर्वरूपको अल्प होनेसे शान्ति कर सक्ते हैं, परन्तु जब रूप होगया तब उसका उपाय नहीं होसके है इसीसे पूर्वरूप और रूपमें भेद है * अब कहते हैं पूर्वरूप और रूप इन दोनोंमें कोई शारीरक अर्थात् शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं और कोई मानसिक अर्थात् मनसे सम्बन्ध रखते हैं शारीरक जैसे ज्वरमें मुखका विरस होना देह भारी,नेत्रसे जल गिरना इत्यादिक * और मानसिक जैसे मनका एक जगह न लगना और अपने हितकारक वचनोंसे शान्ति न होना तथा खट्टे चरपरेपदार्थपर मन चलना इत्यादि ॥

तदेवव्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते।
संस्थानं व्यञ्जनं लिंगं लक्षणं चिह्नमाकृतिः ॥ ७ ॥

अर्थ–जब पूर्वोक्त प्राग्रूप प्रगट होजाय तब उसको रूप ऐसे कहते हैं। और संस्थान, व्यंजन, लिंग, लक्षण, चिन्ह और आकृति, यह छः शब्द रूपके पर्यायवाचक हैं ॥

उपशयके लक्षण।

हेतुव्याधिविपर्य्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम्।
औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ॥ ८ ॥
विद्यादुपशयं व्याधेः सहि सात्म्यमिति स्मृतः।

अर्थ–अब उपशयके लक्षणको कहते हैं हेतुविपरीत, व्याधिविपरीत, हेतुव्याधिविपरीत,हेतुविपर्यस्तार्थकारी,व्याधिविपर्यस्तार्थकारी,हेतुव्याधि विपर्यस्तार्थकारी ऐसे जो औषध अन्न (पथ्य) विहार आचरण इनका सेवन सुखकारक जानना उसको व्याधिका उपशय कहते हैं इसका तात्पर्य यह है कि, रोग और रोगके हेतुको सुखकारक जो औषधि पथ्य आचरण उसको उपशय कहते हैं और(व्याधिसात्म्य) ये पर्यायवाचक नाम उसी उपशयका हैं, सुखकारकके कहनेसे यह प्रयोजन है कि, दाह

और प्यासयुक्त नवीनज्वरमें शीतलजलका पीना व्याधिका बढानेवाला है इस्से शीतलजल सुखकर्त्ता न हुआ अतएव शीतलजलको उपशय न समझना चाहिये । परंतु दाहयुक्त प्यासमें शीतलजल उपशय माना जायगा क्योंकि सुखकारक है ॥

आगे अब क्रमसे उदाहरण दिखाते हैं ।

हेतुविपरीत औषध-जैसे शीतकफ ज्वरमें सोंठ तो इसमें प्रथम समझना चाहिये कि, यहां हेतु कौन है कि वात (सर्दी) उस वातका शीतलधर्म है-तो अब शीतकफ यह कब शान्तिहोय कि, जब सर्दी और कफके विपरीत औषधमिले, ऐसी औषध कौन कि, शुंठी ये सर्दीको और कफ दोनोंको शान्ति करे है तो शीत कफ ज्वरमें हेतुविपरीत

नाम	औषध	अन्न	विहार
हेतुविपरीत	शीतज्वरमें गरम औषधि सोंठ	श्रम और बादीसे प्रगटरोगपर मांसको रस और भात	दिनके सोनेसे प्रगट कफ रोगपर विपरीत आचरण रातमें जागना
व्याधिविपरीत	अतिसारमें दस्त बंदकरनेवाली अवाधि पाठाआदि	दस्तों में दस्तके बंदकारक पथ्य मसूर	उदावर्त्तरोगमेंशब्दपूर्वक अधोवायुका निकसना मंत्रऔषध धारण देवगुरुकी सेवाकरनी
हेतुव्याधिविपरीत	वातकी सूजनमें दशमूलका काढावात और सूजन दोनोंको दूर करने वाला है	कफकी संग्रहणीमें छाछका पीना वातनाशक कफनाशक और संग्रहणीनाशक	स्निग्ध जो दिनके सोनेसे उत्पन्नतंद्रा तिसमें रूक्षतंद्रासे विपरीत और स्निग्धता नाशक रात्रिमें जागना
हेतुविपर्यस्तार्थकारी	जैसे पित्त प्रधान व्रण की सूजनमें पित्तकारक उष्मपिंडीका बांधना	पित्तकी सूजनमेंदाहकारक अन्नका भोजन करना	जैसे वातसे पैदा उन्मादमें त्रासका देना
व्याधिविपर्यस्तार्थकारी	जैसे कफरोगमें वमनकारक मैनफल आदि	अतिसार रोगमें दस्तकारक दुग्ध देना	छर्दिरोगमें हाथका अंगुठा गलेमें कर वा कमलनाल आदिसे उलटीका लाना.
हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारी	जैसे अग्निजलेपर गरम अगरआदि लेप अथवा विषपर विष	जैसे मद्यपानके करनेसे प्रगट मदात्यय रोगमें मदकारक फेर मद्य पीना	दंडकसरतसे प्रगट वातमें जलका तैरनारूपव्यायामका करना

औषध सोंठ हुई ॥ १ ॥ ऐसेही (हेतुविपरीत) अन्न जैसे श्रम और सरदीसे प्रगट ज्वरमें मांसका रस और चावल इसमें हेतु कौनाकि श्रम और सरदी, ये कब शान्ति होवें कि, श्रम और सर्दी हरणकर्त्ता पथ्य मिले, ऐसी पथ्य कौनाकि, मांसरस और चावलोंका भात ये श्रम और सर्दीके विपरीत हैं अर्थात् नाशकहैं ॥ २ ॥ ऐसेही (हेतुविपरीतविहार) कहिये आचरण कौन जैसे दिनके सोनेसे प्रगट कफपर रातमें जागना, यहां हेतु कौन हुआकि, दिनका सोना, उससे प्रगट दोष कौनकि, कफ, यह कफ कब शान्ति होयकि, जिस हेतुसे प्रगटभया उस हेतुसे विपरीत आचरण कराजाय, तो दिनके सोनेपर उलटा आचरण कौन कि, रातमें जागना, तो यह हेतुविपरीत आचरणभया । इसप्रिकार और उदाहरण व्याधिविपरीत आदिके पूर्व लिखे हुए चक्रके अनुसार बुद्धिवान् मनुष्य समझ लेवेंगे ॥

अनुपशयके लक्षण।

विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसाम्यमिति स्मृतः ॥ ९ ॥

अर्थ-जो उपशयके लक्षण कहेहैं उससे विपरीत लक्षण अनुपशयके हैं और व्याधिका ' असात्म्य ' अर्थात् असमान नाम उसी अनुपशयका पर्यायवाचक शब्द है ॥ ९ ॥

सम्प्राप्तिके लक्षण।

यथा दुष्टेन दोषेण यथाचानुविसर्पता ।
निवृत्तिरामयस्याऽसौ सम्प्राप्तिर्जातिरागतिः ॥ १० ॥

अर्थ-दोष कहिये वातपित्त कफ इनका दुष्टहोना नाम कुपित होना अनेक प्रकारका है अर्थात् स्वकारण या दूसरेके कारण करके, ऐसे कुपितदोष अपने स्थानको छोड़कर देहमें ऊपर नीचे तिरछे विचरते हैं उस विचारनेसे जो रोग प्रगटहो उसको (सम्प्राप्ति) कहते हैं और (जाति) तथा आगति ये दोनों पर्य्यायवाचक नाम उसी सम्प्राप्तिके हैं * तात्पर्यार्थ ये हैं कि, मनुष्यके देहमें वात पित्त कफ दोष बढकर जैसे रोगको प्रगटकरे उसीप्रकार उसको सम्प्राप्ति कहते हैं * उदाहरण-जैसे कुपितदोषोंका आमाशयमें प्रवेश होना और उसस्थानमें इतस्ततो गमन करना तथा रसकी बहनेवाली नाडियोंके मार्गोंको रोकना और पक्वाशयमें रहनेवाली अग्निको बाहिर निकालना तथा उसी जठराग्निसे सर्व देहके तप्तहोनेसे ये ज्वर हैं,ऐसा जो निश्चय किया जाय है उसीको संप्राप्ति कहतेहैं । ऐसेही अतिसारादिरोगोंकी संप्राप्ति जाननी चाहिये ॥ १० ॥

सम्प्राप्तिके भेद।

संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः ।

अर्थ–अब संप्राप्तिके भेद कहतेहैं सा कहिये सो संप्राप्ति संख्यादि विशेषण करके पांच प्रकारकी है जैसे १संख्या२विकल्प३प्राधान्य४बल५काल इति ॥

संख्यारूपसंप्राप्तिके लक्षण ।

सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽऽष्टौ ज्वरा इति ॥११॥

अर्थ–जैसे इसी ग्रन्थमें आगे आठ प्रकारका ज्वर, पांचप्रकारकी खांसी है ऐसा कहेंगे अर्थात् रोगोंकी गणनाकोही संख्यारूप सम्प्राप्ति कहते हैं ॥

विकल्परूपसंप्राप्तिके लक्षण ।

दोषाणां समवेतानां विकल्पोऽशांशकल्पना ।

अर्थ–मिलेहुए दोष कहिये वात, पित्त, कफ इनके अंशांशका अनुमान करना उस्को विकल्परूप सम्प्राप्ति कहतेहैं जैसे धूंएके निकलनेसे ये पर्वत अग्निमानहै ऐसेही ये रोगीके देहमें वातका अंश विशेषहै,काहेसे कि, वातके अंश विशेष मिलनेसे इसी अनुमानको विकल्पसंप्राप्ति कहतेहैं–उदाहरण–जैसे रूखी, शीतल,हलकी और फैलनेवाली, इत्यादि गुणयुक्त जो पवन, उस्का रौक्षादि गुणयुक्त कसेला रस वातको सर्वांशकरके बढानेवालाहै उसी प्रकार कटुरस सर्वभावकरके पित्तको बढानेवालाहै जैसे कटु, उष्ण,तीक्ष्णत्वकरके हींग पित्त को बढानेवालाहै उसीप्रकार मधुररस जैसे भैंसका दूध ये सर्वभावकरके कफको बढानेवालाहै इत्यादि इसमें (दोषाणां) जो बहुवचनहै सो दोषोंके पृथक् पृथक् ग्रहणके वास्ते है और (समवेतानाम्) ये पद जो हैं सो द्वंद्वज और सन्निपातके ग्रहणनिमित्त धराहै ॥

प्राधान्यरूपसंप्राप्तिके लक्षण ।

स्वातंत्र्यपारतंत्र्याभ्यां व्याधेःप्राधान्यमादिशेत् ॥ १२॥

अर्थ–स्वतंत्र और परतंत्रकरके व्याधिको प्राधान्यता है जैसे स्वतंत्रज्वरको प्रधानताहै और ज्वराधीन श्वास आदिरोगोंको अप्रधानताहै ॥

बलरूपसंप्राप्तिके लक्षण ।

हेत्वादिकात्र्त्स्न्यावयवैर्बलाबलविशेषणम् ।

अर्थ–हेतु आदिशब्दसे पूर्वरूप और रूप इनके सर्व अवयव (लक्षण) मिलनेसे व्याधिको बलवान् जानना और थोडे लक्षण मिलनेसे निर्बल जानना जैसे जिस रोगके प्रति जो निदान कहाहै वो निदान सम्पूर्ण रोगको उत्पन्न करनेवाला है कि, एकदेश ऐसेही पूर्वरूपभी समस्त

अवयवों करके व्याधिका प्रकाशकहै या एकदेशसे इत्यादि लक्षणोंसे बलाबलका निश्चय करना ॥

कालरूपसंप्राप्तिके लक्षण ।

नक्तंदिनर्तुभुक्तांशैर्व्याधिकालो यथामलम्॥१३॥

अर्थ–नक्त (रात्रि) दिन (दिवस) ऋतु (वसन्तादि) भुक्त (आहार) इनका अंश[1] कहिये एकदेश उसको यथा दोष (वात, पित्त, कफ) के अनुसार व्याधिका काल अर्थात् रोगके घटनेबढनेके हेतुका समय जाने * उदाहरण दिखाते हैं–जैसे रात्रिके तीन भाग करे प्रथम, मध्य और अंत; तो रात्रिका प्रथमभाग कफका है, मध्यभाग पित्तका,अंतभाग वातका है,ऐसेही दिनके भी तीन भाग करे तो पूर्वाह्न कफका,मध्यान्ह पित्तका, अपराह्न वातका, ऐसेही ऋतु जैसे वसंतऋतुमें कफ, ग्रीष्मऋतुमें पित्त और वर्षामें वात कुपित होतीहै ऐसेही भोजनका जैसे भोजनकरनेके समय कफका काल और अन्नके पचनेके समय पित्तका काल और जब भलेप्रकार परिपक्क होगया तब वातका काल, इसकालके जाननेसे यह प्रयोजनहै कि, जिस दोष (वात,पित्त,कफ) का जो काल कहाहै उसको उसी२कालमें प्राबल्यता जानलेना कठिन मालूम नहीं होती॥

निदानपंचकका उपसंहार ।

इति प्रोक्तो निदानार्थःस व्यासेनोपदेक्ष्यते॥१४॥

अर्थ–इति कहिये इस प्रकार संक्षेपप्रकारसे जो निदानार्थ कहा उसे विस्तारपूर्वक रोग २ के प्रति निदान पूर्वरूपादि करके कहते हैं ॥

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ।
तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाऽहितसेवनम् ॥ १५ ॥

अर्थ–अब पूर्व चतुर्थ श्लोककी व्याख्यामें कहे निदानके दो भेद कौन सन्निकृष्ट और विप्रकृष्ट, तिसमें सन्निकृष्ट, कौन वातादिक समीपके कारणकरके सर्व रोगोंका कारण है सो कहते हैं (सर्वेषामिति) । कुपितहुए जो मल (वात, पित्त, कफ) ये सम्पूर्ण रोगोंके कारण होतेहैं और उन वात, पित्त, कफ दोषोंके कोपका कारण अनेकप्रकारका अपथ्य सेवन करना है ॥

---

१ केचन ऋत्वंशाःकातिपयाहोरात्राणि कथयंति यदुक्तं वाग्भटे–ऋत्वोरित्यादिसप्ताहानृतुसंधिरितिस्मृतः ॥

निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपजायते ।
तद्यथा ज्वरसंतापाद्रक्तपित्तमुदीर्यते ॥ १६ ॥
रक्तपित्ताज्ज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चाप्युपजायते ।
प्लीहाभिवृद्ध्या जठरं जठराच्छोफ एव च ॥ १७ ॥
अर्शोभ्यो जाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते ।
प्रतिश्यायादथो कासः कासात्संजायते क्षयः ॥१८॥
क्षयो रोगस्य हेतुत्वे शोषस्याप्युपजायते ।

अर्थ–कोई प्रश्नकरे कि, जो पूर्व कहाहै येही निदानहै अथवा इसके व्यतिरिक्त और भी है इसलिये कहते हैं कि, रोगका रोगभी निदान होता है । अर्थात् जो निदानसे कार्य्य होताहै वोही रोगसे भी होताहै, इसवास्ते दृष्टांत देकर कहते हैं (तद्यथेति) जैसे ज्वरसंतापसे रक्तपित्त प्रकट होताहै और रक्तपित्तसे ज्वर, एवं रक्तपित्तज्वरसे श्वास प्रगट होताहै और प्लीहके बढनेसे जैसे उदररोग और उदररोगसे सूजन और बवासीरसे जैसे उदररोग और गुल्म (गोला) रोग, एवं पीनसरोगसे खांसी, तथा खांसीसे ओजप्रभृति धातुओंका क्षय होताहै और ये क्षयरोग राजयक्ष्मा जो सम्पूर्ण रोगोंमें राजा है उसको प्रगट करेहै ॥

ते पूर्वं केवला रोगाः पश्चाद्धेत्वर्थकारिणः ॥ १९ ॥

अर्थ–वो रोग प्रथम स्वतंत्र थे और जब बल मिलगया तो वोही हेत्वर्थकारी अर्थात् रोगके उत्पन्न करनेवाले होते हैं जैसे ज्वरसे रक्तपित्त होता है॥

कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा प्रशाम्यति ।
न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेत्वर्थं कुरुतेऽपि च ।
एवं कृच्छ्रतमा नृणां दृश्यंते व्याधिसंकराः ॥२० ॥

अर्थ–अब उसी रोग उत्पन्न करनेवाली व्याधिकी विचित्रता दिखाते हैं जैसे कोईएक रोग दूसरेका कारण हो अर्थात् दूसरे रोगको प्रगटकर आप शांत होजाताहै, जैसे पीनसरोग आप शांत नहीं होनेपाता और खांसी उत्पन्न होती है और कोई रोग दूसरे रोगको प्रगटकर आप जैसा का तैसा बना रहताहै, जैसे बवासीर नहीं जाय और गुल्म तथा उदर रोग

पैदा होतेहैं । इस प्रकार मनुष्योंके घोरक्लेशदायक मिलेहुए रोग दिखाई देते हैं विशेषकरके चिकित्सा विरुद्ध होनेसे ये रोग कृच्छ्रतम होजाते हैं॥

तस्माद्यत्नेन सद्वैद्यैरिच्छद्भिः सिद्धिमुत्तमाम् ।
ज्ञातव्यो वक्ष्यते योऽयं ज्वरादीनां विनिश्चयः॥२१॥

अर्थ–अब कहेहुये निदानादिपंचकद्वारा रोग निवृत्तिरूप सिद्धीकी इच्छा करके अवश्य जानने योग्यको कहते हैं (तस्मादिति) इसीकारण उत्तम सिद्धी हमको प्राप्त हो ऐसी जिन सद्वैद्योंकी इच्छा है उनको ज्वरादिरोगोंका निदान जो आगे कहते हैं वो यत्नसे जानना चाहिये ॥

अथ ज्वरनिदानम् ।

अब सर्वदेहके रोगोंमें प्रथम प्रगट होनेसे, बली देह इन्द्री मनको तपायमान करनेसे जन्म मरणका कारण होनेसे स्थावर जंगम प्राणीनमें स्थिति होनेसे सम्पूर्ण शरीरके रोगोंमें चरक सुश्रुतादि आचार्योंने ज्वर राजा कहाहै

तदुक्तं चरके ।

देहेन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली ।
ज्वरः प्रधानो रोगाणामुक्तो भगवता पुरा ॥ १ ॥

अर्थ–देह इन्द्री मनको तपायमान करनेसे रोगोंमें प्रथम प्रगट होनेसे बलवान् ज्वरको सब रोगोंमें प्रधानता कही है ॥

ज्वरकी उत्पत्ति ।

दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रनिःश्वाससम्भवः ।
ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वंद्वसंघातागंतुजः स्मृतः ॥ २ ॥

अर्थ–दक्षप्रजापतिके तिरस्कारसे क्रोधित श्रीरुद्रभगवान्के श्वाससे उत्पन्न ज्वर आठप्रकारका है वात पित्त कफ इनसे३, द्वंद्वज३, सन्निपात१ और आगंतुज १ ऐसे मिलकर संक्षेपसे ज्वर आठप्रकारका है ॥

इस श्लोकमें [निश्वाससम्भवः] ये जो पद धराहै सो श्वास इस जगह क्रोधके लक्षण करके कहाहै किंतु ज्वरकी श्वाससे उत्पत्ति नहीं है जैसे (सुश्रुतमें) लिखाहै यथा "रुद्रकोपाग्निसंभूतःसर्वभूतप्रतापनः" इति

अर्थात् क्रोधित रुद्रने ललाटस्थ तीसरे अग्निमय चक्षु (नेत्र) को स्पर्शकर आग्नेयबाण निर्माण किया (तथा च चरके) " स्पृष्ट्वा ललाटे चक्षुर्वै दग्ध्वा तानसुरान्प्रभुः । बाणं क्रोधाग्निसंतप्तमसृजच्छत्रुनाशनम् " इत्यादिक वाक्योंसे ज्वरमात्रकी पित्तप्रकृति जाननी, प्रयोजन यहहै कि, सर्वज्वरमें पित्तकी विरोधी क्रिया न करे सो (वाग्भटने) कहाहै (यथा– " उष्मा पित्तादृते नास्ति नात्युष्माणं विना ज्वरः । तस्मात्पित्तविरुद्धानि त्यजेत्पित्ताधिकेऽधिकम् " इति । अर्थात् गरमी पित्तके विना नहीं होती और ज्वर गरमीके विना नहींहोवे इसीसे ज्वरमें पित्तविरुद्ध क्रिया त्याज्यहैं ॥ अन्य आचार्य कहते हैं कि, श्रीरुद्रसे उत्पत्ति होनेसे ज्वर देवता है इस लिये ज्वरका पूजन करनेसे शांत होताहै जैसे (विदेहका वाक्य) है " ज्वरस्तु पूजनैर्वापि सहसैवोपशाम्यति " और ज्वरका स्वरूपभी (हरिवंशमें) लिखाहै यथा–" ज्वरस्त्रिपादस्त्रिशिराः षड्भुजो नवलोचनः । भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः ॥ "इति । अर्थात् ज्वरके तीन चरण तीन मस्तक छह भुजा नवनेत्र भस्मप्रहेती है शस्त्रजिसका यह रौद्रकाल यमराजके समानहै ॥

ज्वरसंप्राप्तिः ।

मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः ।
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः ॥ ३ ॥

अर्थ–मिथ्या आहार[1] (देश काल प्रकृति आदिसें विरुद्ध और संयोगविरुद्ध भोजन) मिथ्याविहार[2] (देहके पुरुषार्थसे विशेष कामका करना) इन कारणोंसे दुष्ट हुये जो दोष (वात पित्त कफ) सो नाभिस्तनके बीच आमाशयमें[3] प्राप्त हो रसको विगाडकर और कोष्ठस्थानमें रहती जो अग्नि उसको देहके बाहर निकाल ज्वरके प्रगट करनेवाले होते हैं ॥*॥

ये संप्राप्ति शारीर रोगोंकीहै आगंतुजकी नहींहै क्योंकि आगंतुक रोगोंका तो व्यथापूर्वक वातादिदोषोंके रोकनेसे प्रयोजन है जेसे(सुश्रुतमें) लिखाहै श्रम और चोटके लगनेसे देहधारीयोंके देहमें कुपित हुई वात सबदेहको परिपूर्णकर ज्वरको पैदा करतीहै * और (चरक) में भी लिखाहै

१ अकाले चातिमात्रं च असाध्यं यच्च भोजनम् । विषमाशनं च यद्भुक्तं मिथ्याहारः स उच्यते ॥ १ ॥ इस श्लोकमें हिन्दी और फारसीकी ऐक्यता दिखाई है । २ अशक्तः कुरुते कर्म्म शक्तिमात्र करोति च । मिथ्याविहार इत्युक्तः सदा चैव विवर्जयेत् ॥ ३ नाभिस्तनान्तरं जन्तोरामाशय इति स्मृतः ॥

कि, चोटके लगनेसे प्रगट वात रुधिरको विगाड़ व्यथा और शोष तथा विवर्णयुक्त वातज्वरको प्रगट करती है (शंका–क्यौंजी आगंतुभी शारीररोगही है क्योंकि आगंतुज्वरमेंभी गरमी रहती है जैसे " उष्मा-पित्तादृते नास्ति " इत्यादि वाक्य प्रमाण होनेसे उत्तर–ये जो तुमने कहा सो ठीक है, परंतु इन आगंतुरोगोंमें पित्तकी पूर्वकालसेही उत्पत्ति नहीं होती पीछे उत्पत्ति होती है यासे आगंतुरोगोंको शारीरत्व नहीं है ॥ इस श्लोकमें (कोष्ठाग्नि) यह जो पद धराहै सो धातुकी अग्निके निवारणार्थ है अर्थात् जब धात्वग्नि बाहर आय जावेगी तो दोषोंका पचना नहीं होसके और दोष पचेविना ज्वरशांति नहीं होवेगा इसलिये इसका अर्थ ऐसा न करना चाहिये "बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निम्"कोठेके अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर ऐसा अर्थ करना चाहिये।

ज्वरके लक्षण ।

स्वेदावरोधस्संतापः सर्वांगग्रहणं तथा ।
युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरोव्यपादिश्यते ॥ ४ ॥

अर्थ–जिस रोगमें पसीना न आवे,देहमें सन्ताप और सर्वांगमें पीडा ये एकही समें हो उसको ज्वर ऐसे कहतेहैं ॥ (शंका–क्यौंजी पित्तज्वरमें तो पसीने आतेहैं इस श्लोकमें विरुद्धता आती है * इसपर जेज्जटादिक उत्तर लिखतेहैं कि, स्वेदावरोध कहिये " स्विद्यते अनेनेति स्वेदः" इस व्युत्पत्ति करके स्वेद कहिये अग्नि तिस्का अवरोध कहिये दोषकी व्याप्ति ऐसा अर्थ करनेसे श्लोकार्थमें विरुद्ध नहीं पड़ता ॥

ज्वरका पूर्वरूप ।

श्रमोरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः ।
इच्छा द्वेषो मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥ ५ ॥
जृम्भांगमर्दोगुरुतारोमहर्षोऽरुचिस्तमः ।
अप्रहर्षश्च शीतं च भवत्युत्पित्साति ज्वरे ॥ ६ ॥

अर्थ–कारण विनाही श्रम, कर्मकरनेमें उत्साह नहो, अथवा खेलनेमें अरुची देहमें मलीनता, मुखमें विरसता, नेत्र अश्रुपातयुक्त, सर्दी गर्मी पवन इनकी वारंवार इच्छा होना और वारंवार द्वेष हो । इस्में जो (आदि) शब्दहै उस्से जल और अग्निका ग्रहणहै अर्थात् इनकी वार २ इच्छा और द्वेष ये (चरक) का मतहै तदुक्तं चरके– "ज्वलनातपवाय्वंबुभक्तद्वेषाभिलाषिता " इति । अन्ये तुशैत्योष्णसाधर्म्याज्जलाऽनलौ

गृह्णंति ते तु आदिशब्देन शयनादिकं मन्यंते * अन्य आचार्य शर्दी गरमीके साधर्म्यसे जल अग्निको कहते हैं और आदिशब्दसे शयन आदि मानते हैं * जँभाई अंगोंका टूटना, देहभारी, रोमांचोंका खडा होना, अन्नमें, अरुचि, अँधेरेका आना, आनंदकी निवृत्ति, शरदीका लगना, * (शंका) क्योंजी! पूर्व कहआये कि,शरदी गरमीको बार बार इच्छा और बार बार द्वेष फिर पुनः (शीत)पद क्यों धरा ?*उत्तर-इस पदके धरनेसे शरदीकी आधिक्यता दिखाई, अर्थात् शरदी विशेष लगे ये लक्षण ज्वरके पूर्व होतेहैं ये माधवाचार्य्यने सामान्यपूर्वरूपके लक्षण (सुश्रुतोक्त) लिखेहैं ॥

विशिष्टपूर्वरूपके लक्षण नहीं लिखे सो हम ग्रन्थान्तरसे लिखतेहैं ।

सामान्यतो विशेषात्तु जृंभात्यर्थं समीरणात् ।
पित्तान्नयनयोर्दाहः कफान्नान्नाभिनन्दनम् ॥ ७ ॥

अर्थ-विशेषकरके वातज्वरमें जँभाई बहुत आती हैं. पित्तज्वरमें नेत्रोंमें दाह हो और कफज्वरमें अन्नमें अरुचि होतीहै,ये श्लोक क्षेपकहैं, परंतु बहुत पुस्तकोंमें मूलके साथ लिखाहै इसवास्ते हमनेभी मूलके साथ लिखदिया है॥

अथज्वरचिकित्साप्रारंभः।

इतिज्वराः समाख्याताः कर्मेदानीं प्रवक्ष्यते ॥

अर्थ-इसप्रकार ज्वरोंके निदान और लक्षण कहे अब सुश्रुतग्रंथसे उक्त ज्वरोंकी चिकित्सा कहते हैं ॥

वैद्यकोसाधारणक्रियाकीआज्ञा ।

दोषाणांचपरिज्ञानंयत्रसम्यक्नदृश्यते ।
क्रियांसाधारणींतत्रभिषक्सम्यक्प्रयोजयेत् ॥

अर्थ-जिसरोगमेंवातादि दोषोंका ज्ञान अच्छीरीतिसे नहोवे उस जगे वैद्य साधारण क्रिया (जो आगे लिखते हैं उसको) उत्तम रीतिसे करै । अर्थात् यह साधारण क्रिया किसी रोगमें करो उस रोगको नष्टहीकरे है बढाती नहीं है ॥

अंशांशंयत्रदोषाणांविवेक्तुंनैवशक्नुयात् ।
साधारणींक्रियांतत्रविदधीतचिकित्सकः ॥

अर्थ–वैद्य जिस रोगमें दोषोंके अंशांशको न जानसके उसजगे साधारण क्रियाकी विधि करके यत्नकरे ॥

ज्वरकीसामान्यचिकित्सा ।

ज्वरस्यपूर्वरूपेतुवर्त्तमानेसुबुद्धिमान् । पाययेतघृतंस्वच्छं ततः सलभतेसुखम् ॥ विधिर्मारुतजेचैवपैत्तिकेतुविरेचनम् । मृदुप्रच्छर्दनंतद्वत्कफजेहिविधीयते ॥ सर्वद्विदोषजेषूक्तंयथादोषंविकल्पयेत् ॥

अर्थ–ज्वरके पूर्वरूपमें यत्नकहते हैं । तहां वात ज्वरके पूर्वरूपमें रोगीको घृतपान करना चाहिये, पित्तप्रधान ज्वरमें मृदुविरेचन देना और कफ प्रधान ज्वरमें हलकी वमन करानी एवं द्विदोष और त्रिदोषमें उक्त दोनों वा तीनों यत्न यथा संभव करने चाहिये ॥

ज्वरकेआदिमध्यऔरअंतमेंकर्त्तव्य ।

ज्वरादौलंघनंप्रोक्तंज्वरमध्येतुपाचनम् ।
ज्वरान्तेरेचनंदेयमेतज्ज्वरचिकित्सितम् ॥

अर्थ–वैद्य रोगीको ज्वरके आदिमें लंघन करावे और ज्वरके मध्य अवस्थामें ज्वरपाचक औषध देवै, एवं जब ज्वरशांति होजावे तब उस रोगीको दस्त करावे, यह संक्षेपसे ज्वरकी चिकित्सा कही है ॥

लंघन ।

ज्वरेलंघनमेवादावुपदिष्टमृतेज्वरात् ।
क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात् ॥

अर्थ–ज्वरमें प्रथम लंघन कराना वैद्यको उचित है, परंतु क्षय[1]ज्वर, वात[2]ज्वर, भयज्वर, क्रोधज्वर, कामज्वर, शोकज्वर, परिश्रमजन्यज्वर इनज्वरोंमें लंघन कदाचित् नहीं करना ॥

---

१ धातु क्षयज्वर अथवा राजयक्ष्माज्वर । २ वातज्वरकहनेसे यहांपर निरामवातका ग्रहण है यदि सामवातज्वर होवे तो लंघन अवश्य कराने चाहिये ॥

लंघनकरानेमेंकारण।

आमाशयस्थोहत्वाग्निंसामोमार्गान्पिधापयन्।
विदधातिज्वरंदोषस्तस्माल्लंघनमाचरेत् ॥

अर्थ-अब लंघन करानेमें कारण कहते हैं, जैसेकि, आमसे मिलेहुए दोष आमाशयमें स्थित जठराग्निको नष्टकर और देहके भीतरके मार्गोंके (नसनाडी आदि) को ढकते हुए ज्वरको प्रगट करते हैं अतएव उस आमके पचानेको और रुकेहुए मार्गोंके स्वच्छ करनेको वैद्य रोगीके वास्ते लंघन करावे । यहाँ जठराग्नि करके जठराग्निकी उष्मालेनी, समग्रजठराग्नि नहीं लेनी चाहिये ॥

अनवस्थितदोषाग्नेर्लंघनंदोषपाचनम् ।
ज्वरघ्नंदीपनंकांक्षारुचिलाघवकारकम् ।

अर्थ-अपने २ स्थानपर नहीं स्थित ऐसे दोष और अग्निके विकार पचानेको लंघन कराने चाहिये लंघन ज्वरको नाशकरते हैं, अग्निको दीप्तकरे, भोजनकी इच्छा, रुचि और देहमें हलकापना करते हैं ॥

प्राणाविरोधिनाचैवलङ्घनेनोपपादयेत् ।
बलाधिष्ठानमारोग्यंयदर्थोऽयंक्रियाक्रमः ॥

अर्थ-वैद्यको चाहिये कि, रोगीका बल न टूटे इस प्रकार लंघन करावे क्योंकि आरोग्यता बलके आधीन है और उस आरोग्यताके अर्थ यह क्रियाका क्रम है ॥ उत्तमलंघनकेलक्षण ।

वातमूत्रपुरीषाणांविसर्गो गात्रलाघवे ॥ हृदयोद्गारकंठा
स्यशुद्धौतन्द्राक्लमेगते ॥ स्वेदेजातेरुचौचापिक्षुत्पिपा-
सासहोदये।कृतंलंघवमादेश्यंनिर्व्यथेचांतरात्मनि ॥

अर्थ-अधोवायु, मल,मूत्र इनका यथा समय निकलना,शरीरमें हलकापना, (हृदयकाभारीपना) आदि, कंठमें कफका लिहसारहना, मुखमें विरसता इत्यादि लक्षण रहित हृदय, कंठ और मुखकाशुद्धहोना, तन्द्रा और ग्लानिका नाश, पसीनोंकाआना, रुचिका चलना, एवं भूखप्यासका एक साथ लगना और मनमें किसी प्रकारकी व्यथाका न रहना ये लक्षण उत्तम लंघन होनेवाले रोगीके हैं ॥

अतिलंघनकेदोष ।

पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्चकासःशोषोमुखस्यच। क्षुत्प्रणाशोऽरु-

चिस्तृष्णादौर्बल्यंश्रोत्रनेत्रयोः । मनसःसंभ्रमोऽभीक्ष्णं-
मूर्द्ध्ववातन्तमोहृदि । देहाग्निबलहानिश्चलंघनेतिकृतेभवेत् ॥

अर्थ-गांठोंमें पीडा, देहकाटूटना, खांसी, मुखका सूखना, भूखका माराजाना, अरुचि, प्यास कर्णेन्द्री और नेत्रोंमें दुर्बलता, मनका डामाडोलहोना-ऊर्ध्ववात (हिचकी, श्वास, कानोंमें शब्द और जंभाई आदिकाहोना)मोह, देह,अग्नि और बलका घटना,ये लक्षण अत्यंत लंघन करनेवाले रोगीके होते हैं । मुख्य लंघन करानेका हेतु आमपचानेके वास्ते है, परंतु हमारे मथुरा आदिके ढपोल शंख वैद्य सब ज्वर वालोंको लंघन कराते हैं और फिर अंधेकी तरह उससे पूछते हैं कि, कहो अभी तुमको भूखलगी है या नहीं, यदि रोगीको भूख भी लगी हो तथापि उस रोगीको लंघनही कराते हैं कि, जिस्से उसका बलनष्टहो शीघ्रयमालयको चलाजावे और रोगोंसे बचभी गयातो निर्बलताके कारणसे प्रत्येक समय रोगी हो जावे ' हरीच्छा ! बलीयसी ' ॥

लंघनकेअयोग्यरोगी ।

नलंघयेन्मारुतजेज्वरेचक्षयोद्भवेचक्षुधितेचजन्तौ । नगु-
र्विणीदुर्बलबालवृद्धान्भीतांस्तृषार्त्तानपिसोर्ध्ववातान् ॥

अर्थ-निरामवात ज्वरमें, राजयक्ष्माके ज्वरमें, भूखमें, गर्भवती स्त्री, दुर्बल मनुष्य, बालक, बुड्ढा, डरपोक, तृषार्त और उर्ध्व वातवाला रोगी इनको वैद्य कदाचित् लंघन न करावे ॥

लंघनसहनकरनेमेंकारण ।

दोषाणामेवसाशक्तिर्लंघनेयासहिष्णुता ।
नहिदोषक्षयेकश्चित्सहतेलंघनादिकम् ॥

अर्थ-लंघनका करना ये केवल दोषोंही की सामर्थ्य है, क्योंकि दोष क्षीण होनेपर कोईभी प्राणी लंघनको नहीं सहसकता, अतएव जबतक इसको लंघन करनेकी सामर्थ्य रहे तभीतक वैद्य लंघन करावे ॥

अस्नेहनीयोऽशोध्यश्चसंयोज्योलंघनादिना ।
रूपप्राग्रूपयोर्विद्यान्नानात्वंवह्निधूमवत् ॥

अर्थ-जो स्नेहन करनेके अयोग्य हैं और जिनको वमन विरेचनसे

शोधन नहीं करसकते, उनको लंघनादिक करानाही उत्तम है। तथा रूप और पूर्वरूपका अग्नि और धूआंके समान अनेकविधत्व वैद्यजाने अर्थात जैसे धुंआंहोनेसे अग्निकी संभावना होती है उसी प्रकार पूर्वरूपसे रोगके रूपकी संभावना जाननी ॥

अव्यक्तरूपेषुहितमेकांतेनापतर्पणम् ।
आमाशयस्थेदोषेतुसोत्क्लेशेवमनंपरम् ॥

अर्थ–ज्वरके पूर्वरूपमें केवल लंघनादिक कराना।जो आमाशयमें दोष होय और जी मचलाता होवे उसको वमन कराना हित है ।

लंघनकीअवधी ।

आनद्धस्तिमितैर्दोषैर्यावंतः कालमातुरः ।
कुर्यादनशनंतावत्ततः संसर्गमाचरेत् ॥

अर्थ–जबतक यह रोगी वातादिदोष अथवा वात मल मूत्रादिसे घिरारहे, अर्थात् अधोवायु, मल, मूत्र साफ न उतरे तबतक लंघनकरे फिर मिलेहुए अर्थात् औषधादि और लंघनादि दोनोंउपाय करने चाहिये॥

वमनकरानेयोग्यरोगी ।

सद्योभुक्तस्यवाजातेज्वरेसंतर्पणोत्थिते ।
वमनंवमनार्हस्य शस्तमित्याहवाग्भटः ॥

अर्थ–तत्कालभोजन करनेवालेके ज्वर प्रगटहुआहो, अथवा संतर्पण कर्मकरनेसे यदि ज्वर प्रगट हुआ होवे, तथा जो वमन करानेके योग्य रोगी हैं उनको वमन करना उत्तमहै ऐसे वाग्भटाचार्य कहता है ॥

अवस्थाविशेषमेंवमनकरानाकहतेहैं ।

कफप्रधानानुत्क्लिष्टान्दोषानामाशयोत्थितान् ।
बुध्वाज्वरकरान्काले वम्यानांवमनैर्हरेत् ॥

अर्थ–चरकऋषि लिखते हैं कि, जिन रोगोंमें कफ प्रधान है और हल्लासादि करके जो बाहर निकलाचाहे तथा जो दोष आमाशयसे उठे हुए हैं और जो ज्वरके करने वाले दोष हैं, एवं जो वमन कराने योग्य हैं उनको वमनके समय वमन कराकर दोष दूरकरने चाहिये ॥

उक्तअवस्थाकोविनावमनकरानानिषेध ।

अनुपस्थितदोषाणांवमनंतरुणज्वरे ।

हृद्रोगंश्वासमानाहंमोहंचकुरुतेभृशम् ॥

अर्थ-वमन करनेको नहींउपस्थित ऐसे दोषोंमें और तरुणज्वरमें यदि वमन (रद्द) करावे तो वह हृदयरोग, श्वास, अफरा और मोहको करे है । यह भी चरकमें लिखाहै ॥

निर्वातभवनावासमुष्णवारिनिषेवणम् ।
अभूरिजल्पनिःक्रोधं कामशोकंच रोगिणम् ॥
कुर्यादारोग्य संपन्नंशीघ्रं वैद्योविचक्षणः ।
कफमेदोऽनिलामघ्नंदीपनंबस्ति शोधनम् ॥

अर्थ-जिसमें पवन न आती हो ऐसे मकानमें रहना, गरमजलपीना, थोडा बोलना, क्रोध का न करना,कामदेव,शोककरना इन सबको रोगी त्यागदे कि, जबतक आरोग्य न होवे ऐसा करनेसे कफ, मेदा और वादी नष्ट होवे, एवं अग्निदीपन हो और बस्ति शुद्धि होती है । सर्वत्र रोगोंके यत्नमें लिखा है कि, 'निदानपरिवर्जनम्' इसकारण ज्वरमें जो निदान त्याज्य है उनको कहते हैं ॥

चरके ।

नवज्वरेदिवास्वापस्नानभोजनमैथुनम् ।
क्रोधप्रवातव्यायामकषायांश्चविवर्जयेत् ॥

अर्थ-नवीन ज्वरमें दिनका सोना, स्नान करना, भोजन करना,मैथुन करना, क्रोध, हवाका खाना, व्यायामकरना और काढा आदिका देना निषेध कहा है ॥

उष्मापित्तादृतेनास्तिज्वरोनास्त्युष्मणोविना ।
तस्मात्पित्तविरुद्धानित्यजेत्पित्ताधिकेधिकम् ॥
स्नानाभ्यंगप्रदेहांश्चपरिषेकांश्चवर्जयेत् ॥

अर्थ-विनापित्तके गरमी नहीं और ज्वर विना गरमीके नहीं होता, अतएव सबज्वरोंमें पित्तके विरुद्ध चिकित्सा नहीं करना और पित्तज्वरमें तो विशेष करके पित्तविरुद्ध चिकित्सा त्याज्य है । तथा स्नान,मालिस, लेपन और जल आदिका तरडा देना वर्जित है ॥

जलकेगुण ।

पानीयंशीतलंरूक्षंहन्तिपित्तविषभ्रमम् । दाहाजीर्ण

श्रमच्छर्दिमोहमूर्च्छा मदात्ययान् ॥ मूर्च्छापित्तोष्म दाहेषुविषेरक्ते मदात्यये । भ्रमक्लमातिसारेषुमार्गेत्थव- मथौतथा ॥ उर्ध्वगेरक्तपित्तेचशीतमंभःप्रशस्यते ॥

अर्थ-जल शीतल और रूखा है, तथा पित्त, विष, भ्रम, दाह, अजीर्ण, श्रम, छर्दि, मोह, मूर्च्छा, मद्यपानके विकार, इनको नष्टकरे है ॥

मूर्च्छा, पित्तकी गरमी, दाह, विषजन्यरोग, रुधिरकी बिमारी, मदात्यय, भ्रम, क्लम, अतिसार, मार्गचलनेसे हुआ परिश्रम, मथवाय, उर्ध्वगतरक्तपित्त इन सब रोगोंमें वैद्य रोगीको शीतलजल देवे ॥

उष्णजलकेगुण ।

यत्क्वाथ्यमानंनिर्वेगंनिष्फेनंनिर्मलंभवेत् । अर्द्धावशिष्टंभवति तदुष्णोदकमुच्यते ॥ कफमेदोनिलामघ्नंदीपनंबस्तिशोधनम् । कासश्वासज्वरहरं पथ्यमुष्णोदकंसदा ॥ तप्तंपाथःपादभागेनहीनं पथ्यंप्रोक्तंवातजातामयघ्नम् । अर्धांशोनंनाशयेद्वातपित्तं पादप्रायंतत्तुदोषत्रयघ्नम् ॥

तप्तायःपिंडसंसिक्तंलोष्टनिर्वापितंजलम् ।
सर्वदोषहरं पथ्यंसदानैरुज्यकारकम् ॥

उष्णोदकंश्रेष्ठतमंवदंतिविश्वायवानीसहितंक्रमेण ।
कफेचवातेनचपित्तरोगेसर्वेषुरोगेपुनशीतलाम्बु ॥

अर्थ-जो औटानेसे निर्वेग, झागरहित, निर्मल और आधारहजावे उसको उष्णोदक कहते हैं, यह कफ, मेदा, बादी, आम, श्वास, खाँसी, ज्वर इनको दूरकरे, दीपन है और बस्तिको शुद्धकरे है, उष्णोदक प्राणीको सदैव पथ्य है। तहाँ चतुर्थांश जलाहुआजल वातके रोगोंमें पथ्यहै, आधा-जला हुआ जल वातपित्तविकारोंको नष्टकरे और जो जलकर चौथाई रहगया हो ऐसा जल त्रिदोषनाशक जानना । लोहेके गोलेको अग्निमें लाल करके अथवा ईटको अग्निमें लाल करके जलमें बुझाय देवे, वह जल सर्वदोष हरण कर्त्ता, पथ्य तथा सदैव आरोग्यकारी है । सोंठ अजमायनको डालके औटायाहुआ जल सर्वोत्तमहै, तहाँ सोंठडाला जल क-

फरोगमें और अजमायनडाला हुआ वादीके रोगमें पथ्य है, परंतु ये दोनों जल पित्तरोगमें हितकारी नहीं है एवं सब रोगोंमें शीतलजल पथ्यनहीं है॥

ऋतुविशेषमेंजलकाथकेनियम ।

शारदंचार्धपादोनंपादहीनंतुहैमतम् । शिशिरेचवसंतेच ग्रीष्मेचार्धावशेषितम् ॥ विपरीतेऋतौतद्वत्प्रावृष्यष्टावशेषितम् ॥

अर्थ–शरद ऋतुमें आठवाँ भागजला, हेमंत ऋतुमें चतुर्थांशजला शिशिर वसंत और ग्रीष्मऋतुमें अर्धावशेष एवं ऋतुके विपरीततामें और चौमासेमें अष्टावशेष जल पीना परम उत्तम कहाहै ॥

रात्रिमेंसेवितउष्णजलकेगुण।

भिनत्तिश्लेष्मसंघातंमारुतंचापकर्षति ।
अजीर्णंजरयत्याशुपीतमुष्णोदकंनिशि॥

अर्थ–रात्रिमें गरम जलपिया हुआ कफके समूहको बादीको और अजीर्णको नष्टकरता है ॥

उष्णोदककाप्रयोग।

पार्श्वशूलेप्रतिश्यायेवातरोगेगलग्रहे । आध्याने स्तिमितेकोष्ठेसद्यःशुद्धेनवज्वरे ॥ हिक्कायांस्नेह पीतेचशीताम्बुपरिवर्जयेत् ॥

अर्थ–पसवाडेके, दर्दमें सरेकमां, वादीका रोग, गलग्रह, अफरा, कोठेकी अशुद्धी जो वमन विरेचन द्वारा तत्काल शुद्ध हुआ हो, नवीनज्वर, हिचकी और जिसने स्नेहपान कराहो, इन सबको शीतल जलपीना वर्जित है॥

उष्णजलथोडापीना।

अरोचकेप्रतिश्यायेप्रसेकेश्वयथुक्षये । मंदाग्नावुदरे कोष्ठे ज्वरेनेत्रामयेतथा ॥ व्रणेचमधुमेहेचपानीयंमंदमाचरेत् ॥

अर्थ–अरुचि, सरेकमां, प्रसेक, सूजन, क्षय, मंदाग्नि, उदररोग, कोठेका रोग, ज्वर, नेत्ररोग, व्रणरोग और मधुप्रमेह इन रोगोंमें इस प्राणीको पानी थोडा पीना चाहिये ॥

शृतशीतजलकेगुण ।

गुल्मार्शोग्रहणीक्षयेषुजठरे मंदानलाध्मानके शोफेपां डुगलग्रहे व्रणगदेमेहेचनेत्रामये । वातारुच्यतिसारके- कफयुतेकुष्ठेप्रतिश्यायके उष्णंवारिसुशीतलंशृतहिमं स्वल्पंप्रदेयंजलम् ॥

अर्थ–गोला, बवासीर, संग्रहणी, क्षय, उदररोग, मंदाग्नि, अफरा, सूजन, पांडुरोग, गलग्रह, व्रणरोग, प्रमेह, नेत्ररोग, वादीका रोग, अरुचि, कफातिसार, कोढ, पीनस इन सब रोगोंमें औटेहुए जलको शीतल करके थोडा २ पीनेको देवे ॥

अथउष्णजलविधिः ।

आमंजलंजीर्यतियाममात्रंतदर्धमात्रंशृतशीतलंच । तदर्धमात्रंतुशृतंकदुष्णंपयप्रपाकेत्रयएवकालाः ॥

अर्थ–बिना औटाजल १ प्रहरमें पचता है और औटायकर शीतल कराहुआ जल आधे प्रहरमें पचता है, एवं औटायके कुछ २ गरम पीनेसे चौथाई प्रहरमें पचता है, ये जलपचनेके तीनही काल हैं ॥

अधिकजलपीनेकेदोष ।

जलाधिक्यान्मनुष्याणामामवृद्धिःप्रजायते। आमवृद्ध्या तुमंदाग्निर्मंदाग्नौचाप्यजीर्णता ॥ अजीर्णेनज्वरोत्पत्ति ज्वराद्वै धातुनाशनम् । धातुनाशात्सर्वरोगाजायंते चोत्तरोत्तरम् ॥

अर्थ–अधिक जलपीनेसे मनुष्योंके आम बढती है, आमके बढनसे मंदाग्निहोती है, मंदाग्निसे अजीर्ण–अजीर्णसे ज्वरकी उत्पत्ति–ज्वरसे सब धातुओंका नाशहोता है, धातुनाश होनेसे संपूर्ण रोग एकके पीछे दूसरा होता है अतएव अधिकजल पीना वर्जित है ॥

शर्बत ।

शर्करासहितंनीरं कफकृत्पवनापहम् । सितासितोप- लायुक्तंशुक्रलं दोषनाशनम्॥ सगुडंमूत्रकृच्छ्रघ्नंपित्तश्ले-

ष्मकरंभवेत्॥स्निग्धंस्वादुहिमंहृद्यंदीपनंबस्तिशोधनम्।
वृष्यंपित्तपिपासाघ्नं नालिकेरोदकंलघु ॥

अर्थ-शरबत पीना कफकरै और वादीको हरै है, सपेद चीनीका शर्वत वीर्यको बढावे और दोषोंका नाश करे है। गुडका शरबत मूत्रकृच्छ्रको नष्टकरे और पित्तकफको करैहै। नारियलका जल चिकना, स्वादु, शीतल, हृदयको हितकारी, दीपन और बस्तीको शुद्धकरे है, वीर्यवर्द्धक, पित्त और प्यासको नष्टकरे एवं हलका है ॥

धारापातेनविष्टंभिदुर्जरंपवनाहतम् ।
शृतशीतंत्रिदोषघ्नंबाह्यान्तर्भावशीतलम् ॥

अर्थ-वर्षाका जल विष्टंभी होताहै और पवनसे ताडितजल दुर्जरहोताहै, एवं औटायके शीतल कराहुआ जल त्रिदोषनाशक तथा बाहर भीतरसे शीतल होताहै ॥

दिवाशृतंतुयत्तोयंरात्रौतद्गुरुतांव्रजेत् ।
रात्रौशृतंतुदिवसेगुरुत्वमधिगच्छति ॥

अर्थ-दिनका औटाहुआ जल रात्रिमें भारी होजाता है और रात्रिमें औटायाहुआ जल दिनमें भारी हो जाता है, इसी कारण दिनमें औटा हुआ जल दिनमें पीवे और रात्रिका औटाजल रात्रिमें पीवे ॥

जलशोधनविधि ।

जलके शोधनेको तीन लकडीकी और तीन खानेकी टिकटी बनवावे वह बीचमें छेदवाले हों उनमें क्रमसे छेददार चारघडा रक्खे ऊपरके घडेमें पक्केकौले भरके जल छोडदे, दूसरेमें पीली और चिकनी मिट्टीके कंकरभरे तीसरेमें वालूरेतभरे और नीचेके घडेको खाली रक्खे, उसमें क्रमसे जल टपक टपककर जमा होवेगा ये शुद्धजल करने की विधि है ॥

तरुणज्वरमेंकाढेकादेनानिषेध ।

नकषायंप्रशंसंतिकदाचित्तरुणेज्वरे ।
कषायेणाकुलीभूतादोषाजेतुंसुदुस्तराः ॥

अर्थ-बुद्धिमान् वैद्य तरुण ज्वरमें कदाचित् काढादेना अच्छा नहीं कहते क्योंकि यदि तरुणज्वरमें कषाय दीनी जावे तो दोष व्याकुल हो जाते हैं उन व्याकुल दोषोंका जीतना बडा कठिन है ॥

कषायं यः प्रयुंजीतनराणांतरुणज्वरे ।
ससुप्तंकृष्णसर्पंतुकराग्रेणपरामृशेत् ॥

अर्थ–जो वैद्य, रोगी मनुष्योंको तरुण ज्वरमें काढापीनेको देता है वह सोते हुए कालियसांपको उंगलियोंसे छूकर जगाता है । अर्थात् जैसे काला सांप इसप्राणीको मारडालता है, उसी प्रकार तरुण ज्वरमें काढा देना प्राणोंको हरण करता है ॥

चतुर्भागावशिष्टस्तु यः षोडशगुणांभसा ।
सकषायः कषायः स्यात्सवर्ज्यस्तरुणज्वरे ॥

अर्थ–जो सोलहगुने जलमें औटाया और चार भाग बाकी रहनेपर उतार लिया वह कषाय, कषाय कहलाती है इसको तरुणज्वरमें देना वर्जित है ॥

नवज्वरेमलस्तंभात्कषायोविषमज्वरम् ।
कुरुतेऽरुचिहृल्लासहिध्माध्मानादिकानपि ॥

अर्थ–नवीन ज्वरमें कषाय देनेसे वो मलका स्तंभन करती है, अतएव विषम ज्वरको करे है तथा अरुचि, हृल्लास, हिचकी और अफरा आदि रोगोंको करे है ॥

अजीर्णद्रवशूलाढ्येसामेतीव्ररुजिज्वरे ।
नपिबेदौषधंतद्धिभूयएवाममावहेत् ॥

अर्थ–अजीर्ण, द्रवपदार्थजन्यशूलमें, साम और तीव्रज्वरमें औषध कदाचित् नहीं पीवे, यदि पीवे तो वो नष्ट हुई आमको फिर प्रगट करतीहै॥

परिषेकान्प्रदेहांश्चस्नानंसंशोधनानिच ।
दिवास्वापंव्यवायंचव्यायामंशिशिरंजलम् ।
क्रोधप्रवातभोज्यानिवर्जयेत्तरुणज्वरी ॥

अर्थ–जलका तरडा देना, चंदनादिकका लेप, स्नान, वमन, विरेचन द्वारा संशोधन, दिनमें सोना, मैथुन करना, दंडकसरत करना, शीतल जलका स्पर्श, क्रोध करना, हवामें बैठना और भोजन करना इन सब कर्मोंको तरुणज्वरवाला त्याग देवे ॥

शोषछर्दिमदंमूर्च्छांभ्रमतृष्णाद्यरोचकान् ।
प्राप्नोत्युपद्रवानेतान्परिषेकादिसेवनात् ॥

अर्थ-यदि तरुण ज्वरवाला उक्तपरिषेकादिकर्मोंकोकरे तो शोष, छर्दि,मद,मूर्च्छा,भ्रम,तृष्णा और अरुचि इत्यादि उपद्रवोंको प्राप्त होताहै॥

परिषेकादिप्रत्येककेदूषणहारीतसे ।

व्यायामाज्ज्वरसंवृद्धिर्व्यवायात्स्तंभमूर्च्छनम् । मृतिश्च-स्नेहपानात्तुमूर्च्छाछर्दिमदोरुचिः ॥ गुर्वन्नभोजनात्स्व प्नाद्विष्टंभो दोषकोपनम् । अग्निसादः खरत्वंचस्रो-तसांचाप्रवर्त्तनम् ॥

अर्थ-ज्वरमें दंड कसरत करनेसे ज्वरकी वृद्धि होती है, स्त्रीसंगक-रनेसे स्तंभ, मूर्च्छा और मृत्यु होती है, घृतादिपान करनेसे मूर्च्छा, वमन, मस्तपना और अरुचि होतीहै, भारी अन्न भोजन करनेसे और दिनमें सोनेसे अफरा और वातादिदोषोंका प्रकोपहोता है एवं अग्निकी शांति होना, तथा खरत्व होना एवं नेत्र नासिका आदि छिद्रोंका रुकना इत्यादि दुःख होते हैं ॥

आसप्तरात्रात्तरुणंज्वरमाहुर्मनीषिणः ।
मध्यंचतुर्दशाहंच पुराणःस्यात्ततः परम् ॥

अर्थ-सातरात्रि पर्यंत ज्वरकी तरुणावस्था पंडितजन कहते हैं, चौदह दिनपर्यंत ज्वरकी मध्यावस्था और चौदह दिनके उपरांत पुराना ज्वर ऐसे कहलाता है ॥

सप्ताहेनतुपच्यंतेसप्तधातुगतामलाः ।
निरामश्चाप्यतःप्रोक्तोज्वरःप्रायोष्टमेऽहनि ॥

अर्थ-सातदिनमें सात धातुओंके मल पचते हैं, अतएव प्रायः आठवेंदिन ज्वर निराम कहलाता है ॥

ज्वरपाककीअवधी ।

वातजः सप्तरात्रेणदशरात्रेणपैत्तिकः ।
श्लेष्मजो द्वादशाहेनज्वरः पाकंप्रपद्यते ॥

अर्थ-वातजन्य ज्वरसातरात्रिकरके-पैत्तिकज्वर दशरात्रि करके एवं कफजन्यज्वर बारह दिनमें पकताहै ॥

वातेद्वेपित्तजेचैकंकफेदिनचतुष्टयम् ।
सप्ताहंवातपित्तेच कफपित्तेदशस्मृताः ॥

कफवातेद्वादशाहं त्रिदोषेचैवविंशतिः ॥

अर्थ-अब ग्रंथान्तरसे लिखते हैं कि, वातजन्य ज्वर २ दिनमें, पित्त-जन्य १ दिनमें, कफजन्य ४ दिनमें, वातपित्तज्वर ७ दिनमें, कफ पित्तज्वर १० दिनमें, कफवातज्वर १२ दिनमें एवं त्रिदोषज्वर २० दिनमें पचताहै ॥

सप्ताहादौषधंकेचिदाहुरन्येदशाहतः ।
केचिल्लघ्वन्नभुक्तस्यदेयमामोल्बणेनतु ॥

अर्थ-किसी आचार्यका मतहै कि, सात दिनमें औषध देना, कोई दशदिनसे औषध देना कहते हैं, कोई कहता है कि, हलका अन्न देकर औषध देवे, परंतु आमोल्बणमें औषध कदाचित् न देवे ॥

अपच्यमानंभेषज्यंभूयोजनयतिज्वरम् ।
मृदुज्वरोलघुर्देहश्चलितश्चमलोयदा ॥
अचिरज्वरितस्यापिभेषजंयोजयेत्तदा ॥

अर्थ-जो औषध नहीं पची वो फिर ज्वरको प्रगट करे है । अब औषध देनेका समय कहते हैं कि, जिस रोगीका ज्वर धीमा पडगया हो, देह हलकी हो, मल चलायमान होगए हों ऐसे तत्काल आए हुये ज्वरवालेको भी औषधी वैद्य निस्संदेह देवे ॥

वृद्धवाग्भटे ।

षड्दशद्वादशाहेषुव्यतीतेषुक्रमेणवै ।
वातपित्तकफातङ्केष्वन्नकालाइमेत्रयः ॥

अर्थ-छः, दश, बारह इतने दिन व्यतीत होनेपर क्रमसे, वात, पित्त और कफके ज्वरमें रोगीको अन्न देना ये तीन काल अन्नके देनेमें कहे हैं॥

द्वंद्वजेसंनिपातेचव्याधावारोग्यदर्शने ।
सतियवागुयूषादिकल्पयेदतिनैपुणात् ॥
मुद्गान्मसूरांश्चणकान्कुलत्थान्मकुष्टकान्पाचनयूषहेतून् ॥
हिताहितानांविहितांश्चपेयान्दद्याद्यवागूमपिपाचनैःस्वैः ॥

अर्थ-द्वंद्वज और संनिपातजन्य रोगोंमें जब आरोग्य हो जावे तब यवागू और यूषकी कल्पना वैद्य बुद्धिमानीके साथ करे मूँग, मसूर,चना,

कुलथी, मोंठ, पाचनके हेतु हित और अहितोंको विचार जो हित हो ऐसा पेया अथवा यवागूको तत्तद्रोगमें ग्राह्यको देवे ॥

औषधदेनेकाकाल ।

सप्तरात्रात्परंकेचिन्मन्यंतेदेयमौषधम् ।
दशरात्रात्परंकेचिद्दातव्यमितिनिश्चिताः ॥

अर्थ—कोई आचार्य सातरात्रिके पश्चात् औषध देना मानते हैं, कोई दशरात्रि व्यतीत होने पर औषध देना ऐसा निश्चय करते हैं ॥

सर्वज्वरेषुदातव्यः कषायः सप्तमेऽहनि ।
अथवालंघयेत्तावद्यावदारोग्यदर्शनम् ॥

अर्थ—संपूर्ण ज्वरोंमें सातवें दिन काढा देना चाहिये अथवा जबतक रोगी आरोग्य न होवे तबतक वैद्यको लंघन कराना चाहिये ॥

ज्वरितंज्वरमुक्तंवादिनान्तेभोजयेल्लघु ।
श्लेष्मक्षयेप्रवृद्धोष्माबलवाननलस्तदा ॥
यथोचितेऽथवाकालेदेशसात्म्यानुरोधतः ।
प्रागल्पवह्निर्भुंजानोनह्यजीर्णेनपीड्यते ॥

अर्थ—ज्वरवाला हो अथवा ज्वर रहित हो, परंतु रात्रिमें हलका भोजन करना चाहिये। जिसका कफ क्षीण हो गयाहो,गरमी बढी हुई हो तथा जठराग्नि प्रबल होवे और यथोचित काल हो, एवं देश, काल और सात्म्य के अनुकूलमें, जठराग्निके शक्तिसे न्यून भोजन करा ऐसा प्राणी कदाचित् अजीर्णी नहीं होता है ॥

ननक्तंनगुरुप्रायंभुंजीततरुणज्वरी ।
नद्विवारन्नपूर्वाह्णे नाभिष्यंदिकदाचन ॥

अर्थ—तरुण ज्वर वाला रोगी दोबार भोजन न करे,तथा पूर्वाह्णमें भोजन नकरे,तथाकफकारी भोजन न करे,एवं रात्रिमें भोजन न करे और भारी पदार्थ मी कदाचित् नखाय ॥

विदेहः ।

सर्वज्वरेषुसप्ताहेमात्रांचलघुभोजयेत् ॥

वेगापायेऽन्यथातद्धिज्वरवेगंविवर्द्धयेत् ॥

अर्थ-संपूर्ण ज्वरोंमें सातवें दिन अल्पमात्र हलका भोजन करावे, यदि सातरात्रिके भीतर भोजन करावेगा तो दोषोंका वेग बना रहनेसे वो ज्वरके वेगको बढाते हैं ॥

अन्नदेनेकाकाल ।

क्षुत्संभवतिपक्केषुदोषधातुमलेषुच ।
कालेवायदिवाकालेसोन्नकालउदाहृतः ॥

अर्थ-जब दोष धातु और मल पकजाते हैं तब इस प्राणीको भूख, प्यास लगती है. यदि वह भूख भोजनके समय अथवा कुसमय लगे, परंतु वही अन्नदेनेका समय है ॥

औषधादिकेअजीर्णमेंअन्नकोअग्राह्यत्व ।

वीर्याधिकंभवतिभेषजमन्नहीनंहन्यात्तथामयमसंशयमाशुचैव ॥ तद्बालवृद्धयुवतीमृदवोनिपीताग्लानिंपरांसमुपयांतिबलक्षयंच ॥

अर्थ-अन्नहीन औषध वीर्याधिकवाली होती है, वह रोगको निःसंदेह शीघ्र दूरकरे है, यदि वही अन्नरहित औषधको बालक, वृद्ध, स्त्री और नम्रमनुष्य पीवे तो ग्लानिको तथा बलक्षयको प्राप्तहोवे ॥

जीर्णऔषधकेलक्षण ।

अनुलोमोऽनिलस्वास्थ्यक्षुत्तृष्णासुमनस्कता ।
लघुत्वमथचोद्गारः शुद्धोजीर्णौषधाकृतिः ॥

अर्थ-पवनका अनुलोमगतिसे चलना, देहमें स्वस्थता, भूख, प्यासका लगना, मनका प्रसन्न होना तथा देहमें हलकापन और शुद्ध डकारका आना ये औषध पचजानेके लक्षण हैं ॥

औषधग्रहणकामुहूर्त्त ।

भैषज्यंसल्लघुमृदुचरे मूलभेद्वयंगलग्ने
शुक्रेन्द्वीज्येविदिचंदिवसे चापितेषांरवेश्च ॥
शुद्धेरिष्फद्युनिमृतिगृहे सत्तिथौनोजनेभे-

अर्थ–लघु (ह. अश्वि. पुष्य. अभि.) मृदु (मृ. रे. चि. अनु.) चर (स्वा. पुन. श्र. ध. श.) मूल इननक्षत्रोंमें द्विस्वभावलग्न (मिथुन, कन्या, धन, मीन) में शुक्र, चंद्र, गुरु, बुध और रविवारमें तथा १२-७ और ८ स्थान शुद्धलग्नमें और उत्तम तिथिमें (अर्थात् रिक्ता, अमा आदि वर्जित तिथिमें) और जिसदिन जन्मका नक्षत्र न हो ऐसे शुभसमयमें प्रथम औषध सेवन करना शुभ है ॥

परंतु यह मुहूर्त देखना साधारण रोगमें लेना और जो रोग होतेही घोर उपद्रवकारी शीघ्रबढनेवाले हैं जैसे हैजा आदि उनमें वैद्यको कदाचित् मुहूर्त नहीं देखना चाहिये ॥

औषधग्रहणमेंमंत्र ।

ॐअमृतंभक्षयामिस्वाहा ॥
अच्युतानंतगोविंदनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यंतिसकलारोगाःसत्यंसत्यंब्रवीम्यहम् ॥

इनको प्रथम पढकर फिर औषध पीवे तो वह बहुत जल्दी गुणकरेहै। तथा रोगी पडा २ इसश्लोकको मनमें जपाकरे तो रोग शीघ्र दूरहोवे ॥

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनंदनायच ।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविंदायनमोनमः ॥

औषधग्रहणविधिः ।

तत्रोपविश्यविश्रांतः प्रसन्नवदनेक्षणः । औषधंहेमरजत मृद्भाजनपरिष्ठितम् ॥ पिबेत्प्रसन्नवदनः पीत्वापात्रमधो मुखम् । निक्षिप्यपात्रेसलिलंताम्बूलाद्युपकल्पयेत् ॥

अर्थ–रोगी बैठकर और परिश्रमको दूरकर, प्रसन्नमुख और नेत्रकर सुवर्ण, चांदी अथवा मिट्टीके पात्रमें स्थित औषधको प्रसन्न मुखसे पीवे और औषधको पीकर उसपात्रको ओंधेमुख रखदेवे फिर जलसे हाथ धोकर पानकी बीडी आदिको चवावे ॥

गंडूषवर्जन ।

यमदूतपिशाचाद्यायक्षगंधर्वराक्षसाः ।

तेघ्नन्त्यौषधवीर्याणिततोगंडूषवर्जनम् ॥

अर्थ–यमके दूत, पिशाच (आदिशब्दसे भूत, प्रेत, वेतालादिक) यक्ष, गंधर्व, राक्षस ये सब औषधके पराक्रमको नष्टकरदेते हैं इससे औषधको पीकर कुरला न करे ॥

क्वाथस्यकल्कस्यरसस्ययामंमासत्रयंचाञ्जनचूर्णवीर्यम् ।
षण्मासकाख्यंगुडलेहवीर्यंसंवत्सरं तैलघृतस्यवीर्यम् ॥

अर्थ–क्वाथ (काढा) कल्क, स्वरस इनमें १ प्रहर पर्यंत अपनी शक्ति रहती है और अंजन,सुरमाआदि चूर्ण (हिंग्वाष्टकादि) इनकी तीनमहीने शक्ति रहती है, गुड (बाहुशालगुडादि) लेह (कल्याणावलेह आदि) इनमें छः महीने पर्यंतवीर्यरहता, एवं घृत और तेलमें १ वर्ष पर्यंत वीर्य रहता है, उपरांत हीनवीर्य होजाती है ॥

वातज्वरके लक्षण ।

वेपथुर्विषमो वेगःकंठोष्ठमुखशोषणम् ।
निद्रानाशःक्षवःस्तंभो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥ ८ ॥
शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं गाढविट्कता ।
शूलाध्माने जृंभणं च भवन्त्यनिलजे ज्वरे ॥

अर्थ–कंपहोना,ज्वरका विषमवेग,कंठ,होंठ,मुख इनका सूखना, निद्राका नाश, छींकका न आना,देहकारूखापना, चकारसे नेत्र,विष्ठा,मूत्र इनका काला होना और आचारी " रौक्ष्यमेवच " इसजगे " श्यावांगमलमूत्रता " ऐसा पाठ कहतेहैं और मस्तक, हृदय, गात्र इनमें पीडा। कोई (शंका) करे कि, गात्र पदके धरनेसेही मस्तक हृदय आदिका बोध होगया फिर (मस्तक)और हृदय पद क्यों धरा ? उत्तर ये दोनों पदके धरनेसे इनमें दर्दकी आधिक्यता दिखाई अर्थात् मस्तक हृदयमें बहुत पीडा होय मुखकी विरसता, मलका रुकना, शूल, अफरा,जम्भाई ये लक्षण वातज्वरके होते हैं॥

वातज्वरपरशुंठ्यादिपाचन ।

विश्वभेषजकैरात कुस्तुंबरुगुडूचिका । पाचनं स्मृतमेतेषां देयं पवनजे ज्वरे ॥

अर्थ-सोंठ, चिरायता, नागरमोथा और गिलोय इनका काढा वातज्वरमें पाचनार्थ देवे ॥

गुडूच्यादिपाचन ।

गुडूचिकोषणाजटामहौषधैश्च पाचनम् ।
मरुज्ज्वरे सलिंगके दिने च सप्तमे हितम् ॥

अर्थ-गिलोय, पीपल, जटामांसी, सोंठ इनका काढा वातज्वरका पूर्वरूपहोकर जाने उपरांत सातवेंदिन हितकारकहै ॥

शठ्यादिकाढा ।

शठीनिशाद्वयंदारुशुंठीपुष्करमूलकम् ॥ एलागुडूची कटुकीपर्पटश्चयवासकः ॥ शृंगीकिराततिक्तंचदशमूलंतथैवच ॥ क्वाथमेषांपिबन्कृष्णासिंधुचूर्णयुतंनरः ॥ ज्वरान्सर्वान्द्रुतंहन्यान्नात्रकार्याविचारणा ॥

अर्थ-कचूर, हलदी, दारुहलदी, देवदारु, सोंठ, पोहकरमूल, इलायची, गिलोय, कुटकी, पित्तपापडा, जवासा, काकड़ासिंगी, चिरायता, कुटकी और दशमूल इनका काढा पीपल और सेंधानिमक डालके देवे तो सर्वज्वरोंका शीघ्र नाश करे इसमें संशय नहीं है ॥

श्रीपर्ण्यादिपाचन ।

श्रीपर्णीतर्कारीश्रीफलटिंटूकपाटलामूलैः ।
पाचनमुचितंमारुतजनितज्वरहारिवारिभिःक्वथितैः ॥

अर्थ-श्रीपर्णी, अरनी, बेलगिरी, टेंटू, पाडर इनका काढा करके वातज्वरमें देवे यह पाचनहै ॥

गुडूच्यादिकाढा ।

गुडूचीसारिवाद्राक्षाबलाचांशुमतीतथा ।
एषोपिपरमः सिद्धोवातज्वरविनाशनः ॥

अर्थ-गिलोय, सरिवन, दाख, खिरैंटी और शालपर्णी इनका काढा वातज्वरमें देवे यह उत्तम है ॥

दर्भमूलादिकाढा ।

दर्भबलागोक्षुरकंपचेत्पादावशेषितम् ।
शर्कराघृतसंयुक्तं पिबेद्वातज्वरापहम् ॥

अर्थ–कुशकीजड़, खिरैंटी और गोखरू इनका काढा चतुर्थांशकरके शीतल होनेपर मिश्री तथा शहत मिलायके देवे तो वातज्वरको नाशकरे

त्रिफलादिकाढा ।

श्रीफलंसर्वतोभद्राकामदूतीचशोणकः । तर्कारीगोक्षुरः क्षुद्राबृहतीकलशीस्थिरा ॥ रास्नाकणाकणामूलकुष्टंशुंठीकिरातकः । मुस्तामृतामृतावालंद्राक्षायासः शताह्विका ॥ एषांक्वाथोनिहंत्येवप्रभंजनकृतज्वरम् । सोपद्रवंचयोगोयंसर्वयोगवरःस्मृतः ॥

अर्थ–बेलगिरी, छोटीकंभारी, लालपाढर, टैंटू, अरनी, गोखरू, कटेरी, बडीकटेरी, पिठवन, सालपर्णी, रास्ना, पीपल, पीपरामूल, कूठ, सोंठ, चिरायता, नामरमोथा, गिलोय, खिरैंटी, नेत्रवाला, दाख, धमासा और सतावर इनका काढा वातज्वरका नाश करे ॥

भूनिंबादिकाढा ।

भूनिंबमुस्ताजलकंटकारिद्वयामृतागोक्षुरनागराणाम् ।
सशालिपर्णीद्वयपौष्कराणांक्वाथंपिबेद्वातभवज्वरार्तः ॥

अर्थ–चिरायता, नागरमोथा, नेत्रवाला, कटेरीदोनों, गिलोय, गोखरू, सोंठ, सालपर्णी, पृष्ठपर्णी, पोहकरमूल इनका काढा जिसको वातज्वर आता हो उसको देवे ॥

दुरालभादिकाढा ।

दुरालभानागरतिक्तपाठासठीवृषैरंडजटाकषायः ।
पीतः सशूलंशमयेज्ज्वरंच सश्वासकासंपवनप्रसूतम् ॥

अर्थ–धमासा, सोंठ, कुटकी, पाढ, कचूर, अडूसा और अंडकी जड़ इनका काढा पित्त, शूल, श्वास, खांसी तथा वातज्वर इनका नाशकरे ॥

शुंठ्यादिकाढा ।

विश्वामृताग्रंथिकसिद्धितोयंमरुज्ज्वरः स्यात्पिबतः कुतोयम्।
क्काथोथकुस्तुंबरुदेवदारु क्षुद्रौषधैः पाचनमत्रचारु ॥

अर्थ–सोंठ, गिलोय और पीपरामूल इनका काढा पीनेवाले मनुष्योंके वातज्वर कहां रहता है और इस वातज्वरपर धनियां, देवदारु, कटेरी और सोंठके काढेका पाचन सुंदर है ॥

पंचमूलादिकाढा ।

पंचमूलीबलारास्नाकुलित्थसहपौष्करैः ।
क्काथोहन्याच्छिरः कंपंपर्वभेदमरुज्ज्वरम् ॥

अर्थ–पंचमूल, खरैटी, रास्ना, कुलथी और पोहकरमूल इनका काढा शिरःकंप, संधियोंकी पीड़ा और वातज्वर इनका नाश करे ॥

कणादिकाढा ।

कणारसोनामृतवह्निविश्वानिदग्धिकासिंदुकभूमिनिंबैः ।
समुस्तकैराचरितःकषायोहिताशिनांहंतिगदानिमांस्तु॥
ज्वरंमरुत्कोपसमुद्भवंतथाबलासजंचानलमंदतांच ।
कंठवारोधंहृदयावरोधंस्वेदंचहिक्कांचहिमत्वमोहान् ॥

अर्थ–पीपल, लहसन, गिलोय, सोंठ, कटेरी, सह्यालू, चिरायता और नागरमोथा इनका काढा लेकर पथ्यसे रहे तो वातज्वर, कफज्वर, मंदाग्नि, गला तथा हृदयकारुकना, पसीने, हिचकी और शीत, मोह इनका नाश करे ॥

काकोल्यादिकाढा ।

काकोलीबृहतीमुस्ताकुष्टंदारुवृषामता ।
शुंठीक्काथःसितायुक्तोहंतिवातज्वरंपरम् ॥

अर्थ–काकोली, कटेरी, नागरमोथा, कूठ, देवदारु, अडूसा और सोंठ इनका काढा मिश्री डालके देवे तो वातज्वर दूर हो ॥

अमृतादिकाढा ।

अमृतानागरंमुस्तानिशाह्वययवासकैः ।
वातज्वरेप्रदातव्यः कृष्णायुक्तकषायकः ॥

अर्थ–गिलोय, सोंठ, नागरमोथा, हलदी और जवासा इनका काढा पीपरका चूर्ण डालके वातज्वरमें देवे ॥

ग्रंथ्यादिकाढा ।

ग्रंथिकंपर्पटोवासाभांर्गीविश्वागुडूचिका ।
एभिःसुसाधितंतोयंतीव्रवातज्वरापहम् ॥

अर्थ–पीपरामूल, पित्तपापरा, अडूसा, भारंगी, सोंठ और गिलोय इनका काढा तीव्रवातका नाश करे ॥

शालिपर्ण्यादिकाढा ।

शालिपर्णीबलाद्राक्षागुडूचीसारिवातथा । आसांक्वाथं-
पिबेत्कोष्णंतीव्रवातज्वरच्छिदम् ॥ काश्मरीसारिवाद्रा-
क्षात्रायमाणामृताभवः । कषायःसगुडःपीतोवातज्वर-
विनाशनः ॥

अर्थ–सालपर्णी, खरैंटी, दाख, गिलोय और सरिवन इनका काढा कुछ गरम पीवे तो तीव्र वातज्वर दूरहो।कंभारी,सरिवन,दाख,त्रायमाणा और गिलोय इनके काढेमें गुड डालके पीवे तो वातज्वर नाश होवे ॥

गुडूच्यादिपाचन ।

गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैःपाचनंस्मृतम् ।
दद्याद्वातज्वरेपूर्णलिंगेसप्तमवासरे ॥

अर्थ–गिलोय, पीपरामूल और सोंठ इन तीन औषधोंका काढा ज्वर पूर्ण दशामें आनेंसे सातवें दिन देवे तो वातज्वर नष्ट हो ॥

किरातादिकाढा ।

किराताब्दामृतोदीच्यबृहतीद्वयगोक्षुरैः ।
सस्थिराकलशीविश्वैःक्वाथोवातज्वरापहः ॥

अर्थ-चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, नेत्रवाला, दोनों कटेरी, गोखरू, पिठवन, शालपर्णी और सोंठ इनका काढा वातज्वरनाशकहै ॥

पिप्पल्यादिकाढा।

पिप्पलीसारिवाद्राक्षाशतपुष्पाहरेणुभिः।
कृतःकषायः सगुडोहन्यात्पवनजंज्वरम् ॥

अर्थ-पीपर, सारिवा, दाख, सौंफ, रेणुकाकेबीज इनका काढा कर गुड़ डालके देवेतो वातज्वर नष्ट हो ॥

उशीरादिकषाय।

उशीरकलशीमहौषधकिरातकांभोधरस्थिराबृहतिकाद्व-
यामृतलतात्रिकंटैःकृतम्। कषायकममुंपिबेत्पवनजज्व-
रव्याकुलःपुमान्दशशतच्छदछदमदग्रसल्लोचने ॥

अर्थ-हे कमलदललोचने! नेत्रवाला, पिठवन, सोंठ, चिरायता, नागरमोथा सालवन, कटेरी दोनों, गिलोय और गोखरू इनका काढा वातज्वरपीडितोंको देनेसे उनका ज्वर शांत होवे। यह वैद्यजीवनमें लिखाहै ॥

मरीच्यादिकाढा।

मरीचंरुचकंशुंठीकिरातंचहरीतकी।
पिप्पलीकटुकीचैववातज्वरविनाशनम् ॥

अर्थ-कालीमिरच, अंडकी जड़, सोंठ, चिरायता, छोटी हरड़, पीपल, कुटकी इनका चूर्ण अथवा काढा पीनेसे वातज्वर दूर होवे ॥

त्रिफलादिचूर्ण।

त्रिफलाव्योषगुडकंशर्करात्रिवृताधकम्। मोदकंभक्षयि-
त्वातु पिबेच्चोष्णजलंपुनः। पार्श्वशूलेऽरुचौकासेज्वरेचा-
निलसंभवे ॥

अर्थ-त्रिफला, सोंठ, मिरच, पीपल इनका चूर्ण गुडसे अथवा निशोथके चूर्णमें दुगनी खांड मिलाय भक्षण करे, ऊपरसे गरम जलपीवे तो पार्श्वशूल, अरुचि, खांसी और वातज्वर इनका नाश होवे ॥

पिप्पल्यादिचूर्ण।

तुल्यांशंमर्दयेत्खल्वेपिप्पलींहिंगुलंविषम् ॥
द्विगुंजंमधुनादेयंवातज्वरविनाशनम् ॥

अर्थ–पीपल, हिंगुल तथा सिंगियाविष ये समान भागले खरल करे, फिर इस चूर्णको २ रत्ती शहतके साथ देवे तो वातज्वरका नाश होय ॥

द्राक्षादिचूर्ण ।

द्राक्षादुरालभापथ्याचिक्कणीसमभागतः ।
एतागुडान्वितानूनं नाशयंत्यनिलज्वरम् ॥

अर्थ–दाख, धमासा, छोटी हरड़ तथा चिकनी सुपारी इनको समभाग ले चूर्णकरे इसमेंसे२॥तोले गुड़में मिलाकर देवे तो वातज्वर नष्ट होय ॥

शतावरीस्वरसः ।

सद्योवातज्वरंहंति शतावर्यामृतारसः ।
समासात्सगुडःपीतो बलहीनस्यदेहिनः ॥

अर्थ–सतावर, गिलोय इनका स्वरस गुड मिलायकर देनेसे निर्बल पुरुषका वातज्वर शांत होय

कल्पतरुरसः ।

शुद्धं शंकरशुक्रमक्षतुलितंमारारिनारीरजस्तावत्तावदु-
मापतिस्फुटगलालंकारवस्तुस्मृतम् । तावत्त्येवमनः
शिला च विमलातावत्तथाटंकणं शुंठीद्व्यक्षमिताक-
णाचमरिचंदिक्पालसंख्याक्षकम् ॥ विषादिवस्तूनि-
शिलोपरिष्टाद्विचूर्णयेद्वाससिशोधयेच्च । ततस्तुखल्वे
रसगंधकौचचूर्णंचतद्यामयुगंविमर्द्य ॥ कल्पतरुनामधेयो
यथार्थनामारसःश्रेष्ठः । समीरणश्लेष्मगदनहरतेमात्रा-
स्यगुंजैका ॥ आर्द्रकेणसममेषभक्षितोहंतिवातकफसंभ-
वंज्वरम् । श्वासकासमुखसेकशीततावह्निमांद्यमरुचिंच
नाशयेत् ॥ नस्येनाश्वेवहरति शिरोर्त्तिकफवातजाम् ।
मोहंमहांतमपिचप्रलापंक्षवथुग्रहम् ॥

अर्थ–पारा, गंधक, बच्छनागविष, मनसिल, सुहागा, प्रत्येक शुद्धकरे हुए एक २तोले लेवे, उसमें सोंठ२ तोले, कालीमिरच ८ तोले, पीपल ८ तोले इस प्रमाण डालके बच्छनागादि औषधोंको बारीक कूट पीस कपड छानकर लेवे फिर पारेगंधककी कजलीकर उसमें उक्त औषधोंके चूर्णको मिलाय देवे सबको एकत्र कर दो प्रहर खरल करके जलसे एक २ मांसेकी गोली बनावे, तो यह कल्पतरु नामक श्रेष्ठ रस बनकर तयार हो, इसमेंसे १ गोली प्रातःकाल सेवन करे तो वात कफके रोग दूर होवें इस रसको अदरखके रससे खाय तो वात कफज्वरका नाश करे तथा श्वास, खांसी, मुखसे लारका वहना, शीत, मंदाग्नि और अरुचि इनका नाशकहै, एवं इस रसकी नस्य लेनेसे कफवातसे प्रगट हुई मस्तकपीडाको हरणकरे। उसीप्रकार बडाभारी मोह, प्रलाप और छींकका न आना इनको नाश करे ॥

भैरवरसः।

विषमहौषधिमागधिकोषणद्युमणिरक्तकमार्द्रकमर्दितम्।
क्रमविवर्द्धितमुद्गलितज्वरं हरतिभैरवएषरसोवरः॥

अर्थ–सिंगियाविष, सोंठ, पीपल, कालीमिरच ये औषध प्रत्येक एकसे दूसरी अधिक भाग लेवे, सबको कूट पीस आकके दूध और अदरखके रससे खरलकर गोली बनावे तो यह भैरव रससिद्ध होवे, इसको बलाबल देखके देवे तो घोर वातज्वरको दूर करे ॥

शीतभंजीरसः।

पारदंरसकंतालंशिखितुत्थंचटंकणम्। गंधकंचसमंपिष्ट्वाकारवेल्लरसैर्दिनम्॥ ताम्रपात्रोदरेलेप्यंयंत्रेपात्रंत्वधोमुखम्। दत्वारुध्वा विशोष्याथवल्कलाभिःप्रपूरयेत्॥ पचेद्दावाग्निनाचुल्यांताम्रपृष्टगतायदा। स्फुटंतिव्रीहयः शुद्धोरसस्तंस्वांगशीतलम्॥ ताम्रपात्रात्समुद्धृत्यचूर्णयेन्मरिचैःसमम्। शीतभंजीरसोनाम द्विगुंजंवातकेज्वरे॥ दातव्यःपर्णखंडेन तत्क्षणान्नाशयेज्ज्वरम्। त्रैदिनंविषमंतीव्रंएकद्वित्रिचतुर्थकम्॥

अर्थ–पारा, खपरिया, हरताल, लीलाथोथा, सुहागा और गंधक ये औषध समभाग लेकर करेलेके रसमें १ दिन खरलकरे, फिर उस पिट्ठीको तामेके पात्रके भीतर लेप करके और उस पात्रके ऊपर दूसरा अधोमुख तामेके पात्रमें दाबकर सात कपड मिट्टी कर धूपमें सुखाय चूल्हेपर रख वालुकायंत्रमें तीव्राग्निसे पचन करावे, जब वालूके ऊपर रखेहुए धान खिलजावें तब अग्नि मँद कर शीतल करे और औषधको पात्र-मेंसे निकाल बराबरकी कालीमिरच मिलायके पीसे २ रत्ती पानमें धरके देवे तो तत्क्षण वातज्वर नाश होवे तथा यह शीतभंजी रस तीनदिन सेवन करे तो, तीव्र विषमवर, एकाहिक, द्याहिक और चातु-र्थिक ज्वरोंको शांत करे ॥

मातुलंगादिगुटिका ।

मातुलुंगफलकेसरोद्धृतःसिंधुजन्ममरिचान्वितोमुखे ।
हंतिवातकफरोगमास्यगंशोषमाशुजडतामरोचकम् ॥
शर्करादाडिमाभ्यांचद्राक्षादाडिमयोस्तथा ॥
कल्कंविधारयेदास्येशोषवैरस्यनाशनम् ॥

अर्थ–विजोरेकी केशर, सैंधानिमक, कालीमिरच, ये तीनों औषध एकत्र खरलकर गोली कर मुखमें रक्खे, इससे मुखसंबंधी कफ वात-रोग, शोष, जडता और अरुचि दूर होवे । खांड और अनार अथवा दाख और अनार इनका कल्क शोष तथा मुखकी विरसता दूर होनेके लिये सेवन करे ॥

द्राक्षादिप्रतिसारण ।

द्राक्षामलकयोः कल्कंसघृतंवदनेक्षिपेत् । तेनघृष्ट्वामु खस्यांतः कुर्वीतप्रतिसारणम् ॥ जिह्वातालुगलांतस्थः संशोषस्तेनशाम्यति । सुरसंजायतेवक्रंरुचिर्भवति भोजने ॥

अर्थ–दाख और आमले इनका कल्क घीके साथ मिलाय उसको मुखके भीतर फेरे, उसको प्रतिसारण कहते हैं, यह करके उक्त दाख आदिकी गोली मुखमें रक्खेतो जिह्वा, तालु, तथा गला इनका सूखना शांत होय और मुख सुरस होकर भोजनमें रुचि होवे ॥

हरीतक्यादिगुटिका ।

हरीतकीत्रिवृच्चैवदारुकाणांपृथग्भवेत् ॥ पलद्वयंकणाशुंठीगुडूचीगोक्षुरोवरी । सहदेवीविडंगंचप्रत्येकंपलसंमितम् । मधुनावटिकांकृत्वाखादञ्ज्वरमपोहति ॥ कासंश्वासंमलस्तंभंवह्निमांद्यंनियच्छति ॥

अर्थ–हरडकी छाल, निसोथ, विधायरा, प्रत्येक ८ तोले, पीपर, सोंठ, गिलोय, गोखरू, सतावर, सहदेई, वायविडंग ये प्रत्येक तोले ४ प्रमाण लेकर चूर्ण कर शहतसे गोली बनावे यह ज्वर, खांसी, श्वास, मलावरोध और अग्निमांद्य इनका नाश करे ॥

स्वेदकाढनेकेविषयमेंप्रमाणकहतेहैं ।

वातश्लेष्मज्वरेस्वेदंजंघापार्श्वास्थिशूलिनि । पीनसश्वासबाधिर्येकारयेत्तद्विधानवित् । स्रोतसांमार्दवंकृत्वानीत्वापावकमाशयम् । हत्वावातकफस्तंभंस्वेदोज्वरमपोहति ॥

अर्थ–वातकफज्वरमें, जंघा, पार्श्वभाग और हड्डी इनमें शूल होनेसे तथा पीनस, श्वास तथा बधिरता ये विकार होनेसे पसीने काढने चाहिये अर्थात् पसीने निकालनेसे इतने गुण होते हैं, रसवाहिनी नाडियोंका नम्र होना तथा अग्निको स्वस्थानमें लावे और वात तथा कफ संबंधी जडत्वको नाशकर ज्वरका नाश करे है ॥

खर्परभृष्टवालुकास्वेदयोग ।

खर्परभ्रष्टपरास्थितकांतिकसंसिक्तवालुकास्वेदः ।
शमयतिवातकफामयमस्तकशूलांगभंगादीन् ॥

अर्थ–वालूको खिपडेमें तपाय उसपर कांजी डाल उसका बफारा देय तो वात कफ रोग, मस्तकशूल तथा अंगोंका टूटना इससे शांत होता है ॥

निद्रानाशनिदान ।

नावनंलंघनंचिंताव्यायामः शोकभीक्रुधः ॥
एभिरेवभवेन्निद्रानाशः श्लेष्मातिसंक्षयात् ॥

अर्थ–नस्य, लंघन, चिंता, दंडकसरत, शोक, भय और क्रोध इन कारणोंसे अत्यंत कफनाश होनेसे निद्रा नहीं आती ॥

विजयाचूर्णयोग ।

भ्रष्टंतुविजयाचूर्णंमधुनानिशिभक्षयेत् ।
निद्रानाशेतिसारेचग्रहण्यांपावकक्षये ॥

अर्थ–रात्रिमें भांगको भून उसके चूर्णको शहतके साथ देवे तो निद्रानाश, अतिसार, संग्रहणी तथा मंदाग्नि इत्यादि रोग नष्ट होवे ॥

सगुडादिचूर्ण ।

गुडंपिप्पलिमूलस्यचूर्णेनालोडितंलिहन् ।
चिरादपिचसंनष्टांनिद्रामाप्नोतिमानवः ॥

अर्थ–पीपरामूलके चूर्णको गुडके साथ खानेसे बहुत दिनका निद्रानाश हुआ होय वो नष्ट होवे ॥

निद्रालानेकीऔषध ।

मूलंतुकाकमाच्याबद्धंसूत्रेणमस्तकेनियतम् ।
विदधातिनष्टनिद्रांनिद्रायाश्चैवसिद्धमिदम् ॥

अर्थ–काकमाची (मकोय) की जड़ सूतसे मस्तकमें बांधे तो निद्रा तत्काल आवे यह अनुभवसिद्ध है ॥

पित्तज्वरकेलक्षण ।

वेगस्तीक्ष्णेतिसारश्चनिद्राल्पत्वंतथावमिः । कंठोष्ठमुखनासानांपाकःस्वेदश्चजायते ॥ प्रलापोवक्त्रकटुतामूर्छादाहोमदस्तृषा । पीतविण्मूत्रनेत्रत्वक्पैत्तिकेभ्रमएवच ॥

अर्थ–ज्वरका तीक्ष्णवेग हो अतिसार (यानी पित्तके वेगसे दस्तका पतला होना न कि, अतिसार रोगहो) थोडी निद्रा आवे, पित्तको कफके स्थानमें पहुंचनेसे वमनका होना, कंठ, होठ, मुख, नाक इनका पकना और पसीनोंका आना बडबडाना मुखमें कडुआपन, मूर्च्छा,दाह, उन्मत्तपना, प्यास, बिष्ठा, मूत्र, नेत्र, देहकी त्वचा इनका पीला होना तथा भ्रम ये लक्षण पित्तज्वरमें होते हैं * शंका ॥ क्योंजी भ्रमको वात

विकारमें लिखा है यासे ये तो वातका धर्म हैं फिर पित्तके विकारमें भ्रमशब्द क्यों कहा ? * उत्तर तुमने कहा सो ठीक है, परंतु रोग एकही दोषसेही नहीं प्रगट होवे किंतु अनेक दोषोंसे होय है जैसे लिखाहै " न रोगोप्येकदोषजः इति " और " पैत्तिके भ्रम एवच " इस पदमें चकार जो पडाहै इस्से इस श्लोकमें जो नहीं कहै कोन तीव्रगरमी, लालचकते, शीतकी इच्छा, दाह, अरुचि, इत्यादि जानने ॥

छिन्नादिपाचन ।

छिन्नरुहापिचुमंदकधान्यंविश्वनिशाजनितश्चकषायः ।
पाचनकंगुडमिश्रितमेवपित्तभवेज्वरएवहिपेयम् ॥

अर्थ–गिलोय, नीमकी छाल, धनियां, सोंठ तथा हलदी इनका काढा गुड डालकर देवे यह पित्तज्वरपर पाचन है ॥

दुस्पर्शादिकाढा ।

दुरुपर्शवासाकटुकाहरेणुप्रियंगुभूनिंबकृतःकषायः ।
पीतोहिपित्तप्रभवंसदाहंज्वरंजयेदाशुसितासमेतः ॥

अर्थ–धमासा, अडूसा, कुटकी, पित्तपापडा, फूलप्रियंगु और चिरायता इनका काढा खांड डालकर पीवे तो दाहयुक्त पित्तज्वरका नाश करे॥

द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षापटोलीपिचुमंदतिक्ताहरीतकीसिंहमुखीजलंच ।
धान्याकलोध्रांबुदनागरंचपित्तज्वरांभोनिधिवाडवाग्निः ॥

अर्थ–दाख, पटोलपत्र, नीमकी छाल, कुटकी, छोटीहरड, कटेरी, नेत्रवाला धनियां, लोध, नागरमोथा और सोंठ इनका काढा पित्तज्वररूप समुद्रको बडवाग्नीके समान है ॥

पित्तज्वरप्रतीकार ।

अमलैःकमलैरथानिलैरलसैःपुष्परजःसमन्वितैः ।
जलकेलिकथाकुतूहलैरपिपित्तज्वरजारुजोजयेत् ॥

अर्थ–श्वेतकमल, सुगंधित पुष्पोंमें होकर आया मंद सुगंध वायु और जल क्रीडा इन करके वैद्योंको पित्तज्वरजनित पीडा जीतनी चाहिये ॥

तिक्तादिकाढा ।

तिक्तामुस्तायवैःपाठाकट्फलाभ्यांसहोदकम् ॥
पक्कंसशर्करंपीतंपाचनं पैत्तिकज्वरे ॥

अर्थ–कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, पाढ, कायफल और नेत्रवाला इनका काढा खांड डालके पीवे यह पित्तज्वरको पाचक है ॥

पपर्टादिकाढा ।

पर्पटोवासकस्तिक्तकिरातोधन्वयासकः ॥
प्रियंगुश्चकृतःक्वाथएषशर्करयापुनः ॥
पिपासादाहपित्तास्रयुक्तंपि त्तज्वरंहरेत् ॥

अर्थ–पित्तपापडा, अडूसा, कुटकी, चिरायता, धमासा, फूलप्रयंगु इनका काढा खांड डालकर लेय तो प्यास, दाह तथा रक्तपित्त इन सहित पित्तज्वरको दूर करे ॥

द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षाहरीतकीमुस्ताकटुकीकृतमालकः । पर्पटश्चकृतः क्वाथएषपित्तज्वरापहः ॥ मुखशोषप्रलापांतर्दाहमूर्च्छा-भ्रमप्रणुत् । पिपासारक्तपित्तानांशमनोभेदनोमतः ॥

अर्थ–दाख, छोटी हरड, नागरमोथा, कुटकी, अमलतासका गूदा और पित्तपापडा इनका काढा लेय तो मुखशोष, बकवाद, अंतर्दाह, मूर्च्छा तथा भ्रम इनको नाश करे और प्यास तथा रक्तपित्त इनको शमन करे तथा मलको निकाले ॥

पटोलादिकाढा ।

पटोलयवधान्याकमधुकंमधुसंयुतम् ।
हंतिपित्तज्वरंदाहंतृष्णां चातिप्रमाथिनीम् ॥

अर्थ–पटोलपत्र, इन्द्रजौ, धनियाँ, मुलहटी इनका काढा शहत डालके पीवे तो पित्तज्वर, दाह तथा प्यास शांत हो ॥

गुडूच्यादिकाढा।

गुडूच्यामलकीयुक्तः केवलोवापिपर्पटः।
पित्तज्वरंहरेत्तूर्णंपित्तशोषभ्रमान्वितम्॥

अर्थ—गिलोय, आमले तथा पित्तपापडा इनका अथवा केवल पित्तपापडेका काढा लेनेसे शोष तथा भ्रम युक्त पित्तज्वरको हरण करे॥

ह्रीबेरादिकाढा।

ह्रीवेरचंदनोशीरघनपर्पटसाधितम्।
दद्यात्तुशीतलंवारितृड्वृद्धिज्वरदाहनुत्॥

अर्थ—नेत्रबाला, लाल चंदन, खस, नागरमोथा, और पित्तपापडा इनका काढा शीतल करके देय तो अत्यंत प्यास, ज्वर तथा दाह इनको दूर करे॥

भूनिंबादिकाढा।

भूनिंबातिविषालोध्रमुस्तकेंद्रयवाः स्मृताः। वालकंधान्यकं बिल्वंकषायोमाक्षिकान्वितः॥ भिनत्तिश्वासकासांश्चरक्तंपित्तज्वरंहरेत्॥

अर्थ—चिरायता, अतीस, लोध, नागरमोथा, इन्द्रजव, नेत्रवाला, धनियाँ और बेलगिरी इनका काढा शहत डालके लेयतो अतिसार, श्वास, खांसी, रक्त, पित्त, ज्वर इनको दूर करे॥

कट्फलादिकाढा।

कट्फलेंद्रयवांबष्टातिक्तामुस्तैः शृतंजलम्।
पाचनंदशमेह्निस्यात्तीव्रपित्तज्वरेनृणाम्॥

अर्थ—कायफल, इन्द्रजौ, पाढ, कुटकी और नागरमोथा इनका काढा तीव्र पित्तज्वरवालेको दशमेंदिन दे (अर्थात् पित्तज्वर दशमेंदिन पाचन होता है) इसीवास्ते दशमें दिन देय तो पित्तज्वर दूर हो॥

पंचभद्रादिकाढा।

पर्पटाद्वामृताविश्वाकैरातैः साधितंजलम्।
पंचभद्रमिदंज्ञेयंवातपित्तज्वरापहम्॥

अर्थ-पित्तपापडा, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ और चिरायता इनका काढा वातपित्तज्वरको दूरकरे इसे पंचभद्र क्काथ कहते हैं ॥

कलिंगादिकाढा ।

कलिंगंकट्फलंलोध्रंपाठाकटुकरोहिणी ।
पक्कंसशर्करंपीतंपाचनंपित्तकेज्वरे ॥

अर्थ-कुडाकी छाल, कायफल, लोध, पाढ और कुटकी इनका काढा खांड डालके पीवे तो पित्तज्वरको पचावे ॥

शर्करादिकाढा ।

शर्करामधुरोहंतिकषायः पैतिकंज्वरम् ।
चंदनोशीरश्रीपर्णीपुरूवकमधूकजः ॥

अर्थ-लालचंदन, नेत्रवाला, कायफल, फालसे, मुलहटी इनका काढा खांड डालकर देय तो पित्तज्वरका नाश करे ॥

क्षुद्रादिकाढा ।

क्षुद्राधान्यकशुंठीभिर्गुडूचीमुस्तपद्मकैः । रक्तचंदनभू-
निंबपटोलवृषपौष्करैः ॥ कटुकेंद्रयवारिष्टभांर्गीपर्पटकैः
समैः । क्काथंप्रातर्निषेवेतशीतंसर्वज्वरच्छिदम् ॥

अर्थ-कटेरी, धनियां, सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, पद्माख, लालचंदन, चिरायता, पटोलपत्र, अडूसा, पोहकरमूल, कुटकी, इन्द्रजव, कूठ, भारंगी और पित्तपापडा इनका काढा पीवे तो सर्वप्रकारके शीतज्वर दूर होय ॥

लोध्रादिकाढा ।

लोध्रोत्पलामृतापद्मसारिवाणांसशर्करः ।
क्काथःपित्तज्वरंहन्यादथवापर्पटोद्भवाः ॥

अर्थ-लोध,कमलगट्टेकी गिरी, गिलोय, पद्माख और सरिवन इनका काढा खांड डालके पीवे अथवा पित्तपापडेकाही काढा पित्तज्वरको दूर करता है ॥

पर्पटादिकाढा ।

पर्पटामृतधात्रीणांक्काथपित्तज्वरंजयेत् ।
द्राक्षारग्वधयोश्चापिकाश्मर्याश्चापिवापुनः ॥

अर्थ-पित्तपापडा, गिलोय और आमले इनका काढा पित्तज्वरको दूर करे अथवा दाख, अमलतासका गूदा इनका अथवा केवल कंभारीका काढा पित्तज्वरको जीतता है ॥

विश्वादिकाढा ।

विश्वपर्पटकोशीरघनचंदनसाधितम् ।
दद्यात्सुशीतलंवारितृट्छर्दिज्वरदाहनुत् ॥

अर्थ-सोंठ, पित्तपापडा, नेत्रवाला, नागर मोथा और लालचंदन इनका काढा शीतलकर देवे तो तृषा, वमन, ज्वर और दाह इनको नाशकरे ॥

गुडूच्यादिकाढा ।

गुडूचीमुस्तधान्याकमधुकंकटुरोहिणी ।
तृष्णाशूलरुचिच्छर्दिपित्तज्वरहरोगणः ॥

अर्थ-गिलोय, नागरमोथा, धनियां, मुलहटी और कुटकी इनका काढा प्यास, शूल, अरुचि, वमन और पित्तज्वर इनको नाशकरे ॥

किरातादिकाढा ।

किराताम‍ृतधान्याकचंदनोशीरपर्पटैः ।
सपद्मकैःकृतःक्काथोहंतिपित्तभवंज्वरम् ॥
दाहतृष्णाश्रमारुचिमुत्क्लेशंवमथुंक्लमम् ॥

अर्थ--चिरायता, गिलोय, धनियां, चंदन, नेत्रवाला, पितपापडा और पद्माख इनका काढा पित्तज्वर, दाह, तृष्णा, श्रम, अरुचि, मुखसे पानी छूटना वमन और ग्लानि इनका नाश करे ॥

चंदनादिकाढा ।

चंदनंमधुकंद्राक्षांकटुकांसदुरालभाम् ।
चंदनादिर्गणःप्रोक्तोहन्याद्दाहज्वरारुचिः ॥

अर्थ-चंदन, मुलहटी, दाख, कुटकी और धमासा यह चंदनादि गण दाह, अरुचि और ज्वर इनका नाशकरे ॥

पर्पटादिकाढा ।

एकएवखलुपैत्तिकज्वरंहंतिपर्पटकृतः कषायकः ।
चंदनोदकमहौषधान्वितश्चेत्तदाकिमुपुनर्विचारणा ॥

अर्थ-केवल एकही पित्तपापडेका काढा पित्तज्वरको नष्ट करता है यदि उसमें ललाचंदन, नेत्रवाला और सोंठ मिलायकर काढा कराजावे तो पित्तज्वर दूरकरे इसमें क्या संदेह है ॥

उदुंबरादिहिम ।

उदुंबरशिफाछिन्नातज्जलंसितयान्वितम् ।
पीतपित्तज्वरंहंतिपटोल्यावाशिफाजलम् ॥

अर्थ-गूलरकी छालके पानीमें खांड मिलायकर पीनेसे अथवा पटोल पत्रकी जडका पानी खांडके साथ पीवे तो पित्तज्वरको नाशकरे ॥

द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षाभयापर्पटकाब्दतिक्ताक्काथःससंपाकफलोविदध्यात् ।
प्रलापमूर्च्छाभ्रमदाहशोषतृष्णान्वितोपित्तभवज्वरेच ॥

अर्थ-मुनक्का, (दाख) हरडजंगी, पित्तपापडा, नागरमोथा, कुटकी और अमलतासका गूदा इनका काढा करके पीवे तो प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, शोष और तृषा इन करके युक्त जो पित्तज्वर उसका नाशकरे ॥

दुरालभादिकाढा ।

दुरालभापर्पटकप्रियंगुभूनिम्बवासाकटुरोहिणीनाम् ।
क्काथंपिबेच्छर्करयावगाढंतृष्णास्रपित्तज्वरदाहयुक्तः ॥

अर्थ-धमासा, पित्तपापडा, फूलप्रियंगु, चिरायता, अडूसा और कुटकी इनका काढा करके उसमें खांड डालके तृषा, रक्तपित्तज्वर और दाह इनकरके युक्त जो रोगी होवे उसको पीना चाहिये ॥

द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षापर्पटराजवृक्षकटुकामुस्ताभयानांजलं
मूर्च्छाशोषनिदाघतृट्प्रलपनभ्रांत्याढ्यपित्तज्वरे ।
दुस्पर्शप्रमदाकिरातकटुकासिंहास्यरेणूद्भवः
क्काथः शर्करयान्वितोहरतितृट्दाहाख्यपित्तज्वरान् ॥

अर्थ-मुनक्का (दाख)पित्तपापडा,अमलतासका गूदा,कुटकी, नागरमोथा और हरडकी छाल इनका काढा पीवे तो पितज्वरजनित जो मूर्च्छा शोष, दाह, प्यास, प्रलाप और भ्रांति इनका नाश होवे, जवासा, अतीस

चिरायता,कुटकी, अडूसेके पत्ते और पित्तपापडा इनका काढा करके उसमें मिश्री डालके पीवे तो तृषा, दाह, रक्तपित्त और ज्वर इनका नाशहोवे ॥

छिन्नादिकाढा ।

अहोकिमर्थंबहुभिःकषायैः पराशराद्यैर्मुनिभिः प्रदिष्टैः । छिन्नाशिवापर्पटतोयपानात्पित्तज्वरः किंनसरीसरीति ॥

अर्थ–पाराशरादि ऋषियोंने इतने काढे काहेके वास्ते कहे ? गिलोय, हरड और पित्तपापडा इनका काढा सेवन करनेसे क्या पित्त ज्वर नहीं जाता है ? ॥

द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षाचंदनपद्मानिमुस्तातिक्तामृतापिच । धात्रीवालमुशीरंचलोध्रेन्द्रयवपर्पटाः ॥ परूषकंप्रियंगुश्चयवासोवासकस्तथा । मधुकंकुलकंचापिकिरातोधान्यकस्तथा॥एषांक्काथोनिहंत्येवज्वरंपित्तसमुत्थितम्॥तृष्णांदाहप्रलापंचरक्तपित्तंभ्रमंक्लमम् ॥ मूर्छांछर्दितथाशूलं मुखशोषमरोचकम्।कासंश्वासंचहृल्लासंनाशयेन्नात्रसंशयः॥

अर्थ–दाख, लालचंदन, कमलगट्टेकी मिंगी, नागरमोथा, कुटकी, गिलोय, आमले, नेत्रवाला, खस, लोध, इन्द्रजों, पित्तपापडा, फालसे, फूलप्रियंगु, धमासा, अडूसा, मुलहटी, पटोलपत्र, चिरायता और धनियां इनका काढा लेनेसे पित्तज्वर, तृषा, दाह, प्रलाप, रक्तपित्त, भ्रम, ग्लानि, मूर्च्छा, वमन, शूल, मुखशोष, अरुचि, खांसी, प्यास, मुखसे पानी गिरना इन सबका नाश निस्संदेहकरे ॥

ससितादिकाढा ।

ससितोनिशिपर्युषितः प्रातर्धान्याकतंडुलक्काथः । पीतः शमयत्यचिरादंतर्दाहंज्वरंपैत्तम् ॥

अर्थ–धनियां और चावलको रात्रिमें कोरे मटकनेमें भिगोदे और प्रातःकाल क्काथकर उसमें खांड मिलाय पीवे तो अंतर्दाह तथा पित्तज्वरको दूरकरे ॥

मुद्गादिकाढा ।

मुद्गानामंजलिंचूर्णयष्टीमधुकसाधितम् ।
पाक्यंशीतकषायंवापिबेत्पित्तज्वरापहम् ॥

अर्थ—मुलहटी और मूंगका आठ तोले चूर्णका काढा कर और शीतल पीवे तो पित्तज्वरका नाशहो ॥

ह्रीबेरादिकाढा ।

ह्रीबेरंमुस्तकंधान्यंचंदनंयष्टिकामृता । वृषोशीरयुतः क्वाथः शर्करामधुसंयुतः ॥ रक्तपित्तंजयत्युग्रंतृष्णादाहज्वरापहः ॥

अर्थ—नेत्रवाला, नागरमोथा, धनियां, लालचंदन, मुलहटी, गिलोय, अडूसा और खस इनके काढेमें खांड और शहत मिलाय पीनेसे रक्तपित्त, तृष्णा, दाह और नित्तज्वरको दूरकरे ॥

तिक्तादिकाढा ।

तिक्तायासकभूनिंबश्यामापर्पटवासकैः ।
सृतंजलंसितायुक्तंरक्तपित्तज्वरंजयेत् ॥

अर्थ--कुटकी,धमासा, चिरायता,पीपल, गिलोय,पित्तपापडा और अडूसा इनका काढा मिश्री मिलाय पीनेसे रक्तपित्त और ज्वरको जीते ॥

पथ्यादिकाढा ।

पथ्यांतैलघृतक्षौद्रैर्लिहेद्दाहज्वरापहम् ।
कासासृक्पित्तवीसर्पश्वासंहंतिवमिमपि ॥

अर्थ—हरडका चूर्ण, तेल अथवा घी अथवा शहतके साथ चाटेतो दाह, ज्वर, खांसी, रक्तपित्त, विसर्प, श्वास और वमन इनका नाशकरे ॥

आम्रादिफांट ।

आम्रजंबूकिसलयैर्वटशृंगप्ररोहकैः । उशीरेणकृतःफांटः सक्षौद्रोज्वरनाशनः ॥ पिपासाछर्द्यतीसारान्मूर्च्छांजयतिदुस्तराम् ॥

अर्थ—आम तथा जामुन इनके कोमल पत्ते तथा वडकी कोमल कली

तथा तत्काल निकले हुये पत्ते और नेत्रवाला इन औषधोंको पूर्वरीतिसे फांटकर पीनेसे ज्वर, प्यास, वमन, अतिसार तथा कष्टसाध्य मूर्च्छा ये दूरहों ॥

गुडूच्यादिकाढा ।

गुडूचीपद्मलोध्राणांसारिवोत्पलयोस्तथा ।
शर्करामधुरःक्काथःपीतःपित्तज्वरापहः ॥

अर्थ-गिलोय, पद्माख, लोध, सरवन और कमलगट्टा इनका काढा शीतल कर मिश्री मिलाय पीनेसे पित्तज्वरको दूर करे ॥

पटोलादिकाढा ।

पटोलयवनिक्काथोमधुनामधुरीकृतः ।
तीव्रपित्तज्वरोन्मर्दीपानात्तृड्दाहनाशनः ॥

अर्थ-पटोलपत्र और जों इनका काढाकर उसमें शहत मिलाय शीतलकर पीवे तो तीव्रपित्त ज्वर, तृषा, दाह इनका नाश करे ॥

केसरमातुलिंगादियोग ।

जिह्वातालुगलक्लोमशोषेमूर्ध्निचदापयेत् ।
केसरंमातुलिंगस्यमधुसैंधवसंयुतम् ॥

अर्थ-जीभ, तालू; गला, क्लोम (तृषा लगनेका स्थान) और मस्तक इनमें शोष होनेसे विजोरेकी केशर, शहत और सैंधानिमक, मिलायकर मालिशकरे ॥

दूसराप्रकार ।

केसरंमातुलिंगस्यमधुसैंधवसंयुतम् । हरीतकीप्रियंगुश्च पिप्पलीलोध्रमेवच ॥ दार्वीहरिद्रातेजोह्वासक्षौद्रंमुखधावनम् । एतेनकटुभावश्चमुखरोगश्चशाम्यति ॥ वक्त्रंविशदतामेतिभक्तछंदश्चजायते । मुद्गयूषोदनोदेयः सितयापैत्तिकेज्वरे ॥

अर्थ-विजोरेकी केशर, शहत और सैंधानिमक इनका अथवा हरड, प्रियंगु, पीपल, लोध, दारूहलदी, हलदी, तेजबल इनका चूर्ण शहतसे मिलाय जलमें डाल कुरला करे तो मुखकी कटुता तथा मुखरोग, शांत होय और मुख स्वच्छहो रुचि होयहै, उसरोगीको मूंगका यूष और भात तथा बूरा मिलाय पथ्य देवे ॥

रसपर्पटी ।

शुद्धंसूतंद्विधागंधंमर्द्यंभृंगीरसैःक्षणम् । पाचयेल्लोहपात्रस्थंचाल्यंतुत्रुटकेनच॥लोहभस्माथवाताम्रंपादांशेनविनिक्षिपेत् । पाच्यंप्रचालयेन्नैवयामार्धंमृदुवह्निना ॥ तत्क्षिपेत्कदलीपत्रेगोमयस्योपरिस्थिते । तत्पत्रंधारयेदूर्ध्वंतदूर्ध्वंगोमयंक्षिपेत् ॥ ततः संचूर्णयेत्खल्वेनिर्गुण्ड्याभावयेद्दिनम् । जयंतीत्रिफलाकन्यावासाभार्ङ्गीकटुत्रयैः ॥ भृंग्यग्निमुनिमुंडीभिर्भावयेत्प्रत्यहंपृथक् । आर्द्रकस्यद्रवैः पश्चाद्भावयेद्दिनसप्तकम् ॥ अंगारैःस्वेदयेत्पश्चात्पर्पट्याख्योमहारसः । चतुर्गुंजामितोदेयःसम्यक्श्लेष्माधिकेज्वरे ॥ वासाशुंठीभयाक्काथमनुपानंप्रकल्पयेत् । चव्यकस्वरसैर्वाथपेयंश्लेष्मज्वरापहम् ॥

अर्थ–शुद्धपारा १ भाग, शुद्ध गंधक १ भाग इनकी कजली करके भाँगरेके रसकी भावनादे फिर उसको मंदाग्निवाले चूल्हेपर लोहेके पात्रमें धीरे २ हिलाता हुआ पचन करावे, पीछे ताम्र तथा लोह की भस्म चतुर्थांश डाल फिर चार घडी बिना हिलाए मंदाग्निपर पचन करावे जब पतला होकर सब एक रस हो जाय तब केलेके पत्तेपर उलट देवे और दूसरा पत्ता ढककर दाबिदेवे जब शीतल होजावे तब खरलमें घोट सह्मालूके रसकी ३ पुटदेवे फिर जयंती, त्रिफला, घीकुवार,अडूसा, भारंगी, त्रिकुटा, भाँगरा, चीता, अगस्तिया और मुंडी इनके रसकी प्रहर २ तक भावनादेवे फिर अदरखके रसकी सातदिन भावनादेवे और अंगारोंके ऊपर भूने यह पर्पटी रस ४ रत्ती अडूसा, सोंठ तथा हरड इनके काढेसे अथवा चव्यके रससे देवे तो कफज्वरको हरण करे ॥

उत्तानसुप्तयोग ।

उत्तानसुप्तस्यगभीरताम्रकांस्यादिपात्रेनिहितेचनाभौ । शीतांबुधाराबहुलापतंतीनिहंतिदाहंज्वरितज्वरंच ॥

अर्थ–ज्वरवाले मनुष्यको चित्त सुलाय उसकी नाभी(तोंदी)पर ता-

मेका अथवा कांसेका औंधा पात्र धर उसमें शीतल जलकी बडी धार डाले तो दाहज्वरको तत्काल नाश करे ॥

औदुंबरादियोग ।

औदुंबरस्यनिर्यासःसितयादाहनाशनः ।
छिन्नासारःसितायुक्तःपित्तज्वरनिषूदनः ॥

अर्थ—गूलरका गोंद खांड मिलायकर लेवे तो दाहको नाश करे और गिलोयका सत्व खांड मिलाय कर ले यह पित्तज्वरनाशक है ॥

घर्म ।

अथगोतक्रसंसिक्तशीतलीकृतवाससा ।
कांजिकार्द्रपटेनावगुंठनंदाहनाशनम् ॥

अर्थ—गौकी छाछमें किंवा कांजीमें वस्त्र भिगोय उस वस्त्रसे रोगीको उढावे तो दाह नष्ट हो ॥

द्राक्षादिकल्क ।

द्राक्षामलककल्केनकवलोत्रहितोमतः ।
पक्वदाडिमजैर्वाथधानाकल्केनचक्वचित् ॥

अर्थ—दाख और आमले इनके कल्कका अथवा पके हुए अनारका अथवा धनियेका हिम करके मुखमें कवल देवे तो हित है ॥

मुद्गयूष ।

दाहवम्यर्दितंक्षामंनिरन्नंतृष्णयान्वितम् ।
शर्करामधुसंयुक्तंपाययेल्लाजतर्पणम् ॥
मुद्गयूषौदनोदेयः सितयापैत्तिकेज्वरे ॥

अर्थ—यदि दाह और वमन इनसे पीडित कृष कुछ खाय नहीं प्यास अधिक लगे उसको चावलोंका मंड मिश्री और शहत डालके देवे और मूंगका यूष भात और खांड ये पदार्थ भक्षणार्थ देवे तो पित्तज्वर शांति हो॥

अमृतादिहिम ।

अमृतायाहिमःप्रातःससितःपैत्तिकंज्वरम् ।
वासायाश्चतथाकासरक्तपित्तज्वराञ्जयेत् ॥

अर्थ-गिलोयको रात्रिमें कूट पानीमें भिगोदेवे प्रातःकाल उस पानीको छान मिश्री मिलायके पीवे तो पित्तज्वरनाशक है, इसी प्रकार अडूसाके हिम खांसी, रक्त, पित्तज्वर इनका नाशक है ॥

कफज्वरकेलक्षण ।

स्तैमित्यंस्तिमितोवेगआलस्यंमधुरास्यता। शुक्लमूत्रपुरीषत्वक्स्तंभस्तृप्तिरथापिवा ॥ नात्युष्णगात्रताछर्दिरंगसादोविपाकता । गौरवंशीतमुत्क्लेदोरोमहर्षोतिनिद्रता ॥ प्रतिश्यायोरुचिःकासः कफजेक्ष्णोश्चशुक्लता ॥

अर्थ-स्तैमित्य (गीले कपडेसे देहको आच्छादित करदेनेसे जैसा हो ऐसा मालूमहो) ज्वरका मंदवेग, आलस्य, मुख मीठा, मलमूत्र, सफेद, देहका जकडना, तृप्तसरीखा,अन्नमें अरुचि, पेट भरासारहे, देह-बहुत गरम नहोवे, अंगरहजावे, देहभारी शीतल, शीतलगे, ओकारी आवे * अन्य आचार्य कहतेहैं कि, कफका थूकना, रोमांचका होना अतिनिद्रा, रसके बहनेवाली नाडीके मार्गोंका रुकना, दस्तका थोडा उतरना, पसीना,मुखमें नोनकासा सवाद, देहका थोडा गरमहोना, रद्दका होना, लारका गिरना, मुखपाक तथा मुखनाकमें कफका पडना, अरुचि, खांसी, नेत्र श्वेतहो ये लक्षण कफज्वरमें होते हैं " स्तंभस्तृप्तिरथापि च " इस पदमें जो चकार है उस्से देहमें पीडा, शीतका लगना, लारका गिरना, वमन, तंत्रिकरोग, हृदयलिहसासा, गरमी प्यारी लगे, मन्दाग्नि इत्यादि जानने ॥

कलिंगादिचूर्ण ।

कलिंगरोहिणीनिशाकटुत्रिकेभकेसरम् ।
विचूर्णितंकफज्वरोनिहंतिकोष्णवारिणा ॥

अर्थ-इन्द्रजों, कुटकी, हलदी, नागकेशर और त्रिकटु इनका चूर्ण गरम जलसे लेवे तो कफज्वर दूरहो ॥

शृंग्यादिअवलेह ।

शृंगीकणाकट्फलपौष्कराणांक्षौद्रान्वितानांविहितोवलेहः।

श्वासेनकासेनयुतंबलासंज्वरंजयेदत्रनकापिशंका ॥

अर्थ–काकडासिंगी, पीपल, कायफर, पोहकरमूल इनका अवलेह शहत मिलायकर देवे तो श्वास, खांसीयुक्तकफ और ज्वरको दूर करे इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥

सिंधुकवल।

सिंधुत्रिकटुराजीभिरार्द्रकेणकफेहितः ॥ कवलइतिशेषः॥

अर्थ–सैंधानिमक, त्रिकुटा, राई और अदरख इनको एकत्र पीस उसकी कवल करके मुखमें धारण करे यह कवल कफपर प्रशस्त है ॥

मुद्गयूष।

मुद्गयूषौदनोदेयोज्वरेकफसमुत्थिते ॥

अर्थ–कफज्वरमें मूंगका यूष और भात पथ्यदेना चाहिये ॥

त्रिफलादिचूर्ण।

लिहञ्ज्वरार्तस्त्रिफलांपिप्पलींचसमाक्षिकाम् ।
कासेश्वासेचमधुनासर्पिषाचसुखीभवेत् ॥

अर्थ–कफज्वरवाले रोगीको त्रिफला तथा पीपलका चूर्ण शहतसे देवे और खांसी तथा श्वास पर वही चूर्ण शहत और घृतके साथ देवे ॥

अजाजियोग।

अजाजिशर्करायुक्तोदाडिमस्वरसेनतु ।
रुचिष्योमधुनायुक्तःकर्तव्यः कवलग्रहः॥
मुद्गयूषौदनश्चापिदेयः कफसमुत्थिते ॥

अर्थ–जीरा और खांड अथवा अनारका रस तथा शहत ये रुचिकारी हैं इनको मुखमें धारण करे और मूंगभात पथ्य देवे ॥

चंदनादिकाढा।

चंदनंचसुगंधंचबालकोशीरपर्पटाः ।
मुस्ताशुंठीसमायुक्तःपित्तज्वरनिषूदनाः ॥

अर्थ–लालचंदन, रोहिषतृण, नेत्रवाला, पित्तपापडा, नागरमोथा और सोंठ इनका काढा पित्तज्वरनाशकहै ॥

शतधौतघृत ।

शतधौतघृतस्यलेपतोदवथुर्नाशमुपैतितत्क्षणात् ।
अथवापिचुमंदपत्रजस्वरसप्रोत्थितफेनलेपतः ॥

अर्थ-सौवार धुलेहुए घीको शरीरमें लगानेसे अथवा नीमका रस फेनयुक्त करके अंगोंमें लेप करनेसे दाह शांति होता है ॥

पलाशादिलेप ।

पलाशस्यबदर्यावानिंबस्यमृदुपल्लवैः ।
अम्लपिष्टैःप्रलेपोयंहन्याद्दाहयुतंज्वरम् ॥

अर्थ-ढाककी, बेरकी किंवा नींबके कोमलपत्ते छाँछमें अथवा नींबूके रसमें पीस लेप करें तो दाहयुक्त ज्वर दूर हो ॥

नीरदादिपाचन ।

नीरदविश्वदुरालभवासासाधितमंबुहिपाचनमेवम् ।
पेयमिदंज्वरएवकफाख्येश्वासकासघनशूलहरंच ॥

अर्थ-नागरमोथा, सोंठ, धमासा, अडूसा इनका काढा पाचक होकर ज्वरनाशक, श्वास, खाँखी, शूल, कफज्वर इनका नाश करे ॥

पिप्पल्यादिपाचन ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंमरिचंगजपिप्पली । नागरंचित्रकंचव्यंरेणुकाचाजमोदिका ॥ सर्षपोहिंगुभांर्गीचपाठेंद्रयवजीरका।महानिंबश्चमूर्वाचविषातिक्ताविडंगकाः॥पिप्पल्यादिगणोह्येष कफवातातिनाशनः ॥ गुल्मशूलज्वरहरोदीपनश्चामपाचनः ॥

अर्थ-पीपर, पीपरामूल, कालीमिरच, गजपीपर, सोंठ, चीता, चव्य, रेणुकाबीज, अजमोद, सरसों, हींग, भारंगी, पाढ,इन्द्रजों, जीरा, बकायन,मूर्वा,अतीस, कुटकी, वायविडंग यह पिप्पलादि गण कफ और वादीको दूर करे गोला, शूल,ज्वरको हरण करे तथा दीपन और आमको पचावे ॥

क्षौद्रादिकाढा ।

क्षौद्रोपकुल्यासंयोगःश्वासकासज्वरापहः ।

प्लीहानंहंतिहिक्कांचबालानामपिशस्यते ॥

अर्थ–पीपर और शहतका योग, खांसी, श्वास, ज्वर, प्लीहा, हिचकी इनका नाश करनेवाला है और बालकोंको उत्तम है ॥

पिप्पल्यादिचूर्ण ।

पिप्पलींत्रिफलांचापिसमभागांज्वरीलिहन् ।
मधुनासर्पिषावापिकासीश्वासीसुखीभवेत् ॥

अर्थ–पीपर, त्रिफला ये समान भागले वा शहत घृतके साथ चाटे तो खांसी, श्वास और ज्वर दूर हो ॥

कट्फलादिलेह ।

कट्फलंपौष्करंशृंगीकृष्णाचमधुनासह ।
कासश्वासज्वरहरोलेहोयंकफनाशनः ॥

अर्थ–कायफल, पोहकरमूल, काकडासिंगी और पीपर इनका चूर्ण शहत के साथ खाय तो श्वास, खांसी, ज्वर और कफको नाशकरे ॥

कट्फलादिचूर्ण ।

कट्फलंपौष्करंशृंगीयवानीकारवीतथा । कटुत्रयंचसर्वा-
णिसमभागानिचूर्णयेत् ॥ आर्द्रकस्वरसैर्लिह्यान्मधुनावा-
कफज्वरी । कासश्वासारुचिच्छर्दीश्लेष्मानिलनिवृत्तये ॥

अर्थ–कायफल, पोहकरमूल, काकडासिंगी, अजवायन, अजमोद, त्रिकुटा इनका चूर्ण अदरखके रससे अथवा शहतके साथ देवे तो खांसी, श्वास, अरुचि, वमन, शर्दी, वायु, कफज्वर इनका नाश करे ॥

निर्गुंड्यादिकाढा ।

सिंदुवारदलक्काथंकणाढ्यंकफजेज्वरे ।
जंघयोश्चबलेक्षीणेकर्णेचपिहितेपिबेत् ॥

अर्थ–कफज्वर तथा जांघोंकी निर्बलता और कानोंका बंद हो जाना इनपर सम्हालूके पत्तोंका काढा पीपलका चूर्ण डालके पीवे ॥

यवान्यादिकाढा ।

यवानीपिप्पलीवासातथाखस्खसवल्कलाम् ।
एषांक्राथंपिबेत्कासेश्वासेचकफजेज्वरे ॥

अर्थ-अजवायन, पीपल, अडूसा और खसखसके डोडे इनका काढा पीनेसे खांसी, श्वास तथा कफज्वर इनका नाश होय ॥

वासादिकाढा ।

वासाक्षुद्रामृताक्राथःक्षौद्रेणज्वरकासहृत् ॥

अर्थ-अडूसा, कटेरी, गिलोय इनका काढा शहतके साथ पीनेसे कफज्वर और खांसीको दूर करे ॥

निंबादिकाढा ।

निंबविश्वामृताभीरुयासभूनिंबपौष्करम् ।
पिप्पल्योबृहतीचेतिक्राथोहंतिकफज्वरे ॥

अर्थ-नीमकी छाल, सोंठ, गिलोय, शतावर, जवासा, चिरायता पोहकरमूल, पीपर और कटेरीकी जड इनका काढा कफज्वरकोनाशकरे ॥

मरीच्यादिकाढा ।

मरीचंपिप्पलीमूलंनागरंकारवीकणा ।
चित्रकंकट्फलंकुष्ठंससुगंधिवचाशिवा ॥
कंटकारीजटाशृंगीयवानीपिचुमंदकः ।
एषांक्राथोहरत्येवज्वरंसोपद्रवंकफात् ॥

अर्थ-कालीमिरच, पीपलामूल, सोंठ, सौंफ, पीपल,चीता, कायफल कूठ, निर्गुंडी, वच, हरड, कटेरीकी जड, जटामांसी, काकडासिंगी, अजवायन और नीमकी छाल इनका काढा उपद्रव सहित कफज्वरका नाश करे ॥

निदिग्धिकादिकाढा ।

निदग्धिकाच्छिन्नरुहोपकुल्याविश्वौषधैःसाधितमंबुपीतम् ।
हंतिज्वरंश्वासबलासकासशूलाग्निमांद्यंजठरानिलंच ॥

अर्थ-कटेरीकी जड, गिलोय, पीपल और सोंठ इनका काढा ज्वर, श्वास, कफ, खांसी, शूल, मंदाग्नि इनको दूरकरे ॥

भांग्यादिकाढा ।

भांर्गीगुडूचीघनदारुसिंहीशुंठीकणापुष्करजःकषायः ।
ज्वरंनिहंतिश्वसनंक्षिणोतिक्षुधांकरोतिप्ररुचिंतनोति ॥

अर्थ–भारंगी, गिलोय, नागरमोथा, देवदारु, कटेरी, सोंठ, पीपल और पोहकरमूल इनका काढा ज्वर और श्वासको नष्टकरे एवं क्षुधाकरे अन्नमें रुचि प्रगटकरे है ॥

मातुलिंगादिकाढा ।

मातुलिंगशिफाविश्ववयस्थाग्रंथिकोद्भवम् ।
कफज्वरेषुसक्षारंपाचनंवाकणादिकम् ॥

अर्थ–बिजोरेकी जड, सोंठ, गिलोय, पीपरामूल इनके काढेमें जवाखार अथवा पीपर डालके पीवे तो कफज्वर दूर हो तथा पाचन हो ॥

त्रिफलादिकाढा ।

त्रिफलात्रिवृतामुस्तंकटुकंसकलिंगकम् ॥
पटोलारग्वधंचैवरोहिणीचित्रकंसम ॥
क्वाथःक्षौद्रयुतःश्लेष्मज्वरकासगतामये॥

अर्थ–त्रिफला, निसोथ, नागरमोथा, त्रिकुटा, इन्द्रजों, पटोलपत्र, अमलतास, कुटकी और चीता ये समभागले काढाकर शहत डालके पीवे तो कफज्वर, खांसी तथा कंठरोग दूर होवे ॥

पिप्पल्यादिगण ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचव्याचित्रकनागरम् । मरीचैलाजमोदेंद्रपाठारेणुकजीरकम्॥भार्ङ्गीमहानिंबफलंहिंगुरोहिणिसर्षपम् । विडंगातिविषामूर्वागणोयंकफनाशनः ॥

अर्थ–पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, कालीमिरच, छोटीइलायची, अजमोद, इन्द्रजों, पाढ, रेणुका, जीरा, भारंगी, बकायनके फल, हींग, कुटकी, सरसों, वायविडंग, अतीस और मूर्वा यह औषधोंका गण कफनाशक है अतएव कफज्वरपर इसका काढा देवे ॥

पंचकोलं ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचव्यचित्रकनागरम् ।

पंचकोलमिदंप्रोक्तंशोधनंकफनाशनम् ॥

अर्थ-पीपर, पीपरामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ यह पंचकोल शोधन तथा कफनाशक है ॥

पटोलादिकाढा।

पटोलत्रिफलातिक्तासठीवासामृताभवः।
क्काथोमधुयुतःपीतोहन्यात्कफकृतंज्वरम् ॥

अर्थ-पटोलपत्र, त्रिफला, कुटकी, कचूर, अडूसा और गिलोय इनका क्काथ सहतके साथ पीवे तो कफज्वर दूर हो ॥

बीजपूरादिकाढा।

बीजपूरशिवापथ्यानागरग्रंथिकैःशृतम्।
सक्षारंपाचनंश्लेष्मज्वरेद्वादशवासरे ॥

अर्थ-बिजोरेकी जड़, छोटीहरड, सोंठ और पीपरामूल इन औषधोंका काढा कर उसमें जवाखार मिलाय बारहवेंदिन कफज्वर पर पाचन देवेतो कफज्वर दूर होय ॥

भूनिंबादिकाढा।

भूनिंबनिंबपिप्पल्यःसठीशुंठीशतावरी।
गुडूचीबृहतीचेतिक्काथोहन्यात्कफज्वरम् ॥

अर्थ-चिरायता, नीमकी छाल, पीपल, कचूर, सोंठ, शतावर, गिलोय और कटेरी इनका काढा कफज्वरको दूर करे ॥

कटुक्यादिकाढा।

कटुकीचित्रकंनिंबंहरिद्रातिविषंवचा।
सप्तपर्ण्यमृतानिंबस्नुह्यर्कैःसाधितंजलम् ॥
पेयंमाक्षिकसंयुक्तंबलासज्वरशांतये ॥

अर्थ-कुटकी, चीतेकीछाल, नीमकीछाल, हलदी, अतीस, वच, सतोनाकी छाल, गिलोय, चिरायता, थूहर और आक इनके काढेमें शहत मिला कर पीवेतो कफज्वर दूर हो ॥

त्रिकंटकादिकाढा ।

त्रिकंटकबलाव्याघ्रीगुडनागरसाधितम् ।
वर्चोमूत्रविबंधघ्नंकफज्वरहरंपयः ॥

अर्थ-गोखरू, गंगेरन, कटेरी, गुड और सोंठ इनका काढा मलमूत्रके रुकनेको और कफज्वरको दूर करे, परंतु इसकाढेमें औषधोंसे अठ गुना दूध और दूधसे चौगुना पानी डालके ओंटावे ॥

कुष्ठादिकाढा ।

कुष्ठमिंद्रयवंमूर्वापटोलेनापिसाधितम् ।
पिबेन्मरीचसंयुक्तसक्षौद्रकफजेज्वरे ॥

अर्थ-कूठ, इन्द्रजों, मूर्वा, पटोलपत्र इनका काढा शहत और काली मिरच डालके पीवे तो कफज्वर दूर हो ॥

त्रिफलादिकाढा ।

त्रिफलापटोलवासाछिन्नरुवारोहिणविचाशुंठी ।
मधुनाश्लेष्मसमुत्थदशमूलीवासकस्यचक्काथः ॥

अर्थ-हरड, बहेडा, आमला, पटोलपत्र, अडूसा, गिलोय, कुटकी, वच और सोंठ इनका अथवा दशमूल और अडूसेका काढा सहतके साथ कफज्वरपर देवे ॥

सप्तच्छदादिकाढा ।

सप्तच्छदगुडूचीचनिंबस्फूर्जकमेवच ।
क्काथंकृत्वापिबेत्तोयंसक्षौद्रंकफजेज्वरे ॥

अर्थ-सतोना, गिलोय, नींबकीछाल और स्फूर्जक इनका काढा शहतके साथ पीवे तो कफज्वर दूर होय ॥

आमलक्यादिकाढा ।

आमलक्यभयाकृष्णाचित्रकश्चेत्ययंगणः ।
सर्वज्वरकफातंकेभेदीदीपनपाचनः ॥

अर्थ–आमले, हरडकी छाल, पीपल और चित्रक यह औषधोंका गण सर्व ज्वर और कफके रोगोंको दीपन और पाचन कर्त्ता है ॥

तिक्तादिकाढा ।

तिक्तानिंबविषाव्योषशक्राह्वाभिःसृतंजलम् ।
पिबेत्कफज्वरंहंतिहिक्काकाससमन्वितम् ॥

अर्थ–कुटकी, नीमकी छाल, अतीस, त्रिकुटा, इन्द्रजों और नेत्रवाला इनका काढा हिचकी और खांसी युक्त कफज्वरको दूर करे ॥

मुस्तादिकाढा ।

मुस्तंमधुकबीजानित्रिफलाकटुरोहिणी ।
परूषकाणिचक्काथःकफज्वरविनाशनः ॥

अर्थ–नारगमोथा, महुआकेबीज, त्रिफाला, कुटकी और फालसे इनका काढा कफज्वरको दूर करे ॥

चपलादिकाढा ।

चपलाचपलापदनागरिकाचवकानलसंजनितंसलिलम् ।
कसनेश्वसनेह्रदयोल्लसनेकफजूर्तिगदेप्रापिबेच्चमुदे ॥

अर्थ–पीपल, गजपीपल, सोंठ, चव्य, चीतेकी छाल इनका काढा श्वास, खांसी, हल्लास इत्यादि रोगयुक्त कफज्वर दूर हो ॥

पिचुमंदादिकाढा ।

पिचुमंदमहौषधान्विताबृहतीपौष्करातिक्तकंसठी ।
वृषकट्फलकंकणावरीकथितंवारिकफज्वरंजयेत् ॥

अर्थ–नीमकीछाल, सोंठ, कटेरीकी जड, पोहकरमूल, चिरायता, कचूर, अडूसा, कायफर, पीपल और शतावर इनका काढा कफज्वरको दूर करे॥

वासादिकाढा ।

वासाविशालादशमूलगौरीमहौषधंपुष्करभांगियुक्ता ।
एषांकषायोविनिहंतिकासंकफज्वरंशूलनिवर्त्तनंच ॥

अर्थ–अडूसा, इन्द्रायणकागूदा, दशमूल, तुलसी, सोंठ, पोहकरमूल और भारंगी इनका काढा कास और कफज्वर तथा शूल इनका नाश करे ॥

कंटकार्यादिकाढा ।

कंटकार्यमृतादारुवृषविश्वासमाश्रितः ।
क्वाथःकणारजोयुक्तःसद्यःश्लेष्मज्वरापहः ॥

अर्थ-कटेरी, लिगोय, देवदारु, अडूसा, सोंठ इनका काढा पीपलका चूर्ण डालकर पीवे तो तत्काल कफज्वर दूर हो ॥

कणादिकाढा ।

कणाविश्वामृतादारुकिरातैरंडमूलकः ।
निंबएषांकृतःक्वाथःपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥

अर्थ-पीपल, सोंठ, गिलोय, देवदारु, चिरायता अंडकी जड और नीमकी छाल इनका काढा पित्त कफज्वरको दूरकरे ॥

मुस्तादिकाढा ।

मुस्तादुरालभाशुंठीक्वाथएषांसमांशतः ।
हंतिश्लेष्मज्वरंतीव्रनिपीतःपथ्यभोजने ॥

अर्थ-नागरमोथा, धमासा, बराबर ले काढाकरके पीवे और पथ्यसे रहे तो तीव्र कफज्वर दूर हो ॥

वातपित्तज्वरलक्षण ।

तृष्णामूर्च्छाभ्रमोदाहःस्वप्ननाशःशिरोरुजः ।
कंठास्यशोषोवमथूरोमहर्षोरुचिस्तमः ॥
पर्वभेदश्चजृंभाचवातपित्तज्वराकृति ॥

अर्थ-प्यास, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, निद्रानाश, मस्तकपीडा, कंठ, मुखका सूखना, वमन, रोमांच, अरुचि, अंधकारदर्शन, संधियोंमें पीडा और जँभाई ये वातपित्तज्वरके लक्षण हैं ॥

नीलोत्पलादिहिम ।

नीलोत्पलंबलाद्राक्षामधुकंमधुकंतथा । उशीरंपद्मकंचैवकाश्मरीचपरूषकम् ॥ एतच्छीतकषायश्चवातपित्तज्वरंहरेत् । विप्रलापभ्रमच्छर्दीमोहतृष्णानिवारणः ॥

अर्थ-नीलकमल, गंगेरन, दाख, मुलहटी, महुआ, खस, पद्माख,

कंभारी और फालसे इन औषधोंका पूर्वरीतिसे हिमकरके पीवे तो वातपित्तज्वर, प्रलाप, भ्रम, वमन, मोह और तृष्णा इनको दूर करे ॥

निदिग्धिकादिकाढा ।

निदिग्धिकामृताराह्नात्रायमाणामृतायुतः ।
मसूरविदलक्काथोवातपित्तज्वरंजयेत् ॥

अर्थ–कटेरी, गिलोय, रास्ना, त्रायमाण, हरड और मसूरकीदाल इनका काढा वात पित्तज्वरको दूर करे ॥

विश्वादिकाढा ।

विश्वामृताब्दभूनिंबपंचमूलसमन्वितः ।
कृतःकषायोहंत्याशुवातंपित्तभवंज्वरम् ॥

अर्थ–सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, चिरायता, पंचमूल इनका काढा तत्काल वातपित्तज्वरको दूर करे ॥

नीलोत्पलादिकाढा ।

नीलोत्पलमुशीराणिपद्मकामलकानिच ।काश्मीरमधुकद्राक्षामधूकानिपरूषकान् ॥ पिबेच्छीतंकषायंचवातपित्तज्वरापहम् । संप्रलापंचसंमोहंशमयेत्पैत्तिकंज्वरम् ॥

अर्थ–नीलकमल, खस, पद्माख, आमले, कंभारी, मुलहटी, दाख, महुआके फूल और फालसे इनके काढेको शीतलकर पीवे तो वातपित्तज्वर, प्रलाप, मोह और पित्तज्वर इनको शमन करे ॥

आरग्वधादिकाढा ।

आरग्वधफलंमुस्तंयष्टीमधुकमेवच । उशीरमभयाचैवहरिद्रादारुसाह्वया ॥ पटोलंपिचुमंदंचअमृताकटुरोहिणी । एषांपीतःकषायःस्याद्वातपित्तभवेज्वरे ॥

अर्थ–अमलतासका गूदा, नागरमोथा, मुलहटी, महुआके फूल, खस, हरड, हलदी, देवदारु, पटोलपत्र, नीमकी छाल, गिलोय और कुटकी इनका काढा वातपित्तज्वरको शांतकरे ॥

द्राक्षादिकाढा।

द्राक्षाकिराताममृतवासकासठीक्वाथंपिबेत्पित्तमरुज्वरंहरेत् ॥

अर्थ–दाख, चिरायता, गिलोय, अडूसा और कचूर इनका काढा पीवे तो वातपित्तज्वर दूर हो ॥

पंचमूलादिकाढा।

पंचमूल्यमृतामुस्ताविश्वाभूनिंबसाधितः।
कषायः शमयत्याशुवायुमायुभवंज्वरम् ॥

अर्थ–पंचमूल, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ और चिरायता इनका काढा वातपित्तज्वरको दूर करे ॥

मुद्गादियूष।

मुद्गामलकयूषस्तुवातपित्तज्वरेहितः।
महादाहेप्रदातव्योयूषश्चणकसंभवः ॥
दाडिमामलकमुद्गसंभवोयूषउक्तइहवातपैत्तिके ॥

अर्थ–मूग और आमलेका यूष वातपित्तज्वरमें हित है। अत्यंत दाहमें चनेका यूष देना चाहिये और अनारदाने, आमले तथा मूंगका यूष वातपित्तमें देना ॥

मुद्गादियोग।

कफपित्तहरामुद्गाकारवेल्लादयस्तथा। प्रायेणनचतेदेया-
वातपित्तोत्तरेज्वरे॥दत्तास्तुज्वरविष्टंभशूलोदावर्त्तकारिणः॥

अर्थ–वातपित्तज्वरपर मूंग तथा करेले इत्यादि न देवे, ये कफपित्त-हारक हैं इनके देनेसे ज्वर, मलावष्टंभ, शूल तथा उदावर्त होता है ॥

मधुकादिकषाय।

मधुकंसारिवाद्राक्षामधुकंचंदनोत्पलम्।
काश्मरीफलकंलोध्रंत्रिफलापद्मकेसरम् ॥
परूषकंमृणालंचक्षिपेत्संचूर्ण्यवारिणा। निशोषितंसित-
क्षौद्रलाजयुक्तंतुतत्पिबेत् ॥ वातपित्तज्वरंदाहंतृष्णांमू-
र्च्छारुचिभ्रमान्। शमयेद्रक्तपित्तंचजीमूतमिवमारुतः॥

अर्थ–मुलहटी, सारिवा, दाख, महुआके फूल, लालचंदन, कमलगट्टा, कंभारी, लोध, त्रिफला, कूठ, नागकेशर, फालसे और भसींडे कि, जिनको कमलकी जड कहते हैं इनका काढा खांड और शहद तथा खील मिलायकर देवे तो वातपित्तज्वर, दाह, तृषा, मूर्च्छा, अरुचि, भ्रम तथा रक्तपित्त इनको शमन करे इसमें दृष्टांत है कि जैसे बादलोंको पवन दूर करता है ॥

पंचभद्रकषाय ।

छिन्नोद्भवापर्पटवारिवाहभूनिंबशुंठीजनितःकषायः ।
समीरपित्तज्वरजर्जराणांकरोतिभद्रंखलुपंचभद्रः ॥

अर्थ–गिलोय, पित्तपापडा, नागरमोथा, चिरायता और सोंठ इनका काढा वात पित्तज्वरको नाश करे इस काथको पंचभद्र कहते हैं ॥

दुरालभादिकषाय ।

दुरालभामृताघनोजलंचरोहिणीरजो ।
ज्वरंचवातपित्तजंनिहंत्यसौकषायकः ॥

अर्थ–धमासा, गिलोय, नागरमोथा, नेत्रवाला, कुटकी और पित्तपापडा इनका काढा वातपित्तज्वरका नाश करता है ॥

भूनिंबादिकषाय ।

भूनिंबतिक्ताजलचंदनंचधानेयपथ्यादशमूलसंघाः ।
ह्रीबेरविश्वाकरमर्दकाचएषांशृतंपित्तमरुज्वरेष्टम् ॥

अर्थ–चिरायता, कुटकी, नेत्रवाला, लालचंदन, धनियां, हरड, दशमूल, खस, सोंठ और कमरख इनका काढा वातपित्तज्वर पर हितकारी है॥

त्रिफलादिकषाय ।

त्रिफलाशाल्मलीरास्नाराजवृक्षाढरूषकैः ।
शृतमंबुहरत्याशुवातापित्तभवंज्वरम् ॥

अर्थ–त्रिफला, सेमरका मूसला, रास्ना, अमलतासका गूदा और अडूसा इनका काढा वातपित्तज्वरका नाश करे ॥

मधुकादिफांट ।

मधुपुष्पंमधूकंचचंदनंसपरूषकम् । मणालंकमलंलोध्रं

कंभारीनागकेसरम् ॥ त्रिफलासारिवाद्राक्षालाजान्कोष्णे जलेक्षिपेत् । सितामधुयुतःपेयःफांटोवासोहिमोथवा ॥ वातपित्तज्वरंदाहंतृषांमूर्च्छारत्तिभ्रमान् । रक्तपित्तंमदं हन्यान्नात्रकार्याविचारणा ॥

अर्थ–महुआकेफूल, मुलहटी, लालचंदन फालसे, कमलकीजड, कमल गट्टा, लोध्र कंभारी, नागकेशर, त्रिफला, सरिवन, दाख और खील, इनका फांटकरके खांडसे अथवा शहदसे देवे तो वातपित्तज्वर, दाह, प्यास, अरुचि, भ्रम, रक्तपित्त और मद ये दूरहों अथवा पांच औषधोंका हिम करकेलेवे तो उक्तगुण करे ॥

द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षाकिरातकंधात्रीकर्पूरामृतवल्लरी ।
क्वाथएषांगुडयुतःपीतोद्वंद्वजरोगहृत ॥

अर्थ–दाख, चिरायता, आमले, कपूर और गिलोय, इनका काढा गुडमिलाके पीवे तो द्वंद्वज ज्वरका नाश करे ॥

व्याघ्यादिकाढा ।

व्याघ्रीभार्ङ्गीसिंहवक्त्राचरास्नादुस्पर्शैषाशाल्मलीराजवृक्षः।
तद्वज्ज्ञेयंत्रैफलंक्वाथएषांशस्तः कासेवातपित्तज्वरेच ॥

अर्थ–कटेरी, भारंगी, अडूसा, रास्ना, धमासा, सेमर, अमलतास और त्रिफला इनका काढा वातपित्तज्वरपर हितकारी है ॥

मुस्तादिकाढा ।

जलदधान्यकिरातगुडूचिकानियमनंकटुकाचपटोलिका ।
क्वथितमेभिरिदंतुजलंहरेत्पवनापित्तभवंज्वरमुन्नतम् ॥

अर्थ–नागरमोथा, धनियाँ, चिरायता, गिलोय, नीम, कुटकी और पटोलपत्र इनका काढा वातपित्तज्वरनाशक है ॥

बलादिकाढा ।

बलामृतैरंडजलाब्दपद्मकभार्गीकणोशीरयुतैः सचंदनैः ।
संक्वाथ्यतोयंकफपित्तजज्वरप्रणाशनंवह्निविवृद्धिकारकम् ॥

अर्थ–गंगेरन, गिलोय, अंडकीजड, नेत्रवाला, नागरमोथा, पद्माख, भारंगी, पीपर, खस और लालचंदन इनका काढा वातपित्तज्वरनाशक तथा अग्निवृद्धिकारक है ॥

रसायन ।

त्रिफलामृतलोहंचभृंगराजंचचूर्णीतम् । चूर्णमर्जुनपत्रस्य त्रिजातकाशिलाजतु ॥ त्र्यूषणंतुल्यतुल्यांशंसर्वेषांचसमासिता । क्षौद्रेणवटिकाकार्याकर्षमात्रंचभावयेत् ॥ वातपित्तज्वरंहंतिअनुपानंचकल्पयेत् ॥

अर्थ–त्रिफला, लोहभस्म, भांगरा, लोहवृक्षकेपत्र, त्रिजातक, शिलाजीत और त्रिकुटा इनका चूर्ण करके सब चूर्णके समान मिश्री मिलाय शहदसे १ तोलेकी गोली करे १ गोली अनुपानके साथ देवे तो वातपित्त ज्वरको दूर करे ॥

वातकफज्वरलक्षण ।

स्तैमित्यंपर्वणांभेदोनिद्रागौरवमेवच ।
शिरोग्रहःप्रतिश्यायःकासः स्वेदप्रवर्तनम् ॥
संतापोमध्यवेगश्चवातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥

अर्थ–स्तैमित्य नाम (गीले कपडेसे देहको ढकनेसे जैसा हो ऐसा मालुमहो) संधियोंमें फूटनी, निद्रा, देह भारी, मस्तक भारी, नाकसे पानी गिरे, खाँसी, पसीनोंका आना, शरीरमें दाह, ज्वरका मध्यवेग ये वातश्लेष्मज्वरके लक्षण हैं ॥

चिकित्सा ।

वातश्लेष्मज्वरेदेयमौषधंनवमेहनि ।

अर्थ–वातकफज्वरमें नवमदिन औषधी वैद्यको देनी चाहिये ॥

यूष ।

शुष्कमूलकयूषस्तुवातश्लेष्माधिकेहितः ॥

अर्थ–सूखीमूलीका यूष, वात कफ ज्वरमें हितकारी है ॥

पंचकोल ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचव्यचित्रकनागरैः । दीपनीयः

स्मृतोवर्गोवातश्लेष्मज्वरापहः ॥ कोलमात्रोपयोगित्वा-
त्पंचकोलमिदंस्मृतम् । तीक्ष्णोष्णंपाचनंश्रेष्ठंदीपनंक-
फवातनुत् ॥ गुल्मप्लीहोदरानाहशूलघ्नंपित्तकोपनम् ॥

अर्थ—पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ, यह वर्ग अग्नि-दीपक तथा वातकफज्वरनाशक है। ये सर्व औषधी पंचकोल (आठमासे) लीजाती हैं इसीसे इसको पंचकोल कहते हैं यह तीक्ष्ण, गरम, पाचन, दीपन, कफवात, गोला, प्लीह, उदर, अफारा और शूल इनको नाश करे तथा पित्तको कुपित करता है ॥

निंबादिकषाय।

निंबामृताविश्वदारुकट्फलंकटुकावचा।
कषायंपाययेदाशुवातश्लेष्मज्वरापहम् ॥
पर्वभेदशिरःशूलंकासारोचकपीडितम् ॥

अर्थ—नीमकी छाल, गिलोय, सोंठ, देवदारु, कायफल और वच इनका काढा पीनेसे संधिपीडा, मस्तकशूल, खांसी, अरुचि तथा वातकफज्वर इनका नाश करे ॥

किरातादिकषाय।

किराताविश्वामृतवल्लिसिंहिकाकणाकणामूलरसोनसिंदुकः।
कृतःकषायोविनिहंतिसत्वरंज्वरंसमीरात्सकफात्समुत्थितम् ॥

अर्थ—चिरायता, सोंठ, गिलोय, कटेरीकीजड, पीपल, पीपरामूल, लहसन, सह्मालू इनका काढा वातकफज्वर नाशक है ॥

बृहत्पिप्पल्यादिकाढा।

पिप्पल्यादिगणक्वाथंपिबेद्वातकफज्वरी।नातःपरंकिञ्चि-
दस्मिञ्ज्वरेभेषजमुत्तमम् ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलंचव्य-
चित्रकनागरम्। वचासातिविषाजाजिपाठावत्सकरेणु-
कम् ॥ किराततिक्तकोमूर्वासर्षपामरिचानिच। कट्फ-
लंपुष्करंभार्गीविडंगंकर्कटाह्वयम् ॥ अर्कमूलंबृहतीसिंही-
श्रेयसीसदुरालभा। दीपकश्चाजमोदश्चशुकनासासहिं-
गुका ॥ एषांक्वाथोनिपीतःस्याद्वातश्लेष्मज्वरापहः ॥

हंतिवातंतथाशीतंप्रस्वेदमतिवेपथुम् । प्रलापंचातितंद्रांचरोमहर्षोरुचिस्तथा ॥ महावातेपतंत्रेचशून्यत्वेसर्वगात्रजे । पिप्पल्यादिर्महाक्काथोज्वरेसर्वत्रपूजितः ॥

अर्थ–पिप्पल्यादिगणका काढा वातकफज्वरी रोगीको पिवावे,इस्से इसज्वरके ऊपर दूसरी उत्तम औषधी नहीं है पीपल, पीपरामूल,चव्य, चित्रक, सोंठ, वच, अतीस, जीरा,पाढ,कुडाकीछाल,रेणुकबीज,चिरायता, कुटकी, मूर्वा, सरसों, कालीमिरच,कायफर,पोहकरमूल, भारंगी,वायविडंग, काकडासिंगी, आककी जड,बडीकटेरी,रास्ना, धमासा,अजवायन, अजमोद, टिंटुककी छाल और हींग ये औषध समान भाग लेकर काढाकर पीवे तो वातकफज्वर,वाय, शीत, पसीने, कंप, प्रलाप, अत्यंतनिद्रा, रोमांच, अरुचि, महावात, अपतंत्रवात, सर्वदेहकी शून्यता और संपूर्ण ज्वर इनका नाश करे यह पिप्पल्यादि गण सर्व ज्वरपर प्रशस्त है ॥

सिंहिकादिकषाय ।

सिंहीयवानीछिन्नानांक्काथश्चपलयायुतः ।
कफवातज्वरश्वासशूलपीनसकासजित् ॥

अर्थ–करेटीकी जड, अजवायन और गिलोय इनका काढा पीपलका चूर्ण डालके पीवे, तो वात कफ ज्वर,श्वास, शूल, पीनस और खांसीको दूर करे ॥

कट्फलादिकषाय ।

कट्फलविश्ववचाघनपांशुधान्यशिवाजलशृंगिसुराह्वैः ।
भार्गीयुतैःक्कथनंकिलपेयंवातकफघ्नगणोननुचैषाम् ॥

अर्थ–कायफर, सोंठ,वच,नागरमोथा, पित्तपापडा, धनियाँ,हरड,नेत्रवाला,काकाडासिंगी,देवदारु और भारंगी इनका काढा वात कफनाशकहै।

दशमूलीकाढा ।

दशमूलीरसःपेयःकणाढ्यःकफवातजे ।
ज्वरेविपाकेतंद्रायांपार्श्वरुक्श्वासकासके ॥

अर्थ-दशमूलके रसमें पीपरका चूर्ण मिलाय पीवे तो ज्वर, अजीर्ण, तंद्रा, पार्श्वशूल, श्वास और खाँसी इनका नाशकरे ॥

पिप्पल्यादिकाढा ।

पिप्पलीभिः शृतंतोयमनभिष्यंदिदीपनम् ।
वातश्लेष्मज्वरंहंतिसेवितंप्लीहनाशनम् ॥

अर्थ-पीपलका काढा सेवन करनेसे कफको दूर करे अग्निदीपक और वातकफज्वर तथा प्लीहा इनका नाश करनेवाला है ॥

दार्वादिकाढा ।

दारुपर्पटभांर्ग्यब्दवचाधान्यककट्फलैः । साभयाविश्वपूतीकैःक्काथोहिंगुमधूत्कटः ॥ कफवातज्वरेपीतोहिक्काशोषगलग्रहान् । श्वासकासप्रमेहांश्चहन्यात्तरुमिवाशनिः ॥

अर्थ-देवदारु, पित्तपापडा, भारंगी, नागरमोथा, वच, धनियाँ, कायफर, हरड, सोंठ तथा कंजा इनका काढा हींग तथा शहद मिलायके देवे तो कफवातज्वर, हिचकी, शोष, गलरोग, श्वास, खांसी और प्रमेह इनका नाशकरे जैसे वृक्षको वज्र नाश करता है ॥

पटोलादिकाढा ।

तृष्णान्वितेवातकफार्तिशूलेसश्वासकासारुचिविट्विबंधे।
हितंजलंदीपनपाचनंचपटोलशुंठीयवपिप्पलीनाम् ॥

अर्थ-प्यास, वात, कफरोग, शूल, श्वास, खांसी अरुचि तथा बद्धकोष्ठ इनपर पटोलपत्र, सोंठ, इन्द्रजों और पीपल इनका काढा दीपन पाचन और हितकारी है ॥

क्षुद्रादिकाढा ।

क्षुद्रामृतानागरपुष्कराह्वयैःकृतःकषायःकफमारुतोत्तरे ।
सश्वासकासारुचिपार्श्वशूलेज्वरेत्रिदोषप्रभवेपिशस्ते ॥

अर्थ-कटेरी, गिलोय, सोंठ और पोहकरमूल इनका काढा कफवातज्वर, श्वास, खांसी, अरुचि, पार्श्वशूल और त्रिदोषजनित ज्वर इनपर हितकारी है॥

आरग्वधादिकाढा ।

आरग्वधकणामूलंमुस्तातिक्ताभयाकृतः ।
क्वाथःशमयतिक्षिप्रंज्वरंवातकफोद्भवम् ॥

अर्थ-अमलतासका गूदा, पीपलामूल, नागरमोथा, कुटकी और हरड इनका काढा तत्काल वातकफज्वरको शमन करे ॥

मुस्तादिकाढा ।

मुस्तापर्पटकंशुंठीगुडूचीसदुरालभा ।
कफवातारुचिच्छर्दिदाहशोषज्वरापहः ॥

अर्थ-नागरमोथा, पित्तपापडा, सोंठ, गिलोय और धमासा इनका काढा कफवात, अरुचि, वमन, दाह, शोष और ज्वर इनका नाश करे ॥

भूनिंबादिकाढा ।

भूनिंबमुस्ताकटुकागुडूचीदुरालभापर्पटनागराख्यः ।
क्वाथोनिलश्लेष्महरोवदंतिसूर्योयथानाशयतेंधकारम् ॥

अर्थ-चिरायता, नागरमोथा, कुटकी, गिलोय, धमासा, पित्तपापडा और सोंठ इनका काढा वातकफको हरण करे जैसे सूर्य अंधकारको ॥

चातुर्भद्रादिकाढा ।

किराततिक्तकंमुस्तंगुडूचीविश्वभेषजम् ।
चातुर्भद्रकमित्याहुर्वातश्लेष्मज्वरापहम् ॥

अर्थ-कडुआचिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ यह चातुर्भद्रकाढा वातकफज्वरको दूर करे ॥

स्वेदशोषकचूर्ण ।

स्वेदोद्गमेभ्रष्टकुलित्थचूर्णनिर्यातनंशस्तमितिब्रुवंति ।
जीर्णंशकृद्गोलवणस्यभाजनंसंचूर्णितंस्वेदहरंसुधूलनात् ॥

अर्थ-पसीनेआनेपर कुलथीको भूनकर पीसे, इस चूर्णको देहमें मालिश करे अथवा गौका पुराना गोबर और नोनके पात्रको पीसके मालिश करे तो पसीना आना दूर होवे ॥

मरिचाद्युद्धूलन ।

मरिचंपिप्पलीशुंठीपथ्यालोध्रश्चपुष्करम् । भूनिंबःकटुकाकुष्ठंकचूरोलिंगिकासठी॥एतानिसमभागानिसूक्ष्मचूर्णानिकारयेत् । एतदुद्धूलनंश्रेष्ठंस्त्रोतेवस्वेदनिर्गमे ॥

अर्थ-काली मिरच, पीपल, सोंठ, हरड़, लोध, पोहकरमूल, कडुआ चिरायता, कूट, कचूर, शिवलिंगी और कपूरकचरी ये औषध समान भागले कपड छान चूर्णकरके देहमें लगावे तो पसीनेकी झडीबी लगरही हो उसको बंद करे ॥

भूनिंबाद्युद्धूलन ।

भूनिंबकारवीतिक्तावचाकट्फलजंरजः ।
एषामुद्धूलनंश्रेष्ठंसततंस्वेदसंप्लुवे ॥

अर्थ-चिरायता, अजवायन, कुटकी, वच और कायफल इनका चूर्ण अंगमें लगावे तो निरंतर आनेवाले पसीनोंको उत्तमहै ॥

सूतशेखररस ।

सूतकंटंकणंभ्रष्टंगंधंशुद्धंसमंसमम् । द्विगुणंसूतकाद्देयंजैपालंतुषवर्जितम्॥ सैंधवंमरिचंचिंचात्वक्क्षारःशर्करापिच ॥ प्रत्येकंसूततुल्यंस्याज्जंबीरैर्मर्दयेद्दिनम् ॥सूर्यशेखरनामायंरसोगुंजाद्वयोन्मितः । भक्षितस्तप्ततोयेनवातश्लेष्मज्वरापहः ॥

अर्थ-शुद्धपारा, भुनासुहागा, शुद्धगंधक, सैंधानिमक, मिरच, इमलीका खार और मिश्री प्रत्येक एक एक टके भर शुद्ध जमालगोटा २ टके भर इन सबको कूट पीस नींबूके रसमें १ दिन खरलकरे यह सूर्यशेखर नामक रस दो रत्ती गरम जलसे लेय तो वातकफज्वर दूर हो ॥

कफपित्तज्वरलक्षण ।

लिप्ततिक्तास्यतातंद्रामोहःकासोऽरुचिस्तृषा ।
तथास्तंभश्चसंस्वेदःकफपित्तप्रवर्तनम् ॥
मुहुर्दाहोमुहुःशीतंपित्तश्लेष्मज्वराकृतिः ॥

अर्थ-मुखकफसे लिप्तहो तथा पित्तके जोरसे मुखमें कडुआ, तंद्रा, मूर्च्छा, खाँसी, अरुचि, प्यास, स्तंभ (देहका जकडना) पसीना, कफ पित्तका गिरना, वारंवार दाहहो और वारंवार शीतका लगना ये कफपित्तज्वरके लक्षण हैं ॥

कफपित्तज्वरप्रक्रिया ।

पित्तश्लेष्मज्वरेदेयमौषधंदशमेहनि ॥

अर्थ-पित्त ज्वरमें औषधी दशमें दिन देनी चाहिये ॥

कंटकार्यादिकाढा ।

कंटकार्यमृताभार्ङ्गीविश्वेंद्रयववासकम् । भूनिंबचंदनंमुस्तंपटोलंकटुरोहिणी ॥ विपाच्यपाययेत्क्वाथंपित्तश्लेष्मज्वरापहम्॥दाहतृष्णारुचिच्छर्दिकासशूलनिवारणम् ॥

अर्थ-कटेरी, गिलोय, भारंगी, सोंठ, इन्द्रजों, अडूसा, चिरायता, लालचंदन, मोथा, पटोलपत्र और कुटकी इनका काढा पित्तकफज्वर, दाह, प्यास, अरुचि, वमन, खांसी और शूल इनको दूर करे ॥

नागरादिकाढा ।

नागरोशीरबिल्वाब्दधान्यमोचरसांबुभिः ।
कृतःक्वाथोभवेद्ग्राहीपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥

अर्थ-सोंठ, खस, वेलगिरी, नागरमोथा, धनियाँ, मोचरस और नेत्रवाला इनका काढा ग्राही और पित्त कफज्वरका नाशक है ॥

शृंगवेरादिकाढा ।

कषायःपरिपीतस्तुशृंगवेरपटोलयोः ।
पित्तश्लेष्मज्वरवमीदाहकंडूविसर्पनुत् ॥

अर्थ-अदरख और पटोलपत्रका काढा करके पीवे तो पित्तकफज्वर, वमन, दाह, खुजली और विसर्प ये दूर हो ॥

पटोलादियूष ।

पटोलधान्ययोर्यूषःपित्तश्लेष्मज्वरापहः ।
दीपनःकफविच्छेदीपित्तवातानुलोमनः ॥

अर्थ-पटोलपत्र और धनियेका यूष पित्तकफज्वर को दूरकरके दीपन और कफको छुटानेवाला तथा पित्तवातको अनुलोमकरता है ॥

पटोलादिकाढा ।

पटोलंपिचुमंदश्चत्रिफलामधुकंबला ।
साधितोयंकषायःस्यात्पित्तश्लेष्मभवेज्वरे ॥

अर्थ-पटोलपत्र, नीमकी छाल, त्रिफला, मुलहटी और गंगेरन इनका काढा पीनेंसे पित्तकफज्वर दूर हो ॥

तिक्तादिकाढा ।

तिक्तोशीरबलाधान्यपर्पटांभोधरैःकृतः ।
क्काथःपुनःसमायातंज्वरंशीघ्रंनिवारयेत् ॥

अर्थ-कुटकी, खस, गंगेरन, धनियां, पित्तपापडा और नागरमोथा इनका काढा उलटकर आनेवाले ज्वरको तत्काल दूर करे ॥

लोहितचंदनादिकाढा ।

लोहितचंदनपद्मकधान्यछिन्नरुहापिचुमंदकषायः ।
पित्तकफज्वरदाहपिपासावांतिविनाशहुताशकरःस्यात् ॥

अर्थ-लालचंदन, पद्माख, धनियाँ, गिलोय और नीमकीछाल इनका काढा पित्त,कफज्वर,दाह,प्यास,वमन इनको दूर करे और अग्निको बढावे॥

जीरकादिकाढा ।

जीरकंकारवेल्यंबुशीतपूर्वज्वरेहितम् ।
पाक्यंशीतकषायंचमुस्तापर्पटकंभवेत् ॥

अर्थ-जीरा और करेलेका रस देनेसे शीतज्वरका नाश करे एवं नागर मोथा और पित्तपापडा इनका काढा शीतल देनेसे पाचक है ॥

यवादिकाढा ।

यवःपर्पटकंधान्यंपटोलारिष्टसाधितम् ।
पिबेत्सशर्करक्षौद्रंपित्तश्लेष्मज्वरापहम् ॥

अर्थ-जो पित्तपापडा, धनियाँ, पटोलपत्र, नीमकीछाल इनका काढा शहद और मिश्री मिलायकर पीवे तो पित्त कफज्वरको दूरकरे ॥

नागरादिकाढा ।

नागरेंद्रयवंमुस्तंचंदनंकटुरोहिणी । पिप्पलीचूर्णसं-

युक्तंकषायंतुपिबेन्नरः । भ्रममूर्च्छारुचिछर्दिपित्तश्ले-
ष्मज्वरापहम् ॥

अर्थ-सोंठ, इन्द्रजों, नागरमोथा, लालचंदन और कुटकी इनका काढा कर उसमें पीपलका चूर्ण डाल पीवे तो भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, पित्तकफज्वर इनका नाश करे ॥

द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षाशम्पाककटुकामुस्तंग्रंथिकधान्यकम् ।
पक्वंहन्यादुदावर्तंशूलंपित्तकफज्वरम् ॥

अर्थ-दाख,अमलतासका गूदा,कुटकी,मोथा, पीपरामूल और धनियाँ इनका काढा देवे तो उदावर्त्त, शूल और पित्तकफज्वर ये दूर हों ॥

पटोलादिकाढा ।

पटोलयवधान्याकमुस्तामलकचंदनम् ।
श्लैष्मिकश्लेष्मपित्तोत्थज्वरतृट्छर्दिदाहनुत् ॥

अर्थ-पटोलपत्र, इन्द्रजों, धनियाँ, नागरमोथा, आमले और लाल-चंदन इनका काढा कफपित्तज्वर, कफज्वर, प्यास, वमन और दाह इनको नाश करे ॥

यवादिकाढा ।

यवपद्मकधान्याकंद्वेहरिद्रेसचंदने । गुडूचीदेवकाष्ठंच
तेजोह्वासदुरालभा ॥ श्रपयित्वापिबेत्क्वाथंकफपित्तज्व-
रापहम् । पिपासाछर्दिदाहघ्नंवृष्यंवह्निविदीपनम् ॥

अर्थ-इन्द्राजों, पद्माख, धनियां, हलदी, दारुहलदी, रक्तचंदन, गिलोय, देवदारु, तेजबल और जवासा इनका काढा कफपित्तज्वर तथा प्यास, वमन, दाह इनको नाश करे और अग्निको दीपन करे ॥

त्रायंत्यादिकाढा ।

त्रायंतीमेघकटुकारामसेनापटोलिका ।
ज्वरेपैत्तकफेह्येतद्देयंदीपनपाचनम् ॥

अर्थ-त्रायमाण, माथा कुटकी, सपेदकटेली और पटोलपत्र इनका काढा पित्तकफज्वरपर दीपन और पाचनार्थ देवे ॥

किरमालादिकाढा ।

किरमालेवचाहिंगुबालकंधान्यकंनिशा । मुस्तायष्टिस्त-
थाभांर्गीपर्पटः समभागतः ॥ अष्टावशेषितः क्काथोमधु-
नाप्रतिपाकतः।श्लेष्मपित्तज्वरंहंतिरोगिणःपथ्यभोजिनः॥

अर्थ-अमलतासका गूदा, वच, हींग, नेत्रवाला, धनियां, हलदी, नागरमोथा, मुलहटी, भारंगी और पित्तपापडा ये समभागलेके अष्टावशेष काढाकरे उसमें शहद डालके पीवे और पथ्यसे रहे तो कफपित्तज्वरका नाश हो ॥

पटोलादिकाढा ।

पटोलमुस्ताजलरक्तचंदनंतिक्तारजोविश्वमुशीरवासकम् ।
संक्काथ्यतोयंकफपित्तजंज्वरंनिहंतिचारात्त्वरितंतृषायुतम्॥

अर्थ-पटोलपत्र, नागरमोथा, नेत्रवाला, रक्तचंदन, कुटकी, पित्तपापडा, सोंठ, खस और अडूसा इनका काढा कफपित्तज्वर और तृषा इनका नाश करे

गुडूच्यादिकाढा ।

गुडूचीनिंबधान्याकपद्मकंचंदनान्वितम् ।
तृष्णादाहरुचिच्छर्दिसर्वज्वरहरोगणः ॥

अर्थ-गिलोय, नीमकी छाल, धनियां, पद्माख, रक्तचंदन इनका काढा तृषा, दाह, अरुचि, वमन और संपूर्ण ज्वरोंको नाश करे ॥

शुंठ्यादिकाढा ।

सनागरंपर्पटकंपिबेद्वासदुरालभम् ।
किराततिक्तकंमुस्तंगुडूचींसदुरालभाम् ॥

अर्थ-सोंठ, पित्तपापडा अथवा धमासा इनका काढा अथवा चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और धमासा इनका काढा पित्तकफज्वरवालेको देवे॥

क्षुद्रादिकपंचतिक्तकाढा ।

क्षुद्रामृताभ्यांसहनागरेणसपुष्करंचैवकिराततिक्तम् ।
पिबेत्कषायंभुविपंचतिक्तंविधिः समस्तज्वरमाशुहंति ॥

---

१ किरमानीअजवायन ।

अर्थ–कटेरी, गिलोय, सोंठ, पोहकरमूल और चिरायता इनका पंचतिक्तनामक काढा सर्वज्वरोंको तत्काल दूर करे ॥

भांग्र्यादिकाढा ।

भांर्गीपुष्करमूलंचमुस्तकंकंटकारिका । त्रिकंटकबृहत्यौचकर्णिनीनागरैःशृता॥गणोभांग्र्यादिकोनामपित्तश्लेष्मज्वरापहः।कासश्वासारुचिहरःपार्श्वशूलनिवारणः ॥

अर्थ–भारंगी, पोहकरमूल, नागरमोथा, कटेरी, गोखरू, बडीकटेरी, अमलतासका गूदा और सोंठ इन औषधोंका काढा पित्तकफज्वर, खांसी, श्वास, अरुचि और पसवाडोंका दरद इन रोगोंको दूर करे ॥

पटोलादिकाढा ।

पटोलंचंदनंमूर्वातिक्तापाठामृताकणाः ।
पित्तश्लेष्मारुचिच्छर्दिज्वरकंडूविषापहाः ॥

अर्थ–पटोलपत्र, लालचंदन, मूर्वा,कुटकी, पाढ, गिलोय और पीपल इनका काढा पित्त, कफ, अरुचि, वमन, ज्वर, खुजली और विष इनको नाशकरे ॥

त्रिफलादिकाढा ।

त्रिफलात्रायमाणाचमृद्वीकाकटुरोहिणी ।
पित्तश्लेष्मज्वरेह्येषकषायोह्यानुलोमिकः ॥

अर्थ–त्रिफला, त्रायमाण, दाख और कुटकी इनका काढा पित्तकफज्वरके दूर करनेको देवे ॥

वत्सकादिकाढा ।

वत्सकंपद्मकाष्ठंचनागरंचंदनामृते । पटोलंधान्यकंचैव मुस्तकंरक्तचंदनम् ॥ पाठांमूर्वामृतांशुंठीमुशीरंकटुरोहिणीम्।समभागशृतंतोयंसर्वज्वरहरंपिबेत् ॥ पित्तासृक्दाहशूलघ्नमम्लपित्तविनाशनम् ॥

अर्थ–कुडाकी छाल, पद्माख, सोंठ, रक्तचंदन, गिलोय, पटोलपत्र, धनियाँ, नागरमोथा, सपेदचंदन, पाढ, मूर्वा, खस और कुटकी ये समा-

न भागलेके काढा करे यह सर्वज्वर, रक्तपित्त, दाह, शूल और अम्लपित्तको दूर करे॥

अमृतादिकाढा।

अमृतारिष्टकटुकामुस्तेंद्रयवनागरैः। पटोलंचंदनाभ्यां चापिप्पलीचूर्णयुक्कृतम्॥ अमृताष्टकमेतच्चपित्तश्लेष्म ज्वरापहम्। छर्द्यरोचकहृल्लासदाहतृष्णानिवारणम्॥

अर्थ-गिलोय, नीमकी छाल, कुटकी, नागरमोथा, सोंठ, पटोलपत्र और दोनों चंदन इनके काढेमें पीपलकाचूर्ण मिलायके पीवे तो यह अमृताष्टक पित्तकफज्वर, वमन, अरुचि, हृल्लास, दाह और प्यासको दूर करे॥

वासास्वरस।

सपत्रपुष्पवासायारसःक्षौद्रसितायुतः।
कफपित्तज्वरंहंतिसास्रपित्तंसकामलम्॥

अर्थ-पत्ते और फूल सह अडूसेका रस लेवे उसमें मिश्री और शहद मिलाय पीवे तो कफपित्तज्वर, रक्तपित्त और कामला दूर हो॥

कटुकीचूर्ण।

सशर्करामक्षमात्रांकटुकींचोष्णवारिणा।
पीत्वाज्वरंजयेज्जंतुःपित्तश्लेष्मसमुद्भवम्॥

अर्थ-कुटकीका चूर्ण एक तोला ले उसमें चार मासे मिश्री मिलाय गरम जलसे लेवे तो पित्तकफज्वर दूर हो॥

लाजमंड।

लाजैर्वातंडुलैर्भ्रष्टैर्लाजमंडःप्रकीर्तितः।
श्लेष्मपित्तहरोग्राहीपिपासाज्वरजिन्मतः॥

अर्थ-खीलोंका अथवा भुने चावलोंका मांड निकालकर देवे यह कफ, पित्त, प्यास, ज्वर इनको, दूर करे और ग्राही है॥

वाट्यमंड।

सुकंडितैस्तथाभ्रष्टैर्वाट्यमंडोयवैर्भवेत्।
कफपित्तहरःकंठ्योरक्तपित्तप्रसादनः॥

अर्थ-जवोंको अच्छीरीतिसे वीन छरके मिंगी निकालले फिर चौदह गुनेजलमें पक्करे जब जों सीज जाय तब उस पानीको छानके प्यावे इसको वाट्यमंड कहते हैं यह कफपित्तको दूरकरे कंठको हितकारी और रक्तपित्तको दूर करे ॥

मुस्तादिनिर्यूह ।

मुस्तापर्पटकैरातानिर्यूहेनप्रसाधितः ।
कफपित्तज्वरहरोयूषोधान्यपटोलयोः ॥

अर्थ-नागरमोथा, पित्तपापडा और चिरायता इनका निर्यूह अथवा धनियाँ और पित्तपापडा इनका यूष कफपित्तज्वरका नाश करे ॥

निंबादियूष ।

निंबकुलकयूषस्तुहितः पित्तकफात्मके ॥

अर्थ-नीमकी छाल और पटोलपत्र इनका यूष पित्तकफका नाश करताहै॥

चंद्रशेखररस ।

शुद्धंसूतंसमंगंधंमरिचंटंकणंतथा । चतुस्तुल्याशिला योज्यामत्स्यपित्तेनभावयेत् ॥ त्रिदिनंभावयेत्तेनरसोयं चंद्रशेखरः । द्विगुंजमार्द्रकद्रावैर्देयंशीतोदकंपुनः ॥ तक्रौदनंचवृंताकंपथ्यंतत्रनिवेदयेत् । त्रिदिनाच्छ्लेष्म पित्तोत्थमत्युष्णंनाशयेज्ज्वरम् ॥

अर्थ-शुद्धपारा, शुद्धगंधक, कालीमिरच, सुहागा तथा इन चारोंके बरोबर मनसिल ले सबको एकत्रकर मछलीके पित्तेसे तीनदिन खरल करे तो यह चंद्रशेखर रस बनकर तयारहो, इसको २ रत्ती अदरखके रससे देवे और ऊपर शीतल जलपीवे तथा दही भात और बैंगन ये पथ्यसे देतो तीनदिनमें कफपित्तज्वर नाश हो ॥

सन्निपातज्वरलक्षण ॥

क्षणेदाहःक्षणेशीतमस्थिसंधिशिरोरुजः । सस्रावेकलुषे रक्तेनिर्भुग्नेचापिलोचने ॥ सस्वनौसरुजौकर्णौकंठःशूकै रिवावृतः । तंद्रामोहःप्रलापश्चकासःश्वासोरुचिर्भ्रमः ॥ परिदग्धाखरस्पर्शाजिह्वास्रस्तांगतापरम् । ष्ठीवनं

रक्तपित्तस्यकफेनोन्मिश्रितस्यच ॥ शिरसोलोड
नंतृष्णानिद्रानाशोहृदिव्यथा । स्वेदमूत्रपुरीषाणांचिरा
द्दर्शनमल्पशः॥ कृशत्वंनातिगात्राणांसततंकंठकूजनम्।
कोष्ठानांश्यावरक्तानांमंडलानांचदर्शनम् ॥ मूकत्वंस्रो
तसांपाकोगुरुत्वमुदरस्यच । चिरात्पाकस्तुदोषाणां
संनिपातज्वराकृतिः ॥

अर्थ–अकस्मात् क्षणमें दाह, क्षणभरमें सीत लगे,हाड, संधि, मस्तक इनमें शूल,अश्रुपातयुक्त काले और लाल तथा फटेसे नेत्र होजावें (अथवा टेढे नेत्र हो ये जेज्जटका मत है) कानोंमें शब्द और पीडाहो, कंठमें कांटे पडजाय; तंद्रा, बेहोशी हो, अनर्थ बोले, खांसी,श्वास,अरुचि, भ्रम ये हो जीभ परिदग्धवत् (काली) और खर्दरी गो जीभके समान तथा शिथिल (लठर)हो पित्त और रुधिर मिला कफ थूके,शिरको इधर उधर पटके,तृषा बहुत लगे, निद्राका नाशहो, हृदयमें पीडा, पसीना, मूत्र, मल इनका बहुतकालमें थोडा उतरना,दोषोंके पूर्ण होनेसे देहका कृश न होना, कंठमें कफका निरंतर बोलना, रुधिरसे काले, लालकोठ[1] और चकत्तोंका होना शब्द बहुत मन्द निकले, कान, नाक, मुख आदि छिद्रोंका पकना, पेटका भारी होना, वात, पित्त, कफ इनका देरमें पाकहो (उदरस्य च) इस पदमें जो चकार है यासे वाग्भटने जो लिखेहैं कौन शीतका लगना, दिनमें घोर निद्राका आना,नित्यरात्रिमें जागना अथवा निद्रा कभी आवेही नहीं, पसीना बहुत आवे और नहीं आवे, कभी गानकरे, कभी नाचे, हँसे, रोवे और चेष्टा पलटजाना इत्यादि जानने ये सन्निपातज्वरके लक्षण जानने सुश्रुत वाग्भटके मतसे सन्निपात एकही प्रकारका है, परंतु और आचार्यनके मतसे उल्बणादि भेद करके ५२ प्रकारका है ॥

धातुपाकलक्षण ।

निद्राबलौजोरुचिवीर्यनाशो हृद्वेदनागौरवतालपचेष्टा।
विष्टंभतायस्यकिलारातिःस्यात्सधातुपाकीमुनिभिःप्रदिष्टः॥

अर्थ–निद्रा, बल, तेज, रुचि, वीर्य इनका नाश, हृदयमें पीडा, देह भारी,हीनचेष्टा अफरा मनका न लगना ये लक्षण जिसके हों उसको

१ कोठके लक्षण भालुकिने कहेहैं यथा "वरटीदंशसंकाशःकंडूमान् लोहितोऽस्रकफपित्तवान् क्षणिकोत्पत्तिविनाशःकोढ इत्यभिधीयते सद्भिः" इति ।

धातुपाकी मुनीश्वरोंने कहाहै (धातुपाक) कहिये उत्तरोत्तर रोगकी वृद्धि और बलकी हानि होकर शुक्रादि धातुसहित मूत्रादिकोंका जो पाक होय उसे (धातुपाक) कहतेहैं ॥

दोषपाकलक्षण ।

दोषप्रकृतिवैकृत्यंलघुताज्वरदेहयोः ।
इन्द्रियाणांचवैमल्यंदोषाणांपाकलक्षणम् ॥

अर्थ-दोषोंका स्वभाव पलटजाय, ज्वरका हलका होना, देह हलकी हो, इन्द्रियोंका निर्मल होना ये (मलपाक) के लक्षण जानने (धातुपाक) और (मलपाक) होना केवल ईश्वरपर है इसमें दूसरा कोई हेतु नहींहै ॥

सन्निपातज्वरकेविशेषलक्षण ।

संनिपातज्वरस्यांतेकर्णमूलेसुदारुणः । शोथःसंजायतेतेनकश्चिदेवप्रमुच्यते ॥ ज्वरस्यपूर्वेज्वरमध्यतोवा ज्वरांततोवाश्रुतिमूलशोथः । क्रमादसाध्यः खलुकष्टसाध्यः सुखेनसाध्योमुनिभिः प्रदिष्टः ॥

अर्थ-संनिपातज्वर शांति होनेके पीछे कानकी जडमें दारुण सूजन पैदा होती है उस सूजनसे कोई रोगी बचे है प्रायः यह मारही डाले है ॥ यदि यह सूजन ज्वरके पहिले होवे तो असाध्यहै ज्वरके मध्यमें होय तो कष्टसाध्य है और ज्वरके अंतमें होय तो सुखसाध्य है ऐसे मुनीश्वरोंने कहा है ॥

साध्यासाध्यलक्षण ।

दोषेविवृद्धेनष्टेऽग्नौसर्वसम्पूर्णलक्षणः ।
सन्निपातज्वरोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥

अर्थ-जिसमें दोष (वात पित्त कफ) वृद्धि होकर अर्थात् सम्पूर्ण लक्षण होकर मिलतेहों और अग्नि शांति होगई हो वो सन्निपातज्वर असाध्य है और इससे विपरीत अर्थात् दोष बढे नहीं अल्प लक्षण हों अग्नि थोडी दीप्त हो वो सन्निपातज्वर कृच्छ्रसाध्य है ॥

संनिपातकीकालमर्यादा ।

सप्तमेदिवसेप्राप्तेनवमेकादशेपिवा । पुनर्घोरतरोभूत्वाप्रशमंयातिहंतिवा ॥ सप्तमीद्विगुणायावन्नवम्येकादशी-

तथा ॥ एषात्रिदोषमर्यादामोक्षायचवधायच ॥

अर्थ–संनिपातज्वर यदि सातवें, नवें, ग्यारवें, चौदवें, अठारवें और बाईसवें दिन ज्यादा होवे तो रोगी इस मर्यादाके दिवसोंमें मरे और मर्यादा चूक जावे तो रोगी जीवे, यह त्रिदोषकी मर्यादा है। जबसे त्रिदोष प्रकटहो उस दिनसे लेकर ७ किंवा १४ और ९ किंवा १८ तथा ११ किंवा २२ दिनतक त्रिदोष ज्वरोंकी मर्यादा है इस अवधिमें ज्वर जाता रहै अथवा मृत्युहोय ॥

दोषजनितकालमर्यादा ।

पित्तकफाऽनिलवृद्ध्यादशदिवसद्वादशाहसप्ताहान् ।
हंतिविमुंचत्याशुत्रिदोषजोधातुमलपाकात् ॥

अर्थ–पित्तकफ और वात इनके पाकहोनेकी मर्यादा अनुक्रमसे दशमें, बारवें और सातवें दिवस होती है अतएव उसीउसी दिनमें धातुपाक होनेसे रोगी मरे मलपाक होनेसे रोगी रोगरहित होवे ॥

कट्फलादिपानम् ।

कट्फलंत्रिफलादारुचंदनंसपरूषकम् । कटुकापद्मकोशी-रंविपचेत्कार्षिकंजले ॥ त्रिदोषदाहतृष्णाघ्नंपानमात्रेण पूजितम् । दीर्घकालज्वरार्तानामेतत्स्यादमृतोपमम् ॥

अर्थ–कायफल, त्रिफला, देवदारु, लालचंदन, फालसे, कुटकी, पद्माख और खस इन औषधोंको एक २ तोलालेकर काढा करके पीवेतो त्रिदोष दाह और तृष्णा इनको शांत करे और दीर्घकालसे आने-वाले ज्वररोगीको अमृतके तुल्यहै ॥

दशमूलादिमंड ।

पाचनोदीपनः सोष्णोलाजमंडोयतः स्मृतः ।
दशमूलादिसिद्धःससंनिपातज्वरेहितः ॥

अर्थ–दशमूलके काढेसे सिद्ध कराहुआ खीलोंका मांड पाचन, दीपन और गरम है अतएव संनिपातज्वरपर हित है ॥

दुःस्पर्शादिसिद्धान्न ।

दुस्पर्शगोक्षुरक्षुद्रासिद्धमाहारमर्पयेत् ।
दोषशांतिबलाऽभ्यर्थंत्रिदोषज्वरिणेपृथक् ॥

अर्थ-धमासा,गोखरू और कटेरी इनके काढेमें सिद्ध कराहुआ आहार देवे। इससे दोष शांतिहो तथा बल और अग्नि ये बढे और त्रिदोषरोग-वालेको हित है ॥

लाजसक्तुक।

लाजसक्तून्समश्नीयात्सैंधवेनसमन्वितान्।
तच्चेज्जीर्यत्यविघ्नेनज्वरीजीवेत्तदाध्रुवम् ॥

अर्थ-त्रिदोषज्वरवालेको खीलका सत्तू सैंधानोन डालके देवे तो यदि यह निर्विघ्न पचजावे तो रोगी निश्चय जीवे ॥

लाजसक्तूनिषेध।

रक्तपित्तेहितत्वेनतृष्णादाहज्वरेषुच।
लाजानांसक्तवः शीतानचतेत्रहितामताः ॥

अर्थ-खीलोंका सत्तू शीतल है यह रक्तपित्त, प्यास दाह और ज्वर इनपर हित है, परंतु संनिपातपर नहीं देना चाहिये ॥

पित्तशमनकरनेकेकारण।

निर्हरेत्पित्तमेवादौज्वरेषुसमवायिषु।
दुर्निवारतरंतद्धिज्वरार्तेषुविशेषतः ॥

अर्थ-समवायि संनिपात ज्वरमें प्रथम पित्तका हरण करे क्योंकि, यह दुर्निवार है ॥

शीतोदकसेचनकानिषेध।

संनिपातेतुदाहार्तंयःसिंचेच्छीतवारिणा।
आतुरः सकथंजीवेद्भिषग्वासकथंभवेत् ॥

अर्थ-जो वैद्य सन्निपातके दाहमें शीतल जलसे सिंचन करता है उसको वैद्य कैसे कहना चाहिये और वह रोगी कैसे बचेगा ॥

शिरीषाद्यंजन।

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैंधवैः।
अंजनंस्यात्प्रबोधायसरसोनशिलारसैः ॥

अर्थ-सिरसके बीज,गोमूत्र,पीपर,कालीमिरच और सैंधानिमक इनको एकत्र पीस अंजनकरे तो सन्निपातकी मूर्च्छा जाय अथवा मनशिल और वच इनका लहसनके रसमें अंजन करे ॥

कस्तूरिकाद्यंजन ।

कस्तूरीमरिचंवाजिलालाचमधुनांजनम् ।
तंद्रांनिवारयत्याशुव्यूषंक्षिप्तंयथानसि ॥

अर्थ–कस्तूरी और मिरच इनको घोडेकी लारमें पीस शहद डालके अंजन करे तो तंद्रा शीघ्र दूर होवे। उसी प्रकार त्रिकुटाके चूर्णकी नास लेनेसे तंद्रा दूर होय ॥

लंघन ।

सन्निपातज्वरीपूर्वंसम्यग्लंघनमाचरेत् ।
शृतशीतंपिबेदंभः समयेद्भेषजंभजेत् ॥

अर्थ–संनिपातज्वरवाला प्रथम उत्तम लंघन करे और पानीको औटाय शीतल करके बहुत प्यासमें पिवावे और समय २ पर औषधि देवे ॥

शीतजलपाननिषेध ।

सन्निपातेनतृष्यंतंपार्श्वरुक्तालुशोषिणम् ।
यः पाययेज्जलंशीतंसमृत्युर्नरविग्रहः ॥

अर्थ–संनिपातज्वरवाले रोगीके शोष होय और कूखमें शूल तथा तालुआ सूखताहो इसमें जो वैद्य विना औटाहुआ जल देवे वह मनुष्यरूप मृत्यु जानना ॥

वालुकास्वेद ।

वातश्लेष्मकृतेस्वेदान्कारयेद्रूक्षनिर्मितान् ।
स्निग्धस्वेदोनिषिद्धोत्रविनाकेवलवातजात् ॥

अर्थ–वातकफके विकारमें रूक्ष औषधोंसे स्वेद विधि करे किन्तु स्निग्ध स्वेद केवल वात रोग विना अन्यत्र निषेध है ॥

सैंधवादिनस्य ।

सैंधवंश्वेतमरिचंसर्षपाः कुष्ठमेवच ।
बस्तमूत्रेणसंपिष्टंनस्यंतंद्रानिवारणम् ॥

अर्थ–सैंधानिमक, सपेदमिरच,सरसों और कूठ इनको बकरेके मूत्रमें पीस नास देवे तो संनिपातकी तन्द्रा जाय ॥

मातुलिंगादिनस्य ।

मातुलिंगार्द्रकरसंकोष्णंत्रिलवणान्वितम् ।
अन्यद्वासिद्धविहितंनस्यंतीक्ष्णंप्रयोजयेत् ॥
तेनप्रभिद्यतेश्लेष्माप्रभिन्नश्चप्रसिच्यते ।
शिरोहृदयकंठास्यपार्श्वरुक्चोपशाम्यति ॥

अर्थ-बिजौरेका रस और अदरखकारस इनको गरम कर तीनों नोन (संचर साम्भर खारी) मिलायके नस्यदेवे अथवा और जो सिद्धवैद्योंकी कहीहुई तीक्ष्ण औषधोंकी नस्यदेवे तो इससे कफ फटजावे और फटकर दबजाय कि, जिस्से शिर, हृदय, कंठ,मुख और पसवाडोंकी पीडा शांति हो॥

कल्पतरुनस्य ।

मोहामयेनमुग्धंबोधयितुंयादृशःशक्तः ।
कल्पतरुनामधेयोरसोनतादृक्परंकिंचित् ॥

अर्थ-जो मोहरूप रोगसे मूढ हो रहा है उसके चैतन्य करनेमें जैसा कल्पतरुरस सामर्थ्य रखता है ऐसा अन्य नहीं है ॥

द्राक्षादिलेपजिह्वापर ।

जिह्वातालुगलक्लोमगरुत्पित्तेनवोच्छितः ।
तदासचाचरेच्छोषंजिह्वायाःखरतांतथा ।
स्फुटनंचतदाजिह्वांलेपयेन्मधुपिष्टया ॥
द्राक्षयासाज्ययातेनजिह्वास्यात्सरसामृदुः ॥

अर्थ-यदि वातपित्तके प्रभावसे जीभ, तालु, गला और क्लोम (पिपासास्थान) ये उठ आवे तो ये शोषको करते हैं और जीभको खरदरीकरे तथा जीभ फटजावे, इसमें जीभपर दाख और घृत मिलाय शहदका लेपकरे तो जीभ रसयुक्त नम्र हो जावे ॥

आर्द्रकादिकवलग्रह ।

आर्द्रकस्वरसोपेतंसैंधवंकटुकत्रयम्।आकंठाद्धारयेदास्ये-
निष्ठीवेच्चपुनःपुनः ॥ तेनास्यहृदयक्लोममन्यापार्श्वशिरो-
गलान्।लीनोप्याकृष्यतेश्लेष्मालाघवंचास्यजायते॥ पर्व-
भेदोज्वरोमूर्च्छानिद्राश्वासगलामयाः । मुखाक्षिगौरवंजा-

डचमुत्क्लेशश्चोपशाम्यति ॥ सकृद्द्वित्रिचतुःकुर्याद्दृष्ट्वा-
रोगबलाबलम्। एतद्धिपरमंप्राहुर्भेषजंसान्निपातिनाम् ॥

अर्थ—अदरखके स्वरसमें सैंधानिमक और त्रिकुटा मिलायके गोलीकरे, इस गोलीको मुखमें रक्खे, वारंवार कफ आवे उसको थूक देवे इस प्रकार करनेसे मुख, हृदय, क्लोम, मन्यानाडी, पसवाडेके भाग और गला इनसे लिहसा हुआ कफ निकले और शरीरमें हलका पना आवे और गांठोंका दूखना, ज्वर, मूर्च्छा, श्वास, गलेका रोग, मुख नेत्र इनकी जडता, मुखसे पानीका गिरना ये सब रोग दूर हों। यह प्रकार दोषोंको बलाबल देखकर दो चारबार करे यह संन्निपात रोगमें उत्तम है ॥

अष्टांगावलेह।

ऊर्ध्वजत्रुगदघ्नीयासासायमवलेहिका।
अधोरोगहरीयासाभोजनात्प्राक्प्रयुज्यते ॥

अर्थ—जत्रुके ऊपरके रोगोंमें सायंकालमें अवलेह लेवे और अधोभागके रोगोंमें भोजनके पूर्व लेनी चाहिये ॥

कट्फलादिअवलेह।

कट्फलंपुष्करंशृंगीव्योषंयासश्चकारवी।
श्लक्ष्णचूर्णकृतंचैतन्मधुनासहलेहयेत् ॥
एषावलेहिकाहंतिसंनिपातंसुदारुणम्।
हिक्कांश्वासंचकासंचकंठरोगंचनाशयेत् ॥
एतद्योज्यंकफोद्रेकेचूर्णमार्द्रकजैरसैः ॥

अर्थ—कायफर, पोहकरमूल, काकडासिंगी, त्रिकुटा, धमासा और अजमोद इनका कपडछन चूर्णकर शहदसे चाटे तो यह दारुण संनिपात, हिचकी, श्वास, खाँसी और कंठरोग इनको दूरकरे। यदि कफ अधिक होवे तो इसी चूर्णको अदरखके रसके साथ चाटना चाहिये ॥

आर्द्रकादिस्वरस।

अष्टांगमधुनालिह्यादार्द्रकस्यरसेनवा।
संमोहंदारुणंहन्यात्तंद्राकाससमन्वितम् ॥

अर्थ-ऊपर कहा अष्टांग अवलेह शहदसे किंवा अदरखके रससे चाटे तो खांसी, तंद्रा और अत्यंत मोह इनका नाशकरे ॥

मधुनिषेध ।

सर्वेषुसंनिपातेषुनक्षौद्रमवचारयेत् । शीतोपचारिक्षौद्रं स्याच्छीतंचात्रविरुध्यते ॥ उष्णैर्विरुध्यतेसर्वंविषान्वयतयामधु । उष्णार्तमुष्णैरुष्णंचतंनिहंतियथाविषम् ॥

अर्थ-संपूर्ण संनिपातोंमें शहद न देवे कारण कि, शहद भक्षण करनेसे उसपर शीतल उपचार करने चाहिये और संनिपातोंमें शीतल चिकित्सा विरुद्ध है तथा सर्व उष्णपदार्थोंसे शहदका विषके सदृश विरोध है अतएव जो मनुष्य असलमें गरमीसे पीडित होय और फिर उसके ऊपर गरम उपचार होय तो वो विषके समान मारने वाले होते हैं ॥

प्रक्रिया ।

संनिपातज्वरेपूर्वंकुर्यादामकफापहम् ।
पश्चाच्छ्लेष्मणिसंक्षीणेशमयेत्पित्तमारुतौ ॥

अर्थ-संनिपातज्वरपर प्रथम आम और कफनाशक औषधी देवे जब कफक्षीण हो जावे तब पित्तवातको शमन करे ॥

दूसराप्रकार ।

लंघनंवालुकास्वेदोनस्यंनिष्ठीवनंतथा ।
अवलेह्यंजनंचैवप्राक्प्रयोज्यंत्रिदोषजे ॥

अर्थ-संनिपातमें लंघन, वालुकास्वेद, नस्य, थूकना, अवलेह और अंजन ये प्रथम करने चाहिये ॥

लंघनकाअसहन ।

दोषाणामेवसाशक्तिर्लंघनेयासहिष्णुता ।
कश्चिद्दोषविमुक्तोन लंघनंसहतेनरः ॥

अर्थ-लंघनोंका सहन होना यह दोषोंकीही शक्ती है दोषमुक्त होनेपर रोगीको लंघन सहन नहीं होते ।

एककालमेंदोप्रकारकीऔषधदेनेकानिषेध ।

क्रियायास्तुगुणालाभेक्रियामन्यांप्रयोजयेत् ।

पूर्वस्यांशांतवेगायांनक्रियासंकरोहितः ॥

अर्थ–एक औषधक्रियाका गुण न होय तो दूसरी औषधक्रिया करनी चाहिये, परंतु पूर्वऔषधका वेग नष्ट हो जानेपर करे एककालमें दो औषधाक्रिया हितकारी नहीं हैं ॥

अन्यप्रतीकार ।

तप्तायोलांछनंपंचताल्वादिषुत्रिदोषजे । रुद्राभिषेकोभूदेवभोजनंग्रहजाप्यतः ॥ मंत्ररक्षादिभिःकार्यासंनिपातेप्रतिक्रिया ॥

अर्थ–सन्निपातमें तालु आदि पांचस्थानोंमें तत्ते लोहकी सलाई आदिसे दागदेवे और रुद्राभिषेक, ब्राह्मणभोजन, ग्रहोंका जप तथा मंत्ररक्षादिक रोगनाशार्थ अन्यउपाय कराने चाहिये ॥

कंटकार्यादिपाचन ।

कंटकारिद्वयंशुंठीधान्यकंसुरदारुच ।
एभिःशृतंपाचनंस्यात्सर्वज्वरनिवारणम् ॥

अर्थ–दोनोंकटेरी, सोंठ, धनियाँ और देवदारु इनका काढा सर्वज्वरमें पाचक तथा ज्वरनाशक है ॥

मनःशिलादिअजन ।

तुरंगलालासहितामनःशिलानिहंतितंद्रासकृदंजनेन ।
बब्बूलपत्राणिहरीतकीचसंस्वेदितास्वेदविकारहंत्री ॥

अर्थ–मनसिलको घोडेकी लारमें घिसके अंजन करावे तो तंद्राका आना दूर हो और बबूरके पत्ते और हरड इनकी वाफ स्वेदहरणकर्त्ता जाननी ॥

भूनिंबादिमर्दन व उद्धूलन ।

भूनिंबकटुकाकुष्ठंकारवींद्रयवाःशठी । एतानिसमभागानिसूक्ष्मचूर्णानिकारयेत् ॥ प्रस्वेदेकंठरोधेचसंधौमर्दनमिष्यते । एतदुद्धूलनंश्रेष्ठंसंनिपातहरंपरम् ॥

अर्थ–चिरायता, कुटकी, कूठ, अजवायन, इन्द्रजों और कचूर इनका

समभाग चूर्णलेकर देहमें लगावे तथा संधीनमें विशेष मालिशकरे तो कफसे हुआ कंठावरोध और संनिपातज्वर ये शांत हों ॥

यवानिकाद्युद्धूलन ।

यवानिकावचाशुंठीपिप्पलीकारवीतथा ।
एतैरुद्धूलनंश्रेष्ठंत्रिदोषोत्थेज्वरेनृणाम् ॥

अर्थ-अजवायन, वच, सोंठ, पीपर और अजमोद, इनका चूर्ण संनिपातज्वर वालेके पसीने आनेमें लगाना उत्तम कहा है ॥

विषाद्युद्धूलन ।

विषभागोभवेदेकोमरीचंत्रिगुणंमतम् । आरण्योपलजं भस्मषोडशांशसमन्वितम् ॥ एकत्रमीलितंचूर्णंधूर्त्तस्व रसभावितम् । आतपेशोषितंतच्चशीतस्वेदहरंपरम् ॥

अर्थ-विष १ भाग, कालीमिरच ३ भाग, आरनेउपलोंकी भस्म १६ भाग, सबको मिलाय अंगोंमें लगावे तो पसीने बंदहोय ॥

चणकाद्युद्धूलन ।

अथवाचणकाभ्रष्टायवानीचूर्णमिश्रिताः ।
वचोषणारजोयुक्ताःस्वेदसंशोषणामताः ॥

अर्थ-भुनेहुए चनाका चून, आजवायन, वच और काली मिरच इनको मिलाय देहमें मालिशकरे तो पसीने आते हुए बंद हो जावें ॥

चटनी ।

सुरसार्जकनिर्यासमधुव्योषसैंधवः ।
महच्छ्लेष्मानिलोद्रेकेसंज्ञानाशविनाशनः ॥

अर्थ-तुलसीकारस, राल, त्रिकुटा, सैंधानिमक और शहद इनको मिलायके चाटेतो कफवातादिक ज्वरको और मूर्च्छाको नष्ट करे ॥

लंघनविधि ।

त्रिरात्रंपंचरात्रंवादशरात्रमथापिवा ।
लंघनंसन्निपातेषुकुर्यादारोग्यदर्शनाद् ॥

अर्थ-संनिपातरोगीके अच्छाकरनेको तीन, पांच, किंवा दशदिन लंघन करावे ॥

लंघन ।

शस्तंसुलंघितस्यादौविधायकवलग्रहम् ॥

अर्थ-रोगीको लंघन करनेपर पूर्वोक्त कवल मुखमें धरना चाहिये ॥

अतिलंघनकेविचार ।

कफपित्तद्रवौधातूसहेतेलंघनंमहत् ।
आमक्षयादूर्ध्वमपिवायुर्नसहतेक्षणम् ॥

अर्थ-कफ और पित्त ये द्रवधातु हैं अतएव आमके क्षयपर्यंत बहुत लंघन सहन होते हैं, परंतु वादीवालेको बहुत लंघन क्षणमात्र सहन नहीं होते॥

लंघितकोअन्न ।

ग्राम्येगुरुत्वंश्रद्धाचविकृत्तिर्हीनलंघिते । प्रकांक्षालाघवं ग्लानिःस्वच्छतासुप्रसन्नता॥उपद्रवनिवृत्तिश्चसम्यक्लं-घितलक्षणम् । संमोहःसंधिशैथिल्यंवातरुक्चातिलंघिते ॥

अर्थ-हीनलंघन होनेसे मैथुन करनेमें अश्रद्धा तथा अंगोंमें भारीपना एलक्षण होते हैं । उत्तम लंघन होनेसे अन्नकी इच्छा अंगोंका हलका होना, ग्लानि, स्वस्थता, सुप्रसन्नता तथा ज्वरोपद्रवोंका नाश ये लक्षण होतेहैं और अतिलंघन होनेसे मोह, संधीका शिथिलपना, वायुके विकार ये होते हैं ॥

पंचमुष्टिकयूष ।

पंचमुष्टिकयूषेणत्रिकंटककृतेनच । आदोषशमनान्नित्यंभिषक्श्रेष्ठस्तुसाधयेत् ॥ यवकोलकुलित्थानांमुद्गमूलकशुंठिनाम् । एकैकमुष्टिमादायपचेदष्टगुणेजले॥पंचमुष्टिकइत्येषवातपित्तकफापहः। शस्यतेशूलगुल्मेचश्वासे कासेज्वरेक्षये ॥

अर्थ-गोखरू डालके पंचमुष्टिकयूष दोषशमन पर्यंत देवे, पंचमुष्टिकको कहते हैं-जौ, बेरकी गुठली, कुलथी, मूंग, मूली और सोंठ ये चार २ तोले लेय तथा अठगुने पानीमें काढा करे उसकी पंचमुष्टिकयूष संज्ञा है, यह वात पित्त कफ इनका नाशक और शूल, गुल्म, श्वास, खाँसी और क्षय इनपर उत्तम है ॥

सप्तमुष्टिकयूष।

यवकोलकुलित्थैश्चशुष्कमूलकमुद्गकैः । धान्याकैर्विश्व युक्तैश्चयूषोवातज्वरापहः ॥ सप्तमुष्टिकइत्येषसंनिपात-ज्वरापहः । कफवातामदोषघ्नःकंठहृद्वक्त्रशोधनः ॥

अर्थ–जौं, बेरकी गुठली, कुलथी, मूंग, सूखीमूली और सोंठ, धनियाँ ये प्रत्येक चार ४ तोले लेकर यूष बनावे,तो सप्तमुष्टिक संज्ञक यूष वात ज्वर, सन्निपातज्वर, कफ, वायू और आमदोष इनको नाशकरे और गला, छाती तथा मुख इनको स्वच्छ करे ॥

कंपादिककीचिकित्सा।

सन्निपातज्वरेयस्तुकंपतेप्रलपत्यपि ।
किंचिदेवनजानातिचिकित्सातस्यकथ्यते ॥

अर्थ–संनिपातज्वरमें कंप होय बकवादकरे और बेहोष होय तो उस की चिकित्सा कहते हैं ॥

अभ्यंजन।

अभ्यंजयेत्पुराणेनसर्पिषापूर्वमेवतम् ।
बलारास्नागुडूच्याद्यैस्तैलैश्चपरिषेचयेत् ॥

अर्थ–प्रथम संनिपातवाले रोगीके अंगमें पुराना घी लगावे किंवा बला, रास्ना, गिलोय इनका तेल अंगमें लगावे ॥

वर्तकादिरस।

वर्तकोवर्तकालावोवार्तीकस्तित्तिरीःशशः ।
कुलिंगश्चरसेनैषांतर्पयेतयथानलम् ॥

अर्थ–बतक, विचित्ररंगका चिडा, लवा, बटेर, तीतर, शशा और चिडा इनके मांसका रस रोगीका अग्निबल देखके देवे ॥

सन्निपातीमांसनिषेध।

सन्निपातेक्षुधार्तंयोभोजयेत्पिशितौदनैः ।
सकथंभिषगाख्यातिंलभतेभिषजाधमः ॥

अर्थ–सन्निपातज्वरमें क्षुधितरोगीको जो वैद्य मांस और भात खा-नेको देता है, वह अधम वैद्य लोकमें प्रतिष्ठाको कैसे प्राप्त होगा ॥

सुवर्णादिलेप।

सुवर्णमुक्तारजतप्रवालंकस्तूरिकाकुंकुमरोचनंच। वराट रुद्राक्षमधूकबिल्वंकुष्ठंचखर्जूरपुनर्नवाच ॥ द्राक्षाकणा-नागरपुत्रजीवीसारंगशृंगंकतकस्यबीजम्। एरंडमूलंशर-शीर्षकंचमयूरिकाश्वेतपुनर्नवाच ॥ स्तन्येनपिष्ट्वाकुरु सन्निपातेलेपःसदासर्वगदान्निहंति ॥

अर्थ—सोना, मोती, चांदी, मूंगा, कस्तूरी, केशर, गोरोचन, कौडी, रुद्राक्ष, मुलहटी, बेलगिरी, कूठ, खजूर, सोंठ, दाख, पीपल, सोंठ, जीयापोता, हरणके सींग, निर्मलीके बीज, अंडकी जड, सरपतेकी जड, अंबाडा और बिसखपरा ये सब औषधस्त्रीके दूधसे पीस लेपकरे तो सर्व संनिपातके विकार दूर हो ॥

चिकित्साप्रक्रिया।

श्लेष्मनिग्रहमेवादौकुर्याद्द्व्यादौत्रिदोषजे। निरस्तेश्ले-ष्मणिह्यस्यस्रोतःसूद्घाटितेषुच ॥ लाघवंजायतेसद्य स्तृष्णाचैवोपशाम्यति ॥

अर्थ—सन्निपातज्वरमें प्रथम कफको जीते कफके घटनेपर तथा शिराओंके मार्ग खुलनेपर शरीरमें हलकापना आता है और प्यास दूर होय॥

अन्यसन्निपातनिदाने।

एकोल्बणास्त्रयस्तेस्युर्द्व्युल्बणाश्वतथेतिषट्। उल्बणश्चभ वेदेकोविज्ञेयःसतुसप्तमः॥प्रवृद्धमध्यहीनाश्ववातपित्तकफै श्चषट्। सन्निपातज्वरस्यैवंस्युर्विशेषास्त्रयोदश ॥

अर्थ—संनिपातमें कफ, वात और पित्त इन प्रत्येक दोषोंके उल्बण होनेसे तीन, दोषोंके उल्बण होनेसे तीन तथा तीन दोषोंके उल्बणोंके मिलनेसे एक, सब सातहुए और प्रवृद्ध, मध्य और हीन जे वात, पित्त और कफदोष इनके पर्याय करके छः ऐसे सन्निपातके तेरह भेद होते हैं ॥

वातोल्बणसान्निपात।

संध्यस्थिशिरसः शूलंप्रलापोगौरवंभ्रमः।

वातोल्बणेस्याद्व्यनुगेतृष्णाकंठास्यशुष्कता ॥

अर्थ—वाताधिक्य और कफपित्तहीन ऐसे सन्निपातमें संधि, हड्डी और मस्तकमें शूल, प्रलाप, देहमें गौरव, भ्रम, प्यास तथा गला और मुखका सूखना ये लक्षण होतेहैं ॥

वातोल्बणसंनिपातकी चिकित्सा।

पंचमूलीकषायंतुदद्याद्वातोत्तरेज्वरे।
भृशोष्णंवासुखोष्णंवादृष्ट्वादोषबलाबलम् ॥

अर्थ—वाताधिक्य संनिपातमें पंचमूलका काढा गरम अथवा सुखोष्ण ऐसे दोषोंका बलाबल विचारके देवे ॥

मुस्तादिकाढा।

समुस्तंपंचमूलंचदद्याद्वातोत्तरेज्वरे।
भृशोष्णंवासुखोष्णंवादृष्ट्वादोषबलाबलम् ॥

अर्थ—नागरमोथा और पंचमूल इनका काढा करके इसे दोषबली होय तो गरम और निर्बल होय तो सुखोष्ण देवे ॥

कट्फलादिकाढा।

कट्फलाब्दवचापाठपुष्कराजाजिपर्पटैः ॥ देवदार्वभया-शृंगीकणाभूनिंबनागरैः ॥ भार्गीकलिंगकटुकासठीकट्-तृणधान्यकैः ॥ समांशैः साधितः क्वाथोहिंग्वार्द्रकरसै र्युतः॥कर्णमूलोद्भवंशोथंहितंमन्यागलाश्रयम्। कफवा-तज्वरंश्वासंकासंहिक्कांहनुग्रहम्॥गलगंडंगंडमालांस्वरभे दंकफात्मकम्। शिरोगुरुत्वंबाधिर्यंवृद्धिंचकफमेदसोः॥ दशमूलज्वरान्ह्येषःसन्निपातज्वराञ्जयेत्। अभिन्यासम संज्ञांचकट्फलादिर्निहंतिच ॥

अर्थ—कायफर, नागरमोथा, वच, पाढ, पोहकरमूल, जीरा, पित्तपापडा, देवदार, हरड, काकडासिंगी, पीपर, चिरायता, सोंठ, भारंगी, इन्द्रजों कुटकी, कचूर, रोहिषतृण और धनियाँ ये औषध समान भागले काढा, करके, उसमें हींग और अदरखका रस डालके पीवे तो कर्णमूल, गर्दन

और गला इनकी सूजन, कफवातज्वर, श्वास, खांसी, हिचकी, हनुग्रह, गलगंड, गंडमाला, कफजन्यस्वरभेद, मस्तककी पीडा, बहरापना, कफ और मेद इनकीवृद्धि, दशप्रकारका ज्वर, सन्निपात, अभिन्यास और संज्ञानाश इनको यह कट्फलादिकाढा नाश करताहै ॥

पित्तोल्बणसन्निपातनिदान।

रक्तविण्मूत्रतादाहोस्वेदस्तृड्बलसंक्षयम् ।
मूर्च्छाचेतित्रिदोषेस्याल्लिंगंपित्तेगरीयसि ॥

अर्थ–पित्तोल्बणसन्निपात होनेसे मलमूत्रका लालहोना, दाह, पसीने, प्यास, बलक्षय और मूर्च्छा ये लक्षण होते हैं ॥

पित्तोल्बणसं० चिकि० काढा।

परूषकाणित्रिफलादेवदारुसकट्फलम्।चंदनंपद्मकंचैव-तथाकटुकरोहिणी॥पृश्निपर्णीशतंत्वोभिरूषितंशीतलंज्व-रम् ॥ पित्तोत्तरेनृणामेतत्सान्निपातेचिकित्सितम् ॥

अर्थ–फालसे, त्रिफला, देवदारु, कायफर, लालचंदन, पद्माख,कुटकी और पिठवन ये औषध समान भागले रात्रिको शीतल जलमें भिगोयदेवे, प्रातःकाल काढाकर शीतल होनेपर पीवे तो पित्ताधिकसंनिपात दूरहो ॥

चंदनादिपानी।

चंदनंपद्मकंचैवतथाकटुकरोहिणी ।
पृथक्पर्णीसमंसिद्धमुषितंशीतलंजलम् ॥
पित्तोत्तरेनृणामेतत्सान्निपातेचिकित्सिते ॥

अर्थ--लालचंदन, पद्माख, कुटकी और पृष्टिपर्णी, ये समानभागले रात्रिमें शीतल जलमें भिगोयदेवे, प्रातःकाल उस जलको छानके पीवे तो पित्ताधिक सन्निपात दूरहो ॥

मुस्ताद्यष्टादशांग।

मुस्तापर्पटकोशीरदेवदारुमहौषधम् ।
त्रिफलाधन्वयासश्चनीलीकंपिल्लकंत्रिवृत् ॥
किरातातिक्तकंपाठाबलाकटुकरोहिणी ।
मधुकंपिप्पलीमूलंमुस्ताद्योगणउच्यते ॥

अष्टादशांगमुदकंसन्निपातज्वरापहम् ॥
पित्तोत्तरेसान्निपातेहितमुक्तंमनीषिभिः ॥
मन्यास्तंभेउरोघातेहनुस्तंभेशिरोग्रहे ॥

अर्थ–नागरमोथा, पित्तपापडा, खस, देवदारु, त्रिफला, धमासा, नीली, कबीला, निसोथ, चिरायता, पाढ, खरेटी, कुटकी, मुलहटी, पीपरामूल यह मुस्तादि अष्टादशांगगण इसका शीतलकाढा संनिपातज्वरका नाशकरे और यह ऋषियोंने पित्ताधिक सांनिपात, मन्यानाडीके स्तंभ, उरोघात, हनुस्तंभ इनपर कहा है ॥

किरातादिकाढा ।

किराततिक्तकंमुस्तंगुडूचीविश्वभेषजम् ।
पाठोदीच्यंमृणालंचशृतंपित्ताधिकेपिबेत् ॥

अर्थ–पित्ताधिक संनिपातमें चिरायता, कुटकी, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, पाढ, नेत्रवाला और कमलगट्टा इनका शीत काढादेवे ॥

शठ्यादिकाढा ।

शठीपुष्करमूलंचव्याघ्रीशृंगीदुरालभा ॥ वत्सकस्यच
बीजानिपटोलंकटुरोहणी ॥ एषशठ्यादिकोवर्गःसन्नि
पातज्वरापहः । कासंश्वासंदिवानिद्रांरात्रौजागरणं
तथा ॥ मुखशोषंतृषांदाहंत्रिदोषंचानियच्छति ॥

अर्थ–कचूर, पुहकरमूल, कटेरी, काकडासिंगी, धमासा, इन्द्रजों, पटोलपत्र और कुटकी यह शठ्योदिवर्ग संनिपातज्वर, दमा, खांसी, दिनकी निद्रा, रात्रिमें जागना, मुखशोष, प्यास, दाह और त्रिदोष इनका नाशकरे ॥

कफोल्बणसंनिपातनिदान ।

आलस्यारुचिहृल्लासदाहवम्यरतिभ्रमैः ।
कफोल्बणंसन्निपातंतंद्राकासेनचादिशेत् ॥

अर्थ–कफाधिक संनिपातमें आलस्य, अरुचि, हृल्लास, दाह, वमन, बेचैनी, भ्रम, तन्द्रा और खाँसी येलक्षण होते हैं ॥

कफोल्बणचिकित्सा।

बृहत्यौपुष्करंभार्गीशठीशृंगीदुरालभा।
वत्सकस्यचबीजानिपटोलंकटुरोहिणी॥
बृहत्यादिगणः शस्तःसन्निपातेकफोत्तरे।
श्वासादिषुचसर्वेषुहितः सोपद्रवेषुच॥

अर्थ--दोनों कटेरी, पुहकरमूल, भारंगी, कचूर, काकडासिंगी, धमासा, इन्द्रजौं, पटोलपत्र और कुटकी यह बृहत्यादिगण कफादिकसंनिपात, दम और सर्व उपद्रवपर हितकारक है॥

कफोल्बणोंपरक्वाथ।

कफोत्तरेबृहत्यादिगणश्चदशमूलजः।
परूषकाणित्रिफलादेवदारुसकट्फलम्॥

अर्थ--कफाधिक संनिपातपर बृहत्यादिगण, दशमूल,फालसे,त्रिफला, देवदारु और कायफल इनका काढा देय॥

त्र्युल्बणसन्निपात।

सर्वलक्षणसंयुक्तस्त्र्युल्बणस्तुमतोबुधैः॥

अर्थ--सर्वलक्षणोंकर्के युक्त होय उसको त्र्युल्बणसंनिपात जानना॥

नागरादिकाढा।

नागरंधान्यकंभार्गीपद्मकंरक्तचंदनम्। पटोलःपिचुमंद-
श्चत्रिफलामधुकंबला॥शर्कराकटुकामुस्तागजाह्वाव्या-
धिघातकः। किराततिक्तममृतादशमूलीनिदिग्धिका॥
योगराजोनिहंत्येषःसन्निपातज्वरापहः। सन्निपातसमु-
त्थानंमृत्युमप्यागतंजयेत्॥

अर्थ--सोंठ, धनियाँ, भारंगी, पद्माख,लालचंदन, पटोलपत्र, नीमकी-छाल, त्रिफला, मुलहटी, खटेरी, मिश्री,कुटकी,नागरमोथा; गजपीपल, अमलतास, कडुआ चिरायता, गिलोय,दशमूल और कटेली इनका काढा मृत्युसमानभी संनिपातका नाशकरे॥

व्योषादिकाढा।

व्योषाब्दत्रिफलारिष्टपटोलीतिक्तवत्सकैः।

सभूनिंबामृतापाठैस्त्रिदोषज्वराजिज्जलम् ॥

अर्थ-सोंठ, मिरच, पीपल, नागरमोथा, हरड, बहेडा, आँवला, नीम कीछाल, पटोलपत्र, कुटकी, इंद्रजों, चिरायता, गिलोय और पाढ इनका काढा त्रिदोषज्वरका नाशकरे ॥

वातपित्तोल्बणसन्निपात ।

भ्रमःपिपासादाहश्चगौरवंशिरसोतिरुक् ।
वातपित्तोल्बणेविंद्याल्लिंगंमंदकफज्वरे ॥

अर्थ-भ्रम, प्यास, दाह, गौरव, मस्तकपीडा ये वातपित्तोल्बण और हीनकफ ऐसे सन्निपातमें लक्षण होते हैं ॥

वातपित्तोल्बणचिकित्सा ।

वातपित्तहरंवृष्यंकनीयःपंचमूलकम् ।
तत्क्काथोमधुनाहंतिवातपित्तोल्बणंज्वरम् ॥

अर्थ-वातपित्तनाशक और वृष्य ऐसो लघुपंचमूल है अतएव इसका काढा शहद डालके देय तो वातपित्तोल्बण सन्निपातका नाशहोय ॥

वातश्लेष्मोल्बण ।

शैत्यंकासोरुचिस्तंद्रापिपासादाहरुक्तथा ।
वातश्लेष्मोल्बणेव्याधौलिंगंपित्तावरेविदुः ॥

अर्थ-वातकफाधिक और हीनपित्त ऐसा सन्निपात होनेसे शरदी, खांसी, अरुचि, तंद्रा, प्यास, दाह और पीडा ये लक्षण होते हैं ॥

चिकित्सा ।

किराततिक्तकंमुस्तंगुडूचीविश्वभेषजम् ।
चातुर्भद्रकमित्याहुर्वातश्लेष्मोल्बणेज्वरे ॥

अर्थ-कडुआ चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ इनका काढा करके वातकफोल्बणज्वर वालेको देय इसको चातुर्भद्र कहते हैं ॥

पित्तकफोल्बण।

छर्दिःशैत्यंमुहुर्दाहस्तृष्णामोहोस्थिवेदना।
मंदेवातेऽव्यवस्यंतिलिंगंपित्तकफोल्बणे॥

अर्थ–पित्तकफाधिक और हीनवात ऐसे संनिपातके होनेसे वांति, शीत, वारंवार दाह, प्यास, मोह और हड्डियोंमें पीडा ये लक्षण होते हैं॥

चिकित्सा।

पर्पटःकट्फलंकुष्ठमुशीरंचंदनंजलम्। नागरंमुस्तकंशृं
गीपिप्पल्येषांशृतंहितम्॥ तृष्णादाहाग्निमांद्येषुपित्तश्ले
ष्मोल्बणेज्वरे॥

अर्थ–पित्तपापडा, कायफर, कूठ, खस, लालचंदन, नेत्रवाला, नागरमोथा, सोंठ, काकडासिंगी और पीपल इनका काढा प्यास, दाह, मंदाग्नि और पित्तकफात्मकज्वर इनका नाश करे॥

हीनवातमध्यपित्तवश्लेष्माधिकसं०।

प्रतिश्याछर्दिरालस्यंतंद्रारुच्यग्निमार्दवम्।
हीनवातेमध्यपित्तेचिह्नंश्लेष्माधिकेमतम्॥

अर्थ–कफाधिक हीनवायु और मध्यपित्त ऐसे संनिपात होनेसे, सरेकमा, वमन, आलस्य, तंद्रा, अरुचि और मंदाग्नि ये लक्षण होतेहैं॥

हीनवातमध्यकफवपित्ताधिकसं०।

हारिद्रनेत्रमूत्रत्वक्दाहस्तृष्णाभ्रमोरुचिः।
हीनवातेमध्यकफेलिंगंपित्ताधिकेमतम्॥

अर्थ–पित्ताधिक, हीनवायु और मध्य कफ ऐसे संनिपातके होनेसे नेत्र, मूत्र और त्वचा ये पीलेहों तथा दाह, प्यास, भ्रम और अरुचि ये लक्षण होते हैं॥

हीनपित्तमध्यकफववाताधिकसं०।

शिरोरुग्वेपथुश्वासप्रलापच्छर्द्यरोचकाः।
हीनपित्तेमध्यकफेलिंगंवाताधिकेमतम्॥

अर्थ–हीनपित्त, मध्यकफ और वाताधिक ऐसे संनिपातमें मस्तकशूल कंप, श्वास, प्रलाप, वमन और अरुचि ये लक्षण होते हैं॥

हीनपित्तमध्यकंफश्लेष्माधिकसं० ।

शीतगौरवतंद्राश्चप्रलापोस्थिशिरोतिरुक् ।
हीनपित्तेमध्यवातेलिंगंश्लेष्माधिकेमतम् ॥

अर्थ–हीनपित्त, मध्यवात और कफाधिक संनिपात होनेसे शीतलगे, अंगोंमें गौरवता, तन्द्रा, प्रलाप, हड्डी और मस्तकमें पीडा ये लक्षण होते हैं ॥

कफहीनमध्यवातवपित्ताधिकसं० ।

पर्वभेदोग्निदौर्बल्यंतृष्णादाहोरुचिभ्रमः ।
कफेहीनेमध्यवातेलिंगंपित्ताधिकेविदुः ॥

अर्थ–कफहीन, मध्यवात और पित्ताधिक संनिपातमें संधियोंमें पीडा, मंदाग्नि, प्यास, दाह, अरुचि और भ्रम ये लक्षण होते हैं ॥

हीनकफमध्यपित्तववाताधिकसं० ।

कासश्वासप्रतिश्यायमुखशोषोतिपार्श्वरुक् ।
कफेहीनेमध्यपित्तेलिंगंवाताधिकेस्मृतम् ॥

अर्थ–हीनकफ, मध्यपित्त और वाताधिक सन्निपातमें खांसी, श्वास, सरेकमा, मुखशोष और पसवाडोंमें अत्यंत पीडा ये लक्षण होते हैं ॥

छहोंकीएकश्लोकसेचिकित्सा ।

प्रवृद्धंकर्षयेद्दोषंक्षीणंसंवर्द्धयेद्भिषक् ।
चिकित्सेयंविधातव्यादोषयोर्हीनवृद्धयोः ॥

अर्थ–जो दोष बढाहो उसको क्षीण करे और क्षीणदोषको बढावे, इस प्रकार वैद्य क्षीण वृद्धदोषोंकी चिकित्सा करे ॥

प्रवृद्धेशमितेदोषेमध्यमःस्वयमेवहि ।
शांतियातिशमंनीतेत्वनुबंध्यनुबंधवत् ॥

अर्थ–बढे दोषके शांतिहोनेसे मध्यम जो दोष हैं सो स्वयं शांति होजाते हैं जैसे साथीका शांतहोनेसे अर्थात् दूसरा दुर्बलहोनेसे आपभी शांति होजाता है ॥

द्वात्रिंशांगक्वाथ ।

भार्ङ्गीभूनिंबनिंबाघनकटुकवचाव्योषवासाविशालारास्रा-
नंतापटोलीसुरतरुरजनीपाटलातिंदुकैश्च। ब्राह्मीदार्वीगु-

डूर्वीत्रिवृतमतिविषापुष्करत्रायमाणैर्व्याघ्रीसिंहीकलिंगै-स्त्रिफलशठियुतैःकल्पितस्तुल्यभागैः ॥ क्काथोद्वात्रिंश-नामात्रिभिरधिकदशान्सन्निपातान्निहंति शूलंकासादि-हिक्काश्वसनगदरुजाध्यानविध्वंसकारी । ऊरुस्तंभांत्रवृ-द्धीगलगदमरुचिंसर्वसंधिग्रहार्तिंमातंगौघान्निहन्यान्मृग-रिपुरिहचेद्रोगजालंतथैव ॥

अर्थ–भारंगी, चिरायता, नीमकी छाल,नागरमोथा, कुटकी,वच,सोंठ, मिरच, पीपल, अडूसा,इंद्रायणका गूदा,रासना,धमासा, पटोलपत्र, देव-दारु, हलदी, पाढल, कुचला, ब्राह्मी, दारुहलदी, गिलोय, निसोथ,अतीस, पोहकरमूल, त्रायमाण, दोनोंकटेरी, इन्द्रजों, हरड, बहेडा,आमला और कचूर ये सब औषध समानभागले काढाकरे इसको द्वात्रिंशनामक्काथ कहते हैं यह तेरह प्रकारके संनिपात, शूल, खाँसी, हिचकी, श्वास,अफरा, ऊरुस्तंभ, अंत्रवृद्धि, गलेका रोग अरुचि और संधिग्रह इनको जैसे हाथियोंकी पंक्तिको सिंह नाश करताहै इसप्रकार यह काढा नाशकरे ॥

अष्टादशांगकाढा ।

भूनिंबदारुदशमूलमहौषधाब्दतिक्तेंद्रबीजधनिकेभक-णाकषायः । तंद्राप्रलापकसनारुचिदाहमोहश्वासादियु-क्तमखिलज्वरमाशुहंति ॥ अष्टादशांगइत्येषमृत्युकल्पं-ज्वरंजयेत् ॥

अर्थ–चिरायता, देवदारु, दशमूल, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी,इन्द्रजों, धनियां और गजपीपल इनका काढा करके पीवे तो तंद्रा, प्रलाप, खांसी, अरुचि, दाह, मोह, श्वास इनकरके युक्त सर्वज्वरोंका नाशकरे यह अष्टा-दशांग काढा मृत्युतुल्य ज्वरका नाशकरे ॥

द्वादशांग ।

दशमूलीकषायस्तुसपौष्करकणान्वितः ।
सन्निपातज्वरेदेयःश्वासकाससमन्विते ॥

अर्थ–दशमूल,पोहकरमूल और पीपल इनका काढा सन्निपात ज्वरपर देवे तो श्वास, खांसी और सन्निपात इनका नाशकरे ॥

सन्निपातपररेचन ।

बिल्वकंत्रिवृतादंतीसमूलंचतुरंगुलम् । पक्वंकषायंविस्राव्यनीलीचूर्णविमिश्रितम् ॥ ससर्पिष्कंपिबेत्तूर्णसंनिपातेविरेचनम् ॥

अर्थ-बेलगिरी, निसोथ, दंती और अमलतासका गूदा इनका काढा करके इसमें नीलकाचूरा और घी मिलाय देवेतो यह सन्निपातका नाशकरे॥

संज्ञानाशचिकित्सा ।

कंपः प्रलपनंयस्यसंज्ञानाशश्चदारुणः । रसैश्चलाववर्तैश्चकुलिंगैःशशतित्तिरैः ॥ तर्पयेत्प्राक्पुराणेनसर्पिषाभ्यंजयेन्नरम् । बलारास्नागुडूच्याद्यैस्तैलैश्चपरिषेचयेत् ॥

अर्थ-जो रोगी कंप, प्रलाप और संज्ञानाश इनके युक्तहो इसको लवा, बटेर, चिड़ा, कबूतर और तीतर इनके मांसरस प्रथम पिलायके फिर अंगोंमें पुरानेघीकी मालिश करावे । तथा खरेटी, रासना और गिलोय इनका तेल देहमें लगावे ॥

बिल्वादिकाढा ।

बिल्वाग्निमंथः स्योनाकः काश्मरीपाटलातथा । शालिपर्णीपृश्निपर्णीबृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥ उभयंदशमूलंस्यात्सन्निपातहरोगणः ॥

अर्थ-बेलगिरी, अरनी, टेटू, कंभारी, पाढ, शालिपर्णी, पृष्टपर्णी, दोनोंकटेरी और गोखरू ये दशमूल हैं इनका काढा सन्निपातनाशक है ॥

शुंठ्यादिकाढा ।

शुंठीदारुशठीरजोबृहतिकातिक्ताकिरातांबुदानंताभिर्जनितः कषायकवरः कृष्णामधुभ्यांयुतः । निःशेषंत्रितयोद्भवज्वरहरोजीर्णज्वरस्यांतकृत्कासारिर्वीषमापहोनिगदितः शुंठ्यादिकः सूरिभिः ॥

अर्थ-सोंठ, देवदारु, कचूर, पित्तपापडा, कटेरी, कुटकी, चिरायता, नागरमोथा और धमासा इनका काढा पीपलका चूर्ण और शहद डालके

देवे तो निःशेष सान्निपात, जीर्णज्वर और खाँसी इनको यह शुंठयादि काढा नाशकरे ॥

अर्कादिकाढा ।

अर्कानंताकिरातामरतरुरसनासिंधुवारोग्रगंधातकारी-
शिग्रुपंचोषणघुणदयितामार्कवाणांकषायः । सद्यस्ती-
व्रान्त्रिदोषानपहरतितथामारुतंदंतबंधं शैत्यंगात्रेषुगाढं-
श्वसनकसनकंसूतिकावातरोगान् ॥

अर्थ–आककीजड, धमासा, चिरायता, देवदारु, रासना, निर्गुंडी, वच, अरनी, सहेंजना, पीपरी पीपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, अतिस और भाँगरा इनका काढा देय तो घोर त्रिदोष, धनुर्वात, वत्तिसीकाभिचना, देहकी अत्यंत शरदी, श्वास, खांसी, प्रसूतके और बादीके सर्वरोगोंको नाशकरे ॥

तिक्तादिकाढा ।

तिक्तातिक्तकपर्पटामृतशठीरास्नाकणापौष्करंत्रायंतीबृ-
हतीसुरौषधशिवादुःस्पर्शभार्गीकृतः । क्वाथोनाशय-
तित्रिदोषनिकरंस्वापंदिवाजागरंनक्तंतृण्मुखशोषदाहक-
सनश्वासानशेषानपि ॥

अर्थ–कुटकी, चिरायता, पित्तपापडा, गिलोय, कचूर, रास्ना, पीपल, पोहकरमूल, त्रायमाण, कटेरी, देवदारु, सोंठ, हरड, धमासा और भारंगी इनका काढा करके देवे तो त्रिदोष, दिनकीनिद्रा, रात्रिका जागना, प्यास, मुखशोष, दाह, खांसी और संपूर्णश्वास इनका नाशकरे ॥

त्रिदोषपर ।

पित्तप्रायेचशठ्यादिर्बृहत्यादिःकफादिके ।
वातोत्तरेसन्निपातेकट्फलादिः प्रयोजयेत् ॥

अर्थ–पित्ताधिक संनिपातवालेको शठ्यादिकाढा और कफाधिकवालेको बृहत्यादिकाढा एवं वाताधिक्य संनिपातवालेको कट्फलादिकाढेकी योजना करे ॥

दार्व्याद्यष्टादशांग ।

दारुनागरभूनिंबधान्यतिक्ताकलिंगजैः । गजाह्वादशमूलाब्दैर्मृत्युकल्पंज्वरंजयेत् ॥ अष्टादशांगइत्येषःसन्निपातज्वरापहः । कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासहिक्कावमीहरः ॥

अर्थ-देवदारू, सोंठ, चिरायता, धनियाँ,कुटकी, इन्द्रजों, गजपीपल, दशमूल और नागरमोथा इन अठारह औषधोंका काढा देय तो अत्यंत कठिन, मृत्युके समान ज्वर, सन्निपातज्वर, खांसी, हृदयशूल, पसवाडेकी पीडा, श्वास, हिचकी और वमन इनका नाशकरे ॥

गुडूच्यादिकाढा ।

गुडूचीचंदनंपद्मंनागरेंद्रयवासकम्।अभयारग्वधोशीरपाठाधान्याब्दरोहिणी ॥ कषायंपाययेदेतंपिप्पलीचूर्णसंयुतम् । तंद्राकासज्वरश्वासापिपासादाहनाशनः ॥ विण्मूत्रानिलविष्टंभात्रिदोषप्रभवस्यच । गुडूच्यादिगणोह्येषः पाचनोदीपनःपरः ॥

अर्थ-गिलोय, चंदन, पोहकरमूल, सोंठ, इन्द्रजों, धमासा, हरड, अमलतासका गूदा, नेत्रवाला, पाढ, धनियाँ, नागरमोथा, कुटकी इनका काढा कर उसमें पीपलका चूर्ण मिलायके देवे तो तन्द्रा, खांसी, ज्वर,श्वास, प्यास, दाह, मलमूत्र, वायुका रुकना, त्रिदोषजन्यज्वर इनको यह गुडूच्यादिगणकाढा दूरकरे और दीपन पाचनहै ॥

अमृतादिकाढा।

अमृतादशमूलीभ्यांसाधितंविधिवज्जलम् ।
संनिपातज्वरंहन्यात्रयोदशविधंनृणाम् ॥

अर्थ-गिलोय और दशमूल इनका काढा तेरहप्रकारके संनिपातज्वरोंको दूरकरे ।

विश्वादिकाढा ।

विश्वशुंठीदशमूलीछिन्नापाठाचपिप्पलींद्रयवैः ।
सकिराततिक्तवासाशमयतिहतौजसंसद्यः ॥

अर्थ-अतीस, सोंठ, दशमूल, गिलोय, पाठ, पीपर, इन्द्रजौं, कडुआ चिरायता और अडूसा इनका काढा देय तो ज्वरकरके क्षीणहुआरोगी शीघ्र अच्छाहोय ॥

त्र्यूषणादिकाढा।

त्र्यूषणदशमूलशुंठीभार्गीछिन्नोद्भवःक्काथः।
पीतःशमयतिसहसाज्वरमुग्रंसंनिपाताख्यम् ॥

अर्थ-त्रिकुटा, दशमूल, सोंठ, भारंगी और गिलोय इनका काढा उग्रसंनिपातको शमन करे ॥

दशमूलादिकाढा।

द्विपंचमूलीषड्ग्रंथाविश्वगृध्रनखीद्वयम्।
कफवातहरःक्काथोसंनिपातहरः परः ॥

अर्थ-दशमूल, पीपरामूल, सोंठ, बेर और झरियावेर इनका काढा कफवात हारक और संनिपातको दूरकरे ॥

आढरूषादिकाढा।

सिंहास्यपर्पटारिष्टयष्टीधान्याब्दनागरम्। दारूग्रगंधेंद्रय वाश्वदंष्ट्राग्रंथिकंतथा ॥ एषांकषायमाहृत्यसंनिपातज्व- रीपिबेत्। श्वासातिसारकासघ्नशूलारुचिहरंपरम् ॥

अर्थ-अडूसा, पित्तपापडा, नीमकी छाल, मुलहटी, धनियाँ, नागरमोथा, सोंठ, देवदारू, वच, इन्द्रजों, गोखरू और पीपलामूल इनका काढा सन्निपातज्वर, श्वास, अतिसार, खांसी, शूल और अरुचिको दूरकरे ॥

कट्फलादिकाढा।

कट्फलंत्रिफलादारुचंदनंसपरूषकम्। कटुकंपद्मकोशी रंविपचेत्कार्षिकंजले ॥ तत्संनिपातदाहघ्नंपानमात्रेणपू- जितम्। दीर्घकालप्रयुक्तानांज्वराणाममृतोपमम् ॥

अर्थ-कायफर, त्रिफला, देवदारु, लालचंदन, फालसे, पटोलपत्र, पद्माख और नेत्रवाला इनका काढा संनिपात, दाह, जीर्णज्वर इनपर साक्षात् अमृतके तुल्य है ॥

किरातादिकाढा।

चिरज्वरेवातकफोल्बणेवात्रिदोषजेवादशमूलमिश्रः।
किराततिक्तादिगणःप्रयोज्यःशुद्ध्यर्थिनेवात्रिवृताविमिश्रः॥
किराततिक्तकोमुस्तंगुडूचीविश्वभेषजम्।
किरातादिगणोह्येषश्चातुर्भद्रकमित्यपि॥

अर्थ–बहुतदिनका वात कफोल्बण ज्वर और त्रिदोष ज्वर इनपर चिरायता,नागरमोथा, गिलोय और सोंठ यह किरातादिगण और दशमूलकी औषध इनका काढा करके देवे यदि इसको दस्तलानेके अर्थ देवेतो इसमें निसोथ मिलायलेवे॥

अष्टादशांगकाढा।

दशमूलीशटीशृंगीपौष्करंसदुरालभम्।
भांर्गीकुटजबीजंचपटोलंकटुरोहिणी॥
अष्टादशांगइत्येषःसंनिपातज्वरापहः।
कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासहिक्कावमीहरः॥

अर्थ–दशमूल, कचूर, काकडासिंगी, पोहकरमूल, धमासा, भारंगी, इन्द्रजौ, पटोलपत्र और कुटकी इसको अष्टादशांग कहते हैं यह काढा सन्निपात ज्वर, खाँसी, हृद्रोग, पार्श्वशूल, श्वास, हिचकी और वमन इनको नाशकरे॥

पंचतिक्तककाढा।

क्षुद्रापुष्करभूनिंबगुडूचीविश्वभेषजैः।
पंचतिक्तकनामायंक्काथोहंत्यष्टधाज्वरम्॥

अर्थ–कटेरी,पोहकरमूल,चिरायता,गिलोय और सोंठ यह पंचतिक्तनामक गणहै इसका काढा आठप्रकारके ज्वरोंको नाशकरे॥

दार्व्यंबुदादिकाढा।

दार्व्यंबुदातिक्तफलत्रिकंचक्षुद्रापटोलीरजनीसनिंबा।
क्काथंविदध्याज्ज्वरसन्निपातेनिश्चेतनेपुंसिविबोधनार्थम्॥

अर्थ–दारुहलदी, नागरमोथा, चिरायता, त्रिफला, कटेरी, पटोलपत्र,

हलदी और नीमकी छाल इनका काढा संनिपातज्वरोंमें जो मूर्च्छा आतीहै उसे दूरकरे ॥

ग्रंथ्यादिकाढा ।

ग्रंथींद्रजामरपुरकृमिशत्रुभार्गीभृंगात्रिकट्वनलकट्फलपौष्कराणाम् । रास्नाभयाबृहतिकाद्वयदीप्यभूतकेशीकिरातकवचाचविकावृकीणाम् ॥ क्काथोहन्यात्संनिपातान्समग्रान्बुद्धिभ्रंशस्वेदशैत्यप्रलापान् । शूलाध्मानं विद्रधिंश्लेष्मवातान्वातव्याधीन्सूतिकानांचतद्वत् ॥

अर्थ-पीपरामूल, इन्द्रजौ, देवदारु, गूगल, वायविडंग, भारंगी, भांगरा, त्रिकुटा, चित्रक, कायफर, पोहकरमूल, रास्ना, हरड, दोनोंकटेरी, अजवायन, निर्गुंडी, चिरायता, वच, चव्य और पाढ इनका काढा सर्वसंनिपात, बुद्धिभ्रंश, पसीने, शीत, प्रलाप, शूल, अफरा, विद्रधि, कफबात, बादीकेरोग और प्रसूतके रोग इनका नाशकरे ॥

लशुनादिकाढा ।

लशुनंतिक्तकंकांडंभार्गींचातिविषातथा ।
नरमूत्रेणचक्काथःसन्निपातेसुदारुणे ॥

अर्थ-लहनस, चिरायता, तिरकांड, भारंगी और अतीस इनको घोडेके मूत्रमें काढाकरके देय तो दारुणसान्निपातज्वर नाशहोय ॥

दशमूलादिकाढा ।

दशमूलस्यनिर्यूहः कट्फलादिरजोयुतः ।
तुल्यार्द्रकरसोपेतोमृत्युकल्पंज्वरंजयेत् ॥

अर्थ-दशमूलका निर्यूहकरके उसमें कायफलका चूर्ण और काढेके समान अदरखका रस डालके देय तो मृत्युके समान कठिन ज्वरका नाशकरे ॥

पंचमूलादिकाढा ।

पंचमूलीकिरातादिर्गणोयोज्यस्त्रिदोषजे ।
पित्तोत्कटेतुमधुनाकणयाचकफोत्कटे ॥

अर्थ-पंचमूल और किरातादिगण इनका काढा त्रिदोषजनित ज्वरपर तथा पित्तोत्कटपर शहदके और पीपलका चूर्ण मिलायके देवे ॥

अर्कादिकाढा ।

अर्कग्रंथिकशिग्रदारुचविकानिर्गुंडिकापिप्पलीरास्नाभृंग पुनर्नवानलवचाभूनिंबशुंठीकृतः ॥ क्काथःसंहरतित्रिदोषमखिलंस्वापानिलंसूतिकानानामारुतशैत्यशांतिकृदपस्मारस्मरत्र्यंबकः ॥

अर्थ–आककी जड, पीपरामूल, अमलतासका गुदा, देवदारु, चव्य, निर्गुंडी, पीपल, रास्ना, भाँगरा, साँठ, चित्रक, वच, चिरायता और सोंठ इनका काढा सर्व त्रिदोष ज्वर, निद्रा, प्रसूतके रोग, अनेकप्रकार की वायू, शीत, अपस्मार इनका नाशकहै ॥

मृतसंजीवनीवटिका ।

विषंत्रिकटुकंगंधंटंकणंमृतशुल्बकम् । धत्तूरस्यचबीजानिहिंगुलंनवमंमतम् ॥ एतानिसमभागानिदिनैकंविजयाद्रवैः । मर्दयेच्चणकाकाराकर्तव्यावटिकाथसा ॥ भक्षणीयानुपातव्योरविमूलकषायकः । मृतसंजीवनीनाम्नासंनिपातज्वरांतकृत् ॥

अर्थ–सिंगियाविष, त्रिकुटा, गंधक, सुहागा, ताम्रकीभस्म, धतूरेके बीज और हिंगुल ये नौ औषध समान लेकर चूर्णकर भांगरेके रसमें एकदिन खरलकरे फिर चनेके प्रमाण गोली बनावे एकगोली खायके ऊपरसे आककीजडका काढा पीवे तो संनिपातज्वरका नाशहो ॥

त्रिनेत्ररस ।

शुद्धसूतंसमंगंधंसूतांशंमृतताम्रकम् । त्रिभिस्तुल्यैर्गवांक्षीरैर्मर्दयेदातपेखरे॥मर्दयेद्दिनमेकंतुनिर्गुंडीशिग्रुजद्रवैः । विधायगोलंतंगोलमंधमूषागतंपचेत् ॥ त्रियामान्वालुकायंत्रेततःखल्वेविचूर्णयेत् । अष्टमांशंविषंतत्राक्षिपेत्तेनापिमर्दयेत् ॥ त्रिनेत्राख्योरसोह्येषदेयोगुंजाद्वयोन्मितः । पंचकोलकषायेणछागीदुग्धेनवासह ॥ रसेनानेनभुक्तेनसंनिपातज्वरोमहान् । संक्षयंव्रजतिक्षिप्रंकर्तव्योनात्रसंशयः ॥

अर्थ-पारा गंधक दोनों शुद्ध और तामेकी भस्म ये समभागले और इन औषधोंके बराबर गौका दूध डालके तीव्र धूपमें खरलकरे और एक दिन निर्गुंडीके रसमें एकदिन सहेंजनेके रसमें खरकर गोला बनाय अंधमूषामें रखके तीन प्रहर वालुकायंत्रमें पचनकरावे फिर सिद्धहोनेके पश्चात् अष्टमांश शुद्धविष डालके फिर खरलकरे वह त्रिनेत्राख्यरस दोरत्ती पंचकोलके काढेसे अथवा बकरीके दूधसे देय तो निःसंशय महासंनिपातका नाशहोय ॥

भस्मेश्वररस ।

भस्मषोडशनिष्कंस्यादारण्योपलसंभवम् ।मरिचंनिष्क मात्रंचविषनिष्कविचूर्णयेत् ॥ रसोभस्मेश्वरोनाम्नासंनि पातज्वरांतकृत् । एकगुंजामितोभक्ष्यआर्द्रकस्यद्रवेणहि ॥

अर्थ-आरनेउपलोंकी राख १६ तोले कालीमिरच और सिंगीयाविष ये प्रत्येक एक एक तोले ले बारीक चूर्णकरे यह भस्मेश्वर रस एकरत्ती अदरखके रससे देयतो संनिपातज्वरका नाशकरे ॥

अग्निकुमाररस ।

द्वौकर्षौसूतकाद्ग्राह्यौगंधकाद्द्वौतथैवच । यत्नतस्तूभयंमर्द्यंदिनंहंसपदीरसैः ॥ कल्कस्यवटिकांकृत्वानिक्षिपेत्काचभाजने । कर्षैकममृतंतत्रक्षिप्त्वावक्त्रंनिरोधयेत् ॥ कुपिकायाः परोभागौवालुकाभिश्चपूरयेत् । सार्द्धयावद होरात्रंतावत्तत्रपचेद्रसम्॥दीपमात्रोनलोदेयः स्वांगशीतं समुद्धरेत् । तोलार्धममृतंतत्रक्षिपेत्तावत्तथोषणम् ॥ भक्षितोरक्तिकामात्रोरसस्त्वग्निकुमारकः । सन्निपातज्वरंहन्याद्धातंमंदाग्नितामपि ॥ शूलंसंग्रहणींगुल्मंक्षयंपांडु गदंतथा । श्वासकासादिकान्सर्वान्गदानेषविनाशयेत् ॥

अर्थ-पारा, गंधक, दोदो कर्षलेकर, कज्जलीकरे फिर उसको हंसपदीके रसमें १ दीन खरलकरे फिर इस कल्ककी गोली बनाय कांचकी शीशीमें भरे उसके ऊपर १ कर्ष विषका चूर्ण डालके शीशीका मुख बंद

करे फिर इस शिशीको बड़े बर्तनमें रखके गलेपर्यंत वालूभरदेवै और १२ महर दीपकाग्निसे पचन करावे स्वांगशीतल होनेपर उसको चूल्हेपरसे उतार औषधको खरलमें डाले आधातोला विष और आधा तोला कालीमिरच डालके खरलकरे, यह अग्निकुमाररस एकरत्ती रोगीको देय तो संनिपातज्वर, वायु, मंदाग्नि, शूल, संग्रहणी, गोला, पांडू, श्वास और खांसी इत्यादि रोगोंका नाशकरे॥

पंचवक्ररस ।

गंधेशटंकंमरिचंविषंधत्तूरजैरसैः । दिनंसंमर्दितंशुष्कं पंचवक्रोरसोभवेत् ॥ आर्द्रकस्यद्रवेणैषदातव्योरक्तिकामितः । संनिपातज्वरंघोरंनाशयेन्नात्रसंशयः ॥

अर्थ-गंधक, पारा, सुहागा, कालीमिरच और सींगियाविष ये औषध धतूरेके रसमें १ दिन खरल कर सुखायले तो यह पंचवक्ररस तयार हो इसको अदरखके रससे एकरत्ती देवे तो घोरसंनिपातका नाशकरे॥

दूसराप्रकार ।

शुद्धंसूतं विषं गंधं मरिचंटंकणंकणाम् । मर्दयेद्धूर्तजद्रावैर्दिनमेकं तु शोषयेत् ॥ पंचवक्रो रसोनाम द्विगुंजः सन्निपातहा । अर्कमूलकषायंतु सत्र्यूषमनुपाययेत् ॥ युक्तंदध्योदनंपथ्यंजलयोगं च कारयेत् । रसेनानेन शाम्यंति सक्षौद्रेण कफादयः ॥ मध्वार्द्रकरसेनैनंपिबेदग्निविवृद्धये । यथेष्टंघृतमांसाशी शक्तो भवतिपावकः ॥

अर्थ-शुद्धपारा, विष, गंधक, कालीमिरच, सुहागा और पीपल इन छः औषधोंको धतूरेके रससे १ दिन खरलकर २ रत्तीकी गोली बनावे इसे पंचवक्ररस कहते हैं यह आकंकीजडके काढेमें त्रिकुटाका चूर्णमिलायेक १ गोली देय और दहीभात इसके ऊपर पथ्यदेवे पीनेके वास्ते शीतल जलदेय तो यह सन्निपातज्वरको दूरकरे शहदके साथ लेनेसे कफादिरोग दूरहों तथा अदरखके रसमें शहद मिलायके पीवे तो

जठराग्निकी वृद्धि होय और घृत मांसादिक भारी अन्न यथेष्ट भक्षणकरे तोभी पचजावै तथा मस्तकपर जलकी धार देनी चाहिये ॥

उन्मत्तरस।

रसगंधकतुल्यांशंधत्तूरफलजैरसैः ।
मर्दयेद्दिनमेकंचतत्तुल्यंत्रिकटुक्षिपेत् ।
उन्मत्ताख्योरसोनामनस्येस्यात्संनिपातजित् ॥

अर्थ–शुद्धपारा १ भाग, गंधक १ भाग इनको धतूरेके फलके रसमें एकदिन खरलकर फिर इसमें बराबरका त्रिकुटाका चूर्ण मिलावे इस रसकी नस्यलेनेसे संनिपात दूरहोवे ॥

कनकसुंदररस।

कनकस्याष्टशाणाःस्युःसूतोद्वादशभिर्मतः । गंधोपिद्वादशप्रोक्तस्ताम्रंशाणद्वयोन्मितम् ॥ अभ्रकस्यचतुःशाणं माक्षिकस्यद्विशाणकम् । वंगोद्विशाणःसौवीरंत्रिशाणं लोहमष्टकम् ॥ विषंत्रिशाणकंकुर्याल्लांगलीपलसंमिता । मर्दयेद्दिनमेकंचरसैरम्लफलोद्भवैः ॥ दद्यान्मृदुपुटेवह्नौ ततःसूक्ष्मंविचूर्णयेत् । माषमात्रोरसोदेयःसंनिपातेसुदारुणे ॥ आर्द्रकस्वरसेनैवरसोनस्वरसेनवा । किलासं सर्वकुष्ठानिविसर्पंचभगंदरम् ॥ ज्वरंगरमजीर्णंचजयेद्रोगहरोरसः ॥

अर्थ–सोना २४ मासे, पारा३तोले,गंधक३तोले तामेकी भस्म ८मासे, अभ्रकभस्म १६ मासे, सोनामक्खीकीभस्म ८ मासे, वंगभस्म ८ मासे शुद्धसुरमा२तोलेभर,लोहभस्म२॥तोले,सींगियाविष६तोलेभर,कलियारीकीजड४तोलेलेय, सबको नींबूके रसमें १ दिन खरलकर मिट्टीके शराव संपुटमें रख कपड मिट्टी चढाय आरने उपलोंकी हलकी पुटदेवे शीतलहोनेपर उसमेंसे निकाल खरलमें डाल बारीक चूर्णकरके धररक्खे, इसको कनकसुंदर रस कहतेहैं यह १ मासे अदरखके रसमें अथवा लहसनके रसमें लेय तो घोर संनिपातको दूरकरे, तथा किलासकुष्ठ, इतरकुष्ठ, विसर्प, भगंदर, ज्वर, विषदोष और अजीर्ण ये रोग दूरकरे ॥

तंद्रासा०।

सन्निपातज्वरोत्पन्नांयुक्त्यातंद्रांजयेद्भिषक् ।
उपद्रवः कष्टतमोज्वराणांसविशेषतः ॥

अर्थ-सन्निपातज्वरमें तन्द्रा उत्पन्नहोतीहै इसको वैद्य युक्तिसे जीते, यह ज्वरमें कष्टसाध्य उपद्रवहै ॥

तंद्रालक्षण।

आचितामाशयकफेसंनिपातज्वरेदृढे । शांतेत्ववश्यंतस्याशुतंद्रासमुपजायते ॥ अभिद्रवरसक्षीरदिवास्वापनिषेवणात् । दुर्बलस्याल्पवातस्यजंतोः श्लेष्माप्रकुप्यति ॥ वायुर्मार्गंसमावृत्यधमनीरिनुसृत्यसः । तंद्रांसुघोरांजनयेत्तस्यावक्ष्यामिलक्षणम् ॥उन्मीलितविनिर्भुग्नेपरिवर्तिततारके । भवतस्तस्यनयनेलुलितेचलपक्ष्मणी ॥ विवृताननदंतोष्ठंमुहुरुत्तानशायिनम् ।पिच्छिलोच्छिन्नतंतुश्चकंठेश्लेष्मास्यगच्छति॥कंठमार्गावरोधश्चवैकृतंचोपजायते । सोर्वाक्त्रिरात्रंसाध्यःस्यादसाध्यस्तुततः परम् ॥

अर्थ-जिसज्वरमें आमाशयमें आम और कफ इनके संचय करके दृढसंनिपात होकर शांतिहोनेपर उस रोगीके निश्चय तन्द्रा उत्पन्नहोती है और पतलेरस, दूध और दिनकी निद्रा इनके सेवन करनेसे दुर्बल तथा अल्पवायूवाले रोगीके कफ कुपितहोता है और वो कफवायूके मार्गको रोगकर धमनियोंमें प्रवेश करते हैं और घोर तन्द्रा उत्पन्नकरे उसके लक्षण कहताहूं। उसरोगीके नेत्र आधे मिचेहुए किंवा टेढेसे हो, तारे फिरे तथा नेत्रोंकी वन्नी चंचलहो, नेत्रगिरेसे प्रतीतहो, होठ अचंलहोकर मुख खुला तथा दांत बाहरसे दीखे, वारंवार चित्त लेटे, चिकना तंतुयुक्त कफको गलेमें लावे तथा कंठमार्ग रुकजावे इसप्रकार विकृति होतीहै यह तीनरात्रिके पूर्व साध्यहै और त्रिरात्रीनंतर असाध्य जानना ॥

असुरादिअंजन।

असुराह्वस्य विट्चूर्णं कस्तूरीमधुसंयुतम् ।

अंजनाद्बोधयेन्मुग्धं तंद्रितं सन्निपातिनम् ॥

अर्थ–कांसेके मलका चूर्ण, कस्तूरी और शहत इनका अंजन करनेसे संनिपातरोगीकी तन्द्रा दूरहोय ॥

लोहांजन ।

अयोरजः श्वेतलोध्रमंजनंमरिचंतथा ।
गोरोचनसमायुक्तंतंद्रानाशनमुत्तमम् ॥

अर्थ–लोहभस्म, सपेदलोध, मिरच और गोरोचन ये सर्वऔषध खरलकर अंजन करे तो तंद्राका नाश करनेमें उत्तमहै ॥

सैंधवादिअंजन ।

अंजनं सम्यगारब्धं मधुसिंधुशिलोषणैः।
प्रमोहद्रोहिभवति भाषितं भिषजांवरैः ॥

अर्थ–सैंधानिमक, मनसिल और त्रिकुटा ये समानले शहतसे खरलकर अंजन करे तो तंद्राकी नाशकहो ऐसे उत्तम वैद्योंने कहाहै ॥

जोतिष्मतीनस्य ।

ज्योतिष्मत्यास्तथातैलंमूलंपिंडारकस्यच ।
बस्तमूत्रेणसंपिष्टानस्यंतंद्रानिवारणम् ॥

अर्थ–मालकांगनीका तेल और पिंडारककी जड इनको बकरेके मूत्रमें पीस नस्य देवे तो तन्द्रा दूरहो ॥

जातीपुष्पनस्य ।

जातीपुष्पप्रवालंचमरिचंरोहिणीवचा ।
सैंधवंबस्तमूत्रेणतंद्रानाशनमुत्तमम् ॥

अर्थ–जाईके फूल और मूंगा,कालीमिरच,कुटकी,वच और सैंधानिमक इनका बकरेके मूतमें नस्य देवे तो तंद्राको नाशकरे ॥

द्राक्षाद्यवलेह ।

स्विन्नमामलकंपिष्ट्वाद्राक्षयासहमेलयेत्। विश्वभेषजसंयुक्तंमधुनासहलेहयेत् ॥ तेनास्यशाम्यतिश्वासः कासोमूर्च्छारुचिस्तथा ॥

अर्थ-आमलोंको सिजायकर पीसडाले, फिर इसमें मुनक्का (दाख) सोंठ इनका चूर्ण मिलाय शहदके साथ देवे तौ खाँसी, श्वास, मूर्च्छा, अरुचि ये रोग दूर हों ॥

संनिपातप्रकोपकारण।

अम्लस्निग्धोष्णतीक्ष्णैःकटुमधुरसुरातापसेवाकषायैः
कामक्रोधातिरूक्षैर्गुरुतरपिशिताहारसौहित्यशीतैः।
शोकव्यायामचिंताग्रहणवनितयात्यंतसंगप्रसंगैः
प्रायः कुप्यंतिपुंसामधुसमयशरद्वर्षणेसंनिपाताः॥

अर्थ-खट्टे, चिकने, गरम,विदाही,चरपरे, मधुर, मद्य, धूप, कषेलेपदार्थोंके सेवनसे तथा काम, क्रोध,अतिरूक्ष, भारीपदार्थोंका कंठपर्यंत भोजन, मांसभक्षण, शीतपदार्थसेवन शोक, श्रम, चिंता, पिशाचबाधा, अतिस्त्रीप्रसंग इनकारणोंसे और चैत्र, वैशाख, आश्विन, कार्तिक, श्रावण, भाद्रपद इनमहीनोंमें संनिपातका प्रायः प्रकोपहोताहै ॥

संनिपातोंकेनाम।

संधिकश्चांतकश्चैवरुग्दाहश्चित्तविभ्रमः। शीताङ्गस्तंद्रिकःप्रोक्तःकंठकुब्जश्चकर्णकः॥ विख्यातोभुग्ननेत्रश्चरक्तष्ठीवीप्रलापकः। जिह्वकश्चेत्यभिन्यासस्सान्निपातास्त्रयोदश॥४॥

अर्थ-१ संधिक, २ अंतक, ३ रुग्दाह, ४ चित्तविभ्रम, ५ शीतांग, ६ तंद्रिक ७ कंठकुब्ज, ८ कर्णक, ९ भुग्ननेत्र, १० रक्तष्ठीवी, ११ प्रलापक, १२ जिह्वक और १३ अभिन्यास ये तेरह संनिपात कहे हैं ॥

उनकीमर्यादा।

संधिकेवासराःसप्त चान्तकेदशवासराः। रुग्दाहेविंशतिर्ज्ञेयावन्ह्यष्टौचित्तविभ्रमे॥५॥ पक्षमेकंतुशीतांगेतान्द्रिकेपंचविंशतिः।विज्ञेयावासराश्चैवकंठकुब्जेत्रयोदश॥६॥ कर्णकेचत्रयोमासाभुग्ननेत्रेदिनाष्टकम्। रक्तष्ठीवीदशाहानिचतुर्दशप्रलापके॥७॥ जिह्वकेषोडशाहानिकलाभिन्यासकक्षणे।परमायुरिदंप्रोक्तंम्रियतेतत्क्षणादपि॥८॥

अर्थ-संधिककी७, अंतककी १०, रुग्दाहकी २०, चित्तविभ्रमकी २४,

शीतांगकी १५, तंद्रिककी २५, कंठकुब्जकी १३, कर्णककीतीन महीना (९० दिन) भुग्ननेत्र ८, रक्तष्ठीवीकी १०, प्रलापकी १४, जिह्वककी १६, अभिन्यासकी १६ दिनकिये, संनिपातोंकी परमायुके दिन कहेहैं, परंतु रोगी शीघ्रही मरजाता है॥

साध्यासाध्य।

सन्धिकस्तन्द्रिकश्चैवकर्णकःकंठकुब्जकः।
जिह्वकश्चित्तविभ्रंशःषट्साध्याःसप्तमारकाः॥ ९॥

अर्थ-संधिक १, तंद्रिक २, कर्णक, ३, कण्ठकुब्ज ४, जिह्वक ५, चित्तविभ्रंश ६ ये छह साध्य हैं बाकी बचे सात सो मारक हैं॥

संधिकसन्निपात।

पूर्वरूपकृतशूलसंभवंशोषवातबहुवेदनान्वितम्।
श्लेष्मतापबलहानिजागरंसान्निपातमितिसंधिकंवदेत्॥

अर्थ-जिसज्वरके पूर्वरूपमें शूल, शोष, वायुकी अत्यंतपीडा, कफ, संतापबलकी हानी और जागरण ये लक्षण हों उसको संधिक संनिपात जानना॥

संधिकारीरस।

शुद्धंसूतंसमंगंधंमारितंचाभ्रकंसमम्। त्रिक्षारजीरकव्यो षत्रिफलालवणैःसमम्॥ चित्रकस्यकषायेणादिनैकंमर्द येद्दृढम्। गुंजापंचमितंखादेत्संधिकारिरितिस्मृतः॥पि-प्पलीमधुनाचानुपिबेदुष्णोदकंतथा॥

अर्थ-शुद्धपारा, शुद्धगंधक, अभ्रकभस्म, तीनोंक्षार, जीरा, त्रिकुटा, त्रिफला, निमक ये समानभागले, चित्रकके काढेमें १ दिन खरलकरे यह संधिकारी रस ५ रत्ती शहत पीपल इनके साथ देवे और ऊपर गरमजल पिवावे तो यह संधिकसन्निपातको दूरकरे॥

संनिपातानलरस।

रसभस्मसमंगंधंताम्रभस्मद्वयोःसमम्। ताम्रतुल्यंखर्प रंचखर्परांशंचहिंगुलम्॥ अम्लवेतसकाभावेक्षारंचणक संभवम्।जंबीरैर्गर्भितंरुध्वापुटकेभूधरेपचेत्॥आदायखल्ल येच्चूर्णंहिंगुकर्पूरत्र्यूषणम्॥ चत्वारःसूततुल्याःस्युःसप्त

ब्राह्म्यार्द्रकद्रवैः।भावयेच्चमहाराष्ट्र्यानिर्गुंड्याकरवीरजैः॥ द्रवैरेतैःपृथग्भाव्यसप्तधासप्तधाक्रमात्। चूर्णयित्वातुषट् गुंजंदापयेदार्द्रकद्रवैः॥ सन्निपातानलःसोयंरसःस्यात्संनिपातजित्। अतितंद्राज्वरश्वासक्लमकासातिसारजित्॥

अर्थ- पारदभस्म और गंधक, दोनों एक २ भाग ताम्रभस्म, खपरिया और हिंगुल ये प्रत्येक दो दो भाग, लेकर अमलवेतके रसमें यदि अमलवेंत न मिले तो चनाखार और जंभीरीके रसमें खरलकर भूधरयंत्रमें एकपुट देवे फिर हींग, कपूर, सोंठ, मिरच, पीपल ये एक२भागले उन्हींसे खरलकरे और ब्राह्मी, अदरख, जलपीपल, निर्गुंडी, कनेर इन प्रत्येकके रसकी सात २ भावना देय, तो यह संनिपातानल रस तयार हो, इसमेंसे छःरत्तीरस अदरखके रससे देय तो संनिपात, तंद्रा, ज्वर, श्वास, ग्लानि, खाँसी और अतिसार इनको नाशकरे॥

निर्गुंड्यादिधूप।

निर्गुंडीपुरसहितःसिद्धार्थकनिंबपत्रसंयुक्तः।
सर्जरसेनसमेतोधूपःसंधिकग्रहंहरति॥

अर्थ-निर्गुंडी, गूगल, सरसों, नीमके पत्ते और राल इनकी धूनी संधिक संनिपातका नाशकरे॥

दूसरानिर्गुंड्यादिधूप।

निर्गुंडीपिचुमंदकुष्टविजयाकार्पाससिद्धार्थकैःषट्ग्रंथातगरामरेंद्रतरुभिमार्तंडमूलान्वितैः।चंडापावकरुद्रमाल्यसहितैर्मध्वासवैर्मोदितैर्धूपोयंग्रहसंनिपातजनितांपीडांपिनष्टिक्षणात्॥

अर्थ-निर्गुंडी, नीमकीपत्ती, कूठ, भाँग, विनोले, सरसों, वच, तगर, देवदार, आककीजड, किरमानी अजवायन, चित्रक और बेलगिरी इनका चूर्णकर इसको शहद और दारूसे भिगोय धूपदेवे तो संनिपात और ग्रहोंकी पीडा इनको क्षणमात्रमें दूरकरे॥

देवदारुकाढा।

सुरदारुसठीसुधालतासुवहाशुंठियुताःशृताजलेन।

सपुराःशमयंतिसेविताःसततंहंतिसदासदागतिम् ॥

अर्थ—देवदारु, कचूर, गिलोय, रास्ना और सोंठ इनके काढेमें गूगल डालके सेवन करे तो वायूका नाशकरे ॥

मुस्तादिकाढा ।

मुस्तैरंडप्राणदावाणदारुच्छिन्नारास्नाभीरुकर्चूरतिक्ताः ।
वासाविश्वापंचमूलीयुगाढचोहन्यान्मन्यास्तंभसंधिग्रहार्तिम्

अर्थ—नागरमोथा, अंडकीजड, जलपीपल, नीलापियावासा, तेलिया देवदार, गिलोय, रास्ना, शतावर, कचूर, कुटकी, अडूसा, सोंठ और दशमूल इनका काढा मन्यास्तंभ और संधिवात इनका नाशकरे ॥

वचादिकाढा ।

वचाकवचकच्छुरासहचरामृताभंगुरासुराह्वघननागरात-
रुणदारुरास्नापुरा । वृषातरुणभीरुभिःसहभवंतिसंधिग्र-
हव्यथोरुजडिमक्लमभ्रमणपक्षघातापहाः ॥

अर्थ—वच,धमासा, गिलोय, भारंगी, पियावासा,देवदार, नागरमोथा, सोंठ,विधायरा,रास्ना, गुग्गुल, असगंध, अंडकीजड,सतावर इनका काढा संधिक संनिपात,जडता, ग्लानि, भ्रम और पक्षाघात इनका नाशकरे ॥

रास्नादिकाढा ।

रास्नाशुंठीगुडूचीसहचरजलदैर्भीरुपथ्यासुराह्वैस्तिक्ता-
कर्चूरवासानिलरिपुसहितैःपंचमूलीद्वयेन । एभिर्द्रव्यैःक-
षायस्त्वरितमपहरेत्पीतमात्रःप्रभातेमन्यास्तंभांत्रवृद्धि
ज्वरपिटिककटीसंधिसर्वांगपीडाम् ॥

अर्थ—रास्ना, सोंठ, गिलोय, पियावासा, नागरमोथा, शतावर, हर-ड, देवदारु,कुटकी,कचूर, अडूसा, अंडकी जड और दशमूल इनका काढा मन्यास्तंभ, अंत्रवृद्धि, ज्वर, पिडिका, कमर, तथा संधि इनका शूल और सर्वदेहकी पीडा को दूरकरे ॥

अमृतादिकाढा ।

अमृतोरुबुकविश्वासुरतरुरास्नाहरीतकीक्वाथः ।
सकलसमीरणरोगान्प्रातःसद्योहरेत्पीतः ॥

अर्थ-गिलोय, अंडकीजड, सोंठ, देवदारु, रास्ना, हरड इनका काढा प्रातःकाल पीवे तो सर्ववातके रोगोंका नाशकरे ॥

ग्रंथ्यादिकाढा।

ग्रंथीकलितरुपथ्याकृतमालशिवाढरूषकैर्विहितः।
एरंडतैलयुक्तःक्वाथो हन्यान्मरुन्मांद्यम् ॥

अर्थ-पीपरामूल, बहेडा, हरड, अमलतासका गूदा, आमले और अडूसा इनके काढेमें अंडीकातेल मिलायके पीवे तो बादीसेहुए मंदत्वको नाशकरे ॥

पंचमूल्यादिकाढा।

मूलीपंचककल्ककलिपतमिदंसन्मागधीमिश्रितम्।
कौलत्थेनरसेनसैंधवयुतंपेयंचविश्वौषधम् ॥

अर्थ-पंचमूल, पीपल, सैंधानिमक, सोंठ इनके चूर्णको कुलथीके जलके साथ देवे तो वायुका नाशकरे ॥

रास्नादिकाढा।

रास्नागुडूचीशठिवृद्धदारुसुराह्वविश्वात्रिफलावरीभिः।
क्वाथंपिबेद्गुग्गुलुसंनियुक्तंसमग्रसंधिग्रहसंनिपाते ॥

अर्थ-रास्ना, गिलोय, कचूर, विधायरा, देवदारु, सोंठ, त्रिफला और सतावर इनके काढेमें गूगलमिलायके पीवे तो संधिकसंनिपातकोदूरकरे ॥

क्षारादिपरिमाण।

जीरकंगुग्गुलुंक्षारंलवणंचशिलाजतु।
हिंगुत्रिकटुकंचैवक्वाथेशाणोन्मितांक्षिपेत् ॥

अर्थ-जीरा, गूगल, क्षार, नोन, शिलाजीत, हींग और त्रिकुटा इनका चूर्ण काढेआदिमें ४ मासेडाले ॥

संधिकपरलंघन।

संधिस्थेहितमास्तिलंघनविधिःस्वेदोपनाहादिकम्।
सूक्ष्मंकर्मसमग्रमेवविहितंकुर्याद्यवागूरसम् ॥

अर्थ-संधिकसांनिपातपर लंघन, स्वेदन, पिंडी आदि बाँधना इत्यादि देहहलका करनेके उपचार करना योग्यहैं और यवागू आदि पथ्यहै ॥

अंतकसं॰निदान ।

दाहंकरोतिपरितापनमातनोतिमोहंददातिविदधातिशिरःप्रकंपम् । हिक्कांकरोतिकसनंचसमाजुहोतिजानीहितंविबुधवर्जितमंतकाख्यम् ॥

अर्थ—दाह, संताप, मोह, शिरःकंप, हिचकी और खांसी ये अंतक संनिपातके लक्षणहैं इस अंतकसंनिपातको वैद्यत्यागदे ॥

अंतकेरोटीकाबंधन ।

अयंप्रयोगोयदिसन्निपातेभिषग्वराणांकथितोनुभूतः । सरागिकापिष्टपलांडुतोयंविधायसम्यक्चसरोटिकांच ॥ मृद्वीपुनःस्निग्धविभर्जिताचसोष्णाचताल्वोपरिबंधनीया । यामद्वयंबध्यपुनश्चबध्वायावन्मनुष्योधृतिमातनोति ॥ एवंविधिश्चांतकसंनिपातेमृत्युर्व्यथागच्छतिनिश्चयेन॥

मृतसंजीवनीरस ।

अर्थ—वैद्योंने बहुत अनुभव करके अंतक संनिपातपर यह प्रयोग कहाहै कि, राईकेचूर्णको लहसनके रसमें सानके उसकी रोटी बनाय तेलमें अथवा घृतमें सेक गरमागरम मस्तकपर बाँधे, दोप्रहरकेबाद फिर बाँधे तो मनुष्यके अंतक संनिपातकी व्यथा दूरहोय परंतु हमारी समझमें उसरोटीको अंडीके तेलमें सेके ॥

शुद्धंसूतंसमंगंधंखल्वेवैकज्जलीकृतम् । तथालोहकभस्मात्रताम्रभस्मसमंसमम् ॥ विषतालककंकष्टंशिलाहिंगुलचित्रकैः । हस्तिमुंडीचातिविषंत्र्यूषणंहेममाक्षिकम् ॥ भृंगीकुंभीमेघनादाःप्रतिचूर्णंरसांशकम् । त्रिदिनंमर्दयेत्खल्वेद्रवैरार्द्रकसंभवैः ॥ निर्गुंडीविजयाद्रावैस्त्रिदिनंमर्दयेत्पुनः । जंबीरस्यचचांगेर्याद्रवैःसंमर्दयेद्दिनम्॥ काचकुप्यांनिवेश्याथवालुकायंत्रगंपचेत् । द्वियामांतेसमुद्धृत्यमर्दयेच्चार्द्रकद्रवैः ॥ दिनैकंशोषितं चूर्णं त्रिगुंजंसंनिपातजित् । मृतसंजीवनोनामरसोयंशंकरो-

दितः ॥ मृतोपिसंनिपातेनजीवत्येवनसंशयः । सक्षीरं दापयेत्पथ्यंदेयोवानंदभैरवः ॥

अर्थ–पारा और गंधक दोनों की कजलीकरे फिर लोहभस्म, विष, हरताल, मुरदासिंग, मनसिल, हींगुरू, चित्रक, इन्द्रायणका गूदा, अतीस, त्रिकुटा, सोनामक्खी, भांग, जमालगोटा और चौंलाईकीचड, सब समान ले अदरख और भांगरेके रसमें एकदिन खरलकरे, फिर काँचकी शीशीमें भर वालुकायंत्रमें २ प्रहर पचन करावे, फिर अदरखके रसमें एक दिन घोटे तो शिवप्रोक्त मृतसंजीवनीरस तयारहो इसको तीन रत्ती देय तो सन्निपातसे आसन्नमरणवालाभी रोगी बचजावे । इसके ऊपर दूध भात पथ्यदेवे अथवा यह रस नमिले तो आनंदभैरव रस देना चाहिये.

पथ्यादिकाढा।

पथ्यावृषारग्वधदारुतिक्तारास्नागुडूचीगदजःकषायः।
सोपद्रवाच्चांतकनामधेयाज्वरान्नरंमोचयतीतिचित्रम् ॥

अर्थ–हरड, अडूसा, अमलतासका गूदा, देवदारु, कुटकी, रास्ना, गिलोय और कुलिंजन इनका काढा उपद्रवसहित मनुष्योंको अंतकज्वरसे मुक्तकरे इसमें क्या आश्चर्य है ॥

असाध्यत्वकहते हैं।

इहापहायवृतमुष्णवारिज्वरारियूषादिगदापहारि।
ज्वरच्छिदंजीवितदंचनित्यंमृत्युंजयंचेतसिचिंतयस्व ॥

अर्थ–अंतक संनिपात होनेसे गरम जल, ज्वरनाशक काढे, यूष इत्यादि को त्यागके जीवनका देनेवाला और ज्वर नाश कर्त्ता जो मृत्युंजय शिव उसका चिंतवन करे ॥

भिषग्भिरितिनिर्णीतंसंनिपातेंतकाभिधे।
भेषजंजाह्नवीनीरंवैद्योगोविंदएवहि ॥

अर्थ–अंतकसंनिपात होनेसे वैद्योंने ऐसा निश्चय करा है कि, उस रोगीका विष्णुभगवान् वैद्यहै और गंगाजल यही औषधी है अर्थात् भगवन्नामस्मरण और गंगाजल पीवे ॥

रुग्दाहसंनि०निदान ।

प्रलापपरितापनप्रबलमोहमांद्यश्रमः परिभ्रमणवेदना-
व्यथितकंठमन्याहनुः । निरंतरतृषाकरःश्वसनकासहि-
क्काकुलःसकष्टतरसाधनोभवतिहन्तिरुग्दाहकः ॥

अर्थ-प्रलाप, संताप, अत्यंतमोह, मंदत्व, श्रम, भ्रमण और कंठ, मन्या-नाडी तथा ठोड़ी इनमें पीडा, सर्वकाल तृषा, श्वास, खाँसी और हिचकी इन लक्षणकरके युक्त ऐसा रुग्दाहसंनिपात कष्टसाध्य और मारक है ॥

जलधरकाढा ।

जलधरमलमजनागरसवालकोशीरपर्पटैःक्वथितम् ।
यःपिबतिपयः सुशीतंशाम्यतिरुग्दाहकस्तस्य ॥

अर्थ-नागरमोथा, लालचंदन, सोंठ, नेत्रवाला, खस और पित्तपापड़ा इनका काढा शीतल होनेपर देवे तो रुग्दाह सन्निपातको शमन करे ॥

अभयादिकाढा ।

अभयापर्पटमुस्ताकटुकीशम्याकगोस्तनीक्वाथः ।
पीतःकरोतिनाशंरुग्दाहरुजोनसंदेहः ॥

अर्थ-हरड़, पित्तपापडा, नागरमोथा, कुटकी, अमलतासका गूदा और मुनक्का(दाख) इनका काढा करके पीवे तो रुग्दाह संनिपात नाश होय ॥

ब्राह्म्यादिकाढा ।

ब्राह्मीद्राक्षाजलधरवचोशीरशम्याकतिक्तापथ्याधात्रीक-
लितरुबलानिंबकोशातकीभिः।भूनिंबाढ्याभवपिसहितः
पंचमूलीद्वयेनपीतःक्वाथःसकलपवनव्याधिरुग्दाहहंता ॥

अर्थ-ब्राह्मी, दाख, नागरमोथा, वच, खस, अमलतासका गूदा, कुटकी, त्रिफला, खरेंटी, नीमकीछाल, कडुई घीयाके बीज, चिरायता और दशमूल इनका काढा सर्ववात व्याधियोंका और रुग्दाह संनिपातको नाश करे ॥

उशीरादिषडंगकाढा ।

उशीरचंदनोदीच्यद्राक्षामलकपर्पटैः ।
शृतंशीतंजलंदद्यादाहतृड्ज्वरशांतये ॥

अर्थ–नेत्रवाला, लालचंदन, खस, दाख, आमले और पित्तपापडा इनका काढा शीतलकरके देय तो दाह, तृषा और ज्वर ये शांति होय॥

धान्याककाढा।

ससितोनिशिपर्युषितः प्रातर्धान्याकतंडुलक्काथः।
पीतः शमयत्यचिरादंतर्दाहंज्वरंशैत्यम् ॥

अर्थ–धनियाँ और चावल इनको रात्रिमें भिगोय देवे, प्रातःकाल इसकी पेयाकर शीतल होनेपर देवे तो अंतर्दाह और पित्तज्वर इनका शमन करे॥

अगर्वादिधूप।

अगरुघनसारसल्लककररुहनतनीरचंदनैर्युक्तः।
सर्जरसेनसमेतोधूपोरुग्दाहकंहंति॥

अर्थ–कालीअगर, कपूर, सल्लकी, नख, तगर, नेत्रवाला, चंदन और रार इनकी धूनी रुग्दाहनाशक है॥

दध्यादिलेप।

शमयतिदाहमचिराद्दधियुक्तकर्कंधुपल्लवैर्लेपः।
लेपोहिमकरमलयजनिंबदलैस्तक्रपिष्टैर्वा॥

अर्थ–बेरके पत्तोंको पीस दहीमें मिलाय अंगोंमें लेपकरे अथवा कपूर, चंदन, नीमकेपत्ते ये एकत्र छाँछमें पीसके लेपकरे तो इससे दाह शमन होवे॥

बदर्यादिलेप।

बदरीपल्लवलेपःश्रीखंडारिष्टकेनसंयुक्तः।
दातव्यःपादतलयोस्त्वरयारुग्दाहसंनिपातघ्नः॥

अर्थ–बेरकेपत्ते, चंदन और नीम ये औषध एकत्र पीस पैरोंके तलुएमें लेपकरे तो रुग्दाह शमन होय॥

लाजतर्पण।

दाहवम्यर्दितंक्षामंनिरन्नंतृष्णयान्वितम्।
शर्करामधुसंयुक्तंपाययेल्लाजतर्पणम्॥

अर्थ–दाह और वमन इनकरके कृश अन्नचले नहीं और तृषार्त्त ऐसे रोगीको खीलोंका यूष, बूरा और शहत मिलायके देवे॥

स्त्रीकाआलिंगन ।

पयोधराढ्यांकुशलांसुरूपांनवयौवनाम् ।
प्रमदांस्वभुजाश्लेषैर्भजेद्रुग्दाहपीडितः ॥

अर्थ–रुग्दाहयुक्त मनुष्यका स्वरूपवती, पीनस्तनी, विलासचतुर ऐसी स्त्रीका आलिंगन करनेसे रुग्दाह शमन होय ॥

पथ्यावलेह ।

पथ्यांतैलघृतक्षौद्रैर्लिहेद्दाहज्वरापहाम् ।
कासासृक्सर्ववीसर्पश्वासान्हंतिवमीरपि ॥

अर्थ–हरडकाचूर्ण, तेल, घी अथवा शहत इनके साथ खाय तो खाँसीमें जो रुधिर गिरे वो, तथा विसर्प श्वास, वमन (वांति) इनका नाश होय ॥

भैरवीगुटी ।

शुद्धसूतंद्विधागंधंमर्दयेदिक्षुकद्रवैः । दिनंभाव्यंचमर्द्यं चशोषयित्वातुभृंगजैः ॥ चतुर्धाभावयेद्द्रावैस्तिलपर्ण्याद्रवैश्चसः। भावितंचविशोष्याथचूर्णयेद्वस्त्रगालितम्॥ चूर्णतुल्यंमृतंताम्रंताम्रादष्टांशकंविषम् । कृष्णाशीतविडंगानिकृष्णाजीरासनंबला ॥ ताम्रार्धंप्रतिचूर्णंस्यात्सर्वमेकत्रकारयेत् । यामैकंभृंगजद्रावैर्मर्दयेत्कल्कतांगतम्॥ स्निग्धभांडगतंपाच्यंपिंडंयामात्कृशाग्निना॥ चणमात्रावटीयोज्याचित्रकार्द्रकसैंधवैः॥सम्यक्त्रिदोषजंहंतिसंनिपातंसुदारुणम् ।भैरवीगुटिकाख्याताद्ध्यन्नंपथ्यमाचरेत्॥

अर्थ–शुद्धपारा और गंधक इनकी कजली कर ईखके रसमें १ दिन भावना देवे, फिर भाँगरेके रसकी४ भावनादेय,फिर तिलपर्णीके रसकी भावना देकर सुखाय कपडछान कर लेवें पीछे इस चूर्णके समान ताम्रभस्म ताम्रका अष्टमांश सिंगियाविष और काली तथा सपेद वायविडंग, पीपर, जीरा, रास्ना, खरेटी ये प्रत्येक ताम्रसे आधी २ लेवे, सबको एकत्रकर भांगरेके रससे १ प्रहर खरल करे जब घुटते २ कल्कके समान हो जावे तब घीके चिकने बर्तनमें रखके मंदाग्निपर जबतक गोला होय तबतक पचन करावे फिर इसकी चनेके प्रमाण गोली करे इसको चीता, अदरख और सैंधानिमक इनके साथ देवे तो त्रिदोष-

जन्य संनिपातका नाश करे इसको (भैरवीगुटी) कहतेहैं इसके ऊपर दही भातकी पथ्यदेनी चाहिये ॥

चित्तभ्रमसन्निपात।

यदिकथमपिपुंसांजायतेकायपीडाभ्रममदपरितापोमोह-
वैकल्यभावः। विकलनयनहासोद्गीतनृत्यप्रलापीह्यभिद
धतिनसाध्यंकेपिचित्तभ्रमाख्यम् ॥

अर्थ–किसीप्रकार शरीरमें पीडा, भ्रम, उन्माद, संताप, मोह, विकलपना, नेत्रोंमें व्याकुलता, हँसना, गाना, नाचना और बकना ये लक्षण होनेसे इसको चित्तविभ्रम संनिपात कहते हैं यह असाध्य है ॥

मध्वादिकाढा।

मधुनखशाल्मलिकृष्णावनतरुपथ्यामुरागरूभिश्च।
मलयजसहितैरेतैःक्वाथश्चित्तभ्रमंहंति ॥

अर्थ–महुआकी छाल, नख, (सुगंधद्रव्य) सेमरका मूसला, पीपर, कोहवृक्षकी छाल, हरड, मुरा, अगर और लालचंदन इनका काढा चित्तविभ्रमको शमन करे ॥

द्राक्षादिकाढा।

मृद्वीकामरदारुमत्स्यशकलामुस्तामलक्योमृतापथ्या-
रेवतरामसेनकरजाराजीफलैःसंयुतः। हन्युश्चित्तरुजो-
थदर्दुरदलद्राक्षापटोलीपयःपथ्यापर्पटराजवृक्षकटुकाशं
बूकपुष्पशृतः ॥

अर्थ–दाख, देवदारु, कुटकी, नागरमोथा, आमले, गिलोय, हरड, अमलतासका गूदा, चिरायता, पित्तपापडा और पटोलपत्र इनका अथवा ब्राह्मी, दाख, पटोलपत्र, नेत्रवाला, हरड, पित्तपापडा, अमलतासका गूदा, कुटकी और शंखपुष्पी इनका काढा चित्तविभ्रमको शमनकरे॥

ब्राह्म्यादिकाढा।

ब्राह्मीचवाभीरुफलत्रिकेणतिक्ताबलारग्वधतिक्तकेन।
निंबाह्वकोशातकिहारहूराद्विपंचमूलीभिरसौकषायः॥
पीतोहिचित्तभ्रमसंनिपातंनिहंतिरुग्दाहमपिप्रभूतम् ॥

अर्थ–ब्राह्मी, बच, शतावर, त्रिफला, कुटकी, खरेंटी, अमकतासका

गूदा, चिरायता, नीमकीछाल, घीयाकेबीज, दाख और दशमूल इनका काढा चित्तभ्रम संनिपातको और रुग्दाहको नाशकरे ॥

पथ्यादिकाढा ।

पथ्यापर्पटकटुकामृद्वीकादारुजलदभूनिंबाः ।
शम्याकपटोलशिवाक्काथश्चित्तभ्रमंहंति ॥

अर्थ-हरड, पित्तपापडा, कुटकी, दाख, देवदार, नागरमोथा, कडु-आचिरायता, अमलतासका गूदा, पटोलपत्र और आमले इनका काढा चित्तविभ्रम संनिपातको नाश करे ॥

हरीतक्यादिकाढा ।

हरीतकीपर्पटहारहूराशंबूकपुष्पैःकटुकीपयोदैः ।
शम्याकदेवाह्वयभारतीभिश्चित्तभ्रमंहंतिकृतःकषायः ॥

अर्थ-हरड, पित्तपापडा, दाख, शंखपुष्पी, कुटकी, नागरमोथा, अमलतासका गूदा, देवदार और ब्राह्मी इनका काढा चित्तभ्रम संन्निपातका नाशकहै ॥

कणाद्यंजन ।

कणोषणोग्रालवणोत्तमानिकरंजबीजक्षणदामलानि ।
पथ्याक्षसिद्धार्थकहिंगुशुंठीयुतानिबस्तांबुविमिश्रितानि॥
पिष्ट्वागुटीयंनयनेविधेयाप्रचेतनेतिप्रथितान्वितार्था ।
चितभ्रमापस्मृतिभूतदोषशिरोक्षिरोगभ्रमनाशहेतुः ॥

अर्थ-पीपर, कालीमिरच, वच, सैंधानिमक, कंजाकेबीज, हलदी, आमले, हरड, बहेडा, सरसों, हींग और सोंठ इनका चूर्ण एकत्रकर बकरेके मूत्रमें खरलकरके गोलीबांधे इसका नेत्रोंमें अंजन करे तो चैतन्यता होय और चित्तविभ्रम, मृगी, भूतदोष, मस्तकरोग, नेत्ररोग और भ्रम इनका नाशकरे ॥

कुंभोद्भवनस्य ।

कुंभोद्भवतरोरंभोगुडविश्वाकणान्विम् ।
निहितंनसिनूनंस्याश्चित्तभ्रमविनाशनम् ॥

अर्थ-अगस्तीयाके पत्तोंके रसमें गुड, सोंठ और पीपलको डालके नस्य देवे तो चित्तभ्रमको नाशकरे ॥

धूप।

मुरामूर्धजमेघाह्वमधूकमलयोद्भवैः। मरुत्तरुमधून्मिश्रैः पुरपाणिजपांसुभिः॥ लोहलामज्जकैलाभिर्धूपश्चित्तभ्रमापहः। ग्रहदोषहरःश्रीदःसौभाग्यकरउत्तमः॥

अर्थ-मुरा (गंधद्रव्य) नेत्रवाला, महुआकी छाल, चंदन, देवदारु, शहद, नखद्रव्य, पित्तपापड़ा, अगर, पीलासुगंधवाला और इलायची इनकी धूनी चित्तभ्रम संनिपात और ग्रहदोष इनकी नाशक तथा लक्ष्मी-कारक और कांतिप्रदहै॥

संनिपातगजांकुश।

शुद्धंसूतंमृतंचाभ्रंशुद्धेतालकमाक्षिके। हिंगुंचतुल्यतुल्यंस्यान्मर्दयेत्खल्वकेद्रवैः॥ वंध्यापटोलनिर्गुंडीसुगंधानिंबचित्रकैः। धत्तूरलांगुलीपाठाभृंगाजंबीरजद्रवैः॥ त्रिदिनंमर्दयेदेभिश्चूर्णीकृत्यविमिश्रयेत्। त्रिक्षारसैंधवंवालंविषंमधुरसारकम्॥ तुल्यंतुल्यंविचूर्ण्याथपूर्वोक्तचंद्रमासमम्। एकीकृत्यभवेत्सिद्धःसन्निपातगजांकुशः॥संनिपातंनिहंत्याशुमाषमात्रःप्रयोजितः॥

अर्थ-पारा, अभ्रकभस्म, हरताल, सुवर्णमाक्षिक ये शुद्धलेवे उसमें समानभाग हींग डालके घीकुवार, बाँझककोडा, परवल, सपेद और काली निर्गुंडी, नीम, चित्रक, धतूरा, कलियारी, पाढ, भाँग और जँभीरी इनके रसमें ३ दिन खरलकरे तथा इसमें क्षारत्रय, सैंधानिमक, विष, काकोली और जमालगोटा ये समान भागले अर्थात् ये पूर्व औषधोंकी बराबर होय इसप्रकार मिलावे तो यह संनिपातगजांकुश रसबने इसमेंसे १ मासे देनेसे संनिपातका नाशकरे॥

प्राणेश्वररस।

रसंगंधंसमंशुद्धंमृतंताम्रंमृतंरसम्। दिनैकंतालमूल्याश्चवाराह्यारसमर्दितम्॥ निरुद्धंकाचकुप्यांतुवालुकायंत्रगंपचेत्। दिनंवाभूधरेपक्वासमादायविचूर्णयेत्॥ त्रिक्षारंपंचलवणंत्रिफलाव्योषचित्रकैः।सजीरकैःसेंद्रयवैर्हिंगुगु-

ग्गुलुदीप्यकैः ॥ सर्वैःसमैःपूर्वसमंचूर्णीकृत्यविमिश्रयेत् ।
माषमात्रंप्रदातव्यंकिंचिदुष्णोदकंपिबेत् ॥
सन्निपाताचलेवज्रंसज्वरग्रहणीप्रणुत् ।
कुर्यात्प्राणपरित्राणमतःप्राणेश्वरोरसः ॥

अर्थ-शुद्धपारा, गंधक, ताम्रभस्म, पारदभस्म इन सबको मूसली और वाराहीकंदके रसमें खरलकर शीशीमें भरके वालुकायंत्रमें अथवा भूधरयंत्रमें पचन करावे जब शीतल होजावे तब इसमें क्षारत्रय, पाँचों निमक, त्रिफला, त्रिकुटा, चित्रक, जीरा, इन्द्रजौ, हींग, गूगल और अजवायन, सब समानले इनका चूर्ण पहिली औषधोंके बराबर लेकर मिलावे, फिर इसमेंसे १ मासे लेकर ऊपरसे गरमपानी पीवे तो संनिपात, संग्रहणी और ज्वर इनको नाशकरे यह प्राणेश्वररस प्राणोंकी रक्षा करने वालाहै ॥

मोरेश्वररस ।

शुद्धंसूतंद्विधागंधदिनैकंचार्द्रकद्रवैः। मर्दयित्वाचतंगोलं गोलार्धंताम्रसंपुटे ॥ क्षिप्त्वानिरुध्यतत्संधिंमृण्मूषायांनि रुध्यच। रात्रौगजपुटेपाच्यंप्रातरादायचूर्णयेत् ॥ गुंजैकं नागरसमंसघृतंसन्निपातनुत् । अनुपानंपिबेत्पश्चात्तप्तं वारिपलद्वयम्॥दध्यन्नंदापयेत्पथ्यंतृषायांशीतलंजलम्। कृशंचकुरुतेस्थूलंनरंमोरेश्वरोरसः ॥

अर्थ-शुद्धपारा १ भाग, गंधक २ भाग इनको एकदिन अदरखके रससे खरलकर गोली बांधे उन गोलियोंका आधा तामा ले उसकी डिब्बी बनाय उसमें वो गोली भरके बंदकर मिट्टीके पात्रमें रखके मुख बंदकर संधियोंको लेपकर बंदकरदेवे फिर १ रात्रि गजपुटमें रखके आँच देवे प्रातःकाल निकालकर चूर्ण करे इसमेंसे १ रत्ती सोंठ और घीसे देवे ऊपर ८ तोले गरम जलपीवे और दहीभातका पथ्यदेके जब प्यास लगे तब शीतल जलदेवे तो यह(मोरेश्वररस) कृशपुरुषको मोटाकरे॥

शीतांगसं०निदान ।

हिमसदृशशरीरोवेपथुःश्वासहिक्काशिथिलितसकलांगः
खिन्ननादोग्रतापः। क्लमथुदवथुकासच्छर्द्यतीसारयुक्त-
स्त्वरितमरणहेतुःशीतगात्रःप्रभावात् ॥

अर्थ--देह अत्यंत शीतल, कंप, श्वास, हिचकी, अंगोंमें शिथिलता, शब्द वारीक, भीतरसंताप, विनाकारण श्रम, संताप, खाँसी, वमन और अतीसार इनलक्षणों करके युक्त सन्निपातको शीतगात्र (शीतांग) सन्निपात कहते हैं यह तत्काल प्राणनाश करे ॥

शीतांगकीचिकित्सा ।

मृतसंजीवनोवाथरसोगुंजाद्वयोहितः।सर्वांगसुंदरोवाथस्वच्छंदोभैरवोपिवा।दातव्यःपंचवक्रोवाशीतांगंनाशयेद्ध्रुवम् ॥

अर्थ-शीतांग संन्निपातपर मृतसंजीवन रस दो रत्ती किंवा सर्वांगसुंदर अथवा स्वच्छंदभैरव किंवा पंचवक्र रस देवे तो शीतांगसन्निपात नाश होय॥

अर्कादिकाढा ।

भास्वन्मूलंजीरकव्योषभार्गीव्याघ्रीशृंगीपुष्करंगोजलेन।
सिद्धंसद्यःशीतगात्रातिमोहश्वासश्लेष्मोद्रेककासान्निहंति ॥

अर्थ-आककीजड, जीरा, त्रिकुटा, भारंगी, कटेरी, काकडासिंगी और पोहकरमूल इनका काढा गोमूत्रमें सिद्धकरके पीवे तो तत्काल शीतगात्र, संनिपात, मोह, श्वास और कफवृद्धि इनका नाश हो ॥

मातुलिंगादिकाढा ।

मातुलिंगादिभूनिंबग्रंथिकंदेवदारुच ।
दशमूलाजमोदंचशुंठीशीतांगनाशनम् ॥

अर्थ-बिजौरेकी केशर, चिरायता, पीपरामूल, देवदारु, दशमूल, अजमोद और सोंठ इनका काढा शीतांग संन्निपातनाशक है ॥

कर्कोटकाद्युद्वर्तन ।

कर्कोटिकाकंदरजःकुलित्थाकृष्णावचाकट्फलकृष्णजीरैः ।
किराततिक्ताग्निककटुवलांबुपथ्याभिरुद्वर्त्तनमत्रशस्तम् ॥

अर्थ-ककोडेका कंद, पित्तपापडा, कुलथी, पीपल, वच, कायफर, कालाजीरा, चिरायता, चित्रक, कडुई तूंबी और हरड इनके चूर्णको देहमें मले तो शीतांग सन्निपातका नाश करे ॥

श्रीवेष्टादिचूर्ण ।

श्रीवेष्टफलसंभूतभस्मभागाष्टकंशुभम् । मरीचस्यचचत्वारोरसस्यैकोविषस्यच ॥ सूक्ष्मचूर्णंततःकृत्वामर्दयेद-

तियत्नतः।असाध्येपिहिशीतांगेस्वेदोयातिहिनिश्चितम्॥
चूर्णंचणकभृष्टोत्थंभृष्टभृंगीभवंतथा । कुलित्थकोत्थ-
चूर्णेनस्वेदोयातिहिनिश्चितम्॥

अर्थ–शरलवृक्षके फलोंकी भस्म ८ भाग, भांग ४ भाग, कालीमिरच ४ भाग, पारा और सिंगियाविष ये सब एकत्रकर इनका बारीक चूर्ण करे इसके सेवनसे असाध्य शीतांगवालेके भी पसीने आवे भुनाहुआ चनेका चून भुना हुआ भांगका चूर्ण और कुलथीका चूर्ण इनकी मालिश करनेसे पसीने दूरहो॥

तंद्रिकसं०निदान।

प्रभूतातंद्रार्तिज्वरकफपिपासाकुलतरोभवेच्छ्यामाजि-
ह्वापृथुलकठिनाकंटकवृता । अतीसारःश्वासःक्लमथुप-
रितापःश्रुतिरुजोभृशंकंठेजाड्यंशयनमनिशंतंद्रिकगदे॥

अर्थ– (तंद्रिक)सन्निपातमें अत्यंत तंद्रा, शूल, ज्वर, कफ, प्यास इनसे रोगी पीडित हो जीभ काली कठोर और ऊपर कांटेयुक्त हो अतीसार, श्वास, ग्लानि, संताप, कानोंमें पीडा, गलेमें जडता और निरंतर निद्राका आना ये लक्षण होते हैं॥

तंद्रिकपरीक्षा।

ज्वरेप्रथममुत्पन्नेचक्षुर्भ्यांनैवपश्यति।
तंद्रिकःसन्निपातोयंकष्टसाध्योभवेत्ततः॥

अर्थ–ज्वर उत्पन्न होतेही नेत्रोंके आगे अंधेरा आवे तो यह तंद्रिक संन्निपात कष्टसाध्य जानना॥

भांग्यादिकाढा।

भांर्गीगुडूचीधनकंटकारीहरीतकीपौष्करनागराणाम्।
कृतःकषायस्त्रिदिनंनिपीतोघोरंजयेत्तंद्रिकसन्निपातम्॥

अर्थ–भारंगी, गिलोय, नागरमोथा, कटेरी, हरड, पुहकरमूल और सोंठ इनका काढा तीनदिन पीवे तो घोर तंद्रिक संन्निपात दूर होय॥

दूसराप्रकार।

भांर्गीपुष्करपथ्यानिदग्धिकानागरामृताक्काथः।
अपनात्तितंद्रिकभयंनिःसंशयंप्रगेतनेपीतः॥

अर्थ-भारंगी, पोहकरकमूल, हरड, कटेरी, सोंठ और गिलोय इनका काढा प्रातःकाल पीवे तो निःसंदेह तंद्रिकसंन्निपात शमन होय ॥

अमृतादिकाढा।

अमृतापटोलवासाव्योषयुतस्तंद्रिकेक्काथः ॥

अर्थ-गिलोय,पटोलपत्र,अडूसा और त्रिकुटा इनका काढा तंद्रिकपर देवे॥

रास्नाद्यंजन।

रास्नामनःशिलातैलमंजनंचैवतंद्रिके ॥

अर्थ-रास्ना,मनसिल,इनसे सिद्धकरे हुए तेलका अंजन तंद्रिक संनिपातनाशक है ॥

तुरंगलालाअंजन।

तुरंगलालालवणोत्तमेंदुमनःशिलामागधिकामधूनि।
नियोजितान्यक्षिणिनिश्चितंद्राक्तंद्रांसनिद्रांविनिवारयंति ॥

अर्थ-सैंधानिमक, कपूर, मनसिल और पीपल ये चार औषधोंको घोडेकी लारमें और शहदमें घिसके अंजन करे तो तंद्रिक को दूरकरे॥

कृष्णादिनस्य।

कृष्णामनःशिलातालमंजनमेवंतंद्रिकेत्विष्टम्।
अमृतापटोलयूषोव्योषयुतस्तंद्रिकंजयति ॥

अर्थ-पीपल, मनसिल, हरताल, इनका अंजन हितकारी है और गिलोय, पटोलपत्र इनका काढा त्रिकुटाके चूर्णसे देवे तो तंद्रिक संनिपातका नाशकरे ॥

कुष्ठादिनस्य।

कुष्ठगवाक्षीनागरनिशाद्वयमरीचकणावचायुक्तम्।
बस्तसलिलेनपिष्टंतंद्रिकहिंस्रंभवेन्नस्यम् ॥

अर्थ-कूठ, इंद्रायन, सोंठ, हलदी, दारुहलदी, मिरच,पीपर और वच इनको बकरके मूत्रमें पीस नस्य देवे तो तंद्रिकसन्निपात को दूरकरे ॥

मरिचादिनस्य।

मरिचकंचपचंपचावचारुकूकुमिहरनागरशर्वरीगवाक्ष्यः।
छगलकजलकान्वितानितांतंनसिनिहितानतुतंद्रिकंजयति ॥

अर्थ-मिरच, दारुहलदी, वच, कूठ, वायविडंग, सोंठ, हलदी और

इन्द्रवारुणी इनको बकरेके मूत्रमें खरलकर नस्यदेवे तो तंद्रिकको निश्चय दूरकरे ॥

क्षुद्रादिनस्य ।

क्षुद्रामृतापौष्करनागराणिशृतानिपीतानिशिवायुतानि ।
शुंठीकणागस्त्यरसोषणानिनस्येनतंद्राविजयोल्बणानि ॥

अर्थ–कटेरी, गिलोय,पोहकरमूल,सोंठ और हरड इनका काढा देकर अगस्तियाके रसमें त्रिकुटा को मिलाय नस्यकरे तो यह नस्य और ऊपर कहाहुआ काढा तंद्राके जीतने को समर्थ है ॥

कंठकुब्जनिदान ।

शिरोर्तिकंठग्रहदाहमोहकंपज्वरारेक्तसमीरणार्तिः ।
हनुग्रहस्तापविलापमूर्छास्यात्कंठकुब्जःखलुकष्टसाध्यः ॥

अर्थ–मस्तकका दूखना, कंठका जिकडना, दाह, मोह, कंप, ज्वर, वातरक्त, रक्तकी पीडा, ठोडीका जिकडना,संताप, प्रलाप और मूर्च्छा इतने लक्षणयुक्त ज्वरको (कंठकुब्ज) सन्निपात कहते हैं ॥

शृंग्यादिकाढा ।

शृंगीवत्सकचेतकीघनसठीभूनिंबभार्गीनिशातिक्तापुष्क-
रचित्रकैः समरिचैर्व्याघ्रीवृषामिश्रितैः । धात्रीदारुबिभी-
तकैश्चचविकाविश्वाकणाकट्फलैःपीतःकृंततिकंठकुब्ज-
मचिरात्कोष्णःकषायस्त्विह ॥

अर्थ–काकडासिंगी, कूडाकी छाल, हरड, नागरमोथा, कचूर, चिरायता, भारंगी, हलदी, कुटकी, पुहकरमूल, चित्रक, कालीमिरच, कटेरी, अडूसा, आमरे, देवदार, बहेडा,चव्य,सोंठ,पीपल और कायफल इनका काढा किंचित् उष्ण पीवे तो कंठकुब्ज सन्निपात को जीते ॥

त्रिकट्वादिकषाय ।

त्रिकटुकलिंगककटुकाहरीतकीबिभीतकामलकैः ।
ध्वंसयतिकंठकुब्जंवृषरजनीद्वयसंयुतःकषायः ॥

अर्थ–त्रिकुटा, इन्द्रजौ, कुटकी, हरड, बहेडा, आपले, अडूसा, हलदी और दारुहलदी इनका काढा कंठकुब्जवाले रोगीको हितकारी है ॥

फलत्रिकादिकाढा ।

फलत्रिकत्र्यूषणमुस्तकट्वीकलिंगसिंहाननशर्वरीभिः ।

क्वाथः कृतः कृंततिकंठकुब्जंकंठीरवःकुंजरमाशुयद्वत् ॥

अर्थ-त्रिफला, त्रिकुटा, मोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, अडूसा और हलदी इनका काढा करके पीवे तो जैसे सिंह हाथीको जीते इसप्रकार कंठकुब्जको जीते ॥

किरातादिकाढा।

किरातकटुकाकणाकुटजकंटकारीसटीकलिद्रुकिलिमा-भयाकटुककट्फलांभोधरैः । विषामलकपुष्करानल-कुलीरशृंगीवृषैर्महौषधसखैरयंजयतिकंठकुब्जंगणः ॥

अर्थ-चिरायता, कुटकी, पीपर, इन्द्रजौ, कटेरी, कचूर, बहेडा, देवदारु, हरड़, कालीमिर्च, कायफल, नागरमोथा, अतीस, आमले, पोहकरमूल, चित्रक, काकडासिंगी, अडूसा और सोंठ इनका काढा कंठकुब्ज सन्निपातको जीते

कृष्णादिनस्य।

अपनयतिकंठकुब्जंकृष्णापामार्गयुङ्नस्यम् ।
अथहंतिसलिलसहितंत्रिकटुककटुतुंबिनीनस्यम् ॥

अर्थ-पीपल और ओंगाके रसकी नस्य अथवा त्रिकुटा कडुई घीयाके बीज इनको पानीमें औटायके इसकी नस्य देवे तो कंठकुब्जको दूरकरे ॥

सिद्धवटी।

शुद्धसूतंतथागंधंकाकडंसैंधवंसमम्।सद्योबालस्यविष्ठांच द्रवैर्ब्राह्मयाविमर्दयेत् ॥ गुटिकाबदराकाराभक्षितारोगना-शिनी। इयंसिद्धवटीनामसन्निपातंनियच्छति ॥ पूर्वोक्ते-नानुपानेनदेयोवानंदभैरवः ॥

अर्थ-शुद्धपारा, शुद्धगंधक, काकडासिंगी, सैंधानिमक तथा सद्जाए बालककी विष्ठा ये सब समान भाग ले ब्राह्मीके रसमें खरलकर बेरके बराबर गोली बनावे यह गोली सन्निपातरोग नाशक है अथवा पूर्वोक्त अनुपानके साथ आनंदभैरव रस देय वोभी सन्निपातनाशक है ॥

कर्णकसन्निपातनिदान ।

प्रलापश्रुतिह्रासकंठग्रहांगव्यथाश्वासकासप्रसेकप्रभावम् ।
ज्वरंतापकर्णांतयोर्गल्लपीडाबुधाःकर्णकंकष्टसाध्यंवदंति॥

अर्थ-मलाप, बहरेपना, कंठका स्तंभ, अंगोंमें पीडा, श्वास, खाँसी, लारका गिरना, संताप, कान और गाल इनमें पीडा इत्यादि लक्षणों करके कर्णकसान्निपात जानना यह कष्टसाध्य ज्वर है ॥

रास्नादिकषाय ।

रास्नाश्वगंधाघनकंटकारीभांर्गीवचापौष्कररोहिणीनाम् ।
क्वाथः कृतः शृंग्यभयायुतानांपीतोजयेत्कर्णकसांन्निपातम्॥

अर्थ-रास्ना, असगंध, नागरमोथा, कटेरी, भारंगी, वच, पुहकरमूल, कुटकी,काकडासिंगी, हरड इनका काढा कर्णकसन्निपातनाशक है ॥

रास्नादिकाढा ।

रास्नाबृहतीपथ्याव्योषकटुकाघनपुष्कराह्वच ।
शृङ्गीधाराभांर्गीक्वाथोयंकर्णकंहरेस्मरणात् ॥

अर्थ-रास्ना, कटेरी, हरड, त्रिकुटा, कुटकी, नागरमोथा, पोहकमूल, काकडासिंगी, आमरे और भारंगी इनका काढा कर्णकसन्निपातको दूर करे ॥

मरीचादिकाढा ।

मरीचदशमूलमगधाफलत्रयनिशामहौषधीति-
क्ता । भूनिंबसैंधवयुतः कर्णकहंताभवेत्क्वाथः॥

अर्थ-कालीमिरच, दशमूल,पीपर, त्रिफला, हलदी, सोंठ, कुटकी, चिरायता इनके काढेमें सैंधानिमक डालके पीवे तो कर्णकको दूर करे ॥

भांर्ग्यादिकाढा ।

भांर्गीजयापुष्करकंटकारिकटुत्रिकोग्रावनकंडुलीभिः ।
कुलीरशृंगीकटुकारसाभिः कृतःकषायःकिलकर्णकघ्नः॥

अर्थ-भारंगी, छोकरा, पोहकरमूल, कटेरी, त्रिकुटा, वच, वनका जमीकंद,काकडासिंगी, कुटकी और रास्ना इनका काढा कर्णकसंनिपात नाशकहै ॥

दशमूलादिकाढा ।

दशमूलमत्स्यशकलाचपलात्रिफलामहौषधाकिरातयुताः ।
मरिचपरिक्वथितमायुबलादपहंतिकर्णकरुजः सकलाः॥

अर्थ-दशमूल, कुटकी, पीपल, त्रिफला, सोंठ, चिरायता, काली मिरच इनका काढा कर्णकसंनिपातको शीघ्र दूरकरे ॥

इंगुद्यादिलेप ।

इंगुदिनिशाविशालासैंधवसुरदारुरविदुग्धैः ।
दत्तःक्रमेणलेपोहरतिमहाकर्णकग्रंथिम् ॥

अर्थ-हिंगोट (गोंदी) हलदी, इन्द्रायनकागूदा, सैंधानिमक, देवदार और आकका दूध इनका लेप कर्णमूलपर क्रमसे एकके ऊपर दूसरा वारंवार करावे तो कर्णक दूर हो ॥

प्रलेप ।

प्रलेपस्समस्तंनयत्यल्पमेकःसमुद्रिक्तशोथंचरक्तावसेकः ।
विपक्वंचशस्त्रक्रियापूयजित्स्याद्व्रणत्वंगतेचेद्ध्रुतंतच्चिकित्सा ॥

अर्थ-प्रथम कर्णमूलपर शीघ्र लेप देय जिससे सूजन बैठजावे यदि सूजन बहुत भारी होय तो उसका रुधिर निकलवावे यदि पकजावे तो उसमें चीरादेकर राधनिकाल फिर व्रणचिकित्सा करे ॥

व्रणचिकित्सा ।

निशाविशालामयपाणिमंथदार्वींगुदीमूलकृतःप्रलेपः ।
प्रभाकरक्षीरयुतःप्रभावाद्व्यस्तःसमस्तोप्यथकर्णकघ्नः ॥

अर्थ-हलदी, इन्द्रायनकागूदा, कूठ, करोंदाकोपत्ती, दारुहलदी और हिंगोटकी जड ये औषध आकके दूधमें गरम करके उसका लेप करे यदी ये सब औषध न मिले तो जो औषध मिले उसीको गरम करके लेप करे तो कर्णक सन्निपातका नाश होय ॥

कुलित्थादिलेप ।

कुलित्थःकट्फलंशुंठीकारवीतैःसमांशकैः ।
सुखोष्णैर्लेपनंकार्यंकर्णमूलेमुहुर्मुहुः ॥

अर्थ-कुलथी, कायफल, सोंठ, सौंफ इनका समभाग चूर्णकर गरम जलमें मिलायके लेप करे तो कर्णमूल बैठ जावे ॥

गैरिकादिलेप ।

गैरिकंकंटिनीशुंठीकट्फलैःसवचैःसमैः ।
उष्णैःकांजिकसंपिष्टैःप्रलेपःकर्णमूलनुत् ॥

अर्थ-गेरू, गोखरू, सोंठ, कायफल और वच इनको काँजीमें पीस गरमकर लेप करे तो कर्णमूल शांति हो ॥

शिग्र्वादिलेप।

शिग्रराजिकयोःपिष्टंकर्णमूलेप्रलेपयेत्।
कर्णमूलभवःशोफस्तेनलेपेनशाम्यति ॥

अर्थ-सहेंजनेकीछाल और शिरस इनको महीन पीस कर्णकपर लेप करे तो कर्णमूल संबंधी सूजन शांतिहो ॥

अर्ककालेप।

दशशतकरदुग्धंपुष्करत्वक्समेतंदहनगुडनिकुंभाकुष्ठ-
कासीसयुक्तम्। अपनयतिवितीर्णंलेपनंसप्तरात्राच्छ्वयथु
हरणयुक्तंकर्णकग्रंथिमेतत् ॥

अर्थ-पोहकरमूल, दालचीनी, चित्रक, गुड, कायफल, कूठ और हीराकसीस इन औषधोंका चूर्णकरके आकके दूधमें घोटकर लेप करे तो यह लेप सातही दिनमें कर्णमूलको शमन करे ॥

दंत्यादिलेप।

दंतीचित्रकयोर्मूलंस्नुह्यर्कपयसागुडः।
भल्लातकास्थिकासीसंलेपोभवतिकर्णके ॥

अर्थ-दंती, चित्रक, दोनोंकी जड, थूहर, आकका दूध, गुड, भिलावेकी मिंगी और कसीस इनको जलमें पीस लेप करे तो कर्णकसंनिपात दूर हो ॥

नागरादिलेप।

सनागरंदेवदारुरास्नाचित्रकपेषितम्।
प्रलेपनमिदंश्रेष्ठंगलशोफनिवारणम् ॥

अर्थ-सोंठ, देवदारु, रास्ना और चित्रक इनको जलसे पीस लेप करे तो गलेकी सूजन दूर हो ॥

निशादिलेप।

निशेंगुदींसैंधवदारुकुष्ठदार्वीविशालारविदुग्धलेपः।
तंकर्णग्रंथिसमपाहरेद्वाजलौकयापातनमत्रशस्तम् ॥

अर्थ-हरदी, हिंगोट, सैंधानिमक, देवदारु, कूठ, इन्द्रायणकीजड इनको आकके दूधसे पीस लेप करे तो कर्णकशांति हो अथवा उस गांठमें जोखलगायके रुधिरको निकाल डाले तो अच्छा होय ॥

बीजपूरादिलेप।

बीजपूरकमूलत्वक्वह्निमंथस्तथैवच।
शरपुंखाशिखितुंबीसकृष्णाविषमुष्टिभिः॥
प्रलेपोवाहिडिंबीभिःश्वयथौकर्णमूलजे॥

अर्थ-बिजोरेकी जड, दालचीनी, अरनी, सरफोंका, चित्रक, कडुईतुंबी, पीपल, कुचलाकेबीज इनका लेप कर्णमूलकी सूजनपर करे॥

वज्रमुष्ट्यादिलेप।

वज्रमुष्टिभवःकंदोशोथविध्वंसनक्षमः। कर्कटस्यचमांसेनस्वेदनंबंधनंतथा॥कणमूलभवंशोथंनाशयत्यविलंबतः॥

अर्थ-वज्रमुष्टीका कंद कर्णककी सूजनको नष्ट करे और केकडेके मांससे सेके और वही मांस उसपर बांध देवे तो कर्णकसंबंधी सूजन शीघ्रनाश होय॥

सिद्धार्थादिलेप।

सिद्धार्थसैंधववचाग्रहधूमविश्वैःपिष्टैर्जलेननिशयासहितं सुसूक्ष्मम्। लेपोहितोरुधिरनिष्क्रमणेप्रभातेशोफव्रणस्यशमनःसरुजश्चकर्णे॥

अर्थ-प्रथम कर्णमूलकी सूजनपर जोख लगायकर रुधिर निकलवाय डाले और दूसरे दिन प्रातःकाल उस सूजनपर सरसों, सैंधानिमक, वच, घरकाधूआं, सोंठ, हलदी इनको पानीमें पसि उसका लेप करे तो सूजनयुक्त व्रणको और पीडाको शमन करे॥

रोहीतकादिलेप।

लेपेनरोहीतकपीलुसिंधुपुत्रींद्रवल्लीकटुहंजिकावा। तुत्थालसर्षपशिलानवसारगंधकासीसकुष्ठपटुहंसपदीकरंजः॥ लेपात्पलंकषयुताश्वसयावशूकानिःसंशयंसपदिकर्णकवेदनाघ्नाः॥

अर्थ-रुहेडा, अखरोटवृक्षकी छाल, मोतीकी सीप, इन्द्रायन, करेले,

नीलाथोथा, हरताल, सरसों, मनसिल, नोसादर, गंधक, हीराकसीस, कूट, निमक, हंसपदी, कंजा, गूगल और जवाखार इनका लेप कर्णमूलपर करे तो तत्काल कर्णमूलकी पीडा दूर करे ॥

मरीचादिनस्य ।

अशिशिरजलपरिमर्दितंमरिचकणालवणजंरजस्त्वरितम् ।
नस्यविधौसेवितंकिलकर्णकरुङ्नाशनंगदितम् ॥

अर्थ–गरमजलमें मिरच,पीपल और सैंधानिमक औटायकर नस्यलेय तो कर्णककी पीडा दूर हो ॥

कर्णकपरनस्य ।

अशिशिरजलयुक्तंनावनंकर्णकातौंजनयतिसुखसिद्धिं
घ्राणरंध्रप्रवेशात् । लवणपरमकृष्णाचूर्णयुक्तंप्रभातेसक-
लमुनिभिरुक्तंव्याधिविध्वंसकारि ॥

अर्थ–कर्णकरोगमें सैंधानिमक और पीपल इनका चूर्ण गरमपानीमें डालके प्रातःकाल नस्य लेवे तो कर्णकपीडावालेको सुख होय ॥

सामान्यउपचार ।

तंजयेच्छोणितस्रावैःसर्पिःपानप्रलेपनैः ।
प्रदाहैःकफपित्तघ्नैर्वमनैःकवलग्रहैः ॥

अर्थ--रक्तस्राव, घृतपान, लेप, दागना, कफपित्तनाशक वमन और मुखमें कवल धरना इत्यादि उपचार कर्णककी सूजनपर करे ॥

कांजिकादिलेप ।

कांजिकेनसुपिष्टंतुधूर्तबीजप्रलेपनम् ।
राजिकागुडमिश्रेणकर्णमूलेसुखावहम् ॥

अर्थ–धतूरेके बीज, राई और गुड इनको एकत्रकर पीस कांजीमें मिलाय लेप करे तो सुख होय ॥

उपचार ।

रक्तस्रावोजलौकाभिर्घृतपानंचयुज्यते ।
कर्णग्रंथिविनाशार्थमायुर्वेदविदांवरैः ॥

अर्थ–कर्णमूलवालेके जोख लगाय रुधिर कढावे और घृत पिवावे तो अच्छा होय ॥

अन्न ।

जीर्णानांरक्तशालीनांज्वरघ्नःक्वाथसाधितः । प्रसृत-
स्त्वोदनोद्विस्त्रिकायोंयूषादिकोपिवा ॥ सचेज्जीर्यत्य-
विघ्नेनज्वरीजीवेत्तदाध्रुवम् ॥

अर्थ–पुराने लालचावलोंका ज्वरघ्न काढेमें भात अथवा यूष बनायके देवे यदि यह जिस रोगीको निर्विघ्न पचजावे तो रोगी निःसंदेह वचे ॥

भुग्ननेत्रसंनिपातनिदान ।

ज्वरबलापचयस्मृतिशून्यताश्वसनभुग्नविलोचनमोहितः ।
प्रलपनभ्रमवेपथुशोथवान्त्यजतिजीवितमाशुसभुग्नदृक् ॥

अर्थ–ज्वरकर्के बलक्षीण, स्मरण शक्तिका नाश, श्वास, टेढीदृष्टी, मूर्च्छा, प्रलाप, भ्रम, कंप ये लक्षण भुग्ननेत्र संनिपातमें होतेहैं यह रोगी तत्काल मरे ॥

द्राव्यादिकाढा ।

दार्वीपटोलाघनकंटकारीतिक्तानिशाबिंबफलत्रिकाणाम् ।
क्वाथोनियोज्योज्वरसंनिपातेविभुग्ननेत्रप्रतिबोधनाय ॥

अर्थ–दारुहलदी, पटोलपत्र, नागरमोथा, कटेरी, कुटकी, हलदी, नीमकीछाल, हरड, बहेडा और आमला इनका काढा ज्वर और भुग्ननेत्र सनिपात इनपर बोध होनेके लिये देय ॥

श्रेष्ठादिकाढा ।

श्रेष्ठापटोलकटुकाघननिंबसुराह्वधावनीसाहिताः ।
घ्नंतिभृशंमोहंपित्तज्वरसंनिपातोत्थम् ॥

अर्थ–पीपल, पटोलपत्र, कुटकी, नागरमोथा, नीमकीछाल, देवदार और कटेरी इनका काढा मोह, पित्तज्वर तथा संनिपातज्वरका नाश करे ॥

यष्ट्यादिकाढा ।

यष्टीपटोलकटुकाघननिंबसुराह्वधावन्यः ।
अपहरंतिमोहपित्तंज्वरमुग्रंसंनिपातोत्थम् ॥

अर्थ–मुलहटी, पटोलपत्र, कुटकी, नागरमोथा, नीमकीछाल, देवदार और कटेरी इनका काढा पित्तज्वर और उग्रसंनिपातज्वर इनका नाशक है ॥

मरिचादिनस्य।

मरिचतुरगगंधामागधीसिंधुजातंलशुनमधुकसारैरुग्रगंध द्रकाभ्याम्।छगलकजलपिष्टंसंयुतंशास्त्रविद्भिःसपदिभवतिनस्यंभुग्ननेत्रप्रमाथि॥

अर्थ–कालीमिरच, असगंध, पीपल, सैंधानिमक, लहसन, मद्दुआका गोद, वच और अदरख इनको बकरेके मूत्रमें पीस नस्यदेवे तो भुमनेत्र सन्निपातको दूर करे॥

अश्वगंधादिनस्य।

तुरंगगंधालवणोग्रगंधामधूकसारोषकमागधीभिः।
बस्तांबुशुंठीलशुनान्विताभिर्नस्यंत्वसंभुग्नदृशंकरोति॥

अर्थ–असगंध, सैंधानिमक, वच, मुलहटी, अनारदाना, त्रिकुटा और लहसन इनको बकरेके मूत्रमें नस्यदेवे तो नेत्र स्वच्छ करे॥

भूनिंबादिअवलेहअंजन व नस्य।

भूनिंबमाक्षिकवचासहितंचकुर्याल्लेहंकणोषणरसोनकराजिकाभिः नेत्रांजनंचलवणोत्तमपिप्पलीभ्यांनस्यंवचामरिचाहिंगुमधूकसारैः॥

अर्थ–चिरायता, शहद, वच, पीपल, मिरच, लहसन और राई इनका अवलेह देवे तथा निमक और पीपल इनका अंजनकरे और वच, मिरच, हींग, मुलहटी और अनारदाना इनका नस्य करावे॥

मार्तंडभैरवरस।

शुद्धसूतंसमंगंधंगंधात्पादांशटंकणम्।ताम्रपात्रेक्षिपेत्पिष्टंजयंत्यालोडयेद्द्रवैः॥शिग्रुमूलरसेनाथभावयेदष्टधातपो॥कटुत्रयस्यवासायावह्निरुद्रजटाद्रवैः॥ तिलपर्णीतथाजातीपिप्पलीपत्रमूलकैः॥ द्रावैरेवतुसप्ताहंशोष्यंशोष्यंविभावयेत्॥ ताम्रपात्रात्समुद्धृत्यकृत्वागोलंविशोषयेत्॥ वस्त्रेबध्वामृदाप्यत्रभूधरैः स्वेदयत्पुटे॥ द्वियामांतेसमुद्धृत्यचूर्णयेदोषधैः सह। विषकर्पूरजात्येलारसस्यदशमांशतः॥ भावयेद्विजयाद्रावैर्दिनमे-

कंचमर्दयेत् । चतुर्गुंजासकर्पूरमधुनासन्निपातजित् । मार्तंडोयंरसोनामअसाध्यंसाधयेद्ध्रुवम् ॥ दशमूलंपिबेच्चानुपथ्यंस्यान्मुद्गयूषकैः ॥

अर्थ-पारा १ भाग, गंधक १ भाग, सुहागा चतुर्थांश, सबको एकत्र कर तामेके पात्रमें डालके जयंतीके रसकी तथा सहेंजनेकी जडके रसकी आठ २ भावना धूपमें धरके तामेके पात्रमें देय और त्रिकुटा,अडूसा, चित्रक, ईश्वरी, तिलपर्णी, जावित्री, पीपलके पत्ते और जड इन प्रत्येकके रसकी सात २ भावना देवे फिर सुखावे फिर तामेके पात्रमेंसे निकाल उसका गोला कर सुखायके ऊपर कपड़मिट्टी कर भूधरयंत्रमें दो प्रहर पचन करावे जब शीतल हो जाय तब निकाल बारीक घोटे उसमें विष, कपूर, जावित्री और इलायची ये सब वस्तु पारेके दशांश डालके भाँगके काढेमें एक दिन खरल करे तो यह (मार्तंड रस) बने इसमेंसे चार रत्ती शहद और कपूर इनसे देवे ऊपरसे दशमूलका काढा देवे तो असाध्यभी सन्निपातका नाश करे॥

रक्तष्ठीवीसन्निपातनिदान ।

रक्तष्ठीवीज्वरवमितृषामोहशूलातिसारहिक्काध्मानभ्रमणदवथुश्वाससंज्ञाप्रणाशः । श्यामारक्ताधिकतररसनामण्डलोत्थानरूपारक्तष्ठीवीनिगदितग्रहप्राणहंताप्रसिद्धः ॥

अर्थ-रुधिर गेरना, ज्वर, वमन, तृषा, मूर्छा, शूल, अतीसार, हिचकी, पेटका फूलना और नेत्रोंमें दाह, श्वास, चित्तभ्रम, जिह्वा काली किंवा लाल उसपर चकत्ते हों ऐसे लक्षणयुक्त जो हो उसको (रक्तष्ठीवी) सन्निपात कहते हैं यह प्राणनाशक प्रसिद्ध है ॥

पर्पटादिकाढा।

पर्पटकधन्वयासकवासाभूतृणकैःकटुकीफलनस्यम् ।
शर्करयासहितोपिकषायोलोहितमास्यगतंविनिहंति ॥

अर्थ-पित्तपापरा, धमासा, अडूसा, रोहिस(सुगंधि तृण) इनका काढा खांड मिलायके देवे और कंकोलका चूर्ण करके इसकी नस्य करे तो मुखसे रुधिर गिरनेको दूर करे ॥

जलदादिकाढा।

जलदाह्वयपद्मकपर्पटकमलयोद्भवजातिवरीमधुकैः।
मधुनिंबजलानलचंदनकैःक्वथितंमुखरक्तदरंसलिलम् ॥

अर्थ-नागरमोथा, पद्माख, पित्तपापडा, चंदन, चमेली, सतावर, मुलहटी, शहद, नीमकीछाल, नेत्रवाला, चित्रक और लालचंदन इनका काढा मुखसे रुधिर बहतेको बंद करे ॥

रौहिषादिकाढा।

रौहिषधन्वयवासकवासापर्पटगंधलताकटुकाभिः।
शर्करयासममेषकषायःक्षतजष्ठीविनउदितउपायः ॥

अर्थ-सुगंधितृण, धमासा, अडूसा, पित्तपापडा, गंधलता, कुटकी इन का काढा खाँडके साथ देवे तो रक्तष्ठीवी सन्निपात दूर हो ॥

पद्मादिकाढा।

पद्मकचंदनपर्पटमुस्ताजातिवरारुणचंदनवारि।
क्लीतकनिंबयुतंपरिपक्वंवारिभवेदिहशोणितहारि ॥

अर्थ-पद्माख, चंदन, पित्तपापडा, नागरमोथा, चमेलीके पत्ते, त्रिफला, लालचंदन, सुगंधवाला, मुलहटी और नीम इनका काढा रक्त ष्ठीवीको नष्ट करे ॥

मधुकादिकाढा।

मधुकमधूकपरूषकषायश्चंदनपल्लवदारुसनाथः।
श्रीपर्णीफलशीतकषायःससितइहस्थादस्रजयाय ॥

अर्थ-महुआ, मुलहटी, फालसा, रक्तचंदन, पत्रज, देवदार, सालवन के फल इनका काढा शीतल करके खांड मिलायके देय तो रुधिर बंद होय ॥

दूर्वादिनस्य।

देयंदूर्वारसैर्नस्यंरसैर्दाडिमपुष्पजैः।
अथवात्रिफलादूर्वाजलंरक्तहरंपरम् ॥

अर्थ-दूबके रसकी अथवा अनारके फूलके रसकी किंवा त्रिफला और दूबके रसकी नस्य देवे तो रक्तष्ठीवी सन्निपात नष्ट होय ॥

आम्रादिनस्य।

आम्रास्थिचपलांडुर्वानासिकाच्युतरक्तजित् ॥

अर्थ-आमके गुठलीकी अथवा लहसनके रसकी नस्यदेवे तो नाकसे रुधिर गिरना बंद हो ॥

चिकित्सा।

पंचवक्त्रोरसोप्यत्रदेयोगुंजाद्वयोहितः।
भस्मेश्वरोरसोवाथमाषैकंसन्निपातजित् ॥

अर्थ-पंचवक्त्ररस दो रत्ती अथवा भस्मेश्वर १ मासे देय तो रक्तष्ठीवीको नाश करे ॥

रक्तष्ठीवीचिकित्सा।

रक्तेमोरेश्वरोदेयोरसोगुंजाद्वयंघृतैः। सनागरोनिहंत्याशुसन्निपातंसुदारुणम् ॥ अनुपानविशेषाच्चतप्तंवारिपलद्वयम्। दध्यन्नंदापयेत्पथ्यंतृषार्तेशीतलंजलम् ॥

अर्थ-रक्तष्ठीवीमें मोरेश्वररस घृतके और सोंठके चूर्णसे दो रत्ती देय अनुपान विशेषमें गरम जल ८ तोले देय और पथ्यमें दहीभात देय और अतितृषामें शीतल जल देवे ॥

सोमपाणीरस।

सूतनिष्कंगंधनिष्कंमर्दयेच्चित्रकद्रवैः। माषैकंमृततीक्ष्णंस्यान्मृतंशुल्वंचमाक्षिकम् ॥ माषैकैकंचसंमिश्र्यपूर्वसूतेथमर्दयेत्। धत्तूरत्रिफलाकन्यावृद्धादार्व्यार्द्रकद्रवैः ॥ कोशाम्रकस्यमण्डूक्यानिर्गुंड्याभृंगिचित्रकैः। वयस्थापिचवातारिशक्रासनद्रवैरपि ॥ प्रतिद्रावंपलैकैकंदत्त्वास्वल्पंविमर्दयेत्। रसांसंत्र्यूषणंक्षिप्त्वाचणमात्रावटीकृता ॥ तांमिश्रसन्निपातार्तेदापयेज्जीरकद्रवैः। कषायःपंचमूलानामनुपानंप्रशस्यते ॥ दध्यन्नंदापयेत्पथ्यंतृषार्तेशीतलंजलम्। सन्निपातंनिहंत्याशुसोमपाणीरसोवरः ॥

अर्थ-पारा और गंधक चारचार मासे लेकर उनको चीतेके रसमें खरल करे फिर १ मासा तीक्ष्ण लोहकी भस्म १ मासा ताम्रभस्म और एक मासा शुद्ध माक्षिक ये एकत्र कर उक्तपारे गंधकमें मिलाय धतूरा, त्रिफला, घीकुवार, विधायरा, अदरख, लाल आम, ब्राह्मी, निर्गुंडी, भाँगरा, चीता, आमले, अंडकी जड और भांग इनके एक एक पल काढेमें अथवा रसमें घोटे फिर पारेके समान भाग त्रिकुटेका चूर्ण डालके चनेकी बराबर गोली बनावे ये रक्तष्ठीवी सन्निपातपर जीरेके काढेसे देवे और पीछे पंचमूलका काढा देय तथा दहीभातका पथ्य देय जब प्यास लगे तब शीतल जल देवे तो यह (सोमपाणिरस) सन्निपातको दूर करे॥

प्रलापकसन्निपातनिदान।

कंपप्रलापपरितापनशीर्षपीडाप्रौढप्रभावपवमानपरोन्यचिंता । प्रज्ञाप्रणाशविकलप्रचुरप्रवादःक्षिप्रंप्रयातिपितृपालपदंप्रलापी ॥

अर्थ-कंप, प्रलाप, संताप, मस्तकपीडा, अत्यंत प्रभाव, स्वच्छता, विषय, इच्छा, अन्यपुरुषकी चिंता, बुद्धिका नाश, विकलता, अत्यंतबकवाद करना अथवा वादकरना इन लक्षणों करके (प्रलापक) संनिपात जानना यह रोगीको तत्काल यमलोकको पहुँचावे ॥

मुस्तादिकाढा।

मुस्तवारिदशमूलनागरंपर्पटोमलयजंधवत्वचः ।
वासकःकृतसमानविभागःक्काथएवहरतिप्रलापकम् ॥

अर्थ-नागरमोथा, नेत्रवाला, दशमूल, सोंठ, पित्तपापडा, लालचंदन, धवकी छाल और अडूसा ये समान माग ले काढाकर पीवे तो प्रलापक सन्निपात दूर होय ।

तगरादिकाढा।

तगरतुरगगंधापर्पटीशंखपुष्पीत्रिदशविटपितिक्ताभारतीभूतकेशी । जलधरकृतमालश्वेतकीगोस्तनीभ्यां सहहरतिकषायोमंक्षुपानात्प्रलापम् ॥

अर्थ-तगर, असगंध, पापरी, शंखाहूली, देवदार, कुटकी, ब्राह्मी, जटामांसी, नागरमोथा, अमलतासका गूदा, हरड और दाख इनका काढा प्रलापक संनिपातको तत्काल शमन करे ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई-४